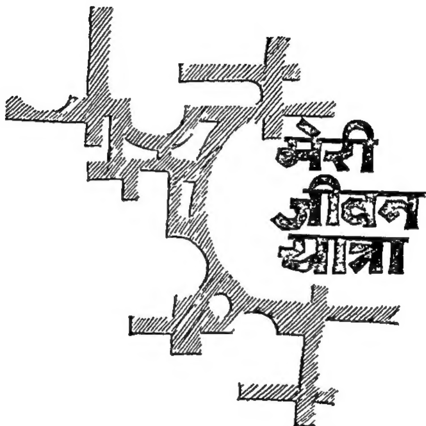

मेरी
जीवन
यात्रा

के करीब चढाई चरनी पटी। फिर कुछ उतराई उतर कर कालीगगा के किनारे कालीमठ पहुँचे। किसी समय यह पाशुपता का केन्द्र था। मुख्य मंदिर के बाहर कत्यूरी लिपि में एक १८ पंक्तियों का २० इंच लम्बा १० इंच चौडा शिलालेख था। यदि विशालमणिजी ने देर न की होती तो हम अच्छे समय पर पहुँचत और फोटो ले सकते थे। लेकिन अब सूर्यास्त हो गया था। कुछ फोटो लिए। शिलालेख की कुछ पंक्तियाँ थी—

ॐ॥ सध्यासमाधि घटितांजलिन्त स्वपाणौ कृष्णे सवेपि सुम क्षिणास ग्वस्य त स्वकर संस्थित तामरागे (।) संचित्र (१) दयितयेव गृहीतकन्ता ॥ दस्माद्भवा तम्मपास्य गिरे प्रस्तुत गव्व पतिमवाप्य (४) गिरिपनि गहगाप्ता महाम्ब्राभिधार (४) बाल्एवाभवद् स्वामी सर्वसग्रामक्यत स्कद्रमून ११ वल्कि १ ला शैल १४ संग्राम कीर्त्ति प्राकृत कवया १५ वस्तु बुद्ध के पाषाण ।'

लिपि कत्यूरियों की थी। जिस राजा का यह शिलालेख था वह रुद्र का पिता था कत्यूरिया के प्राप्त अभिलेखा में इस नाम का कोई राजा नहीं मिलता है। हो सकता है वह भेत का ही राजा रहा हो।

गौरा मन्दिर में ४० इंच लम्बी २४ इंच चौडी हरगौरी की अत्यन्त सुन्दर पाषाण मूर्ति थी जिसे देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। शिव चतुर्भुज थे गौरी द्विभुज, नीचे गणेश और मयूरारूढ कार्तिकेय थे। दाता की भी मूर्ति साथ में उत्कीर्ण थी। अखडित इतनी सुन्दर हरगौरी की मूर्ति शायद भारतवर्ष में कहीं न हो। भारत की यह अनमोल कलानिधि एक एसे स्थान में पडी है जहाँ केदारनाथ को जानेवाले हर साल के हजारों यात्रियों में कोई जाने के लिए तयार नहीं होता। मुझे इस बात का बडा अफसोस था कि प्रकाश के अभाव के कारण मैं उसका फोटो नहीं ले सका।

हरगौरा के अतिरिक्त सरस्वती और लक्ष्मी के भी यहाँ मन्दिर हैं। लक्ष्मी के मन्दिर में ही उक्त शिलालेख लगा हुआ था। बाहर खुले में कत्यूरी काल की बहुत सी खण्डित मूर्तियाँ थी। मुखलिंग (एक मुहवाला तीन मुहावाला चार मुहावाला) और शिश्न लिंग इस पाशुपता का प्रमुख स्थान बतला रहे थे। गढवाल-कुमाऊँ क्या, पश्चिमी नेपाल तक के अधिकांश लोग खस हैं जिनमें ब्राह्मण और क्षत्री दोनों शामिल हैं। वर्तमान

शताब्दी में खश नाम अपमानजनक समझा जाने लगा इसलिए लोगों ने अपने को खश कहने से इन्कार कर दिया, और अब सभी अपने को राजपूत बतलाते हैं। यहां खशों की प्रथाओं में अपनी लड़की को देवचेली बना कर देवता को अर्पित करना भी था। इस शताब्दी में भी देवचेलियां बनती थीं और अभी कुछ ही साल हुए आखिरी देवचेली मरी। देवचेलियां जिस घर में रहती थीं, उस घर को भी विशालमणिजी ने दिखलाया। जातीय अपमान समझकर देवता के प्रकोप का भय रहते भी इस प्रथा को बन्द कर दिया गया। मद्रास की तरह यहाँ देवदासी प्रथा निषेध का कोई कानून बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। विशालमणिजी दुमागी ब्राह्मण हैं। शायद गंगाड़ी और खश दोनों ब्राह्मणों के बीच में हाथ-पैर फैलाने के कारण यह नाम दिया गया। उसी शाम लौट कर भेन आते हुए मेरे दिल में ख्याल आ रहा था यह अद्भुत मूर्ति बच गई? शायद लोगों ने इसे कहीं छिपा दिया और ऐसा करके उन्होंने महान् काम किया, इसमें सन्देह नहीं।

ऊषीमठ—१३ मई को सवा ५ बजे हम दोनों चले। विशालमणिजी भी नाला तक पहुँचाने आए। जाते वक्त हमने ख्याल नहीं किया था, लेकिन अब देखा नाला मन्दिर की दीवार पर सड़क के किनारे एक छोटा सा शिलास्तूप है। बौद्ध धर्म का इतना ज्वलन्त अवशेष और दूसरा कुमाऊं गढ़वाल में देखने को नहीं मिला। छोटे मन्दिर के चार पंक्तियों के लेख को पढ़ने की कोशिश की, पर उसके लिए कुछ समय की आवश्यकता थी। लेख में शाके ११९८ (सन् १२७६ ई०) का उल्लेख था। ६ के अंक के बारे में निश्चित नहीं था। इसमें 'सरस्वती प्रसादेन घटिता प्रतिमा शुभा'' लिखा था। सरस्वती प्रसाद क्या मूर्तिकार था?

नाला में आगे बढ़े तो उत्तराखण्ड विद्यापीठ आया। वहाँ के प्रिंसिपल एक मद्रासी सज्जन थे। विद्यालय में इस वक्त छुट्टी थी लेकिन उन्होंने बतलाया, कि विद्यापीठ इस इलाके में शिक्षा के प्रचार में क्या कर रहा है। पुल पार कर चढ़ाई शुरू हुई। ८ बजे हम ऊषामठ पहुँच गए। बदरीनाथ प्रबन्ध समिति के सहायक सचिव बहुगुनाजी और केदारनाथ के रावल यहीं रहते थे। दोनों का इसका अफसोस रहा, कि वह इस समय केदारनाथ में नहीं

थे। यहा की चीजें रावलजी ने दिखलाइ। एक ताम्र पत्र सवत् १८६८ (सन् १८११ ई०) का गीर्वाण युद्ध विक्रम शाह के समय का था जिसम रामदास थापा की मा के दान का उल्लेख था। शाके १७१६ (सन् १७६७ ई०) ताम्र पत्र म माघ कृष्ण १४ साम रणबहादुर साह कनिष्ठ पत्या श्रीकातवती देव्या निजभर्तृ विक्रमाजित कृमचल लिखते हुए किसी दान का उल्लेख किया गया था। य दाना लेख इस भूभाग पर गारखा शासन के अवशिष्ट चिह्न थे।

यहा की पुरानी बहिया और अभिलेखो से उस समय के आर्थिक और सामाजिक जीवन का काफी पता लग सकता है। उन्हें मैं चलत चलत नही देख सकता था। वह ता अनुसधान का विषय है। उषा का सम्बन्ध क्या इस मठ स जाना गया? पाण्डवा स सम्बन्ध हाना गढवाल के लिए स्वाभाविक था। पाशुपतो का गढ होने स उसकी भी गुजाइश है लेकिन उषा ता न तीन म है न तेरह म। उषा मन्दिर के बराडे म कई मूर्तिया था जिनम नटराज भी थ। एक जगह दो पाषाण सूय की मूर्तियाँ आमने सामने थी भीतर निग्लिंग ऊपर मुखलिंग था। मूर्तिया मे दाढीवाले एक राजा की मूर्ति थी जिसक बीच म दाढी-जटाधारी पाशुपताचाय और पास म राजकुमार और राजकुमारो की मूर्तियाँ थी। यह पिछल कत्यूरी काल की हा सकती है। उषी मठ भी प्राचीन स्थान है।

भाजन करन क बाद ३ बजे हम वहा से चले। बलबहादुर अब बहुत धीरे धीरे चल रहा था। श्रीनगर म उस भोजन क साथ डेढ रुपया राज काफी मालूम हुआ लेकिन अब वह अपन भाइयो का उससे चौगुना पचगुना कमाते देख रहा था। एक जगह ता घटा इन्तजार करना पडा सन्देह हान लगा उस कही कुछ हा तो नही गया। किसी तरह ग्वालियाबगड पहुच और रात के लिए वही ठहर गए। रमणीय स्थान था। इसस पहल की चट्टी पर पानी का बहुत टोटा था और यहाँ एक स्वच्छ जल की नदी बह रही थी जिसकी धारा हमारे ठहरन क स्थान के पीछे से पनचक्की चलाने के लिए जा रही थी।

तुगनाथ—१४ मइ को ५ बजे घोडे पर चले। चन्द्राइ नदी पार करने ही शुरू हा जाना थी। ऐस स्थान पर घाडे का मिलना यात्री के लिए वर-

दान है, और जो नही लेता वह कितनी ही बार पछताता भी है। वाणिया-कुण्डी तक पहुँचते पहुँचते घोडा थक गया, और उसे वही छोड देना पडा। साढे ६ रुपये मे तुगनाथ के लिए साढे चार हजार से १२ हजार फुट की उँचाई पर पहुँचाने वाला दूसरा घोडा मिल गया। नदी के इस पार आते ही पहाड हरा भरा था। वाणिया कुण्डी तो बर्फ पडने की जगह मे थी। यहाँ खरनू और तून के वृक्ष अधिक थे। इस पहाडी मे गाव अधिक नही है लेकिन जगलो के कारण पशुपालो चराने के सुभीते से इधर झोपडियाँ लगा कर बस जाते है। उन्ही मे से कुछ ने चट्टियो मे अपनी दूकानें भी खोल ली है। चटि्टयो के कितने ही घर उजाड थे। दूकानो से लोगो को मालामाल होते देख दूसरो को भी हिरस हुई और जरूरत से अधिक दूकानें बन ली। फिर कुछ को निराश होकर अपने घर छोडने पडे, जिनकी दीवार अभी भी खडी थी। वनस्पतियो मे धीरे धीरे परिवर्तन होने लगा और हम तुगनाथ के पहले ऐसे स्थान मे पहुँचे जहा झाडियाँ भी खतम होकर घास ही रह गई थी। १० बजे हम तुगनाथ पहुँचे। बर्फ कही-कही थी। तुगनाथ से अधिक ऊँची जगह पर कोई हिन्दू मन्दिर नही है। यहा की पुरानी खण्डित मूर्तियाँ बतला रही थी कि यह पुराना स्थान है। मन्दिर मे शिवलिंग है, जिसके पीछे पद्मासनस्थ कुण्डलधारी भक्तमूर्ति है। उसके पास पाच छ इच की धातु की भूमिस्पर्श मुद्रा मे बुद्धमूर्ति है। तुगनाथ हिमालय के गर्भ मे है उसके उत्तर की ओर हिम शिखरो की पक्तियाँ चली गई है और नीचे हजारो पहाड मानो हिम शिखरो की ओर ध्यान लगाए एकटक देख रहे है। यहाँ से बहुत दूर तक का दृश्य दिखाई पडता है। बदरीनाथ के सभी यात्री यहाँ नही आते, इसलिए बस्ती छोटी सी है। लकडी दूर से लानी पडती है अतएव महगी होती है, सर्दी भी अधिक है। रोटी बनाकर खाने से पूडी खाने मे ही सुभीता है, जो तीन रुपये सेर मिल रही थी। भोजन करके ११ बजे हम उतरने लगे। उतराई-ही उतराई उस चट्टी तक रही जहाँ सीधा रास्ता आकर मिल जाता है। कुछ देर प्रतीक्षा करने पर बल्बहादुर आए। पौने तीन मील चलने पर पागरवासा मिला। चेस्टनट की पहाड मे पागर कहते है। यहाँ जगलो मे इसके पेड मिलते हैं इसीलिए यह नाम दिया गया। पागर के अतिरिक्त खरनू और केले भी यहाँ बहुत है। हरियाली के

कारण बहुत रमणीय स्थान है। रात के लिए हम यहीं ठहर गए।

अगले दिन (१५ मई) फिर ५ बजे चले। गगनचुम्बी वृक्षों के घने जंगल के बीच से मण्डल चट्टी तक उतराई का रास्ता था। डाकबंगला कुछ ऊपर ही रह गया और चट्टी नीचे मैदान-सी बहुत चौड़ी उपत्यका में थी। यहां भी टीका देखने और लगाने के लिए डाक्टर का कैम्प था लेकिन उसकी कोई चिन्ता नहीं थी। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने पर बलबहादुर आया और उसे टीका लगवाना पड़ा। इधर भी टिड्डियों ने आकर फसल को काफी नुकसान पहुँचाया था। चापी नदी पार करके उसके दूसरे किनारे से नीचे की ओर चले और फिर एक बाही पार करके पहाड़ के नीचे पहुँचे। जगह साढ़े चार मील के करीब होगी। घोड़ा मिला और चाहते तो वह बदरीनाथ तक साथ चल सकता था लेकिन उस वक्त यह खयाल नहीं आया। चढ़ाई चढ़ के गोपेश्वर पहुँचे।

गोपेश्वर का मंदिर केदारनाथ जैसा ही विशाल है। छठी और बारहवीं सदी के अभिलेख उसकी प्राचीनता और महिमा को बतलाते हैं। मन्दिर के सभामण्डप को पीछे बनवाया गया। खण्डित मूर्तियां एक चौतरे पर रखी थीं और कितनी ही दूसरी जगहों में भी बिखरी थीं। चतुर्मुखलिंग और गिरलिंग बतला रहे थे कि यह पाशुपतों का स्थान रहा। पुराने ढंग की बूटधारी सूर्य की मूर्ति भी मंदिर के भीतर मिली। विशाल त्रिशूल पर अशोकचल्ल नाचल्ल के अतिरिक्त तीन पंक्तियों का ब्राह्मी का भी एक लेख था जो दक्षिणी ब्राह्मी से ज्यादा मिलता है।

हम खाना खाना था। बलबहादुर ने अब अपनी सुस्ती का रहस्य खोला— "मैं डेढ़ रुपया रोज में नहीं रहूँगा।" पहले बतलाया होता तो उस घोड़े को बदरीनाथ के लिए ले लिए होते। भोजनोपरान्त कुछ विश्राम करके २ बजे चले। समतल सा रास्ता था डेढ़ घंटे में चमोली पहुंच गए। चमोली से बलबहादुर को छोड़ना था। धर्मशालाएँ भरी हुई थीं कहीं जगह नहीं थी इसलिए रात को वहां रहना भी मुश्किल था। सोचा बेकार का सामान जो लादे फिर रहे हैं उसकी जरूरत नहीं है। उसे यहीं किसी के पास पटक दें और एक कम्बल तथा पाटफल में कुछ चीज भरकर चल दें। अस्पताल के कम्पौंडर श्री जीवानन्द सुन्दरियाल से यहीं भेंट हो गई।

उन्होंने सामान अपने पास रखना स्वीकार कर लिया। बलबहादुर को ११ दिन के लिए मैंने पचीस रुपया दे दिया। सोचा, अगली चट्टी (मठ) में सिर रखने के लिए कोई जगह मिल ही जाएगी, इसलिए वहाँ से लम्बा डेग बढ़ाते चल पड़ा। मठ में दूकानदार भलेमानुस मिला। उसने मेरे लिए सामान का दाम लेकर रोटी बनाकर देना स्वीकार कर लिया। यहीं बामा के उदयसिंह पाल मिल गए। शिक्षित तरुण, और नीती घाटा के रहने वाले होने से तिब्बत के सौदागर भी थे। उन्होंने शायद मेरी कोई पुस्तक पढ़ी थी। उनके मित्र का घर आगे सड़क पर था। उन्होंने कहा—वह जरूर कोई घोड़ा ठीक कर देंगे। सवेरे साढ़े ४ बजे ही मैं उनके मित्र के पास पहुँचा, उन्हें पीठ फेरते ही कल की बात भूले हुए पाया। लेकिन, अब मेरे पर खुल गए थे, सामान से भी पिण्ड छुड़ा लिया था। इसलिए ऊनी चादर कन्धे पर रख, लाठी में पोटफ और कन्धे पर कमरा टाँग चल पड़ा। हिम्मत हारने की क्या जरूरत, मैं बदरीनाथ तक चल सकता था। आगे सीयामाई की चट्टी मिली। दूकानदार के चूल्हे में चाय खौल रही थी। मैं पीने के लिए बैठ गया। यह आपके लिए अच्छी नहीं होगी कहते उसने नई चाय बनाकर पिलाई। उसने बतलाया कि आगे हाट गाँव का पुल आएगा, वहाँ केशरदत्त की दूकान है। उनके पास घोड़ा है। वह किराये पर मिल जाएगा। चमोली से कल मैं दो मील आया था और सीयामाई से पाँच मील और आने पर केशरदत्त मिले। घोड़ा भी १७ मील तक (जोशी मठ) के लिए ठीक कर लिया। यहाँ से अब रास्ता अलकनन्दा से बाएँ था। केशरदत्त के भाई वाचस्पति घोड़े के साथ चले।

यह मसूरी में रसोइया रह चुके थे। मुझे इतना सुभीता कहाँ मिल सकता था। मैंने सोचा, अब बदरीनाथ तक इनको साथ ले चलना होगा और चमोली लौटकर ही छोड़ना है। मठ से १८ मील और घाटा लगने की जगह से १० मील और चलकर पातालगंगा चट्टी में गए। यहाँ १ बजे से २ बजे तक ठहरकर भोजन किया। वाचस्पति वाणी के पंडित चाहे न हों, लेकिन चूल्हे के पंडित अवश्य थे। एक ही सामग्री किसी के हाथ में पड़कर जहर हो जाती है और किसी के हाथ में अमृत। वाचस्पतिजी भोजन बनाने लगे, और मैं जरा-सा इधर-उधर घूमने गया। वहीं नागपुर के श्री हृपिरा

ी की पत्नी मिल गई। उनके साथ आठ नौ नागपुर के शिक्षित और स्कृत पुरुष और महिलाएँ थीं। वाचस्पति ने स्वादिष्ट भोजन खिला तृप्त कर दिया था, नहीं तो शर्माजी का आग्रह अपने दल के साथ चलने था। पर, मैं एक एक दिन में बीस बीस तीस-तीस मील की मंजिल र रहा था, और उस मण्डली के साथ चींटी की चाल चलना पड़ता। री से जितना समय नियत करके आया था उससे अधिक देना नहीं रता था।

जोशीमठ—अधिकतर रास्ता चढ़ाई का था पर पैदल चलना नहीं घोड़ा तथा वाचस्पति दोनों पुर्तीले थे। इन दोनों के साथ तो मन ता था एक मर्तबा हिमालय की लम्बी दौड़ लगाई जाए। ६ बजे जोशी पहुँच। वाचस्पतिजी को खाना बनाने और घोड़े का इन्तजाम करने के ए छोड़ दिया और अपने यहां के प्राचीन मंदिरों—नरसिंह वासुदेव दुर्गा—का दर्शन गया। जोशीमठ, ज्योतिमठ का बिगड़ा रूप बतलाया ता है लेकिन इन दोनों नामों से इतिहास की कुंजी नहीं खुलती। इतना लूम है कि ज्योतिमठ में शंकराचार्य ने अपना एक प्रधान मठ स्थापित या था जहां गद्दी पर शंकराचार्य भी होते थे। वह परम्परा १८वीं सदी जाई और अंतिम संन्यासी के न रहने पर मलाबार के ब्राह्मण ाइय का ही रावल के नाम से महन्त बना दिया गया। यही रिवाज आज चला आता है। जोशीमठ प्रतापी कत्यूरियों की राजधानी थी जो एक नय संयुक्त गढ़वाल कुमाऊं के शासक थे। राजधानी और राजप्रासाद के ई अवशेष नहीं मिलते पर मंदिर उस समय के इतिहास की गवाही देते। रात हो जाने से मैं यहां कोई काम नहीं कर सका। यह भी मालूम हुआ अधिकारी लोग बदरीनाथ चले गए हैं।

बदरीनाथ—अगले दिन (१७ मई) को साढ़े ४ बजे ही हम रवाना ए। दो मील नीचे धौली और अलकनन्दा के संगम पर विष्णुप्रयाग है। हाँ तक उतराई थी जिसमें घोड़े पर चढ़ने की जरूरत नहीं पड़ी। दस ील और चलकर हम पाण्डुकेश्वर आ गए। पाण्डुकेश्वर के दो पाषाण ंदिर कत्यूरी काल के चिह्न हैं। वे अपनी मूर्तियों और मन्दिर की शैली विशेष महत्व रखते हैं। एक मंदिर गुम्बद की तरह का छतवाला है

जो अधिक पुराना है। इसमें पत्थर की मूर्ति है और दूसरे में धातु की विष्णुमूर्ति। पहाड़ में भी मैदान की तरह खण्डित मूर्तियों को गंगा में फेंक देने का रवाज है इसलिए न जाने कितनी मूर्तियाँ अलकनन्दा में पड़ी भावी गवेषकों की प्रतीक्षा कर रही हैं। यहाँ एक गणेश की भी खण्डित मूर्ति देखी। कोई शैव चिह्न मालूम नहीं हुआ। लक्षण से मालूम होता है पास के खेतों में भी पुरानी बस्ती के चिह्न मिलेंगे। पाण्डुकेश्वर में काफी दूकानें हैं। विष्णुप्रयाग से इधर ऐसी जगह में हम आ गए थे जिसको आलू की भूमि कह सकते हैं। चार आने में सौ वर्ष ही पहले शिकारी विल्सन ने इधर आलू का प्रचार किया लेकिन आलू स्वयं कहता है 'यह पूर्वजन्म की मेरी मातृभूमि है।' इसीलिए वह बहुत और बड़ा-बड़ा होता है। और इसीलिए सस्ता भी बहुत है। दूकान पर मसालेदार खड़े पीले-पीले आलू सने देखकर मुँह में पानी आने लगता। अधिक पैसा होने से आलू का अपमान करना मुझे अपराध मालूम होने लगता है। अभी सवेरा ही था इसलिए भोजन यहाँ नहीं किया लेकिन आलू हमने खाया। लामबगड़ होते बदरीनाथ पहुँचने का अन्तिम चट्टी हनुमानचट्टी मिली। वृक्षों के स्थान से ऊपर थी, और इसलिए लकड़ी बड़ी मँहगी थी। बेवकूफ ही यहाँ तीन रुपया सेर पूरी छोड़कर सवा दो रुपया सेर वाले आटे से कच्ची रसोई बनाने की कोशिश करेंगे। वाचस्पतिजी को भोजन नहीं बनाना था। भोजन करके कुछ देर विश्राम किया, और ढाई बजे अन्तिम पाँच मील की यात्रा के लिए हम चल पड़े। सामान फुलाने वाला चढ़ाई थी लेकिन मैं मजबूत घोड़े की पीठ पर था। पंजाब सिंध क्षेत्र के मैनेजर ने बहुत आग्रहपूर्वक अपने यहाँ का शाम में ठहरने के लिए चिट्ठी लिख दी थी। बदरीनाथपुरी से पहले ही जोर अलकनन्दा के बाईं तरफ सड़क पर क्षेत्र मिला। चिट्ठी पाते ही कर्मचारियों ने बड़ी आवभगत की, और एक अच्छे स्थान में आसन लगवा कर चाय और गरम कपड़े का इन्तजाम कर दिया। पंजाब सिंध क्षेत्र पश्चिमी पंजाबी और सिंधी भक्त धनिकों की सम्मिलित संस्था है, जिसकी स्थापना इस शताब्दी के आरम्भ होने से कुछ पहले ही हो गई थी। समय बीतने के साथ इसके दाताओं की संख्या बढ़ी और ऋषिकेश में एक छोटा-सा मुहल्ला ही इसके मकानों का बन गया। विभाजन के बाद वे दोनों पूरे

पत्ते की तरह अपनी जन्मभूमि से उड़कर बिखर गए। अब वह इस स्थिति मे नही थे कि क्षेत्र की पहले की तरह उदारता से सहायता करते। लेकिन तो भी जो कुछ होता है वे करते हैं। यहाँ के भक्तजी बड़े ही मधुर स्वभाव के मिले।

वाचस्पति को छोड़कर मैं मील भर पर अवस्थित पुरी मे गया। अभी दो ढाई घण्टा दिन था। चाहा कोई गाइड की नई पुस्तक ले लूं। गोविन्द प्रसाद नौटियाल की किताबो और शिलाजीत की दूकान पर पहुंचा। नाम सुनते ही मालूम हुआ हम बर्षों मे बिछुड़े मिले। उन्होने अपनी पथ प्रदर्शिका के नए सस्करण की पुस्तक दी। वहा से मन्दिर के सेक्रेटरी श्री पुरुषोत्तम कमवाडी के पास गया। मेरे नाम को सुनते ही वह जल्दी जल्दी कोठे पर से नीचे उतर आए और कहा—आप मील भर दूर नही ठहर सकते यहाँ हमारे अतिथि भवन मे ठहरना होगा। मैंने कहा घोड़े को लौटना है। उन्होने कहा—उसको लौटा दो हम दूसरा घोड़ा देंगे। बदरीनाथ से इतनी जल्दी जाने की मेरी भी इच्छा नही थी। अतिथि भवन बहुत साफ सुथरा नया मकान था। उसके सबसे अच्छे कमरे मे हम ठहराया गया। अगले दिन (१८ फरवरी) का रुपया देकर वाचस्पति को छुट्टी दे दी। भोजन बदरीनाथ की भोजनशाला से आता। गगासिंह दुरियाल ने बदरीनाथ की जो भारस्थानी बतलाई थी उसका प्रमाण मिल गया, जब बासमती चावल का भात सामने आया। बदरीनाथ का दर्शन करना जरूरी था क्योंकि कितने ही लोग लिख चुके थे, मूर्ति बुद्ध की है। दर्शन के लिए सबसे उपयुक्त समय सवेरे का बतलाया गया जब कि मूर्ति को नग्न करके स्नान कराया जाता है।

बगवाडीजी ने गगासिह दुरियाल को हमारा पथ प्रदर्शक बना दिया। दुरियाल लोग बदरीनाथ के चार मुख्य कर्मचारियो मे से हैं। दूसर तीन हैं माणा के मारछा जोशीमठ के जोशियाल और डिमरी पुजारी ब्राह्मण। सबके ऊपर मलाबार का नम्बूदरी रावल होता है।

उस दिन दोपहर बाद गगासिह को लिए मैं वसुधारा की ओर चला। असली लक्ष्य माणा गाँव जाने का था पर माणा के सामने का पुल पहले पर लकड़ी की पटरियों को बठाकर दुरुस्त नही किया गया था। गगासिह, पूछने

पर भारछा और दूसरे दुरियाल लोग उसी बात को दोहराते थे—बदरीनाथ भाट देश के थोलिंग मठ के देवता थे। भाटियो के भक्ष्याभक्ष्य खाने से असंतुष्ट होकर वह मंदिर की दीवाल मे छेद करके निकल भागे। भोटिया ने पीछा किया। मानाधुरा के पास उन्हें बहुत नजदीक आया देखकर बदरीनाथ ने अग्नि ज्वाला की दीवार खडी कर दी। लामा उससे भी पीछे नही हटे उनकी दाढी मूछ जल गई। तभी से तिब्बती लोगों के मुह पर दाढी मूछ का अभाव सा होता है। हाथ मे पडना निश्चित देखकर बदरीनाथ पास मे चरती चवरियो की पूछ मे छिप गए। इस कृपा के लिए उन्होने वरदान दिया कि चौरी की पूछ आज से पवित्र समझी जाएगी। फिर वह इस स्थान मे आए। यहाँ उस समय शिव-पार्वती रहते थे। बदरीनाथ को यह जगह पसन्द आई और दखल करने की सोचने लगे। शिव के त्रिशूल के सामने इनकी कैसे चलती, इसलिए उन्होंने इस जगह छल का रास्ता स्वीकार किया। दुरियालो का गाव बावणा पास ही मे पड़ता है। वहा अब भी वह शिला मौजूद है जिस पर सद्योजात शिशु का रूप लेकर बदरीनाथ क्या-क्या हा करने लगे। शिव पार्वती टहलने के लिए निकले। पार्वती को बच्चे को एकान्त मे पडा देखकर दया आ गई उसे उठाना चाहा। अन्तर्यामी शकर ने मना किया, लेकिन पार्वती अपने वात्सल्य की पीडा बर्दाश्त करने के लिए तैयार नही हुई उठाकर ले आईं। मन्दिर मे रख दिया। शिव प्राणी तप्तकुण्ड मे स्नान करने गए। लौटकर आए तो दरवाजा बन्द था। कितना ही खट-खटाए, लेकिन भीतर मे कोई जवाब नही दे रहा था। पार्वती चिल्लाने और झुंझलाने लगीं। शकर ने मुसकुरा कर कहा—"मैंने कहा न दुनिया मे बहुत छल प्रपंच है।" पार्वती के कान लाल हो गए। शकर ने शान्त करते हुए कहा—"शान्ति शान्ति दुनिया बहुत लम्बी चौडी है। झगडा मत करो चलो हम दूसरी जगह अपना घर बसाएँगे।" पार्वती ने कहा—'मैं इसका बदला बिना लिए नहीं जा सकती। तप्तकुण्ड के पानी को बर्फ से ठण्डा कर देती हूँ, जिससे इस शैतान को यहाँ की सर्दी मे गरम-गरम पानी नहाने को न मिले।" शकर ने कहा—'इसमें इसका बुरा नहीं होगा, बेचारे लोग नाहक कष्ट पाएँगे।' लेकिन, गौरी कुछ भी किए बिना जाने के लिए तैयार नही हुई। उन्होंने शाप दिया— अब से इस भूमि मे चावल

नहीं होगा।' दस हजार फुट के ऊपर चावल? नाना प्राणी नीचे उतरते जब कांचनगंगा नाम के सूखे नाले पर से गुजरे तो दस लोग पीठ पर बोझा लादे हुए जा रहे हैं। पार्वती ने पूछा—'क्या ले जा रहे हो?'' लोगों ने कहा—'भगवान् के लिए बासमती चावल।' शंकर ने मुस्कुरा दिया। पार्वती के कलेजे में छुरी चुभ गई। उनका शाप भी व्यर्थ गया। यहाँ चावल नहीं तो दूसरी जगह से बासमती चावल आ रहा है।

रास्ते में मंदिर के आसपास दो चार घर मिले। ये मारछा लोग थे। उन्होंने अपने खेतों में घर बना लिए थे। नवम्बर से अप्रैल तक छ महीने यह भूमि बर्फ से ढँकी रहती है। इस समय मारछा लोग अपने पशुओं और प्राणियों को [illegible] के परिचित स्थानों में नीचे चले जाते हैं। फिर आकर खेत तैयार करते उसमें जौ की या आलू की फसल बोते हैं। माणा के सामने मातामूर्ति तक हम गए। मातामूर्ति की छोटी सी मढ़ी हाल ही में किसी ने बनवाई थी, और उसमें एक दरिद्र सी मूर्ति बैठा दी थी। यही बाबा बदरीनाथ की माता हैं। कलयुगी पुत्र माता का क्या सम्मान करें, जबकि उनके देवता भी अपनी माता को जंगल में भूखी तपस्या करने के लिए बिठाने से बाज नहीं आते। वहाँ से लौटकर शाम को पण्डा पंचायत ने चाय पार्टी के साथ राहुल सांकृत्यायन का मान पत्र दिया। नास्तिक राहुल और आस्तिकता की रोटी खाने वाले बदरीनाथ के पण्डे, कैसा विरोधियों का समागम? पर संस्कृति धर्म के ऊपर है इसी का यह सबूत था। राशन और कण्ट्रोल का जमाना था वहाँ चाय पार्टी में जितने लोग जमा हो गए थे, वे कण्ट्रोल की संख्या से कहीं अधिक थे। फिर यहाँ केवल चाय पार्टी नहीं थी बल्कि इतना अधिक पकवान था कि इसे भोज पार्टी कह सकते हैं। यह हमारे देश की सरहद के एक छोर के अंतिम अस्थायी नगर में हो रही थी। इससे यह भी पता लगता था कि तरुण पण्डा सन्तान कितनी आगे बढ़ी है।

१६ मई को निर्वाण दर्शन करना था। सवेरे ७ बजे के करीब मैं मंदिर में पहुँच गया। मंदिर के तीन खण्ड हैं। सबसे पीछे गर्भगृह उसके बाद छोटा-सा मण्डप उसके बाद कुछ अधिक बड़ा मण्डप। गर्भगृह में नम्बूद्री रावल और उनके सहायक डिमरी पुजारी को छोड़ और कोई नहीं जा

सकता, न कोई मूर्ति का हाथ लगा सकता। मध्य-मण्डप म द्वार म सटकर मैं खडा हुआ। मूर्ति वहा से तीन चार फुट स अधिक दूर नही होगी। बगवाडी जी की हिदायत क अनुसार न्यि की टम भी खूब वडा दी गई थी। मैं वहा से मूर्ति को अच्छा तरह देख सकता था। स्नान कराने क लिए मूर्ति नगी कर दी गई थी। इसीको निवाण-स्नान कहते हैं। मूर्ति काल पत्थर की थी। आस, नाक, मुह निय एक वडा सा पत्थर का खण्ड मालूम हाता है किसी न तराशकर निकाल दिया है। लेकिन इस तराशा नही कहना चाहिए शायद हथौडे स जान बूझकर ताडा गया या पत्थरा म फेंकने यह हिस्सा निकल गया। बायें हाथ की भी एक तह पत्थर की निकल गई था। अधिक पत्थर निकला था जो भूमिस्पर्श मुद्रा म मालूम हाता था। लेकिन हाथ स पद्मासनस्थ बठा मूर्ति क इस हाथ का हथेली पैरा पर थी। मालूम हाता था। मूर्ति पद्मासनस्थ भूमिस्पर्श मुद्रायुक्त बुद्ध की है इसम मुझ कोई सन्देह नही। रावलजी न पीछे बतलाया कि छाती पर जनऊ की रेखा है। इसम जैन मूर्ति होन का भी सन्देह टूट गया क्योंकि वह प्राय दिगम्बर होता है। एकाश चीवर पहने बुद्धमूर्ति क चीवर का रूप जनऊ जसा मालूम हाता है यह सभी जानते हैं। पास म और भी कई मूर्तिया थी जिसम नारदजी की धातुमूर्ति भी बुद्धमूर्ति मालूम होती थी। रावल न बतलाया, कि पीठासन म कुछ रखाएँ हैं जो फूल पत्ते या अक्षर हो सकते हैं। पुराने रावल न और भी समर्थन किया। २१ मई का उन्होंने कहा— इस मूर्ति क बुद्धमूर्ति होन म मुझे कोई सन्देह नही है। मैंने सारनाथ और दूसरी जगहा म एसी मूर्तियाँ देखी हैं।' उन्होंने यह भी कहा—१ नाव अलकनन्दा क साथ सटे हुए नारद-कुण्ड म और भी मूर्तियाँ हैं। नारद के महीना म धार क क्षीण हो जाने पर नारद-कुण्ड अलग पर चट्टान स ढका रह जाता है तब अन्धकारावृत रहता है। मुझ लोगा न बतलाया था, कि मुह मे तेल भरकर कुल्ला करने से वहाँ प्रकाश अधिक हो जाता है, और मूर्तियाँ दिखलाई पडती हैं। मैंने वैसा ही किया और पानी म पडी हुई कितनी ही मूर्तियाँ देखी। २ बदरी-नाथ की मूर्ति बुद्ध की है वह पद्मासनस्थ है, बाँहा और मुह का कितना ही पत्थर निकल गया है। छाती पर जनेऊ की भाँति रेखा, सिर क पिछल बचे हुए भाग म केश मालूम होते हैं। ३ मैं समझता हूँ कि प्राचीन बदरीनाथ-

मूर्ति के नष्ट होने पर पहले सेर्फेकी बुद्ध मूर्ति लाकर उसकी जगह रख दी गई। ४ मूर्तिकला की दृष्टि से अखण्ड रहते समय मूर्ति बहुत सुन्दर रही होगी।

कल्पना दौड़ लगाती कहने लगी हिमालय पर से तिब्बत के शासन के उठने के समय जो खूनी संघर्ष हुआ था, उसमें तिब्बत वालों का विशेष पक्षपात होने से बौद्ध विहार और मूर्तियाँ भी जो के साथ घुन बन गई। इस प्रकार ९वीं या १०वीं शताब्दी में यहाँ के विहार की यह बुद्ध मूर्ति और दूसरी मूर्तियाँ खण्डित हो या यों ही भग्न भग्न हो नारदकुण्ड में पहुँच गई। नारदकुण्ड रूपकुण्ड की लाशों की तरह ऐसी मूर्तियों का संग्रहालय बन गया। बुद्ध मूर्ति पर धातु या पत्थर की बदरीनाथ की मूर्ति स्थापित कर दी गई। १८४१-४२ ई० में रुहेले आए। उन्होंने मंदिर के धन को लूटा और मूर्तियों का गला या तोड़ फोड़कर पानी में फेंक दिया। पुराने मंदिर का फिर जीर्णोद्धार करने की इच्छा हुई। स्थापना करने के लिए नारदकुण्ड से यह खण्डित बुद्ध मूर्ति हाथ लग गई। उसे कुछ समय तक तप्तकुण्ड के ऊपर रखा गया। फिर गढ़वाल के राजा ने उसके लिए वर्तमान मंदिर बनवा दिया जहाँ वह स्थापित हुई।

चाय पीकर कलकत्ता के डाक्टर हिमांशु घोष और गंगासिंह डुरियाल के साथ मैं अलकनन्दा पार हो ऊपर की तरफ माणा गाँव की चला। अभी नीचे से बहुत कम ही लोग आए थे। कुछ स्त्रियाँ इसी समय पीठ पर सामान या बच्चे को लिए अपने घरों को लौट रही थीं। यह भारत का अंतिम गाँव माणा काफी बड़ा है। ढाईसाल से ऊपर हो गए भारत को स्वतंत्र हुए, लेकिन यहाँ वालों का कोई चीज नजर नहीं दिखलाई देती है, तो यही कि पहले ही से घरों के टाटा रखने वाले इस गाँव को अपने कुछ घर पुलिस चौकी रखने के लिए देने पड़े। दारोगा साहब भी मिले, जो असाधारण तौर से मोटे थे। भला पहाड़ी जगह के लिए यह शरीर उपयुक्त था? माणा के बाद दूसरा गाँव तिब्बत अर्थात् चीन गणराज्य में पड़ता था, इसलिए यहाँ पर भारत सरकार सजग रहना चाहती है। सरदार पणिक्कर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि चीन का समर्थन करने के सम्बन्ध में भारतीय सरकार दो दलों में बँट गई थी—सरदार पटेल, राजाजी तथा पुराने नौकरशाह सम-

झौन के विरद्ध थे, वह समझते थे, कि इसमे अमेरिका नाराज हो जाएगा। पर, नेहरूजी पक्ष मे थे। उत्तर प्रदेश के मन्त्री अब मुख्य मन्त्री बाबू सम्पूर्णानन्द उत्तर के पडोसी से बहुत चिन्तित थे, इसलिए वह भी सीमा के मजबूत करने के पक्ष मे थे। माणा गाँव के आगे अन्कनदा पर एक स्वाभाविक पुल है, जिसे भीमसेन का पुल कहते हैं। कहते हैं आगे एक और भी इसी तरह का पुल है। सभी माणा वाले बदरीनाथ को तिब्बत वालो का देवता मानते है, जिससे यही सिद्ध होता है, कि वतमान बदरीनाथ म किसी समय एक अच्छा-खासा बौद्ध विहार था, जिसका सम्बन्ध तिब्बत के थोलिंग मठ से था। अब भी दोनो मन्दिरो का सम्बन्ध है और दोनो एक दूसरे के पास भेंट भेजते है। तिब्बत का यह पश्चिमी भाग शताब्दियो से डाकुओ का शिकारगाह रहा। लेकिन, माणा जसे हमारे व्यापारी उसके कारण अपने व्यापार को नही छोड सकते थे। इसके लिए हथियारबन्द होकर जाना पडता था। कम्युनिस्ट अभी-अभी आए थे, इसलिए अभी डाकुओ को उच्छिन्न नही किया जा सका था। एकाध ही वर्षों बाद माणावालो को अपने साथ बन्दूक ले जाने की जरूरत नही पडेगी ले जाने पर भी उसे सीमान्त पर चीनी फौज चौकी पर रख देना पडेगा। पर उस वक्त तो बन्दूको की बडी आवश्यकता थी। माणा वाले १५ बन्दूकें चाहते थे, लेकिन हमारी काठ की सरकारी मशीनरी अपने ढग से ही चलती है, उसे किसी के जान माल की क्या पर्वाह? किसी तरह की उदारता दिखलाने पर एक बडे सिद्धान्त की अवहेलना करनी पडती—भारत की जनता से यहाँ की सरकार को जसा खतरा पहले था, जान पडता है, उसे वतमान सरकार भी वैसा ही समझती है इसलिए जनता को वह निहत्था करके रखना चाहती है, और अंग्रेजो के हथियार कानून म जरा भी ढिलाई करने के लिए तयार नही है।

माणा से लौटकर मध्याह्न भोजन मैंने सिन्ध-पजाब-क्षेत्र म भगतजी के यहाँ किया। उन्हें कष्ट होता, यदि उनके आतिथ्य को छोडकर अतिथिशाला म आ जाता। यहा सभी चीजें मँहगी थी। आटा ढाई रुपये सेर से क्या कम होगा। दूसरी भी चीजें जो चमोली से मोटर से उतरकर या गरुड (अल्मोडा) से खच्चरो पर होकर यहाँ आती थी भाडे के मारे बहुत मँहगी हो जाती

थी। निश्चय ही सदावर्तों के लिए यह कठिन समय था। जितने रुपये मे पहले वह सौ को भोजन दे सकते थे उतने मे अब बीस को भी नही दे सकते। फिर सिंध पजाब क्षेत्र तो ऐसे दाताओं का था, जिनके नीड उजड चुके हैं।

लौटकर बदरीनाथ के पुराने कागज पत्र देखने की इच्छा प्रकट की। जान पड़ा अधिकांश कागज पत्र जोशी मठ म हैं। बगवाडीजी से कहने पर मालूम हुआ कि वहाँ उनका काफी ढेर है। यहा हम १७वी सदी की बहियाँ मिली। इनमे चीजो का भाव ही नही, बल्कि कभी कभी किसी मुकदमे म रावल का दिया फैसला भी दर्ज था। उस समय दास प्रथा थी। हो सकता है दास-दासियो के क्रय विक्रय का भी इसमे जिक्र हो। गोरखा शासन के पहले और उसके समय के भी कागज पत्र मिलेंगे जिनसे गढवाल के इतिहास पर प्रकाश पड सकता है। हमारे विश्वविद्यालयो म हर साल डाक्टरो के निकालने की होड लगी हुई है जिनमे अधिकांश 'हल्दी न जाने फिट करी, रंग चोखा आए' के अनुसार फटपट पी एच० डी० या डा० लिट० बन जाना चाहते हैं। क्या उनमे से कुछ को जोशीमठ के अभिलेखो केदार-नाथ बदरीनाथ के पण्डो की बहियो के अनुसंधान म नही लगाया जा सकता? मैंने बगवाडीजी को बहुत कहा कि अक्तूबर म नारद कुड के भीतर की मूर्तियो की जाच पडताल होनी चाहिए पर अभी तक उसके बारे म कुछ नहीं हुआ।

मंदिर का घोडा और घोडो की तरह काम न होने से घास चरने के लिए बयाबान म छोड दिया गया था। यहाँ घोडे कभी कभी महीनो जगली घोडो का जीवन बिताते हैं। शाम ही गगासिह को ताकीद कर दी गई थी कि बडे सबेरे ही घोडे को ले आना।

२० मई के सवेरे गगासिह दुरियाल घोडा लेने गए। मैंने सोचा था ७ बजे चल पडेंगे पर हम बदरीनाथ से निकलने म बहुत देर लगी। बगवाडी जी हर तरह की सहायता देने को तयार थे। दो ही दिन म यहा कितने ही मित्र बन गए थे जिनके वियोग का मन पर असर होना ही था। सिंध पजाब क्षेत्र म भोजन करके हम वहा से ११ बजे रवाना हुए। उतराई ही उतराई थी, जिसके लिए पैर तैयार थे। सूखी कांचनगंगा पार कर हनुमान

चट्टी छोड़ जल्दी हरियाली देखने के लिए उतावले हो विनायक चट्टी पर पहुँचे। गंगासिंह पीछे रह गए थे, इसलिए भी थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। यहीं माणावाले कुछ लोग मिल गए। वह कहने लगे, हजारों वर्षों से ढोरों और भेड़ बकरियों को लेकर हम गर्मियों में अपने गाँव में आते और जाड़ों में नीचे चमोली और आगे चले जाते हैं। पहले कभी वहाँ जंगल रहे होंगे, जिसमें हमारे पशुओं को चरने का आराम था। उस समय बोझा ढोने के लिए मोटर नहीं आई थी, अब तो सिवाय वहाँ वाले लोगों की गाली सुनने के हमें कोई लाभ नहीं है। हमारे पशु किसी के खेत में चले जाएँ तो सिरफुटौवल हो और जंगल में जाएँ, तो झगड़ा। आखिर हरियाली लोग भी तो नीचे नहीं जाते। वह विनायक, पाण्डुकेश्वर में ही अपना जाड़ा बिता देते हैं। उन्होंने विनायक के सामने के देवदार और दूसरे जंगलों को दिखला कर कहा, कि सरकार यहीं हमें भूमि दे दे और हम अपने लिए जाड़ों का गाँव बसा लें। यह बिल्कुल उचित माँग थी, और जनहित को हृदय में रखने वाली सरकार के लिए यह करना अनिवार्य था। पर हमारी सरकार की मशीनरी में किसी को समझने की शक्ति है इस पर मैं विश्वास नहीं करता। पाँच वर्ष बाद भी आज माणावाले उसी चिन्ता में घूम रहे हैं।

पाण्डुकेश्वर में जरा हो ठहरकर कुछ फोटो लिए, जिसमें माणा की एक मारछा सुन्दरी कपड़ा बुनती भी थी। नीती और माणा दोनों ही मोन्, कमर या किरात जाति के लोगों की बस्तियाँ हैं। यह लोग तोल्छा और मारछा दो जातियों में विभक्त हैं। तोल्छा एक तरह की गढ़वाली बोलते हैं, और मारछा दुभाषिया हैं। वह तोल्छा की भी भाषा बोलते हैं और अपनी भाषा में। मारछा भाषा किरात भाषा है। पानी को वह 'ती' कहते हैं। माणा से आगे का एक निर्जन पड़ाव तीपानी के नाम से मशहूर है अर्थात् एक ही अर्थ के दो भाषाओं के शब्द को जोड़ लिया गया है। पानी के लिए ती शब्द चम्बा के लाहुल से लेकर आसाम के नागा लोगों तक में मिलता है। किरात लोग मंगोलायित थे, यद्यपि उनकी भाषा का चीनी और तिब्बती भाषा से बहुत दूर का सम्बन्ध है, लेकिन इनके मुखों पर हल्की-सी मंगोलायित छाप देखकर लोग उन्हें तिब्बती समझने की गलती करते हैं, ये तिब्बती नहीं हैं यह मारछा लोगों की भाषा बतलाती है। मारछानियाँ सजन यवन पैरों तक

लटकती एक आढनी लगाती हैं जिसका सिर के सामने का भाग कमखाब या दूसरी तरह म बहुत अलङ्कृत रहता है। जान पडता है यह उनका बहुत पुराना भेस है। शायद कत्यूरी रानियाँ चान्द्र स इस तरह का सिंगार करती थी, अथवा तिब्बत की रानियाँ।

हम पौने ५ बजे घाट चट्टी म पहुँच गए। आगे अच्छी चट्टी दूर मिलती और जोशी मठ छ ही मील था, जहाँ ठहरना मुश्किल था इस लिए रात को घाट ही म ठहर गए। आज घाट पर कही चढन की जरूरत महसूस नही हुई। रात का उसका खिलाने के लिए दस-बारह रुपय की घास आई जो भी आसानी स न मिलती यदि गगासिंह कही से उसका जुगाड न कर लाते। घाट चट्टी से थोडा ही ऊपर अलकनन्दा को पार करने के लिए एक पुल बना हुआ है, जिसको पार कर हमकुण्ड और फ्लावर वेली (पुष्प उपत्यका) का रास्ता जाता है। फ्लावर वेली बरसात के दिनो म हजारो तरह के फूलो का उद्यान बन जाती है। इसकी ख्याति अब भारत स बाहर भी पहुँच चुकी है। हमकुण्ड बडे ही रमणीक स्थान म एक प्राकृतिक सरोवर है। किसी सिक्ख भक्त ने इस देखकर ग्रन्थ साहब स वाणी निकालकर साबित कर दिया कि दसमेश गुरु गोविन्दसिंह न पिछले जन्म म यहाँ तपस्या की थी। चलो सिक्खो का भी हिमालय एक सुन्दर तीर्थ स्थापित हो गया नही तो यह बडी कमी रह जाती। जैनो को भी कोई स्थान ढूँढना चाहिए। तीर्थयात्रा के बहाने लोगो का प्राकृतिक सौन्दर्य म स्नेह होता है उनम यात्रा के लिए साहस उत्पन्न होता है। हमकुण्ड यहाँ से १२ मील बतलाया जाता था अर्थात् उतना ही जितना बदरीनाथ।

जोशीमठ—२१ मई का सोमवार का दिन था। जोशीमठ म कुछ काम भी था सोमवार रावल वासुदेव म मिलना था और आज ही आगे बढ जाना था। हम ५ बजे ही चल पडे। विष्णुप्रयाग तक पहुँच कर धौलीगगा पार जोशीमठ की चढाई शुरू हुई। घोडा काम आया। धौली गगा नीतीधुरा स आती है और अलकनन्दा माणाधुरा स। धुरा यहाँ डाडा (जान पास कोतल) को कहते है अर्थात् जहाँ पर सबस नीचा समझकर किसी पहाड के रीढ को पार किया जाता है। इन दोनो धुरा को पार कर तिब्बत म जाने का रास्ता है। दोनो नदियो के स्रोत की दूरी और दोनो की

धाराओं के देखने पर यह कहना मुश्किल हो जाता है कि इनमें से कौन गंगा की मुख्य धार है। आजकल तो अलकनन्दा ही को माना जाता है। अलक का का नहीं, बल्कि कुबेर की अलका का संक्षिप्त रूप है। और नन्दा ननद अर्थात् ननद का। पार्वती, गौरी अपने नैहर में नन्दा के नाम से ही प्रसिद्ध थी, इसलिए उन्हें नन्दादेवी कहा जाता है। इसी नाम से प्रसिद्ध गढ़वाल कुमाऊँ की सीमा पर अवस्थित शिखर आजकल भारत का सर्वोच्च शिखर है। कैलाश के पास कहीं कुबेर की अलका पुरी थी। अलकनन्दा की उपत्यका में बदरीनाथ का मंदिर है जो पहले बौद्ध विहार था। यहीं पाण्डुकेश्वर के प्राचीन मन्दिर भी हैं जिन्हें बौद्ध नहीं कहा जा सकता। धौली की उपत्यका में जोशीमठ से कुछ ही मील ऊपर तपोवन है जहाँ गरम पानी का कुण्ड और म्लेच्छों द्वारा ध्वस्त परित्यक्त कुछ पुराने समय के मन्दिर भी हैं। कत्यूरियों के अभिलेखों में तपोवन और बदरीनाथ का उल्लेख आया, जो इसके लिए भी हो सकता है। भविष्य बदरी की कल्पना शायद भूत बदरी के ख्याल से ही इसके साथ जोड़ी गई। यह बदरी धौली की उपत्यका में है इसलिए प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री के विचार से धौली का महत्व कम नहीं है।

जोशीमठ में पहले मैंने नरसिंह और दूसरे कत्यूरी-काल की मूर्तियाँ और मन्दिरों को देखा। ४१ वर्ष पहले की यात्रा से ख्याल आता था, यहीं और अधिक मूर्तियाँ उस समय मैंने देखी थी। रावल साहब ने भी इस बात का समर्थन किया। जान पड़ता है पुरानी मूर्तियों के प्रेमी या सौदागर यहाँ पहुँचने और चुपके से अरक्षित मूर्तियों को खिसकाते गए। उन्होंने बतलाया कि मैंने यहीं पहले एक सूर्य की खण्डित मूर्ति देखी थी पर वह अब नहीं मिलती। रहती के आकर मूर्तियों की खण्डित करने की बात पर श्रद्धालु हृदय जल्दी विश्वास करना नहीं चाहता, क्योंकि इससे देवता की दिव्य शक्ति पर धब्बा लगता है। लेकिन कहीं भी देवता की मूर्ति खण्डित होने पर वह धब्बा तो लगता ही। सोमनाथ की मूर्ति खण्डित हुई विश्वनाथ की मूर्ति खण्डित हुई उज्जैन के महाकाल की भी वही हालत हुई फिर धब्बा लगने में कहाँ तक उन्हें बचा सकते हैं? देवताओं को खुद ही यही मर्जी होगी। रावलजी ने बतलाया, कि तपोवन की मूर्तियाँ खण्डित हैं किन्तु

जोशीमठ की उपलब्ध मूर्तियां प्राय खण्डित नहीं है। इसकी व्याख्या यही हो सकती है कि पुजारियों ने रुहेलों को काफी रुपया या मूर्तियों को छिपा दिया होगा। रावलजी ने यह भी बतलाया कि थोलिंग से प्रतिवर्ष चिट्ठी आती है जिसमे बदरीनाथ को 'अपना देवता' लिखा रहता है।

जोशीमठ के इलाके में सरकार की ओर से फल उगाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। अपने ही लोगों ने सेब, नारंगी और दूसरे फल पैदा किये हैं। उनके स्वाद और आकार से मालूम होता है, कि यह फलों के लिए अनुकूल स्थान है। लेकिन सवाल है ढुलाई का। जब तक जोशीमठ या उससे नीचे तक मोटर की सड़क नहीं आ जाती, तब तक इस विषय में कोई प्रगति नहीं हो सकती। रास्ते में मुख्य एक सज्जन मिल गए। उन्होंने पिछले साल के कुछ सेब खाने को देते हुए कहा—हम अधिक दिनों तक इन्हें सुरक्षित रखने की विधि नहीं जानते। अगर भूसघर खोद करके उसमें जाड़ों की बर्फ जमा कर दी जाए तो फलों का सुरक्षित रखने की समस्या नहीं रह जाती। लेकिन यह खर्चीली चीज है, जिसे साधारण गृहस्थ कैसे बर्दाश्त कर सकता है? बेहतर यही होगा कि मोटरें यहां आ जावें और उसी दिन यह फल कोटद्वार और अगले दिन दिल्ली पहुंच जाएँ।

जोशीमठ के शंकराचार्य की गद्दी दो ढाई सौ वर्ष तक सूनी रही। बहुत पहले कत्यूरियों के समय यहां शंकराचार्य नहीं, बल्कि पाशुपतों का पता लगता है। कत्यूरी राजा परममाहेश्वर थे, इसलिए शंकराचार्य के समय यहां कोई उनका बड़ा मठ कायम हुआ होगा, यह संदिग्ध बात है। हां, कत्यूरियों के बाद पाशुपतों की प्रधानता को शंकराचार्य के मतानुयायियों ने छीन लिया। उसी समय तपोवन या बदरीनाथ का बदरी मंदिर इनके हाथ में आ गया। फिर, जैसा कि बतलाया १८वीं सदी में गद्दीधर संन्यासी के मरने पर नम्बूदरी ब्राह्मण को गढ़वाल के राजा ने गद्दी पर बैठा दिया। दूसरे तीन दिशाओं में शंकराचार्य के तीन बड़े-बड़े मठों के रहते उत्तर को शून्य देखकर कितनों को यह बात खटकती थी। भारत धर्ममहामण्डल के स्वामी ज्ञानानन्द ने इसके उद्धार का उपक्रम किया और अपने शिष्य स्वामी दयानन्द को शंकराचार्य बनाना चाहा। लेकिन शंकराचार्य की शारदा, गोवर्धन, शृंगेरी मठों के गद्दीधर दण्डी संन्यासी होते हैं और ज्ञानानन्द तथा

उनके शिष्य शायद वाकायन अदण्डी संन्यासी भी नहीं थे इसलिए बाकी चारों शंकराचार्यों का समर्थन उन्हें प्राप्त नहीं हो सकता था। कुछ भी हो सवाल उठाने वाले स्वामी नानानन्द ही थे। जब अन्तिम निर्णय का समय आया, तो उत्तर के ही एक दण्डी का पक्ष दृढ़ मालूम हुआ और गोरखपुर के पतितपावन सरजूपारी कुल के एक विद्वान् और अच्छे अर्थों में चलते-पुर्जे महापुरुष को यह गद्दी मिली। सूनी गद्दी थी, नये शंकराचार्य को सारा प्रबन्ध करना था और इसमें शक नहीं उन्होंने सूनी गद्दी को अच्छी तरह आबाद कर दिया। जोशीमठ में पीठ बन गया, लेकिन यहां रहकर मठ का पोषण और संवर्धन नहीं हो सकता था, इसलिए ज्योतिष पीठ के शंकराचार्य को अधिकतर बाहर रहना पड़ता।

जोशीमठ से चलकर हम पनाटी चट्टी में आए। यहां दूकानदार के घर के पास हरी हरी प्याज देखी। मैंने कहा—तुम्हारे यहां सामान लेकर भोजन हम तभी करेंगे जब प्याज में से हम कुछ दो। उसमें क्या उजुर हो सकता था? आखिर सभी धर्मध्वजी नीचे के यात्री पास में प्याज के खेत के बारे में जानते ही होंगे, कि इसने अपने खाने के लिए इसे लगा रखा है। यात्रियों का रोब सचमुच ही उत्तराखण्ड पर इतना घना है कि कुछ महीनों के लिए लोग मांस मछली तो क्या प्याज-लहसुन से भी अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं। हालांकि ऋषियों ने दोनों हाथ उठा उठा कर घोषणा की है—'उत्तरे मांस भोजनम्'। वह समय दूर नहीं है, जब प्याज लहसुन ही नहीं सुलभ हो जाएगे, बल्कि इन चट्टियों में अण्डे और आमलेट भी मिलने लगेंगे, पका पकाया मांस और मछली भी तैयार मिलेगी। लेकिन, हमारी पीढ़ी को तो अभी उन दिनों का हसरत की निगाह से ही देखना है। दूकानदार ने बहुत थोड़ा सा खाना किया था, और कितने ही दिनों बाद प्याज डाल कर गर्मागरम आलू को जो तरकारी बनाई थी वह तो स्वर्गीय व्यंजन-सी मालूम होती था।

भोजन और विश्राम के बाद हम गरुड़ चट्टी पहुंचे। अभी दिन था, किन्तु यात्रियों की भीड़ थी। देर में पहुंचने पर रात की निवास का मिलना मुश्किल होता, इसलिए यहीं ठहर गए। आज २१ मील चल कर आए थे। अब चमोली १३ मील रह गई थी।

२२ को सबेरे साढे ४ बजे ही चल पडे। घोडे पर चढे ही हाट के पुल को पार किया। हाट इधर के पहाडो मे राजधानी या बडे नगर का पर्याय है। यहाँ का पुराना कत्यूरी कालका मन्दिर उसका समर्थन कर रहा था। हाट कोई बडा गाँव नही है। मठ मे पहुच कर हमने चाय पी और साढे ६ बजे चमोली मे सीधे अस्पताल मे गए। मुयम मिलने के लिए सुन्दरियालजी से डा० विश्वास कम उत्सुक नही थे। उन्होने कोशिश की कि तुरन्त छूटने वाली बस मिल जाए लेकिन उसमे कोई स्थान खाली नही था। मध्याह्न-भोजन के लिए डा० विश्वास अपने बँगले मे ले गये। मैं सर्वभक्षी और डा० विश्वास मछली के प्रेमी थे। वह अफसोस कर रहे थे यहाँ कोई खाने की अच्छी चीज नही मिलती, यद्यपि मोटर का अड्डा है। चमोली मे मछली दुर्लभ थी और यहा से कुछ ही माल पर गोहना के महासरोवर मे लाखो राहू खानेवाले की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन, डा० विश्वास का भोजन कम स्वादिष्ट नही था, और जिस प्रेम के साथ वह सामने रखा गया था उसने उसे और भी मीठा कर दिया था। अच्छे चावल का भात और आलू प्याज की तरकारी थी। खाकर विश्राम किया। निश्चय था कि ३ बजे वाली बस मे जगह मिल जाएगी।

आजकल बदरीनाथ से लौटे यात्रियो की बडी भीड थी। हम बस मे बैठ गये, किन्तु कितने हो को उसमे जगह नही मिली। नन्दप्रयाग और कर्ण प्रयाग होते रुद्रप्रयाग पहुँचे जहा हमारी परिचित मोटर सडक मिल गई। रास्ते मे एक जगह मोटर कुछ खराब हुई तो भी साढे ६ बजे हम श्रीनगर पहुँच गए। खडगसिंह अड्डे पर मौजूद थे और उनके यहा गर्मागरम भोजन भी तैयार था लेकिन जिनके साथ छ घटे हम बस पर चढकर आए थे उनका भी हमारे ऊपर हक हो गया था। उन्होने कहा आज ही कीर्तिनगर चल चलें। उन्ही की बात माननी पडी। सामान ढोने के लिए यादमी मिल गया और सारे बस के यात्री चादनी रात मे अलकनन्दा की ओर चले। पुल पार कर कीर्तिनगर मे मोटर के अड्डे पर किसी पेड के नीचे हम सो गए।

२३ को सवेरे ५ बजे ऋषिकेश का टिकट मिला। सूर्योदय से पहले ही बस रवाना हुई। कीर्तिनगर से ऋषिकेश और चमोली से कोटगढ की सडकें प्राइवेट बस वाला के हाथ मे हैं। उनके लिए मुसाफिर कोई कीमत

नही रखते। इससे यात्रियो का बहुत कष्ट होता है। सारे भारतवष के यात्री जिस रास्ते चलते हो, वहा सबसे पहले सरकारी रोडवेज की बसें चलनी चाहिए किन्तु बस के मालिक ऊपर प्रभाव डालते हैं, और यह काम होने नही पाता। दो बसो म होड लग गई थी। एक तेज चलती भी नही थी और रास्ता भी नही छोडती थी। दूसरी उससे आगे बढने के लिए फाड बाधे थी। दोनो की होड मे हम धूल फाकनी पड रही थी। रास्ते म व्यासी चट्टी पर दोनो आर की बसें ठहरी। घटा भर विश्राम मिला। यहा रोटी तरकारी पूरी तरकारी मिल जाती है। समय भी उसी का था, इसलिए सभी खान म लग गए। हमारी बस म सभी तीययात्री महिलाएँ धम कमाने के लिए चली थी, लेकिन दो घडी के मेल म न जाने उनके किस स्वाथ का ठेस लगी कि वह सारे रास्ते वाग्युद्ध करती आइ।

साढे ११ बजे ऋषिकेश पहुँचा। देहरादून का टिकट भी मिल गया, और बस भी तैयार थी। दोपहर की धूप खोपडी की मज्जा को पिघला रही था। जल्दी स जल्दी यहा से भागना चाहता था लेकिन ड्राइवर का उसकी पर्वाह नही थी। वह साढे १२ बजे यहा स चला और दो घटे म २७ मील चल कर मैं देहरादून पहुँचा। प० गयाप्रसाद शुक्ल के घर पर पहुचा। गर्मी के मारे बडा परेशान था, लेकिन साहित्य सघ म भाषण देना स्वीकार कर लिया था जिसके लिए दो दिन यहा रहना जरूरी था। अपनी बेवकूफी पर पछताता रहा। शुक्लजी मे यह सुन कर बडी प्रसन्नता हुई कि कमला विशारद पास हो गई।

२४ वा दिन म कुछ वर्षा हो गई इसलिए तापमान थोडा नीचे उतर गया। फिल्म धान के लिए लिये अधिकाश अच्छे आए।

२८ मई को मायी महमूद को ढूढन निकला। उनके पिता का बगला मैं याद दख चुका था लेकिन यह बहुत वर्षो पहले की बात थी। खर किसी तरह १२ मरकुलर रोड म पहुचा। महमूद को टाइफाइड हो गया था। बचारी रजीना मालो से कमर के दाग म पीडित थी, पीछे उमा मे उन्हे अपना प्राण गवाना पडा। दोनो मिले। बतलाया—अब हम यही रहना चाहते हैं। पनक-गृह म महमूद की बहिन नत्र चिकित्सा का अस्पताल खोल्न जा रही थी। उनकी कोठी म तो शरणार्थियो न नही दखल किया

किन्तु बाहरी घर में वह बैठ गए जिनका हटाना मुश्किल था। महमूद ने तो धन और तुरंत यश कमाने का रास्ता उसी वक्त छोड़ दिया, जबकि वह कम्युनिस्ट बने। किसी समय वह जवाहरलाल के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। उस रास्ते से वह आज कहीं दूसरी जगह पहुँच गए होते। परन्तु उन्हें गरीबों का दुःख दूर करने में शामिल होकर उसे हटाने का प्रयत्न करना था। डा० रशीदजहाँ भी अनुकूल पत्नी मिली थीं। दोनों की जोड़ी का जीवन भर एक साथ रहना चाहिये था। भारत में कैंसर का अच्छा इलाज न देखकर महमूद रशीदा को मास्को ले गये, लेकिन वहाँ से अपनी आशाओं पर पानी फेर कर अकेले लौटना पड़ा। इस तपस्वी से मिलने की किसकी इच्छा नहीं होगी?

२८ मई को मध्याह्न भोजन प० हरिनारायण मिश्र के यहाँ हुआ। मिश्रजी का दर्शन पहिले पहिल १९४३ में हुआ था। तब वह यहीं के डी० ए० वी० कालेज में अध्यापक थे। अब सेवाविरत और बूढ़े हो गए थे। उनका सारा जीवन अध्ययन, अध्यापन और शिकार का रहा है। अध्ययन अब भी जारी था। पुस्तकों का बहुत संग्रह था। दोनों ही कनौजिया हैं जिनकी वंशावलि में निरालाजी के अनुसार मांस भोजन विहित लिखा हुआ है। शुक्लजी हैं जो वंशावलि की बात मानने से इनकार करते हैं, मिश्रजी हैं जिनके बल पर अब भी कान्यकुब्जों की ध्वजा फहरा रही है। हर बार देहरादून जाने पर मिश्रजी का आग्रह कान्यकुब्ज भोजन के लिए होता। लेकिन मैं शुक्लानन्दजी के भोजन से कैसे इनकार कर सकता। निरामिष होने पर भी, सच कहता हूँ, स्वाद में वह कम नहीं होता। यदि मैं अधिक खाकर हर बार पेट पर हाथ सहलाते घर छोड़ता हूँ तो इसमें मेरा या शुक्लानन्दजी का दोष नहीं है। स्वाद ही ऐसा होता है, कि दो कौर कम करने की जगह दो कौर और पेट में चला जाता है। पर मिश्रजी के आग्रह को भी ठुकरा नहीं सकता। और मांस तैयार कराने में वह कायस्थ या मुसलमान भाइयों का कान काटते हैं। कहते हैं—हमारे बाप-दादा ने भी तो सैकड़ों पीढ़ियों से यह भोजन किया है।

शाम को जुगमन्दर म्युनिसिपल हाल में हिन्दी साहित्य समिति की बैठक का सभापतित्व करना पड़ा। नगर के १५० चुने हुए साहित्य प्रेमी नर नारी मौजूद थे। स्थानीय २३ साहित्यकारों को समिति ने सम्मान

पत्र' दिया। मैंने भी उन्हे बधाई दी। गोष्ठी को देखने से मालूम हुआ, कि देहरादून मे साहित्यिको की सख्या कम नही है। यह जानकर दु ख हुआ, कि उनकी मिलन सस्था साहित्य ससद् मृतप्राय है। मिलनी के बाद जल पान का इतिजाम था।

मसूरी—२५ को सवा ८ बजे स्टेशन से मसूरी की बस पकडी। सीजन का समय था, इसलिए बस बहुत जा रही थी, किन्तु मसूरी वालो का सतोष नही। कहते थे—' इस साल यात्रियो की सख्या कम है। लोग छोटे बडे होटलो मे ठहरते हैं वगले खाली पडे हैं। इनमे राजा या धनी लोग नही हैं इसलिए हमारी चीजें ज्यादा बिकती नही। उनकी शिकायत मानूल थी।

२ मई को हमने मसूरी छोडी थी, और २६ मई को वहा पहुँच रहे थे। पौने १० बजे बस किक्रेग पहुँची और सामान भारवाहक की पीठ पर रख कर ११ बजे घर पहुँचा। कमला के विशारद पास करने का समाचार पहले ही मिल गया था। इधर कई दिन से उनकी नक्सीर फूट रही थी। भुक्त-भोगियो ने इसका अच्छे से अच्छा उपचार बतलाया, लेकिन कमला उसे करने के लिए कभी तैयार नही हुई। जब नाक से खून बहता, तब याद आती। कमला के चचेरे भाई मगल ८ मई को ही यहा पहुँच गए। मालूम हुआ कि महादेव भाई का दुबारा आपरेशन हुआ है। २६ दिन की डाक पडी हुई थी उसको भी भुगतना था।

३

पहला सैलानी मौसिम

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के साहित्य योजना का काम चल रहा था। डा० सत्यकेतु फ्रेंच स्वयं शिक्षक लिख चुके थे। शीलाजी जीद के उपन्यास का 'सकरा द्वार' के नाम से अनुवाद कर चुकी थीं। मारिशस के माधव वाजपेयी रोम्यां रोलां के प्रसिद्ध उपन्यास 'जान क्रिस्ताफ' का अनुवाद करने के लिए तैयार थे। माधव मारिशस में पैदा हुए थे, जहाँ अंग्रेजी और फ्रेंच दोनों बोलचाल की भाषाएं हैं। उनका हिन्दी पर भी पूरा अधिकार था। आशा बंध रही थी, कि हम दस साल में बीस अच्छी अच्छी पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी को दे सकेंगे। लेकिन सभी बातें अनुकूल नहीं थीं। कुछ सहकारी गरियार बैल बने हुए थे, तो भी गाड़ी आगे निकल सकती थी, पर छापने की दिक्कत साहित्य सम्मेलन की तरह ही यहाँ भी पैदा हुई। इसी को देखकर शीलाजी ने अपने अनुवादित उपन्यास को स्वयं प्रकाशित करने का निश्चय किया।

इस साल कमला को दो परीक्षाओं की तैयारी करनी थी—साहित्य रत्न प्रथम वर्ष और एफ० ए०। मैंने अभी से पुस्तकों को देखने के लिए जोर देना शुरू किया।

जून का महीना शुरू ही होनेवाला था। मसूरी देहरा में २६ जून को वर्षा का आरम्भ समझा जाता है। हमने अपनी क्यारियों में गोभी सेम फरासबीन आदि तरकारियों के बीज बो लिए। आलू से आशा की थी, लेकिन पिछले तजर्बे ने उसमें असफल सिद्ध किया। बैंक में उधार के छ सौ

रुपया को निकाल देने पर अब १६ सौ रह गए थे, यह चिन्ता की बात थी। उधार लेना मेरे जीवन के सिद्धांत के विरुद्ध है। अब मिलनेवाले लोग आने लगे। २९ को पं० हरिनारायण मिश्र आये। साहित्य की भिन्न भिन्न शाखाओं में उनकी रुचि तो है ही, साथ ही वह उर्दू के शायर भी है और फारसी का उनका अध्ययन बहुत गम्भीर है।

३१ मई की रात को खूब वर्षा हुई। सबेरे मालूम होता था, वर्षा शुरू हो गई। इस साल यद्यपि वर्षा पहले आरम्भ हुई, तो भी इसे मौसिम का आरम्भ नहीं कहा जा सकता। और कामों के साथ पत्र पत्रिकाओं के आग्रहों को पूरा करने के लिए कुछ लेख लिख देना मेरे लिए आवश्यक था, इससे कुछ पैसे भी मिल जाते थे जो यात्री जीवन के लिए कम आकर्षण नहीं रखते थे। लेकिन लेख अधिकतर मैं ऐसे ही लिखता हूँ, जो किसी पुस्तक के अंग बननेवाले हों। बदरीनाथ केदारनाथ पर दो लेख लिखे।

२ जून को श्री मुकुन्दीलाल जी (बैरिस्टर) आये। वह बराबर यहाँ नहीं रहते, लेकिन उनकी अंग्रेज पत्नी अपनी चारपाई घर पुत्र पुत्रियों को लेकर सारी गर्मी बरसात यहीं बिताने के लिए आ जाती थी। उस समय वह बरसों से दो-तीन बार जरूर आते हैं, और हर यात्रा में यह मेरे ऊपर कृपा किये बिना नहीं रहते। पति पत्नी को कुत्तों का बहुत शौक था। एक उनके पास ग्रेटडेन कुतिया बड़ी सुन्दर थी, दूसरे भी कई जात के कुत्ते थे वह भी गर्मी बिताने के लिए यहीं आते थे। पिछली बार कुत्ते का जिक्र आया था। वह कह रहे थे हम कुत्ते का बच्चा दे सकते हैं, लेकिन अब तो भूतनाथ इस घर में प्रतिष्ठित हो चुके थे और कमला का स्नेह भी उन्हें मिल चुका था। उनके आ जाने पर फिर घंटा दो घंटा साहित्य और कला के ऊपर बात चलते समय बीतते देर नहीं लगती।

३ जून को स्वामी सत्यस्वरूप जी आए। हमारी योजना में संस्कृत हिन्दी और हिन्दी हिन्दी कोश भी थे। कहने पर वह उसमें सहयोग देने के लिए तैयार हो गए। स्वामी सत्यस्वरूप जी पंजाब के शास्त्री और बी० ए० होकर अपनी विद्या से सन्तुष्ट न हो बनारस गए और एक युग में वहाँ रह कर उन्होंने न्याय वेदान्त और दूसरे दर्शनों का अध्ययन किया। ज्ञान की पिपासा के साथ साथ उनमें विचारों की उदारता है और विद्या लिए कुछ

करना चाहते है। मैं भी इसके लिए उत्सुक हूँ कि उनके ज्ञान का कुछ उपयोग होना चाहिए। वैसे अध्यापक के तौर पर वह उसको इस्तेमाल करते हैं लेकिन विद्या लिखकर यदि कागज पर उतरे तो और भी उपकारक हो सकती है।

पैसे के पानी की तरह बहते देखकर चिन्ता मुझे भी होती है, क्योंकि आत्मसम्मान को मैं अपना सबसे बड़ा धन समझता हूँ बल्कि कहना चाहिए उसे प्राणों से भी अधिक मूल्यवान मानता हूँ। मैं किसी तरह मन को समझाता हूँ। कमला ऐसी स्थिति में घबराने लगती। उनका घबड़ाना उचित भी है, क्योंकि घर और अतिथियों का सत्कार उन्हें चलाना पड़ता है। मुझे यह देखने के लिए भी फुरसत नहीं कि किस चीज की जरूरत है और क्या खर्च हो रहा है। बहुत बार कोशिश की कि खर्च पर नियन्त्रण किया जाए लेकिन महीने में पाँच सौ रुपये से कम होने की नौबत नहीं आती। सोचता था जब पहली बार तिब्बत गया था तो बीस रुपये महीने में भी काम चला लेता था। पीछे सौ रुपया भी पर्याप्त मालूम होता था। लेकिन आजका पाँच सौ भी तो द्वितीय विश्व युद्ध के पहले का सवा सौ रुपया ही है। लेकिन ऐसा समझ लेने से क्या अभाव की पूर्ति हो सकती है?

कुमरेश्वर जी अब काम कर रहे थे। काम करनेवाले तो आ गये थे लेकिन जब देखा कि नागार्जुन जी के वर्धा आने पर भी अभी तक सिर्फ एक फार्म छपा है तो हिम्मत छूटने लगा। नागार्जुन जी ने लिखा था—एक कम्पोजीटर है और प्रूफ रीडर है ही नहीं। यदि राष्ट्रभाषा का प्रेस नागपुर में होता तो कोई दिक्कत नहीं होती। अधिक काम होने पर दूसरे प्रेस में दिया जा सकता था। प्रेस की कोई मशीन बिगड़ने पर वहाँ मिस्त्री मिल जाता। कम्पोजीटर और प्रूफ रीडर बेकार फिर रहे थे इसलिए उनके मिलने में कोई दिक्कत नहीं होती। मैंने आनन्दजी को कहा भी—समिति के दूसरे विभाग हिन्दी नगर के लिए काफी हैं प्रेस को उठा कर नागपुर ले जाइए। लेकिन आदमी को सब चीजों को आँखों के सामने देखने का लालच होता है।

ऊपर की कोठी (हर्न हिल) में बहुत कमरे खाली थे यदि कुछ और साहित्य प्रेमी मित्र भी आकर वहाँ रहें तो क्या हर्ज था। बनारस के

उदय प्रताप कालेज के अध्यापक श्री मानसिंह आए। फिर श्री कन्हैयालाल प्रभाकरजी भी आ गए। इस तरह धीरे धीरे हमारा यह मोहल्ला साहित्यिकों का मोहल्ला-सा जान पड़ने लगा।

'कुमाऊँ" और 'गढ़वाल" का मैंने अधिकतर हाथ से लिखा था। कमला और सरल उनको टाइप करने में लगीं। कमला का जालिबत्तो पर हाथ जमा हुआ था किन्तु पिछले दो महीनों में अभ्यास छूट गया था। मगर रेमिंगटन के इस हिंदी टाइपराइटर से अभ्यस्त नहीं थे तो भी ६ जून को उन्होंने पाँच पृष्ठ टाइप किया।

एक हिसाब की दृष्टि से जो चिन्ता हो रही थी वह साल भर के लिए दूर हुई जब किताब महल ने मार्च १९५१ तक की रायल्टी में ४३६२ का हिसाब भेजा।

हिन्दी का लेखक ठहरा और उसी के लिए एक तरह से अपना सारा समय दे रहा था। राजगोपालाचारी ने मंत्री के तौर पर वक्तव्य दिया कि गामसरीय सेवाओं में हिंदी की परीक्षा अनिवार्य नहीं है। महादेव भाई इससे बहुत खुश थे। वह समझते थे हिन्दी को ही यह स्थान क्यों दिया जाए? पर हिन्दी के अनिवार्य न होने का मतलब था अंग्रेजी का अपनी जगह से जरा भी टस से मस न होना। अंग्रेजी को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी तरह का समर्थन प्राप्त हो मैं इसे देखने के लिए तैयार नहीं था। अंग्रेजी की इस अनिवार्यता के कारण नौकरियों पर कुछ लोगों का एकाधिपत्य होता जा रहा है यह भी सहन करने की बात नहीं थी। यह तो मैं पसन्द करता था, कि किसी भी राज्य की विधान-सभा की स्वीकृति के बिना हिन्दी को उसके लिए मान्य नहीं करना चाहिए। प्रदेश के भीतर अपनी भाषा छोड़कर हिंदी का प्रवेश बिलकुल नहीं होना चाहिए। लेकिन, अन्तर्प्रान्तीय, केन्द्र और प्रान्तों तथा देश और विदेश के साथ के कारोबार में हिन्दी को क्यों न स्थान दिया जाए? क्यों वहाँ अंग्रेजी जमी रहे?

१० जून को श्रीमती सत्यवती मल्लिक अपने पुत्र और भांजे के साथ आईं। मसूरी उनके लिए नई चीज नहीं थी, लेकिन हनकिरूप' जरूर था। सत्यवती जी कलाकार महिला हैं। हिन्दी की लेखिका, और सुषमामयी कश्मीर की नगरी श्रीनगर की कन्या हैं। दूसरे पुरुष-स्त्री भी 'हन

क्लिफ' के दरवाजे पर खड़े होकर जब सामने हिमालय की धवल शिखर पंक्तियाँ और उनके नीचे तह पर तह चलती पर्वतमाला-ओं को देखते तो कवि बनने की कोशिश करते मेरे चुनाव की बड़ी प्रशंसा करते। हालांकि चुनाव करते समय मैंने इसका ख्याल नहीं किया था।

खुबानियाँ फली हुई थीं। यहाँ वह जून में पकती है। और निचली जगहों में मई में। यहाँ तो साधारण सी खुबानियाँ के ही वृक्ष हैं जिनके फलों में एक तरह का कसैलापन आता है। विशेष खुबानियाँ बिल्कुल मीठी बहुत बड़ी और दवाने में कमनीय कलेवरवाली होती हैं। लेकिन उन्हें भी आदमी साल में एक दो दिन से अधिक नहीं खा सकता मन ऊब जाता है। कहाँ आम जिससे पेट भरे और जी न भरे और कहाँ उससे उल्टी खुबानी। भूत ने खुबानियाँ देखा तो खूब हप हप करके पेट भरा। उसके बाद खूब के करता रहा।

११ जून को शिलानसिंह के यहाँ मामो खान और तिब्बती चाय पीने की दावत थी। चार मील आना पड़ता था। लेकिन वहाँ जाने में मेरा मन कभी नहीं हिचकता था। आकर तिब्बती लोगों में उनकी भाषा में बातचीत करने का मौका मिलता फिर उनसे तिब्बत के बारे में कितनी ही बातें मालूम होती। मामो की शौकीन मेरी ही तरह कमला भी हैं। कलिम्पोंग में बहुत से चीनी और तिब्बती रेस्तोरां हैं जिनमें यह कई तरह की बनाई जाती। कमला ने बचपन से ही उन्हें खाया था। पर मेरी यह धारणा गलत है कि सभी मांस पसन्द करनेवाले आत्मा मामो के जरूर दिलदादा होंगे। वहाँ एक सांगपो (बंगाल) गेशे (पंडित) भी मिले जिन्होंने भी कुछ बात बतलाई।

विमलाजी को अब यहाँ रहना पसन्द नहीं आ रहा था। एक तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था दूसरे वह ज्ञात अज्ञात नेता थे इस जंगल के शालापानी में रहना कैसे पसन्द आता ?

कानपुर के साथी सन्तोष कपूर आए। उन्होंने बतलाया— पुरुषोत्तमजी अपना साधना प्रेस को बढ़ाना चाहते हैं। उसमें एक लाख रुपये पहले ही लग चुके हैं। प्रकाशन को भी हाथ में लेना चाहते हैं पर प्रेस का कोई प्रबन्धक नहीं मिलता। मैंने कहा—"विमलाजी क्या नहीं इस काम को हाथ में

लेगी। डबल एम० ए० का बुद्धि बकार रहने से क्या लाभ ? काम काम को]
सिखलाता है सभाल लें।" दरअसल अखाडे से बाहर रह कर पहलवानी पर बतलाना बहुत आसान है। शायद अपने मत्थे पडती तो मैं भी बगलें झाकता।

१९ जून का कमला की नकसीर फिर फटी। खून के गिरने से चिन्तित थी, और मुझे उन पर झुंझलाहट आती थी। कहता—'ऐसा व्यक्ति नहीं देखा। अपनी भलाई के लिए भी बुद्धि से सोचने को तैयार नहीं होती। डाक्टर ने दवा दी है उसे भी जैसे ही खून बन्द हुआ, छोड दिया। डाक्टर कहते हैं—कैल्सियम और विटामिन की कमी है। पर इन्जेक्शन लेने के लिए तैयार नहीं। आश्चर्य और दुःख होता है। जीवन भर के लिए अपाहिज बनने का यह रास्ता है लेकिन कौन समझाये ? वजन आठ पौंड घट कर सौ पौंड रह गया है। सिरदर्द की शिकायत बराबर रहती है।"

कमला लिखाई सिलाई पढाई अच्छा जानती है। घर में सिलाई की मशीन हो तो कपडे में सुभीता रहते हैं। सिंगर की मशीन हल्की और अच्छी होती है लेकिन दाम दूना। इसलिए हमने स्वदेशी 'उषा' २०४ रुपये में मँगाया।

वैद्य रामरक्षा पाठक छपरा में मेरे परिचित थे। उस समय वह पतले दुबले स्कूल छोड कर असहयोग में काम करनेवाले १६ १७ वर्ष के लडके थे। कितने ही समय तक वह राजनीति में काम करते रहे, लेकिन लम्बी जिन्दगी के लिए कोई स्थायी सहारा भी ढूँढने की आवश्यकता थी। फिर आयुर्वेद पढकर वैद्य हुए। अपने अध्ययन को जारी रखा पुस्तकें लिखी। इस समय वह बेगूसराय आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल थे। इतनी तरक्की देखकर मुझे खुशी होनी ही चाहिए थी।

कमला दो दो परीक्षाओं के लिए तैयार नहीं हो रही थी। कह रही थी, इस साल साहित्यरत्न प्रथम खण्ड ही दूंगी। मैं सोचता था साहित्य रत्न की परीक्षा हो जाने के बाद तीन महीने और मिलेंगे, जिसमे एम० ए० की तैयारी हो सकती है। पढाई को जल्दी-जल्दी समाप्त करना मैं जरूरी समझता था क्योंकि भविष्य का क्या पता ?

फागुन के दर्शन से मई का महीना भी बहुत प्यारा है। बिहार मे उस

समय लीचियाँ पकती हैं। पर, जून तो महीनों का राजा है, क्योंकि इसी समय फलों का राजा आम उत्तरी भारत में आने लगता है। भैया ने अमृतसर से २२ जून को आमों का टोकरा भेजा। मसूरी में भी आम दुर्लभ नहीं होते। हर तरह के आम और फल यहाँ पहुँच जाते हैं, लेकिन दाम इतना बढ़-चढ़कर होता है कि मालूम होता है, हम आम नहीं रुपया खा रहे हैं। खरीदने में हाथ भी सकोच से उठता है। यदि टोकरा बाहर से आ जाता, तो आम का भोज होने लगता। अब कुछ महीनों तक आम्र उपासना होगी, इसका उछाह मन में पैदा होने लगा।

मैंने कमला को लिखने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने दो कहानियाँ लिखी और पत्रों में भेजा, लेकिन सम्पादकों ने लौटा दिया। बड़े प्रयत्न करने पर वह लिखने के लिए राजी हुई थी, और 'सर मुड़ाते ही ओले पड़े'। उनके उत्साह पर घड़ा पानी पड़ गया। मैंने बहुत समझाया कि हर लेखक को ऐसी स्थिति से गुजरना पड़ता है, लेकिन मेरे कहने से क्या होता है? उन्हें तब तक विश्वास नहीं हुआ, जब तक कि उनकी एक कहानी "नया समाज" में छप नहीं गई। अब (१९५६ ई०) तक उन्होंने आठ कहानियाँ लिखी हैं और आठों अच्छे पत्रों में छपी हैं। इन कहानियों में मेरा बहुत हल्का-सा हाथ है, जो धीरे-धीरे कम होता गया है। उनमें कहानी लिखने की और निबन्ध लिखने की भी प्रतिभा है। लेकिन, सबसे बड़ा दोष है आलस्य। कलम पकड़ने में नानी मर जाती है।

श्री रामरक्ष पाठक छपरा के डा० शिवदास सूर के साथ मसूरी आए थे। एक से अधिक बार मिलने आए। रामरक्ष को मैंने बच्चा सा देखा था, फिर जवान भी। डा० सूर की जवानी का चेहरा ही मुझे याद आता। वह छपरा में डाक्टरी प्रेक्टिस अब कम ही करते हैं। उनके पिता स्वर्गीय बाबू की दवाइयों की छपरा की बड़ी प्रसिद्ध दूकान थी। बड़े भाई गुहा बाबू देश सेवा के किसी काम में पीछे रहनेवाले नहीं थे। डा० सूर के चेहरे पर अब बुढ़ापे की छाप थी, और सबसे अधिक डायबेटीज का प्रभाव दिखाई पड़ा। वह इस समय मुझसे तीन वर्ष बड़े थे।

अब मेहमान रोज और इतवार को विशेष तौर से आने लगे। अधिकतर हम चाय का प्रबन्ध करना पड़ता। स्वागत सम्मान तथा चायपान और

भोजन करने में कितना आनन्द आता, किन्तु खाद्य-सामग्री खत्म और महाघ हो गई थी। इस समय यदि कोई मेहमान कहता कि मैं चाय नहीं पीता, तो मैं बड़े संयत भाव में और दूसरे के भावों पर बिना ठेस पहुँचाए कहता— 'आजकल के अतिथि का चाय न पीना महापाप है। इस युग में कोई भी गृहस्थ इसी के द्वारा आसानी से अतिथि सेवा कर सकता है। अतिथि-सेवा हमारी पुरानी कसौटी है उससे वंचित करने वाला आदमी पाप का भागी जरूर होगा। घर में चाय मत पीजिए चाय का व्यसन भी लगाना ठीक नहीं, लेकिन बाहर जाने पर अगर कोई एक प्याला चाय दे तो उसके पीने में उजुर मत कीजिए।'' मालूम नहीं, इस व्याख्यान का कितनों के ऊपर असर पड़ा।

समिति के साहित्य का काम अब उत्साहजनक नहीं रह गया था। जीद के उपन्यास 'ला पोर्ता' (सकरा द्वार'') के बारे में किसी ने आनन्दजी की सम्मति दी कि वह अश्लील है। इस हो गई। यदि इस लेखक को दुनिया की चोटी का उपन्यासकार मानने में उजुर नहीं हुआ तो यह मीन मेख निकाली गई। मैं सोचने लगा क्या सामशाह की यह बला मत्थे लूँ ? जितना ही जल्दी छुट्टी ले उतना ही अच्छा।

२५ को जयपुर के खैरवा की जागीरदारनी ठकुरानी गुलाबकुमारी के यहाँ भोजन करने गए। वह १७५ रुपया मासिक पर अमर ऐकरेस्ट होटल में रहती थी। अपनी मोटर से आई थीं। साथ में मुसाहिब, तीन चार नौकर-नौकरानियाँ भी थीं। भोजन सामिष और मारवाड़ के ठाकुरों सा बहुत स्वादिष्ट था। मैं सोच रहा था, रियासतें गई, जागीरें भी अब जा रही हैं। पुरानी आमदनी अब नहीं रहेगी। फिर यह खर्च उठाना क्या आफत मोल लेना नहीं ? लेकिन आदमी एक स्थिति से दूसरी स्थिति में पहुँचकर तुरन्त ही अपने को उसके अनुसार नहीं बना सकता।

गुरुजी ने बनारस से लंगड़े आमों का पार्सल भेजा जो २७ जून को मिला। बनारस के साथ अपना पुराना रहस्य ही और दुनिया भी लंगड़ा को राजा मानती है इसलिए गुरुजी को राम राम से धन्यवाद दिया।

हिन्दी की महाना पत्रिका 'माया'' ने कोई कृति देने के लिए लिखा था। मैंने कहा मध्य एसिया के ताजिक उपन्यासकार ऐनी के 'अदीना'

को मैं देने के लिए तयार हूँ। उन्होंने एक अंक में चित्र सहित उसे छापने का वचन दिया। वह जून के अंक में छप भी गया। कुछ चित्र तो मूल ताजिक पुस्तक के थे लेकिन कुछ चित्रकार ने अपनी कल्पना से बनाए थे जो अनुरूप नहीं थे। प्रेस का मुंह तो "अदीना" ने देख लिया, लेकिन पुस्तकाकार प्रकाशित होने की नौबत अब (१९५६ ५७ में) आ रही है।

२६ जून को विनोदजी गए। अब ऐसा मालूम हो रहा था स्वामी सत्यस्वरूपजी, कुमठेकरजी और हरिश्चन्द्रजी ही यहां रह जाएँगे।

मसूरी की अवस्था दिन पर दिन गिरती जा रही थी। पिछले साल के कितने ही दूकानदार चले गए। कुछ दूकानें बन्द हो गई, लेकिन अधिकांश में नए फैसनवाले आ जाते थे। एक को असफल भागते देखकर दूसरा भाग्य परीक्षा से कैसे बाज आ सकता था? २ जुलाई को टहलते हुए लण्ढौर तक गया। पुरुषोत्तमजी की दूकान बन्द देखी। उनकी तरफ से हरप्रसादजी काम कर रहे थे जिनसे मालिक को सन्तोष नहीं था। वैसे पुरुषोत्तमजी बड़े अच्छे आदमी थे। कालेज में पढ़े हुए थे इसे तो दोष नहीं कह सकते। पर उनके पास देहरादून और मसूरी में दो दो जगह लोहे की दूकानें थीं। लड़ाई के समय और पीछे लोहेवालों ने दोनों हाथों नफा बटोरकर अपने को मालामाल कर दिया लेकिन पुरुषोत्तमजी थे कि उन्हें समुन्दर में घोंघे भी नहीं हाथ आए। इस समय दूकान बन्द रहना अच्छा नहीं था। पर, एक ही दो साल बाद उन्हें दूकान को बिल्कुल बन्द कर देना पड़ा। फिर व्यवसाय से भी हट गए और कहीं नौकरी करनी पड़ी। दूसरे दूकानदार मुन्शीरामजी कह रहे थे कि हम तो अपनी पूंजी खा के जी रहे हैं। अपने मांस को गला गलाकर आदमी कितने दिनों तक जीवन धारण करेगा? कबाड़िया अपने लिए रो रहे थे। पहले की तरह अब साहब लोगों के बंगले की चीजें बचने को नहीं मिलतीं। जो मिलती हैं उनके खरीदार नहीं। एक अच्छा कारीगर बढ़ई फलों की टोकरी रख के बैठा हुआ था। कह रहा था— क्या करें? किसी तरह तो पेट को भरना है। काम नहीं मिल रहा था इसलिए फल बेच रहा हूँ। मसूरी के ऊपर अंधकार का एक गहरा पर्दा पड़ता दिखाई दे रहा था। लौटते वक्त प० गोविन्द मालवीय से भी थोड़ी देर बातचीत हुई।

३ जुलाई को स्वामी सत्यस्वरूपजी संस्कृत हिंदी कोश का काम कर रहे थे। कुमठेकरजी कन्नड के एक उपन्यास का अनुवाद और कृष्णचन्द्रजी टाइप कर रहे थे।

किशोरी भाई जेल में थे। वहाँ से स्वास्थ्य खराब होकर पटना अस्पताल में पड़े थे। यहाँ कुछ भीड़ थी तो भी आने के लिए लिख दिया। ५ जुलाई को वह आए। आशा थी यहाँ उनके स्वास्थ्य में सुधार अवश्य होगा लेकिन १३ दिन रहने पर भी वह वैसे ही रहे। उनके शरीर पर कभी चर्बी नहीं बनी। जो आदमी दौड़ में चम्पियन बनने लायक हो, कसरत और शारीरिक परिश्रम करने का आदी हो, उसके शरीर में चर्बी कैसे बढ़ सकती है? उनके मन में जैसा ही साहस उसी के अनुकूल उनका स्वस्थ शरीर था। देखने में ही मालूम होता था कि उनका रोयाँ रोयाँ नाच रहा है। जीवन के सभी अंगों में उन्होंने अपने साहस और निर्भीकता का परिचय दिया था। पढ़ाई छोड़कर कांग्रेस में शामिल हुए। मुजफ्फरपुर के सबसे समठ कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में वह हमारे सामने आए। कांग्रेस को जब उन्होंने देखा कि इससे बेड़ा पार नहीं होगा तो मार्क्सवाद का अध्ययन किया, कम्युनिस्ट बने, एक बड़े नेता से वह साधारण स्वयं सेवक बनने के लिए तैयार हो गए। अपने खानदानवालों और घरवालों की कुछ भी पर्वाह न करके उन्होंने अपनी स्त्री को उस समय पर्दे से बाहर किया, जबकि बिहार में कोई आदमी उसका नाम भी नहीं ले सकता था। पर्दे से बाहर ही नहीं किया, बल्कि उसे काम करने लायक बनाया। असमय तरुणाई में ही वह साथ छोड़ गई। किशोरी भाई तब से बराबर अपनी धुन में लगे हुए हैं। उनका शरीर इतना दुर्बल भासित होगा, इसकी मुझे कभी आशा नहीं थी। पर, अब शरीर भी और साथ-साथ मन भी अपने को निर्बल साबित कर रहे थे। अब की जेल में रहते उनके आदर्श उद्देश्य के ऊपर जो जबर्दस्त प्रहार हुए उनकी प्रतिक्रिया के कारण उनका मन भी अस्वस्थ हो गया। पहाड़ के किनारे पर चलने उनको डर लगता था मैं गिर पड़ूँगा। मन की स्थिति शरीर की व्याधि से भी ज्यादा बुरी होती है। व्याधि की औषधि का चमत्कारिक लाभ भी देखा जाता है लेकिन आधि दुश्चिकित्स्य है। उनका मन लगा रहे इसके लिए 'भागो नहीं बदलो' के नये संस्करण की कापी

तैयार करते मैं उन्हें सुनाता। हफ्ता बीत गया लेकिन कोई सुधार नहीं हुआ। १७ जुलाई को स्वामी सत्यस्वरूपजी के साथ वह टहलने गए एक जगह बेहोश होने लगे। जल्दी जल्दी रिक्शे पर बैठाकर उन्हें डाक्टर के पास पहुँचाया गया। उसके बाद किशोरी भाई ने कहा बिहार ही जाना अच्छा है। वहाँ पार्टी के काम में शायद मन बहल जाए। १८ जुलाई को मंगल के साथ उन्हें पटना भेज दिया।

१६ जुलाई को भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) भाभी (जानकी देवी) अपनी छोटी बहिन के साथ पहुँच गई। अब की उन्होंने "ल्वसमोंट में ही रहने का निश्चय किया था। वैसे वह पहला सीजन बिता कर बरसात में आया करते थे। उस समय हमारे यहाँ भी भीड़ नहीं रहती पर उनका कुल्हड़ी में ही रहने में आराम रहता। चीजें पास में मिल जाती। यह भी कहते थे—"इससे आना जाना भी होता रहेगा। टहलने के वह शौकीन हैं। सचमुच ७० के पास पहुँचने पर भी उनके बाल भर सफेद हैं पर चलते हैं आँधी की तरह। किसी काम के करने में उन्हें आलस्य छू नहीं गया।

पिछले साल प्रेस को देहरादून लगाने की बात हुई थी। एकाध घर भी देखे गए थे। लेकिन भैया की व्यावहारिक बुद्धि ने बतला दिया, कि उसके लिए उपयुक्त स्थान देहरादून नहीं, बल्कि दिल्ली है। यदि किसी कारण काम न भी चला और उसे बन्द करना पड़ा तो पैसा लौटने में देर नहीं होगी। भाभीजी देहरादून को पसन्द करती थीं, मैं भी इस ख्याल से नजदीक चाहता था कि अगर मेरी पुस्तकें छपेंगी तो प्रूफ के देखने में दिक्कत नहीं होगी। वह तुले हुए थे—प्रेस को बढ़ाएँगे मानो टाइप लाएँगे, कभी मशीन भी आ जाएगी।

बुढ़ापे में आमतौर से दाँतों में दोष पैदा हो जाता है। मैं तो समझता हूँ यदि उस समय दाँत न रहें तो अच्छा। अक्सर उनमें दर्द हो जाना उनके बीच में खाने की चीजें घुसकर कीटाणुओं को जन्म देती हैं, जो अन्त में पायरिया के कारण बनते हैं। पायरिया बड़ी बुरी चीज है। अपने लिए नहीं बल्कि जिससे बात की जाए उसको भी उसकी दुर्गन्ध आती है। मुझे एक वृद्ध का अनुभव था। ७० वर्ष के बाद भी उनकी बत्तीसी बनी हुई थी। इसका वह अभिमान कर सकते थे लेकिन मुँह से दो हाथ दूर भी इतनी

गंध आती कि बात करना असह्य हो जाता। शायद उनको न मालूम होती हो। मेरे मुँह से कुछ गंध आ रही थी। भैया ने कहा—पायरिया है। वह मित्र का ख्याल आने लगा। भैया ने कहा—कोई चिंता नहीं। फिनाइल के मदु लेपाल को सीक में रुई लपेटकर दाँतों के बीच हफ्ते में एक बार लगा देने से दो तीन हफ्ते में ठीक हो जाएगा। भैया वैद्य हैं, लेकिन कूपमंडूक वैद्य नहीं। चिकित्सा शास्त्र में जो भी नया आविष्कार होता है, उसके बारे में हिन्दी पत्रों या पुस्तकों में जो देखते हैं, उसे बड़े ध्यान से पढ़ते हैं। प्रयाग के 'विज्ञान' के वह उसके जन्म से ही ग्राहक हैं, और शायद उसका कोई भी अंक ऐसा नहीं होगा, जिसे उन्होंने ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ा हो। उसकी नैया जब डगमगाने लगी, तो कितने ही वर्षों तक उसे भैया ने अपने खर्च से चलाया। वह इसके पक्षपाती हैं, कि चिकित्सा सम्बन्धी आधुनिक आविष्कारों से वैद्यों को लाभ उठाना चाहिए और आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति और औषधियों के निर्माण तथा विश्लेषण के बारे में साइंस का उसी तरह उपयोग करना चाहिए जैसे एलोपैथी के डाक्टर लोग करते हैं। सामाजिक और राजनीतिक विचारों में भी वह अति आधुनिक हैं। समाजवाद-साम्यवाद पर उनका अटल विश्वास है। कभी कभी वह कहते थे—"चिन्ता की क्या जरूरत है हम बच न सके तो साम्यवाद आ ही जाएगा।" मैं भी घुमक्कड़ी के लिए जब पहले पहल निकला, तो यह श्लोक हमेशा जीभ पर रहता था—'का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते।'"

अब तिब्बत कम्युनिस्ट चीन का अंग बन गया था। शान्तिपूर्वक ही तिब्बत ने चीन से अपने सहस्राब्दियों के पुराने सम्बन्ध को फिर से स्थापित कर लिया था। दिल्ली में कम्युनिस्ट विरोधियों को चीं-चपड़ करने की आवश्यकता नहीं हुई, क्योंकि यह सब काम शान्तिमय तरीके से हुआ। शान्तिमय तरीके से ही इसका होना मैं भी वांछनीय समझता था। क्योंकि तिब्बत में भारतीय, चीनी तथा अपने देश की हजारों सांस्कृतिक अनमोल निधियाँ सुरक्षित रखी हैं। ल्हासा का महान और तिब्बत का सबसे प्राचीन बौद्ध विहार "जो-खङ" सातवीं सदी के मध्य में बना। आज भी वहाँ वह पुरानी शताब्दियाँ मालूम होती हैं, जो आज भी हमारे सामने बैठी हुई हैं। दो हजार के करीब वहाँ के विहार पुरानी सामग्रियों के अद्भुत संग्रहालय हैं।

लड़ाई होती तो उन्हें क्षति होती जिनकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती थी। फिर हजारों घर उजड़ते, आदमियों के प्राण जाते दोनों देशों में पारस्परिक घृणा का संचार होता जो कितने ही समय तक चलता रहता। यह सब देखते हुए शान्तिपूर्ण चीन और तिब्बत के सम्बन्ध का स्थापित होना वाञ्छनीय था। मैंने स्वागत नवीन चीन नाम से एक लेख पहले लिखा और अब हमारा पड़ोसी चीन लिखकर अपने भाइयों को बतलाना चाहा कि चीन हमारा हमेशा के लिए पड़ोसी है उससे भय खाने की जरूरत नहीं बल्कि उसके सामने मित्रता का हाथ बढ़ाना चाहिए। सौभाग्य में कम्युनिस्ट चीन के विरोधियों का बल कम हो गया, और हमारे दोनों देशों में गहरा भाईचारा स्थापित हो गया।

महेन्द्र आचार्य यहां के साहित्य विभाग के काम से हटने के बाद मद्रास पहुँच गए। वहां से उनका पत्र आया। भूल चूक के लिए क्षमा मांगने का शिष्टाचार दिखाते हुए उन्होंने कुमठेकर को डांगी और क्या क्या लिखा। कुमठेकर वस्तुतः एक बड़े साधु हृदय के पुरुष थे और सहिष्णुता में तो पृथिवी को मात करते हैं यह पहले ही मैं लिख चुका हूं। सबके लिए उनका हृदय और जेब खुले रहते है। ऐसे आदमी को पैसों की हमेशा दिक्कत रहेगी और न पैसे रहने पर भी वह गुजारा कर लेगा, इसमें सन्देह नहीं। उसे डांगी कैसे कह सकते है? वस्तुतः महेन्द्रजी का स्वभाव पुराने संस्कृत पण्डितों की तरह का था जिसमें कभी-कभी बच्चों का सा भोलापन दिखाई पड़ता था। वह उदयपुर से अपने साथ शुद्ध घी कनस्तर भर-भर लाए थे। मैं देखता था उनके साथी उस उड़ान के लिए तैयार थे, और महेन्द्रजी उस जागा करके कल्युग के अन्त तक ले जाना चाहते थे। महेन्द्रजी की इसमें हार हुई। पैसे में भी वह सभल सभल कर खर्च करते थे। सचमुच ही हम सबको आश्चर्य हुआ जब मालूम हुआ कि उन्होंने कुमठेकर को सौ या अधिक रुपया उधार दे दिया है। यार लोग मजाक करते इसलिए यह काम दोनों में चुपचाप हुआ था। कुमठेकर के मेहमान आ गए। आतिथ्य में उन्होंने शाहखर्ची दिखलाई। फिर पैसा कहाँ रहना? महीने में पौने दो सौ की ही तो आमदनी थी। चलते वक्त महेन्द्रजी अपना पैसा न पा सके और शायद दो एक बार चिट्ठी लिखी तो भी उनका पैसा

लौट नहीं सका। इसीलिए बेचारे कुमठेकर ढोंगी हो गए थे। कुमठेकरजी पीछे भी कई महीना यहां रहे। सागवाले का भी रुपया बाकी था, अखबार वाले का भी। चलते वक्त नहीं चुका पाए। ऐसे "आत्मद्रव्येषु लोष्ठवत्" मानने वाले मस्त मौला। यदि 'परद्रव्येषु लोष्ठवत्' (दूसरे के धन को भी ढेला) समझें तो उनको दोष नहीं देना चाहिए। हां अखबार वाले के लिए हमें बड़ा दुख हुआ, क्योंकि बेचारा दूसरे एजेंट से अखबारों को लेकर मीलों का चक्कर लगाकर रोज कोठियों में उन्हें बांटता था। उसे ये रुपए दंड भरने पड़े। कुमठेकर बड़े सीधे-सादे स्वभाव के थे, और मन भी वैसा ही था। हमारे यहां काम करनेवालों में विनोद ही शेरवानी और जवाहरकट पायजामे के पक्षपाती थे, नहीं तो बाकी लोग उसकी कोई परवाह नहीं करते थे। नीचे से अधिक सर्दी तो यहां थी ही। कुमठेकरजी को कपड़ा बनवाना पड़ा। वह भी गरम शेरवानी पायजामा बनवा लाए। अब वह अधिक सभ्य और शिष्ट मालूम होते थे, इसमें सन्देह नहीं। जैसा की भूख ज्यादा और पिटारियां न उनके शरीर को बहुत कमजोर कर दिया था। पेट की यही शिकायत रहती थी। बहुधा पावरोटी और दूध पर गुजारा करते थे। दूध गरम करने के लिए चूल्हे को जलाने की जगह बिजली की अंगीठी में आसानी थी। वह उसका ही इस्तेमाल करते थे। दूसरे साथी सिर्फ रोशनी के लिए बिजली जलाते थे, बिजली के बिल में समान पैसे के भागी होते थे, इसीलिए यह उन्हें पसन्द नहीं था। वह यह समझते थे, कुमठेकर क्यों चूल्हे की बिजली का अलग पैसा नहीं देते? मैं बतला चुका हूं कि कुमठेकर न धोखा देने के लिए किसी का पैसा अपने ऊपर रखना चाहते थे, और न यही चाहते थे, कि मेरा खर्च दूसरे बरदाश्त करें। लेकिन अपने हृदय की उदारता की दवा कहां से लाते?

"हेन विला" मसूरी के एक छोर का सबसे अन्तिम बंगला था, यह मैं बतला चुका हूं। यह छोर जमुना की ओर था। इधर मील डेढ़ मील पर पहाड़ी गांव आ जाते थे। इसलिए वहां की चीजें हमारे लिए सुलभ होती थीं। जिस वक्त गांवों में साग-सब्जी तैयार रहती, उस वक्त हम आधे दाम पर ताजी सब्जी मिल जाती। बनिये किसानों को चौथाई दाम भी देने के लिए तैयार नहीं थे। इसीलिए मैं बहुत चाहता था कि [illegible]

लिंग नैनीताल की तरह यहा भी हफ्ते म दो दिन हाट लग, जिसम गाँव वालो की चीजें उपभोक्ता सीधे खरीद सकें। नई नगरपालिका क चुने जाने पर आशा हुई थी कि इस दिशा म कुछ होगा। लेकिन उन्होने कुछ भी नही किया। जमुना की मछलिया भी अक्सर गाववाले लाते थे, और दो रुपए भर की जगह रुपए सेर म मिल जाती थी। यद्यपि यहा की मशहूर मछली महासिर शायद ही कभी आती पर दूसरी मछलिया अच्छी और काफी बडी होती। मछली मुझे माँस से कम स्वादिष्ट नही मालूम होती पर जाने क्या अपने यहा बनी मछली म वह स्वाद नही आता जो कि बचपन म छोटी छोटी मछलिया म मिलता था। जाडे क दिनो म गाववाले कभी-कभी जगली मुर्गे भी मारकर लाते थे। शास्त्रो ने ग्राम्य कुक्कुट को अभक्ष्य कहा और अरण्य कुक्कुट को भक्ष्य। मैं ग्राम्य कुक्कुट को ग्राम्य शूकर-सा ही भक्ष्य मानता हूँ। पर ऋषियो की बात से भी इन्कार नही करता और अरण्य कुक्कुट और शूकर को परम पवित्र भक्ष्य स्वीकार करता हू।

प० कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर भी अब की गर्मिया म यही हन हिल" म रहे। प्रभाकरजी क साथ मेरी दगादेखी १९३८ की है। मैं रूस से लौटते सहारनपुर म या हो उतर गया। शहर को देखना और यहा की कौरवी भाषा क सुनने का आनन्द लेना चाहता था। अचानक मिश्रजी स भेट हुई और एक दो दिन उनका अतिथि भी रहा। उनकी कलम मुझे बडी प्रिय मालूम होती है। छोट छोट वाक्यो और छोटी छोटी घटनाओ को लेकर वह इतना अच्छा लिखते ह, कि दिल खुश हो जाता है। शिकायत यही रहती है कि इतना कम क्यो लिखते है। नया जीवन का वर्षों स वह सपादन कर रहे है। जिस तरह उसक बोझ को बर्दाश्त करते हैं यह वही बतला सकते है क्योकि नया जीवन एक कस्बे स निकलता है और उसका प्रचार बहुत सीमित है। प्रभाकरजी की भाषा सीखी हुई भाषा नही है। हिन्दी की मूल भाषा कौरवी है और यही प्रभाकरजी की मातृभाषा है। उन्हे इतना ही करना पडता है कि लोकसभा क उन उच्चारणो और शब्दो को हटा दें, जिन्हे साहित्यिक हिन्दी ने मजूर नही किया। मैं समझता हूँ साहित्यिक हिन्दी को इतना अधिकार कभी नही होना चाहिए, कि वह हिन्दी को उसक मूल स्रोत स सम्बन्ध विच्छेद करा द। जिनकी मूल हिन्दी

मातृभाषा है, उन्हें मनमाने नियमों को मानने से इन्कार कर देना चाहिए। मिश्रजी, विष्णुप्रभाकरजी और दूसरे कौरवी क्षेत्र के लेखकों से मैं बराबर यही कहता रहा, कि आप अपनी कहानियों, उपन्यासों और लेखों में लोक भाषा की पुट दीजिए, ताकि हमारी भाषा में अधिक लोच आए। मिश्र के साथ विद्यावती कौसल भी आई थीं, जिनकी कविताएँ अक्सर "नया जीवन" में निकला करती थीं। मेरा जीवन तो घड़ी की तरह चलता है। खुलकर समय व्यय करने में यदि उदारता से काम लूँ, तो काम रुक जाए, तो भी नाम का एकाध घंटा और इतवार का सारा समय मैं अपना नहीं समझता। उसी समय अपने यहाँ आए हुए साहित्यिक मित्रों से बातचीत होती।

१९८० में श्री परमानन्द पोद्दार ने मेरी कितनी ही पुस्तकों के एक संस्करण पर २५ हजार रुपया अग्रिम दिया। मुझे क्या मालूम था कि यह अग्रिम जी का जंजाल साबित होगा। इन्कम टैक्स आफिसर ने इसको भी वास्तविक आय के साथ जोड़कर उसे ३९ हजार बना दिया, और फिर ऊपर पाँच हजार सुपर टैक्स लगाया। मैंने समझाने की कोशिश की कि यह आमदनी पर ब्याज रहित ऋण है आमदनी नहीं है। लेकिन, इन्कम टैक्स अफसर ने इसे नहीं माना। अन्त में यह मामला रेवेन्यू-बोर्ड के पास गया। एक डेढ़ साल तो यही जान पड़ता था कि इसे भुगतना ही पड़ेगा पर रायल्टी के अग्रिम के एस जीरो के भी झगड़े थे। पीछे इसे ऋण मानकर मेरी छुट्टी हुई। अग्रिम के लिए मुझे पछताना ही पड़ा। सोचता था, यदि अग्रिम न लिया होता तो मकान भी नहीं ले सकता और मसूरी में जहाँ चाहता वहाँ सस्ता मकान मिलना मुश्किल नहीं था। जब चाहता तब मसूरी भी छोड़कर कहीं दूसरी जगह जा सकता था। मकान लेने में यह लाभ जरूर हुआ कि धीरे धीरे चार हजार के करीब पुस्तकें जमा हो गई, और उनसे मैं लाभ उठाता रहा। पर अब जब मसूरी छोड़ने का इरादा हो रहा है तो मकान में लगे आधे दाम को लौटा पाने को भी मैं गनीमत समझता हूँ।

हमारे मकान के ऊपर दो हो हाथ पर अच्छी नासपातियों के दो-तीन वृक्ष हैं। अंग्रेजों ने अपने जंगलों के बनाते वक्त यहाँ फलों के उत्पादन की ओर भी ध्यान दिया था। "हन हिल" में नासपाती खूबानी, आड़ू आदि

के बहुत से वृक्ष लगे हुए थे लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के बाद से ही मसूरी की ओर साढ़ेसाती सनीचर ने कदम बढ़ाना शुरू किया था। दूसरी विलासपुरियों से मसूरी की यह विशेषता थी कि यहाँ अंग्रेजों ने खुद अपने लिए बंगले बनवाये थे नैनीताल में उनकी योजना के अनुसार भारतीयों ने बंगले बनाये थे। अपने लिए बनाए बंगलों में वह सब बात का पूरा ध्यान रखते थे इसीलिए फल फूल पैदा करने का अच्छा प्रबन्ध किया था। प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होने के बाद ही बहुत से और बंगलों की तरह हर्न हिल भी अंग्रेजों के हाथ से भारतीयों के हाथ में चला गया। कुछ दिनों यह जिन्द के राजा के हाथ में रहा फिर टेहरी ने ले लिया। किसी का यहाँ के बगीचों की ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं थी। उपेक्षित वृक्ष धीरे धीरे सूखने लगे और मरे यहाँ आने के समय अपने हाते में एक नासपाती और एक आड़ू का वृक्ष रह गया। नासपाती कठ नासपाती थी जिसका चटनी ही की तरह उपयोग किया जा सकता है यदि हनुमानजी की सेना उन्हें बकस दे—सौ भूख से रहने भी वह पकने के लिए तैयार नहीं थी। जरा सा पलक मारते ही वह पचासों की संख्या में आती और चुटकी बजाते बजाते फलों को साफ कर जाती। इसके लिए हम कोई अफसोस नहीं होता क्योंकि नासपाती हमारे काम की नहीं थी। लेकिन हाते ही से हमारी सीमा से बाहर की नासपातियाँ अच्छी जाति की मीठी नाखें थीं। कोई उनकी खोज खबर नहीं लेता न थाला बनाता न खाद डालता। तब भी ये मेवेदार वृक्ष हर साल फलों से लदते। बाड़ फलों का रखने वाला नहीं था। भूख के मारे कभी कभी पकने के समय तक आधे रह जाते और फिर आसपास के लोगों के काम आते।

मध्य एसिया का इतिहास" लिखने का संकल्प पाँच छ वर्षों से था। ग्रंथ बड़ा था, इसलिए भी उसके लिखने का काम आसानी से शुरू नहीं किया जा सकता था। १ अगस्त को उसके लिखने में हाथ लगाया। १९५२ तक सारी पुस्तक खतम कर डाली। १९५३ के शुरू में प्रेस में भी चली गई लेकिन १९५६ तक उसकी एक जिल्द ही निकल पाई।

बन्दूक इस ख्याल से भी ली थी कि रात बिरात कोई जंगली जानवर आए तो उस पर इस्तमाल कर लें और एकान्त देख चोरों को भी आने की

हिम्मत न हारी। लंगूर फौज बहुत तंग करती तो गाली दागता लेकिन शिकार में सफलता कभी नहीं हुई।

मसूरी में आकर मैं जरूरत से अधिक एकान्तप्रेमी हो गया। चाहता था कि पहाड़ से नीचे उतरूँ ही नहीं। इसके कारण डायबेटीज और उसके लिए इंजेक्शन का खटराग था। जरा से घाव को दो महीने से अधिक सेना पड़ा। इससे यह करना जरूरी था। इसीलिए केन्द्र के भिन्न भिन्न मंत्रालयों ने परिभाषा के लिए जो कमेटियाँ बनी थीं, उनकी सदस्यता से मैंने इस्तीफा दे दिया। संसद ने भी एक कमेटी बनाई जिसका सदस्य मुझे भी बनाया गया था जिसके लिए ७ अगस्त को मैंने अस्वीकृति दे दी। इससे इस्तीफा न देना, पर हमारी कमेटी में जो परिभाषायें बनाई जातीं उनका अंतिम रूप देने वाले विद्वान ऐसे आदमी थे जिनको मैं और कोई भी अधिकारी नहीं समझता था।

भूटू अब पाँच महीने से ऊपर का हो गया था। मैंने मिस पामर की बात का उल्टा अर्थ लगाकर यही समझा था कि दो महीने का हो जाने पर उसे मिरगान फलान की कोशिश करनी होगी। भूटू अपने-आप ही सीख-पढ़ रहा था। वह पत्थरों को मुँह से उठा उठाकर लाता और फेंकने के लिए आग्रह करता, ताकि वह फिर उठाकर लाए। यदि न फेंके, तो बच्चों की तरह हठ करके चिल्लाता। 'पत्थर लाओ' कहने पर वह पत्थर भी लेन जाता। अल्सेशियन कुत्तों का यह स्वभाव है, वह पत्थर मुँह में दाबे फिरते हैं। भूटू पीछे चार चार सेर के पत्थर को लेकर इधर से उधर घूमता और कभी-कभी एक लम्बा पत्थर को लेकर ऐसे चलता कि मालूम होता मुँह में सिगार दबाए जा रहा है।

बिहार सरकार ने पालि प्रतिष्ठान कायम किया जिसकी समिति में मेरा भी नाम था। यह नालन्दा की पुनःस्थापना का उपक्रम था। मकान के अभाव के कारण पहले राजगिरि में उसे खोला गया, पीछे नालन्दा में लाया गया। नालन्दा के पुनरुत्थान का स्वप्न एक बार मैंने बड़े जोर से देखा था। मेरे मित्र भिक्षु जगदीश काश्यप इस प्रतिष्ठान के संचालक थे। स्वप्न को जागृत देखते मुझे प्रसन्नता जरूर हो रही थी, पर उतनी मात्रा में नहीं। कारण मैं अब समझने लगा था, कि कोई भी अनुसंधान या अध्ययन

अध्यापन की बनी संस्था जंगल में नहीं फल फूल सकती। जंगल में उसे शहर के तल तक आने के लिए करोड़ों रुपए चाहिए, जिसमें कि उसके आसपास नगर बस जाए। तब भी इससे माने पीने और शिक्षित समाज की ही सुविधा मिलेगी, अनुसंधान के लिए जिस भावना की आवश्यकता है, वह वहाँ वर्षों जमा नहीं हो पायेगी। नालन्दा को उस स्थिति में पहुंचाने की अभी कल्पना भी नहीं हो सकती। सौ पचास विद्यार्थी और बीस पचास हजार पुस्तकों से क्या काम बन सकता है? यद्यपि पटना में संस्था के होने पर उस प्राचीन स्थान का महत्व नहीं मिलता, लेकिन वहां अच्छा पुस्तकालय है, अच्छा म्यूजियम है, बड़ी संख्या में कालेजों के विद्यार्थी और अध्यापक हैं, सबसे सहायता मिलती है। नालन्दा के लिए तभी आशा हो सकती है, जब कि वहां कृषि कालेज, वेटनरी कालेज जैसे दूसरे भी कई बड़े बड़े विद्या संस्थान बन जाएँ और विद्यार्थियों और अध्यापकों की संख्या हजारों तक पहुंच जाए।

श्री सदानन्द महता भारतीय सर्वे विभाग में काम करते थे। उस समय विभाग का एक भाग मसूरी में रहता था। पीछे अकल के अंधों ने उसे देहरादून में बदल दिया। मसूरीवालों का सौ दो सौ आदमियों के रहने से जो थोड़ी बहुत आमदनी होती थी, वह बंद हो गई। मसूरी का समस्या है कि वर्षों से खाली और तेजी से उजड़ते बंगलों की रक्षा कैसे की जाए? यहां के लोगों की जीविका का स्रोत कम सूखने न पाए? इसके लिए जरूरी था कि दिल्ली के कुछ बड़े बड़े दफ्तरों को यहां भेज दिया जाता। प्रान्तीय मन्त्रियों ने भी जोर लगाया, केन्द्रीय मन्त्रियों ने भी आश्वासन दिया, पर कोई विभाग यहां से हटने के लिए तैयार नहीं हुआ। मन्त्री हमारे पुराने नौकरशाही के हाथ की कठपुतली भर हैं। अधिकतर कठपुतली होने लायक ही हैं, उनमें ऐसी योग्यता नहीं कि अपने विभाग के शासन-सूत्र को संभाल सकें या उसकी बारीकियों को जान सकें। आधुनिक ज्ञान विज्ञान से जिसका छत्तीस का सम्बन्ध है, उसके हाथ में सारे भारत की शिक्षा की बागडोर है। जिसे मालूम नहीं चिकित्सा विज्ञान किस चिड़िया का नाम है, उसे ४० करोड़ लोगों के स्वास्थ्य की बागडोर दे दी गई है। इसी तरह सभी जगह गूंगे-बावले भरे हुए हैं। फिर क्या वह स्वयं नौकरशाही पर अंकुश

रख सकेंगे। अंधा को लाठी वही तो है। मंत्री यदि किसी विभाग के कार्यालय को मसूरी या शिमला भेजना चाहते हैं, तो नीचे के ब्युरोक्रैट नौकर शाह उसका विरोध करते हैं। विरोध क्यों न करें जब कि वे जानते हैं कि दिल्ली में रहने पर हम मंत्रियों के दरबार में सलामी दे सकेंगे, उन पर प्रभाव डाल सकेंगे, और उसके जरिए अपना लाभ परलाभ बनाएँगे—अर्थात् अपनी भी जल्दी तरक्की करेंगे और अपनी अगली पौध के लिए अच्छी नौकरियाँ दिला सकेंगे।

मदानन्द मेहता इतिहास के एम० ए० थे। पत्रिकारिता और रूसी भाषा में भी डिप्लोमा लिया था। मैं जानता था सर्वे विभाग ने पिछली शताब्दी के मध्य में हमारे बहुत से देशभाइयों को तिब्बत और मध्य एसिया की ओर भेज कर वहाँ से भूगोल और दूसरी बातों की जानकारी प्राप्त की। जिन लोगों ने अपने प्राणों को जोखिम में डाल सब काम किया, उनकी कोई पूछ नहीं, और अंग्रेजों ने सबका श्रेय आप लेना चाहा। एवरेस्ट की खोज लगाने वाले थे अद्भुत मेधावी राधानाथ सरकार। यदि उस शिखर का नया नाम रखना ही था, तो राधानाथ शिखर होना चाहिए था, लेकिन वह एवरेस्ट के नाम से मशहूर हुआ, जो कि उससे पहले ही सर्वे विभाग से पेन्शन लेकर विलायत चला गया था। किशनसिंह नैनसिंह, किन थोव जैसे बहादुरों ने वह सारी सामग्री जमा की, जिससे तिब्बत और मध्य एसिया का शुद्ध नक्शा बन सका। पर, अंग्रेज उनको भुला देना चाहते थे। घुमक्कड़ होने से ये मेरे सगे बन्धु थे इसलिए मैं चाहता था, कि उनका काम दुनिया के सामने आए, और उन्होंने जो मूल डायरियाँ तथा दूसरी चीजें सर्वे विभाग को दी थी उन्हें कीड़ों का भक्ष्य बनने से पहले ही प्रकाश में लाया जाए। इसीलिए मैंने चाहा कि मेहताजी इस काम को लें, और इस अनुसन्धान पर पी एच०डी० करें। उन्होंने उस काम को स्वीकार किया। बहुत सी दिक्कत रास्ते में आईं। अन्त में आगरा विश्वविद्यालय ने मेरे प्रधान उन्हें अनुसन्धान करने का काम सौंपा। पर सर्वे विभाग या किसी सरकारी विभाग के ऊपर के अफसर कब चाहते हैं कि जो काम वे न कर सकें उसे कोई दूसरा करे। वे कदम-कदम पर बाधा डालने लगे। मुझे मालूम हुआ कि किशनसिंह-नैनसिंह आदि की डायरियाँ दफ्तर के किसी

कान म फकी पडी हैं। मैंने इसके बारे म राष्ट्रपति का लिखा। उन्होंने विभाग का लिखा। डा० शान्तिस्वरूप भटनागर को आग लग गई। चाहे उन्होंने कभी उन डायरियों के बारे म सुना भी न हो पर वह और नीचे के नौकरशाह कैसे यह पसन्द करते कि एक ऐरा-गैरा नत्थू खैरा उनके कर्तव्य की ओर अंगुली उठाये। भटनागर के पत्र का मैंने मुहतोड जवाब देने की जरूरत नहीं समझी लेकिन यह जानकर मुझे खुशी हुई कि वे डायरियां देहरादून से मँगाकर दिल्ली के केन्द्रीय आलेख भडार (आर्काइव) म रख दी गई।

१३ अगस्त (१९५१) को माधवजी ने जीन निम्लाफ के एक अध्याय का फ्रेंच से हिन्दी म अनुवाद करके भेजा। अनुवाद बहुत सुन्दर था और माधव इस काम के लिए उपयुक्त तरुण थे। लेकिन मेरे लिए हाथ मलने के सिवा और करने को क्या था? राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की योजना का काम जिस ढिलाई से हो रहा था उसके कारण मैं निराश हो चुका था। यदि समिति की सहायता और तत्परता मिली होती तो राम्या रोला की यह अमर कृति ही नहीं बल्कि और भी कितनी ही कृतियाँ हिन्दी म आ गई होती।

१४ अगस्त को श्री मुकुन्दीलालजी आए। वह कला-समालोचक इतिहासज्ञ और लेखक तो हैं ही, साथ ही वह सिद्धहस्त शिकारी भी हैं। उम्र ६० से ऊपर होने पर भी उनका हाथ कभी कभी बन्दूक पकडने के लिए फडक उठता है। शिकारी बनने की तीव्र आकाक्षा मुझे कभी नहीं हुई लेकिन शिकार यात्राओं का मैं हमेशा बडे चाव से पढता था। उस वक्त मन मचलने भी लगता और नहीं तो किसी के साथ एक रात मचान पर बैठ लेना ही सही। ऐसे अवसर आए भी पर मैं उनसे लाभ नहीं उठा सका। शिकार की पुस्तकों को पढने म जो आनन्द लेता है उसे यदि किसी शिकारी के मुह से बातें सुनने का मौका मिले तो वह भी रुचिकर होता है। मुकुन्दीलालजी गढवाल के अपने एक शिकार की बात सुना रहे थे। वह और उनके एक साथी बघेरे के पीछे गए। मुकुन्दीलालजी की गोली से बघेरा घायल होकर एक झाडी में चला गया। उनकी खाली बन्दूक लिए वे झाडी के पास पहुँचे। उन्हें आशा थी कि साथी की बन्दूक भरी हुई है। इसी बीच बुरी

तरह से घायल बघेरे ने झपट्टा मार उनकी टाँग पकड़ ली। साथी प्राण लेकर भागा। घायल बघेरे और निहत्थे आदमी का युद्ध शुरू हुआ। बन्दूक के कुन्दों से उसे मारते, और उसने इनकी टाँग को चबाना शुरू किया। मनुष्य जीतता है या श्वापद? कितने ही मिनटों तक संदिग्ध लड़ाई दोनों की होती रही। बघेरा बहुत अधिक घायल था, इसलिए कुन्दों की मार से उसका काम समाप्त हो गया। जब तक प्राण संकट में था, तब तक होश हवास दुरुस्त थे। बघेरा मांस और हड्डियों को काट रहा था, लेकिन इसकी ओर उनका ख्याल नहीं था। वह सिर्फ इतना ही सोच रहे थे, प्राण सबसे अधिक मूल्यवान् हैं, उसे किसी तरह बचाना चाहिए। बघेरे के मरने के बाद वे बेहोश हो गए। पैर की कई हड्डियाँ टूट गई थीं। अस्पताल में कितने ही दिनों तक जीवन मरण के बीच में पड़े रहे। अंत में प्राण बच गया। पैरों में बघेरे के काटने का निशान अब भी पूरी तौर से दिखाई देता है, पर लँगड़े बनने की नौबत नहीं आई।

१५ अगस्त १९५१ को अँग्रेजों को गए चार साल हो गये। उस दिन विशेष आयोजन किया गया था। गांधी चौक में मुझे झंडा फहराना था। अगस्त वर्षा का समय है, इस समय किसी समारोह का अच्छी तरह होना मुश्किल है। इस साल उस दिन वर्षा नहीं हुई। लोग काफी संख्या में शामिल हुए। टौन हाल में भी सभा हुई।

प्रकाशकों के बारे में लेखकों की शिकायत निर्मूल नहीं होती, और शायद प्रकाशकों की शिकायत को भी सदा निर्मूल नहीं कहा जा सकता। पर लेखक भिक्षुक न होने पर भी अपनी मजूरी पाने के लिए हाथ के नीचे हाथ रखने के लिए मजबूर है, और प्रकाशक हाथ के ऊपर हाथ। इसका वह बहुधा दुरुपयोग भी करता है।

देहरादून में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का परीक्षा-केन्द्र था। इस साल कमला साहित्यरत्न प्रथम खण्ड, हरिश्चन्द्र विशारद और मंगल प्रथमा का वहाँ फार्म भरने के लिए गये। तीनों ने परीक्षा दी। हिन्दी में कमजोर होने के कारण मंगल उत्तीर्ण नहीं हो सके, बाकी सभी सफल रहे।

एक दिन यों ही मैं अपना पासपोर्ट ढूँढ़ने लगा। मैं अच्छी तरह जानता था, कि चमड़े की थैली में रख कर उसे सूटकेस में सँभाल रक्खा है। एक

बक्स टूटा दूसरा बक्स टूटा लेकिन कही उसका पता नहीं लगा। फिर भी मुझे दूसरा ख्याल नहीं आया, और यही समझा कि कहा पडा होगा। लेकिन पडा हो तब मिले न। फिर लडाई के दिनों म पासपोट के गुम होने का ख्याल आया। अग्रजो न अपने खुफियावालों को अधिकार दे रखा था, कि चाहे जसे हो वह अपना काम बनाएँ। उनके हाथ में बिके लोग नीच से नीच काम कर सकते थे। विश्वासघात तो उनका पेशा था। एक तरुण जो अभी स्थाई खुफिया का आदमी भी नही बन पाया था अपने सम्बन्धी के घर म ध्यान लगा रहा मेरा पासपोर्ट और कुछ और चीजें बक्स म रहती। वह वहा से उसे निकाल ले गया। दूसरी चीजो के उसके निकालने का अगर पता न लगा होता तो शायद मुझे मालूम ही न होता, कि यह उस आदमी की कारस्तानी थी। अब मुझे उसी बात का ख्याल आया। अंग्रेज चले गये। लेकिन उनके जानशीनों के लिए मैं पहले ही जैसा खतरनाक था। कलिम्पोग म भी खुफिया पीछे लगी था भारी चिट्ठिया सेंसर होती। हमारे रसोइय को खरीदकर उसे देखभाल के लिए नियुक्त किया गया था। जान पडता है, किसी समय वही पासपोट गुम कर दिया गया। मसूरी म भी खुफिया की तदेही उसी तरह थी। जब कृपलानी तक खुफिया की शिकायत करते हैं और सरकार की लाडली अपने महाप्रभुओ के इस विश्वासपात्र व्यक्ति को भी छोडने के लिए तैयार नही तो मुझे शिकायत करने का क्या अधिकार ?

देहरादून काम करने तीनो गये। बाबा दादा के ऊपर गदहपचासी ने जोर मारा और वह पैदल पर्वत-यात्रा करते एक दिन पहले ही मसूरी पहुँच गए। जानते, कि पहाड की मोटर की सवारी म कमला की हालत बुरी हो जाती है खाली पेट रहने पर पित्त निकलने लगती है। लेकिन अकेला छोड कर वह चले आए। अगले दिन दोपहर को कमला परेशान परेशान मोटर के अड्डे पर उतरी और ११ बजे वर्षा म भागती हुई पहुँची।

२४ अगस्त को वर्धा से बुरी खबरें आने लगा। आनन्दजी कुछ साल पहले ही समिति छोडने की बात कर रहे थे, उनके रोक रखने म मेरा बडा हाथ था। अब वहाँ दो दल बन गये। एक पक्ष उनके पीछे हाथ धोकर

पड़ा। मुझे ख्याल आने लगा, क्या मैंने उन्हें पहले ही समिति से हटने नहीं दिया। मैं सोचता था। समिति को इतनी बड़ी बनाने में जिसका हाथ है, उसके द्वारा साहित्य निर्माण में भी भारी काम हो सकता है इसीलिए वैसा न करने दिया। अब पछता रहा था। दूसरे कामों में लगे हुए भी आनन्दजी ने अपनी लेखनी को ताक पर नहीं रखा, यह इसीसे मालूम है, कि उन्होंने जातक जैसे महान् ग्रंथ का पालि से हिन्दी में सात जिल्दों में अनुवाद करके हिन्दी के भण्डार को भरा। वे और भी पुस्तकें समय समय पर लिखते रहे। समिति में न रहने पर वे देश विदेश घूम कर भी बड़ा काम कर सकते (जो समिति से हटने के बाद वह कर रहे हैं)। यह घाटे का सवाल नहीं था। दोनों पक्षों में मेरे मित्र थे। मैं किसी का पक्ष ले इस संघर्ष में एक तरफ कैसे हो सकता था? मेरी इस तटस्थता को कुछ मित्र पसन्द नहीं करते थे। असल में यह संघर्ष इतना उग्र न होता यदि समिति से कुछ आदमियों को निकालने का प्रयास आनन्दजी ने न किया होता। जो समिति को दस वर्ष से चला रहा हो और जिसे वहाँ जमी हुई भिन्न भिन्न विचारों वाली मण्डली से काम लेने का तजर्बा हो उसके सामने मैं अपनी राय क्या दे सकता था? मैं समझता था दोष गुण किसमें नहीं होते। पर उनके लिए किसी को काम से निकालना अर्थात् रोजी से वंचित करना अच्छा नहीं है।

इधर सम्मेलन में भी संघर्ष उग्र हो गया था। जहाँ ४० ५० हजार विद्यार्थी परीक्षाओं में बैठते हों, वहाँ पाठ्य पुस्तकों में अपनी पुस्तकों का लगाना बड़े लाभ की चीज है, हजारों-लाखों का वारा-न्यारा है। सरकारी टैक्स्ट बुक कमेटियों में जो घूस का बाजार गरम दिखाई देता है उसका कारण भी यही लाभ है। जहाँ गुड़ हो वहाँ चींटियाँ जरूर आती हैं। इसी-लिए सम्मेलन की परीक्षाओं के ऊपर प्रकाशक भनभनाने लगे। धीरे धीरे उन्होंने सम्मेलन पर अपना अधिकार जमा लिया, और अब वे नग्न नृत्य करना चाहते थे। दूसरे उनके विरोध पर उतारू हुए। सम्मेलन की नियमावली के संशोधन करने की इसलिए भी जरूरत थी कि उस पर व्यवसायियों का प्रभुत्व न जमने पाये, और विद्वान् साहित्यकार ही उसके भाग्य निर्णायक हों। लेकिन, टंडनजी की दीर्घसूत्रता का क्या कहा जाए? जब समय था,

तब उन्होने ढिलाई की, अब मुकद्दमेबाजी शुरू हो गई। सम्मेलन को डूबने का डर नही, तो उसके काम के बिगडने का डर तो जरूर हो गया। पिछले पाच वर्ष ऐसे थे, जब कि हिन्दी की परिभाषाओ के साथ साथ साहित्य निर्माण का बडा काम किया जा सकता था, लेकिन मुकद्दमबाजी ने उसे ठप्प कर दिया और रिसीवर (आदाता) बैठकर राख के नीचे आग को बचाये रखने की कोशिश करता रहा।

२५ अगस्त को मन कुछ आकाश की ओर उडने और कहने लगा—'हृदय तरग तो सदा ही उडता रहता है। कभी उसकी तरगें ऊपर उठती है कभी नीचे। कभी गति तीव्र होती है, कभी धीमी। आज धीमी गति रही, न अधिक ऊपर न अधिक नीचे उठी। ये तरगें व्यक्तिगत कारणो से भी होती है और समष्टिगत कारणो से भी।'

२६ अगस्त को एक मगोल प्रौढ आए जो आज से ३०-३५ वर्ष पहले अपनी जन्मभूमि को छोडकर तिब्बत चले आए थे। वहा वर्षों रहकर तिब्बती साहित्य पढते रहे। उनके साथ उनकी एक छोटी लडकी भी थी। बाह्य मगोलिया के एक छोटे मोटे राजा के मत्रीपुत्र थे। रूसी क्रांति के बाद उसका असर मगोलिया पर पडा। सुखे बातिर (सुखबहादुर) के नेतृत्व मे मगोल जनता ने अपने स्वेच्छाचारी सामन्तो के खिलाफ विद्रोह किया। इसी समय यह अपने स्वामि-पुत्र के साथ मगोलिया से भागे। दोनो घोडे पर चढकर बडी मुश्किल से सिवयाग पहुचे और फिर महीनो बाद ल्हासा आए। दोनो कुछ दिनो तक पढते रहे। इन्होने तान्त्रिक शास्त्रो और विधियो का अध्ययन किया, फिर भारत चले आए। भारत मे तिब्बती लामा तान्त्रिको की बडी प्रसिद्धि है। धीरे धीरे यह पटियाला के राजा के पास पहुँचे और वहा तान्त्रिक राजगुरु बन गए। राजा को जितना ही स्त्रियो और कुत्तो का शौक था उतना ही तत्र मत्र का भी। आय से अधिक खर्च का परिणाम चिन्ता होता ही है और उस चिन्ता को दूर करने के लिए राजा ने मन्त्र-तन्त्र की शरण लेनी चाही। हमारे मित्र वहाँ राजगुरु बनकर कई वर्ष रहे। अच्छा बगला मिला था नौकर चाकर भी थे और मासिक वेतन भी निश्चित था। जब महाराजा मरे, तो उनके उत्तराधिकारी ने पिता की सभी शौकीनी की चीजो को हटाया। मगोल तान्त्रिक लामा भी घर से बेघर और बेराज

गार हुए। १५ २० हजार रुपए उनके पास थे। मसूरी में ल्न्ढौर बाजार के तिब्बती ग्रामों वह जानते थे। यहीं चले आए। सीधे-सादे लोग इनसे पूजा पाठ भी करवाते थे। चाहिए था, उन रुपयों से कोई स्थायी काम करते। पर सो नहीं हुआ। एक तरुणी ने दिल चुरा लिया। 'वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी', वह प्रेम मे पागल थे, लेकिन तरुणी वृद्ध के प्रेम में पागल क्यों हो? दूसरा नौजवान बाद में पड़ा और खान-उड़ान में जो रुपया पैसा बच रहा था, उसे लेकर स्त्री भाग गई। लड़की भी छोड़ गई। गुन-नल-लपडी को जोगाड़ करने में बेहाल थे। दो-दो चार-चार आने की मूड़ मांगा, छुरी कैंची जैसी चीजें लेकर सड़क पर बैठ जाते और उनसे जो आमदनी होती उसी पर गुजारा करते थे। जाड़ों में दिल्ली में चले जाते वहां भी वही बात। मैंने उनसे कहा "तिब्बत चले जाइये। वहाँ गाँवों में नये स्कूल खुल रहे हैं आपको पढ़ाने का काम मिल जायगा।" लेकिन दूध का जला छाछ को भी फूंककर पीता है। वह समझते थे कम्युनिस्टों में जाने बचाकर मैं मसूरिया में भागा था फिर तिब्बत के कम्युनिस्टों के पास जाऊँ, तो कहीं मूल-ब्याज सूद सहित वसूल न कर लें। यहाँ रहते किन्तु भी वह रामचलाऊ सीख गए, कुछ पढ़ भी लेते। पर, इतना ज्ञान नहीं था कि उनसे साहित्यिक सहायता का काम ले सकते। पटना, नालन्दा और दूसरी जगहों में मुझे किसी तिब्बती अध्यापक के भेजने के लिए कहा था। मैंने चाहा कि वह वहाँ लग जाएँ। पर, उन्होंने आधे मन से ही कोशिश की।

३१ अगस्त को कमला की पहली कहानी नया समाज में छपी थी। लेखिका की अपार हर्ष हो, तो इसमें आश्चर्य क्या, जबकि पहले एक जगह से उनकी कहानी लौट आई थी। नया समाज हिन्दी की सर्वोच्च पत्रिकाओं में है। मुझे यह प्रसन्नता हुई कि अब कमला का हाथ खुलेगा और लिखने के लिए तैयार होगी। हाथ खुला। उन्होंने अब तक आठ-नौ कहानियाँ लिखकर छपवाई हैं। उनकी भाषा और लिखने शैली में सम्पादन करने की गुंजाइश कम से कम होती गई पर दोषसूचना का कोई इलाज नहीं मिला। बरसात में हमारे बंगले के सामने की विस्तृत पर्वतश्रेणियाँ हरियाली से ढँक जातीं जो जाड़ा शुरू होते ही नंगा होकर तिब्बती पहाड़ियों

जैसी बन जाती। दाहिनी ओर पर्वत पार्श्व वृक्षों से ढँके होते हैं। पहाड़ों में जिस तरफ धूप अधिक समय तक ठहरती है उधर नमी की कमी के कारण जंगल नहीं उग पाते, और दूसरी तरफ नमी के कारण छायादार जंगल रहते हैं। इस नियम को अधिक वर्षा वाले पहाड़ों पर लागू नहीं किया जा सकता।

घड़ी यंत्र की तरह जीवन चलता रहे यह अच्छी बात तो नहीं मालूम होता। पर यदि निश्चित किये हुए काम में समय इस तरह बीते, तो उससे संताप होता है। मेरे घंटे अपने आप काम के बीच से सरकते जाते। हफ्ते में सिर्फ रविवार का आना मालूम होता था, क्योंकि उस दिन काम को स्थगित रखकर मित्रों के साथ मिलना जुलना होता। बाकी छः दिनों के जाने का पता ही नहीं लगता। दिन बीतते सप्ताह, सप्ताह बीतते महीने महीने बीतते वर्ष इसी तरह समय चला जाता है। "कल जो हमारे लिए तरुण थे आज वे वृद्ध भी नहीं दीख पड़ते और उनकी स्मृति मात्र बच रही है। पर यह तो जीवन का नियम है।

१५ सितम्बर को साथी महमूद जफर और डा० रशीदजहाँ आई। मैं समझता था वे ठहरेंगे। रशीदा को मुझसे बड़ी शिकायत थी। कहती थी— मैं आकर झगड़ूँगी। पर आध घंटा ही रह करके चले गए। झगड़ा यही करना था, कि मुझे वह उर्दू का विरोधी समझती थीं। रशीदा स्वयं उर्दू की अच्छी लेखिका थीं। हिन्दी का विरोध करने पर मुझे जिस तरह क्षोभ होगा वैसा ही क्षोभ करने का उन्हें भी अधिकार था पर मैं अपने को उर्दू का विरोधी नहीं पाता। इतिहास ने हिन्दी को एक दूसरा रूप दिया जिसमें देशी भाषाओं को निकालकर अरबी फारसी के शब्दों को भरा गया। पर अब तो वह इतिहास की बात है। भाषा बन चुकी, और उसमें गालिब-जैसा प्रतिभाओं ने अनमोल रचनाएँ रचीं। यह निधि हमारी है। उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। मैं नहीं चाहता कि पुराना नहीं या आज की उर्दू की कृतियों से हम वंचित होना पड़े। उनकी रक्षा होनी चाहिए। उर्दू को वृद्धि और विकास करने का मौका मिलना चाहिए। हाँ, यह मैं जरूर चाहता हूँ, कि उनके निर्विवाद प्रचार के लिए, अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुँचने के लिए यह जरूरी है कि वह नागरी में भी छपे। राज्य भाषा से भी फारसी अक्षरों में, बनाने का आग्रह नहीं किया जाए

जिस इलाके या प्रदेश के अधिकांश लोग उसे चाहते हो नही तो खामखा का वैमनस्य पदा होगा, जो उर्दू के लिए भी अनिष्टकर होगा। रशीदजहा की कितनी बातें याद आती है। जब समय से पहले ही इस प्रतिभाशालिनी महिला के चल बसने का खयाल आता है, तो बहुत दुख होता है। वह झगडा करने के लिए फिर नही आए। महमूद उनके प्राणो को बचाने के लिए मास्को ले गए, जहा से वह अकेले लौटे।

मसूरी मे दो सीजन (सैलानिया के मौसिम) होते है। एक मई-जून का वर्षा शुरू होने तक एक या डेढ महीने मे कभी उससे भी पहले खतम हो जाता है दूसरा अक्तूबर मे वर्षा के बाद प्राय एक महीने का होता है। मसूरीवालो को अपने नगर की अवस्था दिन पर दिन बिगडते देखकर चिंता होनी स्वाभाविक है। वे हर तरफ हाथ पर मारते हैं। अक्तूबर के मौसिम को अधिक भीड भाड का करने के लिए महोत्सव (फेस्टिवल) करने का रवाज चल पडा है, जिसमे दस-बीस हजार स्वाहा कर देने के सिवाय और लाभ तो देखने मे नही आता। अबकी साल फेस्टिवल के उद्घाटन के लिए उत्तर प्रदेश के मुख्य-मन्त्री श्री गोविंदवल्लभ पन्त आए। स्वागत के लिए चार पाँच द्वार बनाये गए थे। भाषण हुए। इससे मसूरी की नैया भवर से बाहर नही निकल सकती। उसके निकलने का एक ही रास्ता है चार पाँच हजार कर्मचारियो वाले दिल्ली के कुछ दफ्तर यहा लाये जाएँ। वही ऐसे दफ्तर है जिनको दिल्ली मे रहने की कोई जरूरत नही। शाम को माल रोड पर किताब घर से कुल्डी तक कुछ गुल्जार जरूर मालूम होने लगता था। अधिकांश सैलानी पजाबी थे। बीच बीच मे कुछ बिहारी बगाली भी दीख पडते थे।

३० सितम्बर को रविवार था। पहले सीजन मे तो कम ही लेकिन दूसरे सीजन मे कभी-कभी देहरादून वाले भी पिकनिक के लिए मसूरी पहुँच जाते हैं। आज प० गयाप्रसाद शुक्ल के साथ डी० ए० वी० कालेज के २७ छात्र आए। कम्पनी बाग मे सवा ६ बजे कवि-गोष्ठी चली। कुछ लडको ने अपनी कविताएँ पढ़ी, एक को छोडकर बाकी को निरी तुकबदी भी नही कह सकते थे। तुकबदी के लिए भी तो कुछ छन्द और दूसरी बातें सीखने की जरूरत होती है, जिसकी हमारे तरुण जरूरत नही समझते। अगर साहित्य

उनका विषय है तब तो कुछ पढने के लिए मिल जाता है, नही तो स्वयम्भू कवि अपनी धुन मे चाहे जो भी गाय, उन्हे सफलता की आशा नहीं हो सकती। उसके बाद लडको के प्रश्नो का उत्तर मुझे देना पडा। दोपहर तक गोष्ठी बडे आनन्द से चलती रही। फिर हम घर लौट आए। साथ मे भया, भाभीजी और शुक्लजी के साथ कुछ और तरुण भी थे। लोगो को अपनी ओर खीचने के लिए घुडदौड करने का भी आरम्भ इस साल हुआ। म्युनिसिपल्टिी से बाहर और हमारी कोठी के नीचे आधे मील पर अँग्रेजो ने लम्बा चौडा मदान पोलो के लिए बनवाया था। वह खाली पडा था। उसी मे घुडदौड कराई गई। सोचा क्या जाने इसी से मसूरी का भाग्य लौटे। उस साल पहला इतजाम था इसलिए अच्छे घोडे नही मिल सके और यही के किराये पर चलने वाले टट्टू घोडो को दौडाया गया। घुडदौड म पसे लगाने वाले भी निकल आए। यद्यपि उनकी सख्या इतनी नही थी कि वह घुडदौड का आश्रय बन जाते। हमारे ऊपर खाली हन हिल कोठी से पोलो मदान दिखाई पडता था, इसलिए हम यही स उसे देख सकते थे यद्यपि आवाज यहाँ तक नही पहुँच पाती थी। घुडदौड होने जा रही है, जूआ होगा इसके विरोध म आज सवेरे नगर म जुलूस भी निकाला गया। इसका यह लाभ तो था कि अनजान लोगो को भी घुडदौड का पता लग गया। पर, जुलूस म उत्साह नही दीख पडता था न उसमे अधिक आदमी थे। मसूरी अँग्रेजो के शासन काल म भी कुछ सालो स म्युनिसिपल कमेटी स वचित थी उसके राज बराज के काम का प्रबन्ध सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी करता था। सर्वेसर्वा देहरादून के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे। अँग्रेजो के समय से ही नौकरशाही की ऐसी परम्परा है कि वह जनता स कोई आत्मीयता नही स्थापित कर सकती। इस परम्परा को कांग्रेसी सरकार ने भी कायम रखा।

४

दूसरा जाड़ा

अंग्रेजों के जाने के बाद होनेवाले पहले चुनाव का समय आया। संविधान बनाने से पहले ऐसी बातें कही गई थीं, जिनसे मालूम होता था कि हमारा शासन नीचे से ऊपर तक लोकतान्त्रिक होगा। सैकड़ों बार कांग्रेस ने भी घोषणा दोहराई थी, कि हमारे प्रदेश आत्मनिर्भर बनेंगे। लेकिन, शासन के अपने हाथ में आने पर और कांग्रेस के संगठन के आकंठ भ्रष्टाचार में डूब जाने के बाद नेताओं को मालूम होने लगा, कि इतनी लोकतन्त्रता हमारे हक में अच्छी नहीं होगी। पहले प्रान्तों के राज्यपालों को लोक-निर्वाचित होने की बात कही गई थी, लेकिन संविधान बनाते वक्त इसको हटाकर राज्यपाल को केन्द्रीय सरकार का पुत्र बना दिया गया। अपर संसद (पार्लियामेंट) के एक भवन (राज्य-सभा) को भी निर्वाचन से वंचित कर दिया गया, और उसकी जगह संसद के लोक-सभा के सदस्यों को उसे चुनने का अधिकार दिया गया। जनता की राय को सभी सदन या विधान सभा ठीक तरह से प्रकट करनेवाली कही जा सकती है, यदि पार्टियों को मिले वोटों के अनुसार उनके सदस्य माने जाएँ। ऐसा होने पर निश्चय ही कांग्रेस सर्वेसर्वा नहीं बन सकती। इसीलिए, आनुपातिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त नहीं माना गया।

मसूरी में भी चुनाव की धूम मचनेवाली थी। कुछ मित्रों ने मुझसे कहा, कि हम लोग आपको पार्लियामेंट में भेजना चाहते हैं। मैंने कहा मैं खड़ा होना नहीं चाहता। मैं तो वोटर भी नहीं हूँ। वोटर होने के लिए उस

स्थान म छ महीने रहने की शत थी, और मैं मसूरी म अभी तीन महीने से आया था। ३ अक्तूबर को यह भी पता लगा, कि अब साशलिस्ट पार्टी ने अपनी गाधी टोपी को लाल रग म रग लिया है। काग्रेस क भ्रष्टाचार और उसके प्रति लोगो म जो दुर्भाग्य पाया जाता था, उससे कितनी ही पार्टियाँ और दूसरे लाग समझने लग कि काग्रेस की नैया तो अब डूबगी ही, इस लिए हम उसके साथ लगे रहने की जरूरत नही। सोशलिस्ट पार्टी चुनाव के मदान म आई। काग्रेसवाले अपने उम्मीदवार सब जगह खडे कर रहे थे सोशलिस्ट भी नही चाहते थ, कि उनक उम्मीदवार किसी चुनाव क्षेत्र म न रह। यदि साशलिस्ट पार्टी ने कम्युनिस्ट पार्टी से समझौता किया होता, तो इसम शक नही कि पूर्वी उत्तर प्रदेश क अधिकाश चुनाव-क्षेत्रा म काग्रेस को सफलता नही मिली हाती। पर जान या अनजाने सोशलिस्ट पार्टी ने मानो समाजवाद को भारत म न आन दने की प्रतिज्ञा कर रखी है।

हार हाने म कोई स देह नही रह गया, तो जमनी ने हथियार डाल दिया। जापान भी बिना शत वही करने क लिए तयार था। उस समय अमेरिका ने जापान के दो नगरो पर परमाणु बम फेंककर पूजीवाद के आतताईपन का प्रमाण दिया। निरीह मनुष्यो को इस तरह मारने का प्रयोजन केवल यही था कि रूस अमरिका की थैलीशाहा के एकाधिपत्य को दुनिया क ऊपर कायम हान म बाधा न डाले। अब तक वह उसी को लेकर बढ बढकर गाल बजाता, सारे रूस की सीमा क ऊपर पहुँचकर लडाई क लिए ताल ठोक रहा था। यह सब होते भी ६० करोड आबादी का चीन देखत देखत अमरिका क हाथ स निकल गया। सोवियत के नेताओ न इसस पहले ही कह दिया था, कि परमाणु बम पर अब अमरिका की इजारादारी नही है। पर अमरिका इसे मानन क लिए कस तयार होता? दुनिया की सारी आखें अमरिका क परमाणु बम के ऊपर नजर गडाए हुई थीं। वह समझती थी, कि इसीक कारण अमेरिका आज दुनिया का सबस बडा शक्तिशाली देश है। अगर उन्ह मालूम हा जाए, कि रूस भी इस हथियार म पीछे नहा है, तो उनकी हिम्मत टूट जाती। अमरिका अब तक इनकार करता रहा। लेकिन, अक्तूबर क पहले सप्ताह म रूस ने

नहीं, बल्कि अमेरिका ने घोषित किया, कि सोवियत रूस में दूसरे परमाणु बम का विस्फोट हुआ।

हिन्दी—७ अक्तूबर को खुरजा डिग्री कालेज के प्रिंसिपल श्री पी० डी० गुप्त आए। वे आगरा विश्वविद्यालय के प्रभावशाली स्तम्भों और योग्य प्रिंसिपलों में हैं। कोई हिन्दी भाषाभाषी जब अंग्रेजी में बोलने का आग्रह करता है, तो मुझे न जाने कैसा मालूम होता है। वह कह रहे थे, 'विद्यार्थियों के अनुशासन भंग करने में विद्यार्थी ही केवल दोषी नहीं हैं।' हरेक योग्य अध्यापक यही कहेगा। यदि वह अपने विद्यार्थियों को दुधमुँहा बच्चा नहीं मानता और विद्यार्थियों के भावों का भी आदर करना जानता है, तो उसे कभी विद्यार्थियों के अनुशासन भंग को दमन का अवसर नहीं मिलेगा। वह कह रहे थे, विद्या की योग्यता विद्यार्थियों में कम होती जा रही है। साथ ही यह भी बतला रहे थे, कि अंग्रेजी की योग्यता की कमी जिस तरह तेजी से गिरती जा रही है, उसके कारण बड़ी हानि होगी। हिन्दी के उच्च शिक्षा का माध्यम होना गुप्ता साहब अभी दूर की बात या वांछनीय नहीं समझते थे। अध्यापक और विद्यार्थी हिन्दी पुस्तकों और हिन्दी भाषा का इस्तेमाल अधिकाधिक कर रहे थे। इसे रोकना अब संभव नहीं था। उनका अफसोस था, कि अंग्रेजी के शिक्षा माध्यम होने पर सारे भारत में जो उच्च शिक्षा की एकता देखी जाती है, वह हिन्दी के कारण भंग हो जाएगी।

शारद फेस्टिवल के सम्बन्ध में ही मसूरी में कवि-सम्मेलन भी किया गया। लेकिन, जिनके पास पैसा था, वह ऐसे सम्मेलन के प्रेमी नहीं थे। दूसरों ने कह लिया, बुला लो। बहुत से कवि यहाँ पहुँच गए। लेकिन, यहाँ सम्मेलन के स्थान का न कोई प्रबन्ध था, न खान-पान का। बेचारे कवियों को बैरंग लौटना पड़ा। श्री सत्यचन्द्रजी (बदरीपुर) इस फजीहत के बारे में बतला रहे थे।

हिन्दी के बारे में नेहरूजी कहते हैं, वह कठिन नहीं होनी चाहिए। वास्तविक बात तो यह है, कि वह चाहते हैं, बिना पढ़े लिखे बोलचाल से जितना उनका ज्ञान है, उसी को हिन्दी भाषा का मान लिया जाए। ७ अक्तूबर को रेडियो पर वह बोल रहे थे, जिसमें निम्न शब्दों को उन्होंने

प्रयोग किया था—वाक्यात दिमाग, वाकया हादसा, यकीनन, सम्मा, मौत गायब इन्सानियत, जज्बा कश्मकश खतरनाक गल्त तरीके, गल्त नतीजे जलसे इजहार खयालात आदि। हिन्दीवाले इन शब्दों को नहीं इस्तेमाल करते और ये शब्द यकीनन जनसाधारण की समझ के बाहर के हैं। हिन्दी पढ़े भी इन्हें समझने में असमर्थ हैं। इसपर नेहरूजी का फतवा है हिन्दी गलत रास्ते पर जा रही है। पहले उन्होंने भी मौलाना के साथ उर्दू का पक्ष लिया था अब हिन्दी के मंजूर हो जाने पर चाहते हैं कि हिन्दी उर्दू का रूप ले।

उसी दिन मालूम हुआ पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री लियाकत अली को किसी ने गोली मार दी। मरते वक्त उनके मुंह से निकला था— 'पाकिस्तान की खुदा हिफाजत करेगा।' जिन्ना और लियाकत अली दोनों पाकिस्तान के सर्वेसर्वा थे और दोनों ही विदेशी थे। पाकिस्तान की सरकार में शरणार्थी मुसलमान छा गए पूर्वी पाकिस्तान में पंजाबियों का छूट मिली। इसके लिए लोगों के मन में इर्ष्या हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इस समय ख्वाजा नजीमुद्दीन पाकिस्तान के गवर्नर जेनरल थे। अधिकार गवर्नर जनरल के हाथ में नहीं बल्कि प्रधान मंत्री के हाथ में होता है यह समझ कर नजीमुद्दीन अपनी गद्दी से नीचे खिसक आए और रातोरात प्रधान मंत्री बन गए। पाकिस्तान में स्थिति बराबर डाँवाडोल रही और ऊपर से क्षमरिश का पंजा उस पर मजबूत होता गया। भारत में भी भ्रष्टाचार और कम आरियां हैं लेकिन पाकिस्तान से मुकाबिला करने पर वे कुछ नहीं है।

१२ अक्तूबर को किन्नरसिंह ने मोमो का भोज दिया। हम दोनों अपने मन का ख्याल करके यही समझते थे, कि मांस खाने वाला हरेक आदमी इसे पसन्द करेगा। भैया को भी साथ ले गये। लेकिन उन्हें पसन्द नहीं आया। वहां से मलिंगार गए। मलिंगार मसूरी का सबसे पहला पक्का मकान है यद्यपि यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि सवा सौ वर्ष पहले जिन दीवारों को बनाया गया था वही अब भी मौजूद हैं। इसमें कई दर्जन कमरे हैं और स्थान ऐसी जगह है जहां से दूर दूर का दृश्य दिखाई पड़ता है। सर्वे विभाग का एक दफ्तर मसूरी में रहता था जिसके कर्मी यहाँ पर भरे हुए थे। महता जी सपरिवार यहीं थे। उनके यहाँ हम चाय पीने गए थे। चाय पीने का समय

नहीं था, तो भी उन्होंने तैयारी कर रखी थी। वहाँ से ५ बजे लौटकर भैया के यहाँ दुबारा चाय पी।

२१ अक्तूबर (इतवार) मेहमानों के आने का दिन था। पहले एक तिब्बती गेशे (पंडित) आये। वह हिन्दी नाममात्र जानते थे। फिर भैया भाभी और मेहताजी आये। पीछे मेरठ वाली शकुन्तलाजी के साथ उनके सम्बन्धी मुरादाबाद के एक तरुण साहु आये। मैंने अपनी जीवनी में मुरादाबाद जाने और वहाँ पर एक साहुजी के यहाँ रहने का जिक्र करते लिखा था कि उन्होंने दस दरियाई कमण्डल रख रखे थे और चाहते थे कि नौ और साधु मिल जायें तो दसवाँ बन कर मैं घर से निकलूँ। यह संख्या दो से कभी अधिक नहीं हुई। कोई घुमक्कड़ दूसरे के आने की प्रतीक्षा में महीनों या वर्षों उनके पास कैसे रहता? आखिर में मउवों की चतुराई ही सिद्ध हुई होगी, जैसा कि मैंने कुछ सप्ताह रह कर वहाँ से खिसक कर लिया। तरुण ने बतलाया कि वह मेरे ही चचेरे परदादा थे। मुझे मालूम था कि साहु की माँ और छोटे भाई ने मुझे खिसकने के लिए बहुत प्रेरित किया था। तरुण ने यह भी बतलाया कि वह तो नहीं रहे, किन्तु मेरे परदादा अब भी जीवित हैं, वृन्दावन वास करते हैं।

२२ अक्तूबर को भैया और भाभीजी की बिदाई की चाय पी। उस दिन हम 'एक्समौंट' गये। बरसात के महीने हमारे बहुत हँसी-खुशी में गुजरते थे क्योंकि जून या जुलाई में आकर भैया और भाभीजी अक्तूबर में यहाँ से लौटते थे। अब फिर अगले साल उनसे मुलाकात होने वाली थी।

२८ अक्तूबर वाले रविवार को तरुण शिव शर्मा एक ब्रजवासी संगी तरुण को लेकर आये। संगीतज्ञ के सीधे सादे रूप को देखकर मालूम होता था कोई गँवार होगा। पर वेश से भूल नहीं करनी चाहिए इसका मुझे काफी तजर्बा था। तरुण एम० ए० तक पढ़ा हुआ था। संगीत उसकी खानदानी विद्या था इसलिए उसे मन लगा कर सीखा था। यहाँ ब्रजवासी डाक्टर शास्त्री के साथ अब की गर्मियाँ बिताने चला आया था, और कुछ कथा-वार्ता करके खर्च चला लेता था। संगीत में मेरा दखल नहीं है, यद्यपि रूढ़िग्रस्त संगीत को मैं पसन्द नहीं करता। मैं यह भी चाहता हूँ, कि हमारे संगीत की स्वर लिपि अन्तर्राष्ट्रीय होनी चाहिए। युरोपीय नोटेशन (स्वर

लिपि) आज सारे विश्व में चल रही है। सारे यूरोप सारे अमेरिका, एसिया के भी सभी देश और जापान उसको ही अपनाए हुए हैं। हमारे संगीत को बाहर वाले इस नोटेशन द्वारा आसानी से समझ सकते हैं। जिस तरह सारी दुनिया का एक सेर, एक नाप तौल होने से सबको सुभीता है और अपनी डेढ़ ईंट की अलग मस्जिद बनाना हानिकारक है उसी तरह अन्तर्राष्ट्रीय नोटेशन के बायकाट करने की सोचना हानिकर और बेकार है क्योंकि आखिर उसे अपनाना ही पड़ेगा। यूरोपीय नोटेशन में यह भी लाभ है कि वह ग्राफ या फोटो जैसा है। देखने मात्र से किसी राग की कौन राग से कितनी समानता और कितनी असमानता है यह मालूम हो जाता है। निश्चित तरुण को देखकर मैंने कहा कि संगीत का तुलनात्मक अध्ययन करो और लोकगीतों का भी संग्रह करके उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्वरलिपि में बद्ध करो। संगीत घुमक्कड़ के लिए स्वावलम्बी बनाने का बहुत भारी साधन है इसका उदाहरण यह तरुण स्वयं था। वह भारत में कितनी ही जगहों में घूमा हुआ था और संगीत बल पर ही।

पैसा कम हो रह गया था। जो अग्रिम लिया था उसमें २० हजार मकान और फर्नीचर पर ही खर्च हो गये थे बाकी भी उड़ चुका था। खर्च के घटाने के लिए सोचना—रसोइये को हटा दें अपने हाथ से खाना बना लिया करें। पर उसके साथ बरतन मांजने का भी प्रश्न उठ खड़ा होता था, जिसके लिए नीचे के शहर की तरह कुछ घंटे काम करने वाले नौकर नौकरानियां यहां नहीं मिल सकते थे।

३० अक्तूबर को दीवाली थी। मैंने तो मसूरी की कोई दीवाली नहीं देखी। एक आदमी को घर देखने की भी जरूरत पड़ती थी। कमला और लोगों के साथ जरूर चली जाया करती। आदमी को त्यौहारों की बड़ी आवश्यकता होती है। दुःखी जीवन में भी उनके कारण जरा देर के लिए सरसता आ जाती है। मसूरी के दूकानदार बेचारे अपना ही मांस खाकर जी रहे थे तो भी उन्होंने भी अपनी दुकानें सजाई थीं। हमारे आसपास भी पाँच छ दूकानदार हैं जिन्होंने भी लक्ष्मी के आवाहन की कोशिश की।

श्री कृष्णप्रसाद दर इलाहाबाद ला जनरल प्रेस के वस्तुतः विधाता थे। उन्होंने ही एक छोटे से प्रेस को बढ़ा कर उसे एक बहुत बड़े प्रेस का रूप

दिया, और सबसे बड़ा काम जो किया, वह था, छपाई सफाई में लॉ जर्नल प्रेस को भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ प्रेसों में हो जाना। १९३३ से ही मेरी पुस्तकें वहाँ छपने लगी थीं। छपाई-सफाई के साथ जिस मुस्तैदी से वह काम करते थे, उसके कारण मैं उनका बहुत प्रशंसक हूँ। पर आज भी वर्धिष्णु व्यवसाय अधिकाधिक पूँजी की माँग करता है। व्यावसायिक उन्नति को ही एकमात्र देखने वाला वह पुरुष दूसरे पहलू को नहीं देखता। लॉ जर्नल प्रेस में मशीनों और काम के बढ़ने का परिणाम यह हुआ कि वह पैसे वालों के हाथ में चला गया, तो भी उन्होंने दर साहब की योग्यता को देखकर उन्हें मैनेजर के पद पर रखा। प्रेस ने अपना प्रकाशन भी आरम्भ करना चाहा। दर साहब ने मुझे पुस्तक देने के लिए लिखा, अग्रिम भी दिया और मैंने 'गढ़वाल', 'कुमाऊँ', 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' तीन पुस्तकों को देना स्वीकार किया। 'गढ़वाल' को वह छाप सके, 'कुमाऊँ' मशीन में पड़ चुका था। उसी वक्त मालिकों को दर साहब की जरूरत नहीं रह गई और उन्होंने उन्हें हटा दिया।

नवम्बर में भूत सात महीने का हो रहा था। दिन में सेर आटा और हफ्ते में दो दिन आधा आधा सेर गोश्त उसे मिलता। अभी वह लम्बा छरहरा था। खूब इधर-उधर दौड़ता था। उसको क्या पता था, कि देश में अन्न का कितना कष्ट है?

३ नवम्बर तक सर्दी आ गई, और केवल दोपहर को ही उसका पता नहीं लगता। नौकर चला गया था और कमला को भोजन ही नहीं बनाना पड़ता था, बल्कि बरतन भी मलना पड़ता था। कमला को अपनी परीक्षा की तैयारी भी करनी थी।

श्रीमती मोहिनी जुत्शी—मोहिनीजी बहुत ही सुसंस्कृत-साहित्यिक महिला हैं। कश्मीरी पण्डितों के परिवार में अमृतसर में पैदा हुई और ब्याही गईं लखनऊ के इंजीनियर मुनीश्वरनाथ जुत्शी के साथ। मोहिनीजी के दादा-परदादा अफगानिस्तान में बड़े ऊँचे पद पर थे। जब उनके अमीर का जमाना बिगड़ा तो वह भी आकर अमृतसर में रहने लगे। उनकी परदादी फारसी बोलती थी। भारतवर्ष में अंग्रेजी का रवाज १९वीं सदी के चौथे पाद में ही चला था। जो राजसेवा को अपना पुश्तैनी पेशा मानते थे, वे

पहल ही से अपन बच्चो का अंग्रेजी पढान लगे। यद्यपि लडकिया के लिए उतनी अंग्रेजी की माँग नही थी लेकिन २०वी सदी के आरभ म पैदा हुई मोहिनीजी का अंग्रेजी मट्रिक पास करन का मौका मिला और उसक बाद अध्ययन उनक लिए व्यसन बन गया। अंग्रेजी क साथ उर्दू स भी उनका शौक था उर्दू कविता कहने लगी। उनके कविगुरु प० ब्रजमोहन दत्तात्रेय कैफी थ। और उनकी कविता को मैं टौन हाल की सभा म सभापति रहते सुन चुका था। वह ४ नवम्बर का और भी सुनने की मैंने इच्छा प्रकट की। जुत्शी साहब बहुत दिना तक गोरखपुर म डिस्ट्रिक्ट इजीनियर रह अब अवसर प्राप्त थे। पति पत्नी दोना की रुचि एक तरह की नही थी लेकिन दोना म सौहार्द बहुत था। जुत्शी साहब हरेक बात म बडे उदार विचार रखते है। दाना के तीन पुत्रिया और तीन पुत्र हैं। इस दम्पती का व्याव हारिक ज्ञान कितना है यह इसी से मालूम होगा कि उन्होने अपनी सन्ताना को उच्च शिक्षा दिलात हुए देश की ओर नही बल्कि साहस की ओर बढाया। एक लडका डाक्टर होकर इग्लड पढन गया और वही प्रक्टिस करते विवाह करक बस गया। अग्रेज बहू क लिए सास क दिल मे वसा ही स्नेह है, जसा किसी कश्मीरी लडकी क लिए होता। एक लडका बाप की तरह इजीनियर और तीसरा ग्मायन की इजीनियरिंग करक अमेरिका सात-आठ वर्षों तक रहा। पहल तो जान पडता था, कि वह अमरिका स नही लौटेगा। इसके लिए मोहिनीजी को बहुत चिन्ता रहती थी। तीनो लडकिया को उन्होन डाक्टर बनाया। दाना कश्मीरिया स बाहर अपना ब्याह किया पिता माता का उन्ह पूरी तौर स आशीर्वाद मिला। ऐसे सुसस्कृत दम्पती स परिचय और सम्पक होना बडी प्रसन्नता की बात है इसे कहने की जरूरत नही। एक साल सीजन म वे नही आए, तो हर रविवार को उनका अभाव खटकता था।

हर साल की तरह अब क साल भी ७ नवम्बर को रूसी क्रान्ति का महोत्सव आया। रेडियो द्वारा मैं भी उस महोत्सव म शामिल हुआ। यह महोत्सव सिफ रूसियो और सोवियत की दूसरी जातियो क लिए नही बल्कि सारी दुनिया क श्रमजीवियो का महान् पव है। साम्यवाद का पहल पहल साकार रूप म पृथ्वी पर रूस म ही अवतीर्ण हुआ। आज वह दुनिया

में अकेला नहीं है। पूर्वी युरोप मार्क्स के बतलाए पथ पर चलकर सुख और समृद्धि की ओर तेजी से बढ़ रहा है। युगों का पिछड़ा महान् चीन भी अब उनसे कदम से कदम मिलाकर चल रहा है। भारत को अंग्रेजों से शासन लिए चार वर्ष हो गये। यहाँ कांग्रेस के नेताओं ने भ्रष्टाचार के दलदल में फँसाकर लोगों को परेशान कर रखा है, जब कि दो ही वर्ष में चीन कहाँ से कहाँ चला गया?

कुल्लू-लाहुल के सीमान्त पर जास्कर, जम्मू-कश्मीर का एक भाग है, जहाँ के लोग लद्दाख की तरह तिब्बती भाषा और बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। जामा ग्वारा ने हंगरी से आकर यहीं वर्षों रहके तिब्बती पढ़ी। तिब्बती भाषियों के साथ मेरी विशेष आत्मीयता है। लाहुल के ठाकुर मंगलचन्द और डा० भगवानसिंह ने अपने पत्र में लिखा कि जास्कर के लोग पाम मर रहे हैं। पाकिस्तानी एक बार उनके भीतर घुस आए थे, जहाँ से वे भगा दिये गए, लेकिन जास्करियों की कोई खोज-खबर लेनेवाला नहीं है। अपने पुराने सम्पर्क के कारण राष्ट्रपति हो जाने के बाद भी राजेन्द्र बाबू के पास ऐसी तकलीफों को चिट्ठी द्वारा पहुँचाने से मैं बाज नहीं आता था। मैंने उन्हें लिखा। जवाब से मालूम हुआ, कि सहायता भेज दी गई है। लेकिन सरकारी सहायता को बीच में उड़ा लेनेवालों की संख्या कम नहीं होती।

रूस से आए अब चार वर्ष हो गए थे। कई बार अपने मन में भी आया और मित्रों ने भी कहा कि इस यात्रा को लिख डालें। अन्त में १२ नवम्बर को मैंने 'रूस में पच्चीस मास' को लिखना शुरू किया। यह १९४५ के अन्त से १९४७ के अन्त तक की यात्रा थी, और उसके लिख लेने के बाद मुझे इच्छा नहीं हुई कि तृतीय जीवन-यात्रा में उस काल को भी शामिल करूँ।

कई दिनों अपने हाथ से भोजन बनाने और बरतन साफ करने के बाद कहने पर पहाड़िन बगटिन (धाबिन) ने भोजन बनाना स्वीकार किया। मानबरसिंह से वह अच्छा भोजन बनाती थी। इससे कमला को पढ़ने की फुरसत मिली।

नवम्बर के मध्य तक सफेद की पत्तियाँ गिर गई थीं और वे सूने पेड़ से दिखाई देने लगे। चेस्टनट (पाँगर) और नासपाती की पत्तियाँ पीली

पड गई थी कुछ दूसरे वृक्षो के पत्ते कलेजी रंग के हो गए थे। एक बिना गंध का सफेद फूल था जिसे मैंने बेहया फूल नाम रख दिया था, क्योंकि कही डाल दिया जाए तो वहा से हटने का नाम नही लेता। हमने एक जगह उसके लिए स्थान छोड दिया था, और केवडे के तरह के पत्तो वाला यह पौधा हर साल वहा झुरमुट बाधकर खडा हो जाता। जाडो मे सबसे पहले यह सूखता और वसंत मे सबसे पहले हरा होने लगता। बस इसके सफेद छोड कर और भी रंग के फूल सुगंधी न होने पर भी गुलदस्ते की शोभा बढाते है।

१८ नवम्बर को थी सत्यप्रकाश रतूडी आए। कई वर्षों से उन्होने मसूरी से एक साप्ताहिक पत्र 'हिमाचल' निकाल रखा है। वैसे मसूरी से तीन अंग्रेजी पत्र न जाने कितने वर्षों से निकल रहे हैं। उनका कोई खरीदार है इसका भी पता नही। पर मसूरी के स्टोर और अग्रेजी ढंग के दूकानदारो को अपने अस्तित्व का पता हरेक बगले तक पहुँचाना जरूरी है, यह काम ये अंग्रेजी पत्र करते हैं जिसके कारण उन्हें विज्ञापन मिल जाते हैं। यहाँ के सैलानी अधिकतर काले चमडे वाले अंग्रेज होते हैं। अंग्रेजो के नौ वर्ष जाने के बाद आज भी मसूरी की सडको मे जितनी अंग्रेजी बोली जाती है, शायद उतनी अंग्रेजो के समय मे भी नही बोली जाती होगी। आज जितनी लिप्सटिक और पौडर का खर्च यहा है, उतना अंग्रेजो के समय मे भी नही रहा होगा। ऊपर से ढेर का ढेर काजल भी हमारी सुन्दरियो को चाहिए। ऐसे सैलानियो को हिन्दी 'हिमाचल' की क्या जरूरत? मुझे यही समझ मे नही आता था कि रतूडीजी कैसे इसे चला रहे हैं। कभी वह किसी के यहा नौकरी करते और पेट काटकर आठ पृष्ठ के हिमाचल को निकाल देते। अध्यापक रहकर भी उन्होने ऐसा किया। जब इस तरह आदमी जुटा हुआ हो, तो हिमाचल क्यो नही निकलता। कभी कभी कुछ हफ्ता या महीना के लिए वह अस्त भी हो जाता पर फिर प्रकट जरूर होता। उसमे मसूरी की ही खबरें नही रहती, बल्कि टेहरी गढवाल की खबर भी होती, इसलिए बाहर उसके कुछ ग्राहक थे। जब यहा उसका चलाना मुश्किल हो गया, तो रतूडीजी उसे ऋषिकेश ले गए। वहाँ शायद अधिक अनुकूल परिस्थिति है और अब भी वह निकल रहा है।

राजेन्द्र बाबू के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री चक्रधर शरण के पत्र से मालूम हुआ, कि राष्ट्रपति ने जास्कर सम्बन्धी मेरे पत्र को अपने पत्र के साथ प्रधान मंत्री के पास भेज दिया है। चक्रधर शरण तब से राजेन्द्र बाबू की छाया की तरह से रहे, जब वह बिहार में अधनंगे फकीर की तरह कांग्रेस के कामों में दिन रात लगे रहते थे, यद्यपि सभी जानते थे, कि राजेन्द्र बाबू में असाधारण प्रतिभा और त्याग है, पर वह भारत के प्रथम राष्ट्रपति होंगे, इसका किसको पता था? राजेन्द्र बाबू ने जिसको एक बार अपना लिया, वह सदा के लिए उनका हो गया। मुझे इस समय याद आते थे मथुरा बाबू, जो असहयोग में वकालत छोड़कर पीछे राजेन्द्र बाबू के साथ हो गए, और चक्रधर बाबू की तरह बराबर उनके साथ रहे। लेकिन मथुरा बाबू, न भारत को स्वतंत्र देख सके, न अपने 'बाबू' को इस महान पद पर आसीन। उस दिन जब राजेन्द्र बाबू का प्रथम राष्ट्रपति होना निश्चित हो चुका था, उसी समय एक दिन पार्लियामेन्ट भवन में एकाएक राजेन्द्र बाबू के साथ चक्रधर बाबू से मुलाकात हो गई। उन्होंने पहले ही की तरह पैर छूकर मुझे प्रणाम किया। मैं इसे नहीं पसन्द करता, लेकिन, किसी का हाथ कैसे रोकता! भावी राष्ट्रपति के प्राइवेट सेक्रेटरी होने के बाद भी उनकी सरलता और सौजन्यता इस बात से स्पष्ट थी। चक्रधर बाबू के बारे में इतना कहने की इसलिए भी आवश्यकता पड़ी, कि थोड़े ही समय तक वह राष्ट्रपति के सहायक रह सके। फिर उनका मस्तिष्क बिगड़ गया। आज वह कांके (रांची) के पागलखाने में हैं। वहाँ रखने के सिवा अच्छी तरह रहने का कोई दूसरा स्थान नहीं रहा था। मनुष्य का मस्तिष्क उसके जीवन के लिए कितनी मूल्यवान् निधि है।

"रूस में पच्चीस मास" के लिखाने के समय यह ख्याल आया, कि १९३३ से १९३६ तक की कितनी ही यात्राएं जो बिना लिखी पड़ी हैं उन्हें भी लिखवा देना चाहिए। "मेरी जीवन-यात्रा" के तीन भागों में मैंने जन्म से ६३ वर्ष पूरा करने तक की बातें लिखी हैं। घुमक्कड़ी करने के समय की यात्राओं को मैं छोड़ नहीं सकता था, उनमें से कितनों को मैं पहले ही लिख चुका था। "रूस में पच्चीस मास" को छोड़कर बाकी यात्राओं का संक्षेप में इस पुस्तक में दे रहा हूँ, जिसके कारण पुनरुक्ति भी हुई है।

२२ नवम्बर की डायरी में मैंने लिखा "२०५० रुपये बैंक में रह गए हैं जिनमें से ५०० उन्यनारायण पांडे को भेजने हैं फिर १५५० ही रह जाते हैं। अभी तक मैं दूसरा के मन से आर्थिक पीडाओं को देखता था, क्योंकि मैं अजगरी वृत्ति से रहता था न अपना कोई घर था, न अपना परिवार। अतिथि सम्मान के लिए देश और विदेश में सैकड़ों गृहपति तैयार थे इसलिए मुझे नून तेल-लकड़ी की फिक्र नहीं हो सकती थी। यात्राओं और शोध-कार्य के लिए पैसों की जरूरत जरूर थी, लेकिन उनके अभाव में काम में अड़चन होती तो उन्हें कुछ दिनों छोड़ देने में भी कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन, अब वह बात नहीं थी। मैं गृहपति था, गृहपति के हरेक कर्तव्य का पालन करना चाहता था। खासकर अतिथि सत्कार में तो मुझे बड़ा आनन्द और संतोष आता था। समझता था मैंने जीवन भर जो आतिथ्य पाया है उसका थोड़ा सा बदला इस रूप में दे रहा हूँ—अतिथि ऋण से उऋण होने का यह मार्ग है। सबसे अधिक चिन्ता इसकी होती थी कि गर्मियों में कहीं ऐसी स्थिति न हो जाए कि तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी 'सत्कार का मेरे पास साधन रह जाय।

२५ नवम्बर को दिन भर बादल रहा। कल रात और आज की वर्षा ने धरती को ऊपर ऊपर से भिगो भर दिया। नासपाती की पत्तियाँ अरुण वर्ण हो गई, और दूसरे साग कितने ही सूख गए। गांठ गोभी, राई बन्द गोभी पहाड़ी मटर पर जाड़े का कोई बस नहीं चलता। ये बर्फ में ढक कर भी फिर हरे हरे निकल आते हैं। मिर्च के पत्ते निम्न तापमान में सूख जाते टमाटर उससे भी कमजोर है। इन दोनों की जड़ों को अगर हिमीभूत न होने दिया जाय तो अगले वसन्त में फिर इनमें हरे पत्ते निकल आते हैं।

'रूस में पच्चीस मास' २६ नवम्बर को समाप्त हो गया। बीकानेर के प्रकाशक के पास उसके कुछ भाग छपने के लिए भेज भी दिये। मेरी पुस्तकों के अधिक दाम होने की शिकायत अनेक पाठकों को है। लेकिन, बीकानेर के प्रकाशक ने दाम रखने में हद कर दी। पुस्तक का दाम पाँच रुपये से अधिक हर्गिज नहीं होना चाहिए था लेकिन उन्होंने आठ रुपये रखा। बेबस लेखक बेचारा क्या करे। दाम सस्ता रखने के लिए स्वयं

प्रकाशन करना और भी आफ़त मोल लेना है यह तीन पुस्तकों को स्वयं प्रकाशित करके मैंने देख लिया।

२७ नवम्बर को मालूम हुआ, कि भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) ने ४९ हजार में दिल्ली फैजबाजार (दरियागंज) में जमीन खरीद ली, जिसका अर्थ है जमीन लेने में ५५ हजार तक पहुँच गए होंगे। फिर जमीन लेने से ही तो काम नहीं होता, मकान बनाने के लिए उससे भी अधिक ही रुपया चाहिए। दिल्ली में और ऐसे मौके पर मकान बनाना कभी घाटे का सौदा नहीं हो सकता। भैया की इस दूरदर्शिता का मैं कायल था।

पहाड़ी दीवाली—पहाड़ में विशेषकर गढ़वाल और उसके पश्चिम वाले हिमालय में दीवाली उसी दिन नहीं होती, जिस दिन सारा भारत उसे मनाता है। हमारी दीवाली ३० अक्तूबर को हुई थी, जबकि पहाड़ी दीवाली २६ नवम्बर को हुई। हमसे सबसे नजदीक का गाँव कण्डी था, जो यहाँ से दो मील के करीब होगा। उस दिन भोजन करके हम कण्डी गाँव की ओर चले। सारा रास्ता उतराई का था। हरी का घर गाँव से काफी पहले ही पड़ता था। वे हमारे यहाँ दूध और साग-सब्जी दिया करते थे। उनके घर पहुँचने पर देखा कि वह पीकर भूत बने हुए हैं। घरवाले दूसरे भी उतने मस्त नहीं थे। शायद सोचा—शाम के कराब पान पर पान का समय होता है। पर हरि ने सोचा—शुभस्य शीघ्रम्। तो भी उन्होंने अपनी लुटपुटाती जीभ और लटपटाते हाथों से हमारा स्वागत-सत्कार किया। यहाँ से और भी काफी नीचे उतरकर हम उस छोटी नदी के किनारे पहुँचे जो कम्पनी बाग और चढ़ालगढ़ी के एक पाइप का पानी अपने साथ ले जाकर अन्त में कम्पनी फाल बनकर गिरती पड़ती जमुना की शाखा में जा मिलती है। पानी पार करके थोड़ी सी चढ़ाई में सेना के बीच लेकिन पहाड़ की बाढ़ा पर कंडी गाँव आया। ५०-६० घर थे, जिनमें २० के करीब ब्राह्मणों और उतने ही राजपूतों और हरिजनों के थे। आज दीवाली के दिन कंडा गाँव का क्या पूछना? "मधु वाता ऋतायते" की बात चरितार्थ हो रही थी। हवा में भी मद्य की सुगन्ध उड़ रही थी। गाँव में एक जगह लोग ढोल पर नाच रहे थे। हमारा धावी नन्दू ढोल बजाने में अव्वल था यह देखकर हम भी गर्व हुआ। आज सब घरों के दरवाजे खुले हुए थे, जहाँ भी

पहुच जाइए मधु (मद्य) का कटोरा सामने हाजिर था। मैं अपने को अभागा समझता था। नन्दू खूब पीकर तालसुर के साथ ढोल पीट रहा था। नाच के लिए वाद्य अत्यावश्यक है और उसे हरेक आदमी नही बजा सकता, इसलिए उस दिन नन्दू की बडी कदर थी। पहाड म खश और मदानी दो तरह की सस्कृति है। ऊँची नाक वाले अपने को बडा समझ मदानी सस्कृति को अपनाते हैं। उनकी देखादेखी खश भी उसे मानने के लिए मजबूर हैं लेकिन कड़ी गाव और मसूरी के इन पहाडो के दूसरे गाँव जौनपुर इलाके पडते है—जमुना के इस पार जौनपुर और उस पर जौनसार है। दोनो के ऊपर जमुना क दोनो किनारे खाई का इलाका है। खाइ से एक बडी पर्वत माला को पार करके कनौर (किन्नर देश) म जाया जा सकता है। किन्नर की सीमा तिब्बत से मिलती है। जौनपुर जौनसार खाई कनौर तिब्बत य सभी पाण्डव विवाह वाले देश है। जौनपुर और जौनसार इनम मदान स सबसे नजदीक पडते हैं। पाँचो पाण्डवो का अपनी एक पत्नी द्रौपदी स कस गुजर होता होगा, इसे यहाँ आखो देखा जा सकता है। पाँचो पाण्डव द्रौपदी के अतिरिक्त और भी पत्नी रखने क लिए स्वतन्त्र थे जो यहा बहुत कम सम्भव है। जहा पाण्डव विवाह चल रहा हो वहाँ खशो का पुराना रीति रवाज सबस अधिक सुरक्षित होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। गाव से बाहर क खेतो म होली जली। लोगो को क्या पता कि नीचे होली और दीवाली म चार महीने का अन्तर होता है। इन्होने होली दीवाली दोनो एक ही साथ कर ली। हमारी दीवाली वाले समय पहाड म फसल काटने की भारी भीड रहती है इसलिए वह उस समय निर्द्वन्द्व त्यौहार नही मना सकते। शायद इसीलिए यहाँ वाले उस दिन दीवाली नही मनाते।

होली भी रात को नही दिन दोपहर को जली। उसके लिए लोगो ने घास और लकडी पहले स ही जमा कर रखी थी। जलाकर लोग गाने-बजाते-नाचते गाँव की तरफ लौटे। गाँव क बीच म रखे घासे के पूले से लोग रस्सा बटने म लग हुए थे। आज और कल यहाँ रस्साकशी होगी, जिसम एक तरफ स्त्रियाँ होगी और दूसरी तरफ पुरुष। यह जरूरी नही है कि पुरुष ही हर साल जीते। स्त्रियो की सहायता क लिए उनकी लडकियाँ और शायद दामाद भी सहायता करते हैं। कह रहे थ, दो साल स पुरुष

निजयी हो रहे है। रस्साकशी रात को होने वाली थी तब तक हम रह नहीं सकते थे, न अगले दिन ही आने वाले थे। यहाँ के सभी लोग लम्बी-पतली नाक वाले और गोरे थे। शुद्ध खशमुद्रा यहाँ दीख पड़ती थी। कभी-कभी मूछों वाले आदमी भी देखने में आ जाते थे। सवा ३ बज गए। देखा, कटे हुए एक खेत में १०-१२ तरुणियाँ और लड़कियाँ नाच रही है। नाच बहुत कुछ किन्नरों जैसा ही था। वह सूर्यास्त के समय जमता। हमारे रहते रहते सख्या कुछ और बढी, पर पूरे जोश के साथ अभी नाच गाना शुरू नही हुआ। स्त्रियाँ पाती से खड़ी होकर हाथ में हाथ मिलाय नाच रही थी। चाहे किसी जात के खश स्त्री पुरुष हो—ब्राह्मण भी—सभी मद्य पीकर नाचने-गाने का आनन्द लेते है। कडी गाँव पर्वतीय द्रोणी के नीचे है, जिसके चारों तरफ ऊँचे ऊँचे पहाड़ खड़े हैं। दिन के बीतने के साथ सब जगह नीरवता छाती जा रही थी, और उसमें गाने वालों के कठ से निकले गीत की प्रतिध्वनि चारों ओर छा रही थी। आज से ढाई हजार वर्ष पहले मैदान में भी यही समाँ रहा होगा। साढे ३ हजार वर्ष पहले सप्तसिन्धु के आर्य सोम (भाँग) पीकर इसी तरह अपना मनोविनोद करते होंगे। कितनी प्राचीन स्मृतियाँ इस नृत्य के साथ बधी हैं।

१ दिसम्बर को साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ३० पुस्तकें आई। कुछ तो महारद्दी थी। अनाड़ी लोगों को भारत के इतिहास और भूगोल का लिखने का गौरव मिलेगा तो वह कूड़ा कर्कट छोड और क्या लिख सकते है।

दिसम्बर के शुरू होते ही जाड़े ने काफी प्रगति कर ली थी। दिन में अधिकतम ताप ५० डिग्री पर था, अर्थात् हमारे शरीर के तापमान से ४४ ४८ डिग्री नीचे। पर अभी बर्फ बनने के लिए १७ डिग्री और नीचे उतरने की जरूरत थी जो रात को किसी समय भी हो जाता था। मिस पागग अपने मकान "विल्डेर" के बेचने की चिन्ता में थी, कोई गाहक नहीं मिलता था। किसी समय इस मकान के ६० हजार मिल रहे थे। उस वक्त उन्हें क्या पता था कि मसूरी का आज का दिन देखना पड़ेगा। बड़ी बहिन ७० के पास पहुँच रही थी शरीर से बहुत कमजोर और हृदय से और भी दुर्बल थी जिसके कारण बहुत चिन्ता थी।

चौधरी ने दो कापा बड़े खेतों में कई सालों से खेती करनी शुरू की

थी। वह खाली पड़े हुए थे। हमारे पास वाला खेत 'अरान हौस' के साथ सम्बद्ध था जिसकी मालकिन मिसेज किदवाई एक अंग्रेज महिला थी। इसमें कुछ फलदार और कुछ शौकीना के वृक्ष लगे हुए थे। चौधरी कई साल जोत चुके, तब मिसेज किदवाई ने उन्हें बेदखल करना चाहा। लेकिन अब चौधरी का उस पर कानूनी हक हो गया। वह अधिकतर मटर और बन्दगोभी उगाते। ये चीज ऐसे समय पैदा होती जब इनका नीचे अभाव होता, इसलिए अच्छे दाम पर बिक जाता।। आजकल वह बन्दगोभी बेच रहे थे।

हमारे हैपी वली की पुलिस चौकी के दीवान (राइटर कान्स्टेबल) श्री कुञ्जी साहित्यिक रुचि रखने वाले तथा अपनी गढ़वाली भाषा के कवि थे। वह अक्सर हमारे यहां आकर पुस्तक और अखबारों को पढ़ने के लिए ले जाते। उस दिन बतला रहे थे 'आजकल चुनावों की धूम है। टेहरी राजा का नामिनेशन पेपर रद्द हो गया लेकिन माँ श्री कमलेन्दुमती पर नहीं इसलिए वही बेटे की जगह पर खड़ी है। छोटा लड़का और कितने ही पुराने दरबारी भी कांग्रेस के उम्मीदवारों के खिलाफ चुनाव के लिए खड़े हैं। आखिर टेहरी जिले के चुनाव में कांग्रेस का एक भी आदमी नहीं चुना गया। राजकुमार राजमाता और उनके दरबारी ही बाजीमार ले गये। यह क्या? जनता ने क्या भलाई कांग्रेसी शासन में देखी थी कि वह उसके उम्मीदवारों को वोट देती? छपरा में एकमात्र चुनाव क्षेत्र से श्री अखिलानन्द सिंह स्वतन्त्र खड़े हुए थे। कांग्रेस की ओर से मेरे पुराने सहकारी लक्ष्मी नारायणसिंह खड़े रहे थे। अखिला ने समझा चुनाव क्षेत्र छोटा है साइकिल से एक छोर से दूसरे छोर का तीन चक्कर एक दिन में लग सकता है, कांग्रेस बदनाम है इसलिए मैं चुन लिया जाऊँगा। पर असफल रहे।

४ दिसम्बर को ल्हासा से श्री निरत्नमान साहुका पत्र आया। यह पत्र पढ़कर मेरे हृदय को भारी धक्का लगा कि एक मास पहले गेगे गन्दान छोम्-फेल (मघधमवर्धन) का देहान्त हो गया। एकाएक मुंह से निकला— हम रत उन सुधा पर है जो बिन खिले मुरझा गए।' प्रथम श्रेणी के चित्रकार प्रथम श्रेणी के तिब्बती भाषा के कवि बौद्ध दर्शन के अच्छे पण्डित धर्मवर्धन तभी हो चुके थे, जब १९३४ में वह मेरे साथ पहली बार तिब्बत से भारत

आए। इसके बाद वह दस बारह वर्ष तक भारत ही में भिन्न भिन्न जगहों पर रहे। अंग्रेजी की योग्यता काफी हासिल कर ली, और सबसे बढ़कर बात यह कि दृष्टिकोण आधुनिक और वैज्ञानिक हो गया, इतिहास और सामाजिक आर्थिक-समस्याओं के बारे में भी। मेरे घनिष्ठ सम्पर्क में आने के कारण वह मार्क्सवाद-समाजवाद की ओर झुके। उन्होंने अपनी कविताओं में इन विचारों को रखा। दो-तीन साल पहले वह अपने देश लौटने के लिए निकल गए। वह सिक्किम के सबसे उत्तरी भाग अम्दो के रहने वाले थे। विद्या के प्रेम ने उनसे आराम और सम्मान का जीवन छुड़वाया। बचपन में ही वह अवतारी लामा मानकर एक मठ के महन्त बना दिए गए थे, लेकिन जब देखा कि उसमें विद्यार्जन में रुकावट होती है, तो सब छोड़-छाड़कर ल्हासा में आ वहां के डेपुङ विहार के सदस्य बने तथा तिब्बत के भी महान तम विद्वान् गेशे शेरब के विद्यार्थी हो गए। गेशे शेरब चाहे बाद दोन के दरबार में सम्मानित थे, लेकिन यह सबसे पहले कम्युनिस्टों की ओर होने वालों में थे। अब इस तरुण विद्यार्थी के काम का समय आया, जबकि चीन और तिब्बत एक हो गए। अब गेशे की लेखनी और दिमाग अपनी करामात दिखाने के लिए उत्सुक थे। लेकिन वह पहिले ही चल बसे।

मसूरी में एक तरफ तो यह पुकार थी जिसके साथ मन्त्री लोग भी कम-से-कम जबानी सहानुभूति दिखलाना चाहते थे, केन्द्रीय सरकार के कुछ आफिस यहीं पर स्थानान्तरित कर दिए जाएँ पर काम उल्टा हो रहा था। सर्वे विभाग के सौ-सौ आदमी जो अपने आफिस के साथ यहीं रह रहे थे अब उन्हें भी देहरादून भेजा जा रहा था। श्री सत्यानन्द महता ने अपनी पत्नी के साथ ६ सितम्बर को आकर यह समाचार दिया। मसूरी का जाड़ा कुछ लोगों के लिए भले अच्छा नहीं हो, लेकिन यदि पहाड़ का एलाउंस दिया जाता तो वह भी यहाँ रहने के लिए तैयार हो जाते। वैसा करने की जगह आफिस देहरादून जाकर लण्ढौर बाजार के दूकानदारों के दुर्भाग्य का कारण बना।

बादल ही जल-वर्षा करते हैं। वही तापमान के अधिक नीचे होने पर हिम-वर्षा करने लगते हैं। दस-बीस हम बादलों की गतिविधि में विशेष परिणाम मालूम होने लगे थे। हमारे नीचे की ओर जमुना की शाखा अग्ला

बहती थी, जिसके रास्ते होकर कभी कभी बादल ऊपर को चढते। जाण्डुर की ठाकुरानी का नौकर दुर्गा तो इन बादलों को देखकर अचरज करता—दुनिया मे बादल ऊपर से आते है और यहा नीचे से'। वह नही जानता था, कि मैं स्वय साढे ६ हजार फुट की ऊँचाई पर हूँ। ऊपर कम्पनी बाग के साथ खडा चडाल्गढी का पहाड है जिसके परले पार देहरादून की उपत्यका है। यदि नीचे नलगर से और ऊपर चडाल्गढी के आने वाले बादल टकराते तो वर्षा जरूर होती। बादल अभी बहुत कम ही कभी-कभी दिखाई पडते थे। रात को सर्दी बहुत हो रही है इसका पता सवेरे चौधरी के घर की छत को पाले से सफेद हुई देखकर लगता था।

दिसम्बर मे मसूरी मे सलानियो का कही पता न था। यहा के बहुत से दूकानदार भी अपनी दूकानें बन्द कर नीचे चले गए थे इसलिए रविवार के दिन यहा स्थायी रहने वाले मित्रो मे से ही कोई आता। ६ दिसम्बर को डा० सत्यकेतु और नीलाजी आइ प्रा० भारतभूषण भी अपने धनानन्द कालेज के दूसरे अध्यापक जोशीजी के साथ आए। कमला ने स्वागत के लिए हलवा और विशेष तौर से फलाहारी कबाब बनाया। बिस्कुट तो सदा हाजिर रहता ही था। सैलानियो का मौसिम नही था इसलिए धोबिन को कपडे धोने की फिकर नही था और वह रसोइदारिन बन गई थी। भारत भूषणजी कमला को अग्रेजी पढा दिया करते थे। उनको परीक्षाओ का तजर्बा था इसलिए उनकी पढाई मुझसे कही अच्छी होती, अग्रेजी कविता तो मेरे लिए खूबी मालूम होती।

यात्रा के पन्ने' के नाम से मेरी छपी हुई यात्राए इस वक्त लिपिबद्ध हो रही थी। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति मे काम करने वाले साथी अभी यही थे। पता लगा सम्मेलन के सभापति ने मुकदमा कर दिया है, और समिति बक से पैसा नही निकाल सकती। साथियो को चिन्ता हो रही थी क्योकि उनका वेतन नहीं आया था और आगे भी उन्हे पैसा की जरूरत थी। आपसी झगडे के कारण होते हुए काम को ठप्प करना कभी उचित नहीं।

'गढवाल कुमाऊँ' लिख लेने के बाद मुझे खयाल आया, दार्जिलिंग और कुमाऊ के बीच के नेपाल को भी लिख डालना चाहिए। उसमे हाथ

रुगाते हुए मैंने अपने कुछ नेपाली मित्रों को बतलाया, कि नई सामग्री के संग्रह के लिए मैं इसी जाड़े नेपाल आ रहा हूँ। श्री धमरत्न यमि के पिता मल्लि साहु ल्हासा में छत्तिसा प्रधान कर्मी थे। एक धनाढ्य पिता की संतान होते पिता की उदारता के कारण निर्धनता के दिन उन्हें देखने पड़े, और यहाँ वह आकर मुनीम हो गए थे। उनके विचार बड़े ही उदार थे और मेरे लिए तो वह हर तरह की सहायता देने के लिए हर वक्त तैयार रहते थे। एक बार आत्मसम्मान को ठेस लगी, और उन्होंने पिस्तौल से अपने जीवन को समाप्त कर दिया। उनके पुत्र धमरत्न को मैं उसी समय से जानता था जबकि वह लड़के थे। किसी आदमी को सयाने होने पर भी "घर धाछिटा नाम" अनुचित है। धमरत्नजी को बचपन से संघर्ष करना पड़ा था, और पढ़ने लिखने का अवसर नहीं मिला था। जो कुछ पढ़े थे, उसके और अपने तजर्बे के बल पर नेपाल के स्वतन्त्रता आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया, कर्मी जेल में रहे। इस समय उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त साथी मिल गए, जिनके धमरत्नजी विद्यार्थी बन गए। अपने ज्ञान को उन्होंने बहुत बढ़ाया। इस समय वह नेपाल सरकार के उप मन्त्री (धन विभाग) थे। उन्होंने लिखा कि नेपाल जरूर आवें, जो भी सहायता मुझसे हो सकेगी, मैं करूँगा।

१६ दिसम्बर को जम्मू कश्मीर युनिवर्सिटी ने व्याख्यान देने के लिए निमंत्रित किया। पहला जमाना होता, तो खुशी से स्वीकार कर लेता लेकिन अब तो मसूरी में मैंने क्षेत्रसंन्यास ले रखा था और यहाँ से अनिवार्य होने पर ही मैं बाहर निकलता, इसलिए इन्कार करना पड़ा।

२० दिसम्बर को हमारे सामने एक नई परिस्थिति उपस्थित हुई। एक साथी भूख हड़ताल करने जा रहे थे। उन्होंने अपने एक मित्र को अपने चौके में महीनों भोजन कराया। भोजन की चीजों का दाम उन्हें मिलना था, और मित्र उनको पढ़ाई में पूरी तौर से उनकी सहायता दे रहे थे। किसी कारण दोनों में अनबन हो गई। एक ने वहाँ रसोई बनाने का पन्द्रह रुपया मासिक डेढ़ रुपया मासिक बरतन का किराया आदि मिलाकर ३५ रुपया हमारा होता है। उनके मित्र पैसा के लिए मक्खीचूस नहीं थे। वह बड़े उदार थे, और अपने पैसे से एक विद्यार्थी को कालेज में पढ़ा रहे थे।

लेकिन जब मूछों का सवाल हो जाए, तो दूसरी तरफ भी वह तन जाती हैं। भूख हड़ताल करने वाले तरुण की बातें कहते कहते आंसू भरते और गला रुंधते देखा तो मुझे बहुत दुःख हुआ। दूसरे मित्र भी इसको कैसे बर्दाश्त करते? खैर, बात रफा दफा हो गई।

वेतन की अनिश्चितता थी लेकिन २० दिसम्बर को ही दिसम्बर का वेतन आ गया तो सबने सन्तोष की सांस ली। दिसम्बर के साथ अब साहित्य निर्माण कार्यालय को यहां से बन्द करने का निश्चय हो गया। तजर्बा बहुत अच्छा नहीं रहा उसमें कारण यही था कि कुछ हाथ का काम करना नहीं बात बनाना अधिक पसन्द करते थे। २८ दिसम्बर को अब 'हन हिल' (ऊपर की कोठी) खाली हो जाने वाली थी।

मालूम होता था युगों बाद २१ दिसम्बर को भगवती भाई का पत्र आया। श्री भगवतीप्रसाद मुसाफिर विद्यालय आगरा के मेरे सहपाठी थे। हम लोग साथ सपने देखा करते और वैदिक धर्म के प्रचार के लिए बड़ी बड़ी योजनाएं बनाते थे। मुसाफिर विद्यालय के बाद एक उपदेशक विद्यालय चालन के लिए मुझे जालौन जिले में जाना पड़ा। उसके लिए भगवती भाई पहले ही वहां पहुंचे थे। अब हम दोनों वर्षों से अलग थे। हमारे रास्ते में भी अन्तर आ गया था पर स्नेह और पुरानी स्मृति पहले ही जैसी मधुर थी। उन्हें अभी मालूम हुआ कि मैं मसूरी में रहता हूं।

समय समय पर मनुष्य की वृत्तियां अन्तर्मुखी हो जाती हैं यद्यपि उनके जिम्मेदार अधिकतर बाह्य कारण ही होते हैं। मानसिक जगत् के भी क्षोभ होते हैं जो कभी हर्ष बढ़ाते हैं कभी अवसाद। जैसे (कोई) अत्यन्त प्रशान्त सागर दुर्लभ है वैसे ही विचारवान् पुरुष हृदय क्षोभ रहित नहीं हो सकता। मानव अजब पशु है। पशु होते भी उससे भिन्न है। भिन्न होने के कारण ही उसके अनुभव—हर्षात्मक या विषादात्मक—बहुत तीव्र होते हैं।'

२४ दिसम्बर को आनन्दजी शाम को सूर्यास्त के समय जल्दी जल्दी में आए। अगले ही दिन उन्हें चला जाना था। समिति के झगड़े में समिति की कार्यकारिणी ने आनन्दजी का समर्थन किया था पर अब वह निश्चय कर चुके थे कि उसका मंत्रीपद छोड़ देंगे। अगले दिन वह १ बजे चले भी गए।

उसी दिन जामिया मिल्लिया के प्रोफेसर फारुकी के साथ हमारे पिछले साल के तरुण मित्र चौहान आए, जिन्होंने विलायत से लौटकर यहाँ बच्चों के लिए स्कूल खोला था। आजकल वे जामिया में अंग्रेजी पढ़ा रहे थे। कह रहे थे— पिछले साल हम कितने ही दिन खाने के भी लाले पड़ गए थे—एक शाम खाते तो दूसरे शाम भूखा रहना पड़ता। इंगलैण्ड में मजे से अध्यापकी कर रहे थे। स्वतन्त्र भारत में बड़ी बड़ी उमंग लेकर आए थे। खैर, अब उनको काम मिल गया था।

उनके तरुण मित्र मुसल्मान होते भी जामिया और आधुनिक समय के ख्याल से मुझे नवीन विचारों वाले मालूम हुए। उर्दू लिपि और उर्दू भाषा का पक्षपात होना मेरी दृष्टि में कोई बुरा नहीं है। कुछ भेंट करने का सवाल आया, तो मैंने अपनी 'वोल्गा से गंगा' के उर्दू अनुवाद की एक कापी दे दी। मुझे उसका न पहले और न लिखने समय ही ख्याल आया था। अगले साल मालूम हुआ, कि उस तरुण अध्यापक ने अकबरकालीन कहानी 'सुरैया' जब पढ़ी, तो उन्हें बहुत गुस्सा आया—एक मुसल्मान लड़की का हिन्दू के साथ ब्याह? अक्षन्तव्य अपराध। उन्होंने अपना गुस्सा पुस्तक को फाड़ कर उतारा। सचमुच यह अविश्वसनीय बात थी। मैंने इस्लाम को नीचा दिखाने के लिए यह नहीं लिखा था। मुसल्मान तो पहले ही से लाखों की तादाद में हिन्दू लड़कियों से ब्याह करते आए थे, पर उससे हमारी सामाजिक समस्या नहीं सुलझी। वह तभी सुलझ सकती थी जब हिन्दू मुसल्मान दोनों परस्पर ब्याह करते और अकबर की बेगमों की तरह स्त्री को अपने धर्म में रहने की पूरी स्वतन्त्रता रहती।

समाचार सुनने के लिए भारत और पाकिस्तान दोनों के रेडियो कई वर्षों से सुनता हूँ। दूसरे प्रोग्रामों के सुनने के लिए समय निकालना मुश्किल है, पर कभी-कभी वह मिल जाने पर लोक गीतों या लोक भाषा के प्रोग्राम को सुनना पसन्द करता हूँ। लोक गीतों में गजब की लवड़ धों धों देखने में आती है। मालूम नहीं रेडियो के प्रोग्राम बनानेवाले कौन से लोग हैं? न भाषा की शुद्धता का ख्याल किया जाता है, न लोकगानों के साथ जिन बाजों को लोग इस्तेमाल करते हैं उनकी ओर ध्यान दिया जाता है। सितार, दिलरुबा, सारंगी, तबला सभी बाजे उनके साथ बजते हुए श्रोता के सिर में

पीडा पदा करते हैं। ऐसा क्यो होता है ? दुनिया म कही भी ऐसा अन्याय नही किया जाता और लोक-गीतो को लोक-वाद्यो के साथ ही गाया जाता है। रूस चीन या किसी भी दूसरे देश म यही देखा जाता है। बाज वक्त तो कोई आधुनिक नौसिखिया कवि नकली लोक-गीत बना कर दे देता है। एक बार 'स्टेटसमन' म एक समालोचक ने लखनऊ के ऐसे प्रोग्राम की बडी तीव्र आलोचना की थी।

३० दिसम्बर को कमला मगल्जी के साथ परीक्षा देने देहरादून गइ। 'साहित्य रत्न' के पास हो जाने की आशा थी उन्हे एम० ए० की परीक्षा की तयारी करने के लिए तीन महीने थे।

३१ दिसम्बर को समाप्त होने वाले सन् १९५१ के काम का लेखा-जोखा निम्न प्रकार रहा (१) गढवाल (२) कुमाऊँ (३) 'जदीना' (४) रूस म पच्चीस मास (५) यात्रा के पन्ने (६) सूदखोर की मौत (७) 'तिब्बत मे तीसरी बार' को लिख कर समाप्त किया। सब मिला कर २५०० पष्ठ हुए। अगले साल के लिए भी उतने ही पष्ठो के लिखने का सकल्प किया।

५

१९५२ का आरम्भ

१ जनवरी को धूप थी। दिन में सर्दी नहीं थी, पर शाम को बहुत बढ़ गई। न जाने क्यों मसूरी में शाम को सर्दी ज्यादा मालूम होती है और सवेरे को कम। हालांकि नीचे इससे उल्टा देखा जाता है। उस दिन कमला के साथ मैं बाजार गया। कुल्हड़ी से भी काम चल सकता था, लेकिन लण्ढौर के मित्रों से मिलने का लोभ रोकना हमारे बस की बात नहीं थी। जाने पर मालूम हुआ, किशनसिंह बहुत बुरी तरह से बीमार हो गए थे। पेट में भारी दर्द था। दो ही तीन दिन पहले यहाँ से दिल्ली गये। लण्ढौर की दूकानें उतनी बन्द नहीं थीं, लेकिन लाइब्रेरी और कुल्हड़ी की बहुत कम खुली थीं। गुड़ आठ आना सेर सुन कर विश्वास करने को मन नहीं करता था। कुछ ही पहले हम १२-१४ आने में ले गए थे। काफी के लिए गुड़ की चासनी मुझे अच्छी लगती है।

बाजार के लिए निकलने पर शायद ही कभी ७-८ बजे रात से पहले घर लौटना पड़ता।

२ जनवरी को सवेरे उठकर देखा तो सारी भूमि (बर्फ की) बजरी से ढकी हुई है। ये फुलकियाँ वज्र की तरह कड़ी नहीं, बल्कि मुलायम होती हैं। जब तापमान पर्याप्त नीचे नहीं गिरता, तो पानी बजरी बनकर धरती पर उतरता है। दिन भर आकाश बादलों से घिरा था और हवा तेज रही। कई बार बजरी भी पड़ी। बरामदे में तापमान ४० डिग्री था, बाहर तो वह अवश्य हिमबिन्दु के पास रहा होगा। आज मिशन-स्कूल में छुट्टी थी।

मकान में लकड़ी जलाकर स्वामी सत्यस्वरूपजी के साथ बातें करते रहे। सुंदर साज बज रहा हो और नाचने वाला नाचे नहीं तो यह साज का अपव्यय है। उसी तरह यदि लकड़ी की आग जल रही हो और उसमें आलू या सकरकंद भून कर खाया न जाए, तो जान पड़ता है आग अकारथ जा रही है। कभी अपने साधु जीवन का ख्याल आता था। प्रशंसा करने का मन करता। साधु जीवन यदि घुमक्कड़ी का जीवन हो तो वह बड़ा ही मधुर और आकर्षक होता है। लेकिन अब उसके लिए परिस्थिति प्रतिकूल होती जा रही है। हमारे युग में साधु को कोई सरो-सामान की जरूरत नहीं थी भारत में कहीं वह विचर सकता था। हमारा तजर्बा ताजा नहीं था तो भी मालूम होता था उसमें कठिनाइयां पैदा हो गई हैं। पर मुझे विश्वास है, घुमक्कड़ हर परिस्थिति में अपने लिए रास्ता निकाल सकता है। मेरी नवतरुणाई में मिले वृद्ध घुमक्कड़ साधु अपने समय का जब वर्णन करते तो मालूम होता कि उस वक्त और भी स्वच्छंदता और स्वतन्त्रता थी।

कमला को एफ० ए० की परीक्षा देनी थी जिसके लिए तीन महीने भी नहीं रह गए थे। जब उनको परीक्षा की पुस्तकों से विमुख देखता तो मुझे झुंझलाहट आती और उनकी अव्यवस्थित चित्तता के लिए कुढ़ने लगता वह न अपनी अक्ल से काम करना जानती न दूसरे की बात ही मानती। यह मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त वाली बात थी। कमला को स्वयं इसकी चिंता होनी चाहिए थी। इस तरह के कुढ़ने को दबाने में मुझे काफी वर्षों बाद सफलता मिली जब कि देखा वह किसी परीक्षा में फेल होने का नाम नहीं लेती। पर परीक्षा के दिन जब नजदीक आते तो वह अपने एक एक मिनट का इस्तेमाल करती। कालेज के विद्यार्थी भी तो एसा ही करते हैं, और परीक्षा के अन्तिम घड़ियों में किताबों पर घोटा लगाते हैं।

जीवन की पहेली पर नजर दौड़ाते हुए सोच रहा था— जीवन के हर एक क्षण के मधुर होने के लिए बहुत-सी बातों की आवश्यकता है जिनमें सबका एकत्रित होना कठिन है। इसीलिए जीवन कड़वा मीठा होता है। भौतिक सामग्रियां तो साधक बाधक होती ही हैं मानव के पारस्परिक सम्बन्ध भी इसमें भारी कारण होते हैं।'

मेरे पास एक राइफल और एक पिस्तौल का लाइसेंस था साथ ही रेडियो का भी लाइसेन्स वर्ष के अन्त में बदलवाना पड़ता था। रेडियो के लाइसेन्स में कोई दिक्कत नहीं होती। डाकखाने में गए पुराना लाइसेन्स दिखलाया १५ रुपये दाखिल किए और नया लाइसेन्स ले आए। लेकिन हथियार का लाइसेन्स बदलवाना भारी सिरदर्द मोल लेना था। उसे सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट ही बदल सकता था। आफिस में चलान लिखवाओ फिर सरकारी बैंक में घंटा जाकर प्रतीक्षा करके पैसा दो, फिर इस रसीद का नत्थी कर बाकायदा दरखास्त लिए क्यू में एस० डी० एम० साहब के सामने रख कर क्यू में प्रतीक्षा करो। और वही एस० डी० एम० हुए, जो हफ्ते में एक दिन मसूरी के लिए देना भी बुरा मानते हैं और हर शनीचर को वहां पहुँचने पर इंतिजार करने के बाद टेलीफोन पर खबर देते हैं कि अब की बार साहब नहीं आएँगे तो दिमाग की कैफियत के बारे में क्या कहना ? क्या इसके लिए भी उसी तरह की आसानी नहीं पैदा की जा सकती थी जैसे रेडियो लाइसेन्स की ? माना, सरकार के लिए यह उससे कहीं अधिक खतरनाक चीज है और इसीलिए सरकार की ओर से बड़ी सावधानी बरती जाती है। लेकिन, रुपया लेकर एस० डी० एम० साहब ही इसको आसानी से कर सकते थे तीन जगह दौड़ाने की क्या जरूरत ? ४ फरवरी को हमने स्वामी सत्यस्वरूपजी को हथियार देकर भेजा, तो मालूम हुआ, दूसरे के हाथ में हथियार भेजना कानून के खिलाफ है। खुद गये। दरखास्त पर स्टाम्प लगाना जरूरी था, लेकिन स्टाम्पफरोश के पास स्टाम्प ही नहीं था। खैर उसे लगाने का जिम्मा क्लर्क ने ले लिया।

श्री भरतसिंह उपाध्याय द्वारा लिखित 'पालि साहित्य का इतिहास (सम्मेलन से प्रकाशित) मेरे पास आया। अगली पीढ़ी अपने को अयोग्य नहीं साबित कर रही है यह उसका उदाहरण था। हिन्दी भाषियों में पालि की ओर विशेष ध्यान देने वाला मैं पहला आदमी था। मुझे कितनी अड़चनों का सामना करना पड़ा था, इस जीवन-यात्रा के दूसरे भाग के पढ़नेवाले अच्छी तरह से जान सकते हैं। मेरे आरम्भ करते समय पालि का विशाल वाङ्मय बिल्कुल अपरिचित-सा था। 'धम्मपद' को छोड़ और किसी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ था, और न इस विशाल साहित्य में क्या-क्या है, इस

बुंदेलखण्डी मालवी राजस्थानी ब्रज, कौरवी, गढवाली, कुमाऊँनी, अवधि—के सहार लोगा के हृदय के भीतर घुसने का प्रयत्न नहीं किया गया उन्होने इन लोक भाषाओं में अपना साहित्य नहीं तैयार किया। जब तक इस तरह के साहित्य को लोगो में बाँट नहीं दिया जाता जब तक यहाँ की लोक कला और लोक गाथा को पूरी तौर से अपनाया नहीं जाता तब तक लोगो की आकांक्षा रहते हुए भी कम्युनिस्ट उन पर अपना प्रभाव पूरी तौर से फैला नहीं सकते।

चुनाव में असल में वामपक्षियो के आपस के झगडे और साथ वोटरो ने कांग्रेस को जिताया। शायद ही कही आधे वोटर वोट देने गये हो। अधिकांश ने काउ नृप होउ का अनुसरण किया और कांग्रेस सरकार से फलने वाले मारे अपने अनुयायियो के साथ वोट देने पहुँच गए।

२३ जनवरी को नेपाल में फिर एक क्रांति होने की खबर आई। राणाशाही को हटाकर एक दूसरी तानाशाही ने उसका स्थान लिया। जन साधारण का हित न होते देखकर डा० के० आइ० सिंह ने हथियार रखने से इन्कार कर दिया। समझौते के बहाने उन्हें पकड कर काठमाण्डू की जेल में डाल दिया गया। जेल के रक्षक तो मंत्री और अधिराज नहीं होते साधारण गरीबों के लडके हो बहुत ज्यादा पसंद करते हैं जिन्हें प्रभावित करना मुश्किल नहीं। के० आई० सिंह ने उन्हें प्रभावित किया और रक्षियो ने स्वयं जेल से बाहर आने में उनकी मदद की। उन्होंने राणाओं को छोड सबदली सरकार कायम करने की माँग की। थाने से आदमियो को लेकर वह चाहते तो काठमाण्डू पर अपने अधिकार को कुछ दिना और कुछ महीना तक कायम कर सकते थे लेकिन व्यर्थ की खून-खराबी को पसन्द नहीं किया। वह अपने कुछ साथियो के साथ तिब्बत की ओर चले गये। अब नेपाली सरकार को खुलकर वामपक्षियो को दबाने का मौका मिला। कोइराला मंत्रिमंडल ने २५ जनवरी को नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी घोषित कर दिया। नेपाली मंत्रिमंडल नेहरू को अपना आदर्श मानता है और छोटे कोइराला तो नेहरू की तरह अपनी शेरवानी में लाल गुलाब भी लगाते हैं।

रसादये की स्थिति हमारे सामने बनी हो रही। डा० सत्यकेतु के यहाँ

टट्री का मुसलमान लड़का इस्माइल खाना बनाता था। वह आने के लिए तैयार था, लेकिन कमला पसन्द नहीं करती थी। कह रही थी—भाभीजी (जानकी देवी) आएँगी, तो उनके लिए खाना कैसे बनेगा ? पीछे भी एक मतबा एक मुसलमान रसोइया कम तनख्वाह पर मिल रहा था। वह तैयार था, कि उसका नाम कोई सिंह रख दिया जाए। मेहमानों को इसका क्या पता होगा। आखिर हमारे मेहमानों को अच्छी तरह मालूम है, कि हम सबके हाथ का खाते हैं। जो हमारे हाथ का पानी पीना चाहता है, वह यह जानकर पीता है इससे हमारा धर्म भ्रष्ट नहीं होगा। फिर हम ऐसे नौकर को रखने में क्या एतराज होना चाहिए।

जाड़ों में मसूरी आना भाभीजी के लिए असाधारण बात थी। उनकी चिट्ठी आ चुकी थी, और अभी मंगलजी मोटर अड्डे पर जाने की तैयारी ही कर रहे थे, कि ३१ जनवरी को भाभीजी आ पहुँची। रसोइया नहीं था इसलिए मेहमान बनकर आई भाभीजी को कमला की रसोई में शामिल होना पड़ा। भाभीजी को इस यात्रा का यह फायदा हुआ कि उन्होंने जीवन में पहली बार ४ फरवरी को चारों ओर बर्फ की सफेद चादर फैली देखी। पत्ते पत्ते में बर्फ मढ़ी हुई थी। बर्फ बहुत मोटी नहीं थी, इसलिए दोपहर तक बहुत कुछ पिघल गई। खूब सर्दी थी। आग जलाकर उसके पास बैठे बातें करते समय काटना पड़ा। नौ दिन रहने के बाद ८ तारीख को भाभीजी यहाँ से गई।

अब अपना वजन १६४ पौंड देखकर कुछ प्रसन्नता हुई, यद्यपि मैं बहुत समय से साध रखता था १६० पौंड पर पहुँचने की। वजन कम करने में डायबिटीज ने सहायता दी थी इसमें शक नहीं और इसलिए उसमें उतनी प्रसन्नता भी नहीं हो सकती थी। पिछले साल के घाव से शिशा लेकर अब मैं इन्सुलिन का भक्त हो गया था। अपने इन्सुलिन लेने पर उसे जाँघ ही में दिया जा सकता जहाँ गुठली भी बन जाती थी। इसके सिवा कोई चारा नहीं था कि इन्सुलिन देने का काम कमला स्वयं अपने हाथ में लें।

गाजियाबाद के श्री राधामोहन भटनागर एक विचित्र धुन के आत्मा हैं। पति पत्नी दोनों घर में हैं, आटे का कुछ बिजली की चक्कियाँ हैं जिनसे खाने के लिए काफी पैसा आ जाता है। पत्नी अपने राम भजन में रहती हैं

और पति क शौक का पसन्द नही करती। पति को शौक है दर्शन सम्बन्धी सस्कृत के ग्रथों का ढूढ ढूढ कर जमा करना। कही छपी किसी पुस्तक का बतलाइए, वह पसा खच करके उसे मँगाने के लिए तयार है। मुझसे भी उन्होंने पुस्तका के नाम माग मैंने कुछ नाम बतलाये भी। पिछले १५ २० वर्षों से वह इस काम म लगे हुए है। दशन सम्बन्धी सस्कृत और उनक अनुवाद तथा स्वतन्त्र ग्रन्था की उनक पास हजारो पुस्तक जमा हो गई है। जिन पुस्तका को जमा कर रहे हैं उनमे क्या लिखा हुआ है इस जानन का उन्ह पर्वाह नही। वह यह भी चाहते हैं कि दशन का अध्ययन किया जाए। उसके लिए लोग सुख सुविधा क साथ वही रह और पुस्तका का उपयोग कर। उन्होने देहरादून म जमीन ले ली पीछे उस पर एक मकान भी बनवाया जिसम पुस्तको क रखन क कमरे के अतिरिक्त कुछ रहन क भी कमरे हैं। अभी मकान नही बना था तभी मैंने कहा था— जमीन का बच दीजिए। मसूरी म बना-बनाया सस्ता बहुत अच्छा बगला आपका मिल जाएगा। उसम पुस्तकालय खोलवाइय। दशन की पुस्तका के पढन वाले बहुत लोग आपको नही मिलेंगे। जो थोडे से लोग मिल सकते है उनक लिए अच्छा रहन का प्रबन्ध हो जान पर मसूरी भी अनुकूल होगी। पर भट-नागरजी का यह बात पसन्द नही आई। उनकी धुन का मैं प्रशसक हू।

२५ फरवरी का एक ज्योतिषाचाय तरुण (हरिहर पाडे) का लम्बा पत्र मिला। वह मेरे मगाओ और एक जिले के ही नही बल्कि मेरी अपनी सगी बूआ की ननद क पुत्र थे। उनकी माँ को मैंने छोटी उमर म देखा था। तरुण ने अपन जीवन और आकाक्षाओ के बारे म उस पत्र म लिखा था। उनक खानदान म पुरोहिती नही, गुरुआइ होती आई है—लोग उनस मन्त्र दीक्षा लेते थे। उनक चचा एक सफल ज्योतिसी थे, अर्थात् उनकी भविष्यवाणियो पर लोगो का विश्वास था। इसी कारण हरिहर पाडे भी बनारस सस्कृत कालेज स ज्योतिषाचाय हुए। फलित भाखन क लिए आचाय होने की जरूरत नही थी। बुद्धिवादी होन स उनका फलित ज्योतिष पर से विश्वास हट गया था। सम्भव है अपन सगाओ और सम्बन्धी होन क कारण मेरी पुस्तको को भी कुछ चाव से पढा हो। अब वह गुरुआइ और जानिसाइ वमन से करत थ। १९१६ म पदा हुए, अर्थात् इस समय ४८ वष क हो चुक थ।

उत्तरी भारत में काफी घूमे थे। लम्बी चिट्ठी बतला रही थी, कि उनमें लिखने की शक्ति और प्रतिभा है। मुझसे कुछ पथ प्रदर्शन मांगा था। मैंने लिखा, भारतीय ज्योतिष गणित शास्त्र का एक नवीनतम इतिहास लिख डालो। वे बंगला और मराठी में भी इस विषय के ग्रन्थों को पढ़ चुके थे, इसलिए वे इस काम के अधिकारी भी थे। लेकिन, ज्ञान और अधिकारिता पर्याप्त नहीं है। किसी का लाठी के हाथ किसी काम में जोड़ा नहीं जा सकता। जब अपने भीतर आग लगती है, तभी मनुष्य कठिन से कठिन काम करने का बीड़ा उठाता है। हरिहर पांडे के दो तीन और पत्र आए इसके बाद चुप हो गए। ज्ञान के एक-दूसरे विद्वान् का—जो ब्राह्मण और बौद्ध दोनों ज्ञानों के जानकार हैं—मैंने आग्रहपूर्वक तिब्बती भाषा पढ़कर उसमें अनुवादित बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन से अपने लिए नया कार्यक्षेत्र बनाने के लिए कहा, लेकिन उसका कोई फल नहीं हुआ।

पाकिस्तान के बनने के साथ ही मुस्लिम लीग के नेता पूर्वी पाकिस्तान में बंगला को दबाकर उर्दू को लादने के लिए तुले हुए थे। चार साढ़े चार वर्षों तक आग भीतर भीतर सुलगती रहा। १९५२ के फरवरी के चौथे सप्ताह में वह भभक उठी। मुसलमान अपनी बंगला भाषा को अपनी ही भूमि से उच्छिन्न करने के लिए तैयार नहीं थे। आन्दोलन ने जोर पकड़ा। सरकार ने गोलियाँ बरसाकर उसे दबाना चाहा। ८ आदमी ढाका में अपनी मातृभाषा के लिए बलि चढ़े। मुस्लिमलीगी नामदों ने अपने पैरों में अपने हाथ से कुल्हाड़ा मारा। हाल में संविधान बनने समय किसी को यह पूछने की भी हिम्मत नहीं हुई। पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा उर्दू के समकक्ष बंगला क्या बनाई जा रही है? उन वीरों की कुर्बानियाँ बेकार नहीं गई। आज शहीदों के दिन वहाँ सरकारी छुट्टी रहती है, लोग बड़े सम्मान से उन वीरों को याद करते हैं।

तजवा करने ८ मार्च को मालूम हो गया, कि कमला इंजेक्शन देना पूरा तौर से सीख गई। परन्तु उनका हाथ काँपता था, हिम्मत नहीं होती थी। आजकल के जमाने में इंजेक्शन देना हरेक स्त्री-पुरुष को सीख लेना चाहिए। कितनी ही दवाइयाँ हैं जो इंजेक्शन द्वारा तुरन्त असर करती हैं, और जिनका उपयोग घर घर होने लगा है। हरेक इंजेक्शन के लिए डाक्टर पर

निर्भर रहना खर्चीली और बेकार की बात है।

बम्बई में डा० जगदीशचन्द्र जैन का पत्र आया, कि मैं २३ मार्च को चीन के लिए रवाना हो रहा हूँ। मैंने साधुवाद और समर्थन करते कहा, कि वहां जाकर बड़ा संस्कृत-चीनी चीनी-संस्कृत कोश तयार करें। दो साल रहकर डा० जैन भारत लौटे। बड़ी उमर में चीनी लोगों में रहकर भाषा तो सीखी जा सकती है, लेकिन हरेक शब्द के लिए नियत अक्षर हजारों की तादाद में सीखना अपने बूते की बात नहीं रह जाती। डा० जैन का पुत्र चक्रेश अपने पिता से अधिक भाषा और अक्षर सीखकर वहां से लौटा। डा० जैन के चीन जाने के समाचार के सुनने के बाद ही १२ मार्च को डा० अल्तेकर का पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था, कि 'प्रमाणवार्तिकभाष्य के छपाने का प्रबन्ध हिन्दू युनिवर्सिटी प्रेस में हो गया।' मैं भाष्य के अपने जीवन में प्रकाशित होने से निराश हो गया था, इसलिए यह समाचार मेरे प्रसन्नता का भारी कारण था। बड़ी तत्परता से छपकर 'प्रमाणवार्तिक भाष्य' १९५४ में निकल भी गया।

१५ तारीख को एक बहुत पुराने मित्र के पत्र को पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। १९१८ में मैं मिर्जापुर जिले के अहरौरा कस्बे में श्री रामखेलावनसिंह के घर में एक महीने बिल्कुल घर की तरह रहा था। उस समय रामखेलावनजी आर्यसमाज के कर्मठ सदस्य और अध्ययनशील तरुण थे। उनके घर में रहने समय मुझे चन्द्रकान्ता और 'जासूस" के पढ़ने का मौका मिला था। रामखेलावनजी एक आदर्शवादी तरुण थे। उनके पिता ने अपने सभी निरवलम्ब सम्बन्धियों को अपने साथ रखा था। तम्बाकू और दूसरा रोजगार खूब चलता था, इसलिए वह भार नहीं थे। पर १९१५ में जब रोजगार बहुत मन्दा हो गया था, सिर्फ बेर के खमीर के साथ बने तम्बाकू का व्यापार ही अवलम्ब रह गया था। इतना बोझ बर्दाश्त करना उनके सामर्थ्य से बाहर की बात थी, लेकिन रामखेलावनजी कह रहे थे—'जब तक हम हैं तब तक उन्हें निरवलम्ब नहीं करेंगा। उनका बहुत-सा रुपया कर्ज में फंसा हुआ था, जिस दिन को लोग नाम नहीं लेते थे। आज ३७ वर्षों बाद उन्हीं श्री रामखेलावनसिंह मौनमग्नहरी चन्द्रकवि' का पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अब वह वृद्ध थे। मैंने अपनी जीवन यात्रा के प्रथम भाग में

उनके बारे में जो अपने उद्गार प्रकट किए थे वह उनकी आखो के सामने से गुजरा। उस समय मैं केदारनाथ था, इसलिए उन्हें मुश्किल से ही समझ में आया होगा, कि उसी व्यक्ति का नाम अब राहुल है। लेकिन अहरोरा का नाम और काल स्पष्ट था। बहुत दिन हो जाने के कारण मैं उनका नाम भूल गया था।

१६ मार्च को सवेरे से २ बजे तक बजरी पड़ती रही। दोपहर तक डेढ़ दो इंच मोटी चादर बिछ गई। इसी समय बादल फट गया और सूर्य की तेज किरणें बजरी को पिघलाने लगी। रात को भी कुछ बादल और बर्फ पड़ती रही। १७ तारीख को प्रात में बर्फ पड़ी हुई थी। दक्षिण की तरफ से पहाड़ों पर वृक्षों के सफेद सफेद पत्ते भी दिखाई पड़ रहे थे। लेकिन शाम या अगले दिन तक बर्फ के रहने के लिए बहुत मोटी तह की जरूरत थी, जो नहीं थी। मार्च में तो जाड़े का मौसम भी नहीं रह जाता, इसलिए इन जाड़ों का यह अंतिम हिमपात था।

कमला की एफ० ए० की परीक्षा का केन्द्र यही घनानन्द इन्टर कालेज था। वहाँ सवेरे पहुँचने की जरूरत थी घर से जाने में दो ढाई मील पड़ता इसलिए १८ को अगले तीन दिनों के लिए वह नीलाजी के यहाँ चली गई। मैं भी साथ गया अब थोड़ी भी चढ़ाई चढ़ने पर थकावट मालूम होती थी। खासकर यदि बात करने में मन भूला न हो। मार्च के महीने में लोग अपने लिए बंगला या कमरा का रिजर्व कराने लगते हैं। इसी बस्ती बन्ध के बारे में मिसेज मकलोड कह रही थी, कि अभी तक एक भी कमरे के लिए कोई माँग नहीं आई।

चुनाव के चुनाव के बारे में मैं निम्न निष्कर्षों पर पहुँचा था—

१ अधिक जनता सुप्त है, जिससे प्रतिगामियों का लाभ हुआ।

२ प्रगतिशील दलों ने आपस में लड़कर मचनन जनता के वोटों का बाँट दिया।

३ हिन्दी क्षेत्र में वामपक्षी दल केवल शिक्षितों और शहरियों में है।

४ उत्तर प्रदेश, विशेषकर उसका पूर्वी भाग वामपक्षियों के अधिक अनुकूल था।

५ सोशलिस्ट अपने को प्रगतिशीलता और समाजवाद का इजारदार

मानते है। उनके कथन पर पूजीपति कितना विश्वास करते है यह इसी से मालूम है कि स्वार्थ और विचार से प्रगतिगामियो ने भी उनका पल्ला पकडा और बाटा का रुपये से खरीदन से भी बाज नहीं आए।

६ सोशलिस्टो की कम्युनिस्ट विरोध की यही अन्धी नीति रही तो वे समाजवाद के नही, बल्कि शोषको के समर्थक रहेंग।

७ नेहरू क वादे थोथे है। जहा तक देश के भीतर समाजवाद का सम्बन्ध है वह प्रतिगामियो के अगुवा छोडकर और कुछ नही ह।

८ आज के जमाने म चीन क साथ सहानुभूति प्रगतिशीलता की कसौटी है।

९ अमेरिकन साम्राज्यवाद विश्व की जनता का और उसकी प्रगति का सबसे बडा शत्रु है। यह उसन हिरोशिमा पर अणुबम कोरिया और चीन पर कीटाणु बम और ईरान की जनता की तूदे पार्टी का खूनी हाथ। ध्वंस करके दिखला दिया है।

१० अपने पैरो पर चलना और सभी प्रगतिशील और वामपक्षियो का संयुक्त मोर्चा यही एकमात्र रास्ता हमारे देश क लिए आगे बढ़ने का है।

२१ मार्च को परीक्षा देकर कमला घर चली आइ। तीनो प्रश्न पत्र सन्तापजनक हुए है। हमको अफसोस हो रहा था कि शिकारपुर की परीक्षा से लाभ उठाकर क्यो एक विषय को छोड दिया। वह सभी विषयो को लेकर आसानी स पास हो जाती। पर उस वक्त तो परीक्षा म बैठने की उनकी हिम्मत हो नही थी।

उसी दिन अदालत का समन मिला। साहित्य सम्मेलन पर प० जय चन्द्रजी ने मुकदमा कर दिया था और मैं भी उसकी स्थायी समिति का मेम्बर था इसलिए यह समन था। मेरी दृष्टि म यह काम किसी भी सम्माननीय साहित्यकार क लिए बिल्कुल अयुक्त था। क्या उनका और कुछ काम नहा रहा, कि सम्मेलन को मुकदमेबाजी का अखाडा बनान म अपना अगुवा बन ?

शिवकुमार शर्मा एक साहसी तरुण हैं। पढ़न म भी अच्छे रह। यह 'साहित्यरत्न' की परीक्षा स मालूम था। लिखने की शक्ति भी विकसित कर सकत हैं। लेकिन, अधिक जान आदमी के सोचने की गहराई को कुछ

कम कर देना है। अब वह यात्रा पर निकलने वाले थे। चाहते थे, सभी हिन्दी के मुख्य मुख्य पत्रों को यह सूचित कर दें, कि शिवकुमार शर्मा यात्रा पर निकल रहे हैं। मैंने समझाया, ऐसे पत्रों का स्थान सम्पादकों की रद्दी की टोकरी होगा। पत्रों की सिफारिश द्वारा परिचय नहीं प्राप्त करना चाहिए और न वह हो सकता है। अपनी लेखनी से ही परिचय करने की इच्छा रखनी चाहिए। दो चार लेख अगर दो चार पत्रों की रद्दी की टोकरी में जाएँ, तो उसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। लेख की एक कापी अपने पास रखे और दूसरी को पत्रों में भेजकर भाग्य परीक्षा करनी चाहिए। अनेक पत्रों के यहाँ यदि उसकी वही गति हो, तो सम्पादकों को नहीं अपने को शाप देना चाहिए और आगे अपने को सुधारने की कोशिश करनी चाहिए।

भैया और भाभीजी का लगातार तकाजा आ रहा था, कि अमृतसर आ जाएँ। मेरे साथ जाने का मतलब था, काम की क्षति। सौभाग्य से भैया के अमृतसर के मित्र मास्टर शान्तीराम आ गए थे, और इन्हीं के साथ कमला देहरादून से २६ को अमृतसर गई। मार्च का अन्त नीचे के लिए कोई सुगम मौसिम नहीं होता।

मित्र या किसी भी सन्निकट के सम्पर्क रखने वाले को कर्ज देना मेरी नीति के खिलाफ है। अगर देना ही हो, तो पाने के लिए नहीं देना चाहिए। ३१ मार्च को एक परिचित ने कुछ रुपये कर्ज माँगे। अव्वल तो तुरन्त खयाल आया, कि इसका मतलब सम्बन्ध को बिगाड़ना होगा। लेकिन उस समय तो मालकिन ही घर में नहीं थीं, कि उनको देने के लिए सिफारिश करता।

३ अप्रैल को मुंगेर कालेज के इतिहास के प्रो० राधाकृष्ण चौधरी की चिट्ठी के साथ एक पुराने शिलालेख का फोटो आया। यह शंख लिपि में था, जो उत्तरी भारत के अतिरिक्त जावा में भी मिला है। मैंने लिखा, अभी तक इसकी वर्णमाला पढ़ी नहीं गई है। इसका कारण एक यह भी रहा, कि अभिलेख कुछ ही अक्षरों के मिले थे, यह अभिलेख बड़ा है, इसलिए कोशिश करें, तो शायद आप पढ़ सकें। इस लिपि में द्वितीया के चन्द्र की तरह की रेखाएँ, बल्कि शंख की आकृति बनानेवाले अक्षर होते हैं। हमारे देश में पिछले सौ साल में पुरातत्व अनुसन्धान का काम हो रहा है, और पिछली आधी शताब्दी तक तो वह ज्यादा तत्परता से हुआ।

पर अभी देश की पुरातात्विक सामग्री का शतांश भी आविष्कृत नहीं हुआ। जिस देश की संस्कृति और इतिहास जितना ही पुराना होता है उसकी पुरातात्विक सामग्री भी उतनी ही मात्रा में अधिक और जमीन के भीतर ज्यादा दूर तक छिपी होती है। पूर्वगामियों ने पुरातात्विक क्षेत्र का पथ-प्रदर्शन मात्र किया है। अभी बहुत सी उपलब्धियाँ करने को बाकी हैं। हमारे तरुण विद्वानों में इसकी तरफ रुचि है यह जानकर खुशी हुई। उन्हें साधनों की शिकायत करते हाथ पर हाथ रखकर बैठना नहीं चाहिए। एक एक बूंद से तालाब भरता है फिर तालाब अपने भक्तों को अपने आप ही ढूंढ लेता है।

८ अप्रैल को कमला के साथ बाजार गए। वे कल ही अमृतसर से लौटी थीं। रुन्नीर में किशनसिंह से मुलाकात हुई। बीमार होने दिल्ली गए थे, वहां बीमारी और बढ़ी। अभी भी दुर्बल थे। जाने पर "कहां उठावें कहां बैठावें" में वह पड़ जाते और चाय पीकर जाने का आग्रह तो कितनी ही बार मानना पड़ता। चार हाथ चौड़ी और दस बारह हाथ लम्बी जगह थी, जिसको उन्होंने तीन कोठरियों में बाँट रखा था। बाहर की कोठरी (आमारा) दूकान का काम देती थी बीच की गोदाम का और पीछे की रसोई थी। पति पत्नी और लड़का तीन प्राणी इसी में गुजर कर रहे थे। जीविका का साधन दुकान में दाना था रात दिन एक करना पड़ता है। पत्नी तिब्बत और चीन के कुछ क्यूरियो के सामान लेकर बड़े होटलों में घूमती। किशनसिंह पर से मजबूर थे इसलिए दूकान पर बैठे रहते। लड़के को पढ़ाने का बहुत ख्याल था लेकिन उसमें न उसके लिए रुचि थी और दिमाग था।

६०वें वर्ष की पूर्ति—६ अप्रैल १९६३ (वैशाख अष्टमी रविवार संवत् १९५०) को मेरा जन्म दिन था। आज (९ अप्रैल १९६२ में) को मेरा ६०वां जन्मदिवस था। जितने ही जन्मदिवस उस वक्त हुए जब मुझे होश नहीं था। होश आने और आत्मनिर्भर होने के बाद मुझे कभी ख्याल नहीं आया कि जन्मदिवस का भी कोई महत्व है। न कभी किसी मित्र ने ही इसका ख्याल दिलाया। हमारे जैसे कुलों में, जिसके ऊपर लक्ष्मी और सरस्वती का वरदहस्त नहीं उन्हें इसकी जरूरत ही नहीं पड़ता। ये अमीरों के चोचले हैं इसे मैं मानता हूं। कमला ने जब इसका जिक्र किया,

तो मैंने कहा, जैसे ५९ जन्मदिन बीते वैसे ही ६०वें को भी बीत जाने दो। लेकिन उन्होंने एक न मानी, और ९ अप्रैल (बुध) को उसे मनाने का निश्चय कर लिया। मैं रविवार को छुट्टी रखा करता हूं, उस दिन काम के दिन भी छुट्टी मनाई। दोपहर बाद एक छोटी सी पार्टी हुई, जिसमें श्री सदानन्द मेहता और श्री शिव शर्मा के अतिरिक्त गीलानी डा० सत्यवतु और उनके दोनों छोटे बच्चे आये। पहली बार जन्मदिन मनाना विचित्र सा मालूम हुआ।

अप्रैल का महीना नीचे गर्मी का है, यहां उसे जाड़े का अन्त कहा जा सकता है। शिवकुमार यहीं से ही अपनी घुमक्कड़ी पर जाने वाले थे।

इधर इन्सुलिन अधिक नियमपूर्वक लेने लगा, जिसके कारण वजन का बढ़ना मुझे प्रिय नहीं था। लेकिन, प्यास और पेशाब का कम होना तथा दिमागी खुमार का मिटना प्रसन्नता की बात थी।

कमला पढ़ने में अच्छा दिमाग रखती हैं, लिखने की भी उनमें शक्ति है। शारीरिक कामों में आलस्य है, ऐसी राय देना अच्छा नहीं होगा। यही कहना चाहिए, अभी भीतर से जबर्दस्त प्रेरणा या जवाबदारी उत्पन्न नहीं होती। मैं भी पढ़ने लिखने में बहुत अच्छा था लेकिन किसी के कहने पर चल कर मेहनत करने के लिए तैयार नहीं होता था। जब जिज्ञासा प्रबल हुई, तो स्वयं नींद हराम करने लगी और कितनी ही बार किताब पकड़े या लिखते यह भी नहीं मालूम हुआ कि अब भिनसार हो रहा है। पढ़ने लिखने के अतिरिक्त सुई-धागा-कढ़ाई के काम में भी उनकी बहुत दूर तक प्रवृत्ति है। थोड़ा वक्त परीक्षा के लिए तैयारी का काम छोड़कर, वह उसमें लग जाती। तीसरा गुण उनमें है संगीत के लिए बहुत सुन्दर कंठ और जल्दी में किसी भी गीत को अपने गले में उतारना। उनकी बड़ी इच्छा थी कि मैं कोई साज सीखूं। हमारा मकान यदि शहर के नजदीक होता तो हम पन्द्रह रुपया मासिक पर कोई उस्ताद सिखाने के लिए मिल जाता। मसूरी निम्न वर्ग के लोगों के लिए है, जहां लड़कियों के लिए गायन, वादन और नृत्य आज अनिवार्य चीज समझी जाती है। योग्य या धनी वर मिलने में ये गुण सहायक होते हैं। कितनी ही शताब्दियों तक ये ललित कलायें उच्च और मध्य वर्ग में उपेक्षित रहीं। अब पश्चिम के सम्पर्क में आने के बाद लोगों की

ध्यान उनकी ओर गया। पश्चिम के सम्पर्क में जो जितना ही पहले आया उसने उतना ही पहले इन्हें अपनाया। हिन्दी क्षेत्र वाले इसमें सबसे पीछे रहे। हाँ सामन्त वर्ग ने इसका पूरी तौर से बायकाट नहीं किया। मसूरी में इसीलिए कुछ संगीत के उस्ताद रहते हैं। और लोगों की तरह आज उन्हें भी बड़ी शिकायत थी अब हमारे कदरदान नहीं रहे। कदरदान अधिकतर निम्न मध्यम-वर्ग के शिक्षित थे जो आर्थिक संकट के शिकार हो रहे थे। हम रोज रोज तो उस्ताद को तीन चार मील दूर बुला नहीं सकते थे इसलिए ६० रुपये मासिक पर मंगल बृहस्पति और शनिवार को उन्होंने सिखाना शुरू किया। साज में वायलिन को पसन्द किया गया। देशी बाजों में सितार या वीणा जिस तरह अधिक सम्माननीय और कलात्मक माने जाते हैं वही बात विदेशी बाजों में इस हल्के से बाजे की है। साथ ही इसमें यह भी एक खूबी बतलाई जाती है कि इसमें यूरोपीय और भारतीय दोनों के संगीत को उतारा जा सकता है। इस कला से मुझे आनन्द न आता हो, यह बात नहीं है। पर, संगीत के लिए मुझे कंठ नहीं मिला शायद उसी कारण मुझे गान की रुचि नहीं हुई। संगीत के राग रागिनियों की पहचान के बारे में तो यही कहना चाहिए कि भैंस के आगे बीन बजाना। लेकिन, जब घर में संगीत सिखाई होने लगी तो बबस उसे सुनना पड़ता। उस्ताद चाहते थे अपने ढंग से सिखाना, जिसका अर्थ था जंगल में भटकने के लिए छोड़ देना। हम जानते थे कि ज्यादा महीनों तक हम खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते इसलिए सबसे आवश्यक चीजों की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके लिए मुझे प्रयत्न करना पड़ा। बंगला और हिन्दी में छपी संगीत सीखने की कुछ पुस्तकें मँगाई जिनसे पता लगा, कि दस ठाटे मूल हैं बाकी राग रागिनियाँ उनके ही विस्तार हैं। दो चार बैठकों के बाद मैंने कहा पहले इन दसों ठाटों को सिखाइये। उस्ताद ने बेमन से इसे स्वीकार किया। दो चार दिनों के बाद उस्ताद ने कहा गान की इच्छा तो कोई भी कर सकता है उनमें से कितनों को उसके अदा करने की शक्ति भी हो सकती है। पर मधुर कंठ और हरेक ट्यून को जल्दी पकड़ लेना सबके बस की बात नहीं है। कमला को यह सर्टीफिकेट उस्ताद ने दिया, जो भी सुनते हैं वह इसको मानने के लिए तैयार हैं। संगीत के गहन भेदों को वह वनानिक

तौर से अच्छी तरह पहचान सकती है लेकिन यहां भी उनके भीतर से दबाव होना चाहिए। वह दो महीना तक वायलिन और संगीत सीखती रही। २० २२ ठाट के अतिरिक्त १० १२ और राग रागिनियों का ज्ञान किया। वायलिन पर भी हाथ बैठ गया। यदि चाहती तो स्वयं इसको आगे बढ़ा सकती थी, लेकिन वायलिन को तो एक तरह से उन्होंने बन्द करके रख दिया। गुनगुनाने का शौक पुराना है इसलिए गाहे-बगाहे गा लेती हैं जब भी अधिकतर फिल्मी ही गाना का। अब भी उनकी इच्छा है, कि वाद्य और संगीत के लिए और समय लगा कर कुछ सीखें। इस जंगल का निवास सचमुच इस विषय में प्रतिकूल सिद्ध हुआ।

१२ अप्रैल को हमारे मुहल्ले में एक पागल कुत्ता भागता आया। उसने दो तीन आदमियों के साथ हमारे पड़ोसी स्टैली साहब की भैंस को भी काट खाया। मुहल्ले का सबसे बड़ी जान का कुत्ता हमारा भूतनाथ है पर मज बूती तथा शरीर दोनों में चौधरी का टाइगर बड़ा है। रूपी बली का नर गतिलाला का कुत्ता गब्बू है, जिसके सारे शरीर में ही नहीं चेहरे पर भी बड़े बाल हैं। टाइगर हो या भूत किसी से भी भिड़ने के लिए वह हर वक्त तैयार रहता है। प्रतिद्वंद्वी को देखते ही अपने पिछले पैरों से मिट्टी फेंकते ललकारता है— हिम्मत है तो आ जाओ।" कभी उसे अखाड़े से भागते नहीं देखा गया। भूतनाथ भिड़ जाते हैं, लेकिन बड़े-बड़े पत्थरों को खाने-चबाने उनकी दाढ़ें घिस गई हैं, जबकि गब्बू की सूई जैसी तेज हैं। इसलिए लड़ने में वह किसी को भी लहू-लुहान कर सकता है। पागल कुत्ते से भी वह लड़ने के लिए तैयार हो गुथ गया। डर हो गया, कहीं गब्बू भी उसके पद-चिह्न पर न चले। लेकिन, लम्बे बालों के कारण दाँत भीतर तक नहीं घुसे। उसको दवाई से धो दिया गया। हमारे पड़ोसी नन्दू धावी के हाथ में भी पागल कुत्ते ने मुंह लगा दिया था, लेकिन दाँत नहीं गड़ा। उसे स्पिरिट लगा दी। सारे मुहल्ले में आतंक छा गया। किंवदन्तियां सुनी जाने लगीं, कि उसने शहर के कई आदमियों को काटा है। १३ अप्रैल को सांढ़े ७ बजे सवेरे जब हमारे फाटक के पास से होते ऊपर की ओर जाता दिखाई पड़ा। उसका इस तरह छोड़ना ठीक नहीं था। तुरन्त जान लड़ाने अपनी बन्दूक और मंगरू को लिए पीछे पड़े। कुत्ता जंगल के रास्ते की ओर भागा जा रहा

था। एक जगह जान ने बन्दूक चलाई लेकिन कारतूस में आग नहीं लगी। कुत्ता एकाएक पीछे की ओर मुड़ा। पतली पगडंडी थी। कुत्ते ने लड़की के पैरों में दांत गड़ाये तीनों सँकरे रास्ते से नीचे दस पन्द्रह कदम लुढ़क कर घाटी से जा रुके। कुत्ता फिर भागा और ये दोनों आदमी भी पीछे पीछे गए। पागल कुत्ते का काटना भयंकर चीज है। जंगल से जहाँ तहाँ घूमते फिर वह चार्लविल होटल के फाटक पर जब पहुँचा तो लोगों ने उसे मार डाला। पता लगा लण्डौर की ओर भी किसी पागल कुत्ते ने बच्चों को काटा था उसे भी आज ही मारा गया था।

डाक्टर को बुलाया गया। उन्होंने लेडली की भय की बचने की आशा नहीं प्रकट की, तो भी उसको कई इंजेक्शन दिए गए। जान के काटने का हमें बहुत अफसोस हुआ। वह बड़े ही मिलनसार और उदार तरुण हैं, साथ ही अपने वृद्ध पिता की एकमात्र संतान। इंजेक्शन दिए गए, महीने बाद जब घाव भर गया और कोई दूसरा लक्षण नहीं प्रकट हुआ तो बरसात की थोड़ी सी आशंका के होते भी सबको संतोष हुआ। पागल कुत्ते पागल गीदड़ के काटने से भी हो जाते हैं। हमें भी अपने भूत की चिंता होने लगी। आखिर उसे क्या पता है, कौन कुत्ता या सियार पागल है और कौन नहीं। यहाँ परिचित है कि बघेरे के डर के मारे हम स्वास्थ्य के नाम भूत को बाहर रहने नहीं देते और सियार अधिकतर रात को ही निकलते हैं।

श्री त्रिरत्नमान साहू (नेपाल) के पुत्र प्रत्येकमान ल्हासा में बहुत सालों से रहते थे। उनकी चिट्ठी जब तब आ जाया करती थी। पिता ने पढ़ाने की बहुत कोशिश की थी यह उसके लिए सोच कर सकते थे लेकिन पढ़ने की भी कुल में परम्परा चाहिये बल्कि कहना चाहिये, कि परिवार का वातावरण विद्या का विरोधी नहीं होना चाहिए। नेपाल के नेवार व्यापारियों में विद्या को अनावश्यक माना जाता है। लिखना पढ़ना और हिसाब कर लेना इतना ही भर का उनको आवश्यकता होती है। तिब्बत के व्यापारियों को तो सबसे आवश्यक जो चीज है वह है तिब्बत से जीवित सम्पर्क स्थापित करके वहाँ की भाषा और रीति रिवाजों को समझना। इसलिए वहाँ इनके लड़के अधिक दीर्घ पढ़ते हैं। जब पढ़ने का समय बीत जाता है फिर पढ़ने में समय और श्रम लगाना संभव नहीं होता। २२ अप्रैल को ल्हासा से प्रत्येक

मानजी का पत्र आया, जिसमें मालूम हुआ कि वहाँ के पुराने निहित स्वार्थ कम्युनिस्टों के आगमन का हर्ष दिखला रहे हैं और कम्युनिस्टों के नरम बर्ताव को उनकी कमजोरी समझ कर आशा रखते हैं कि लाभ होने पर वह तिब्बत छोड़ के चले जाएँगे। यह भी मालूम हो रहा था, कि भूमि सुधार के लिए वहाँ कुछ नहीं किया जा रहा है। बहुजन को अपनी तरफ जल्दी खींचने के लिए यह आवश्यक था कि अब काम किसानों की ओर सबसे पहले ध्यान दिया जाता। ऊपर से देखने से यह शिथिलता या ऐसी अवांछनीय मालूम होती है, लेकिन कम्युनिस्ट अपने और अपनी शक्ति पर विश्वास करते हैं। वे जिस तरह शान्ति के साथ तिब्बत में प्रविष्ट हुए, उसी तरह वहाँ के लोगों को साथ लेकर आगे बढ़ना चाहते हैं। उन्होंने सबसे पहले ध्यान दो चीजों पर दिया। यातायात के लिए मोटर सड़क के द्वारा तिब्बत को चीन से मिला देना और कृषि फार्मों द्वारा किसानों को आँखों दिखलाना कि नये ढंग से कृषि की उपज और भिन्न भिन्न साग-सब्जियों और अनाज को कितना अधिक पैदा किया जा सकता है।

जाग्रत अवस्था में मनुष्य बाह्य जगत् से सम्पर्क रखता है। स्वप्न की अवस्था के लिए बाह्य जगत् का सम्पर्क आवश्यक नहीं है। उसके लिए मन के ऊपर जीवन भर के जो अनुभवों के चित्र अंकित हैं, वही बाह्य जगत् का स्थान लेते हैं। स्वप्नों के द्वारा भविष्यवाणी की बात पर मुझे विश्वास नहीं और न दूसरे तौर से महत्व देता। स्वप्न में भी कभी कभी मनोरंजन और मनस्ताप का काम लेते हैं। बहुत साल पहले तिब्बत में एक बार मैंने स्वप्न में देखा था कि डिनाग और धर्मकीर्ति के नष्ट समझे जानेवाले मूल ग्रन्थ सब मुझे सपने में मिल गये। उस समय सुख उनका ही स्पर्श करा कर बना रहता था। २७ अप्रैल की रात को स्वप्न में जायसवाल जी को देखा। वह कुर्सी पर उसी मेज के सामने बैठे थे, जहाँ वह लिखने पढ़ने का काम करते थे। मेज कमरे के भीतर और कुछ धुँधली सी जगह में थी। मेरे पहुँचने पर मुस्कराकर मिले। लेकिन बात नहीं हो पाई। मालूम होता था, वह इंग्लैण्ड में थे, बुलाने पर मैं उनके पास गया था। पुरानी मधुर स्मृतियाँ जिस रूप में भी आयें आनन्दप्रद होती हैं। स्वप्न, शायद मनो-विकार तक ही सीमित रही है, यह तो इसी से मालूम था कि हम कभी-कभी

भूत को सात साते भूकत दखन थे अर्थात् वह भी स्वप्न देख रहा था।

२८ अप्रल कमला क लिए बड़ी प्रसन्नता का दिन था क्योकि "नया समाज उनकी कहानी 'बेचारी सरस' छापने के लिए मजूर कर ली गई। कहानी पहले पहल छप कर आने पर उन्हे अपार प्रसन्नता हुइ।

प्रकाशक सबसे चलती पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए लालायित रहते हैं लेखक का भी उधर झुकाव होना स्वाभाविक है। पर मैं कभी किसी की फर्माइश पर पुस्तक लिखने का आदी नहीं हूँ। मेरे एक प्रकाशक ने रसायन पर पुस्तक लिखने के लिए कहा। शायद वह टक्स्ट बुक के तौर पर उसे लिखवाना चाहते थे। मेरे मन मे पहले यही प्रतिक्रिया हुई। रसायन तो मेरा विषय नहीं रहा। उन्होंने देखा था, मैंने अपनी 'विश्व की रूपरेखा' मे रसायन की बातें कही हैं इसलिए उस पर लिख भी सकता हू। मैंने उन्हे निराश किया। एक दूसरे प्रकाशक ने भारतीय संस्कृति के ऊपर उसी ख्याल से पुस्तक लिखने के लिए कहा लेकिन अपना विषय होने पर भी पाठ्य पुस्तक का ख्याल आते ही लेखनी ने चलने से इन्कार कर दिया।

श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री मेरे बहुत दिनो के परिचित थे। तब वह कलिम्पोग के मिशन हाइ स्कूल मे पढ़ाते थे। किशोरी भाइ के साढू होने से भी उनके साथ घनिष्ठता थी। बम्बई मे भी वह मिले थे, और अब बीकानेर मे शार्दूल पब्लिक स्कूल मे संस्कृत के अध्यापक थे। उन्होंने राजपूताना युनिवर्सिटी से पी एच० डी० के लिए अनुसन्धान करने मे मुझे सुपरवाइजर बनने के लिए कहा। मैंने स्वीकार कर लिया। वह कुछ समय उन्होंने दिया लेकिन इसके लिए जितनी तन्मयता चाहिए, उसके लिए वह तैयार नहीं थे। जिसके कारण काम पूरा नहीं कर सके। ६ मई को उसी के सम्बन्ध मे वह मसूरी आये।

मई महीने मे मिश्रा के आने के बारे मे चिट्ठियाँ मिलने लगी। धनराज जी ने आने के बारे मे लिखते हुए बतलाया था—अब गाव अतरसन मे राशन की दूकान खुल गई है। अनाज के बारे मे छपरा बहुत दिनों से स्वावलम्बी नहीं है। उतनी घनी आबादी भारत मे शायद ही किसी जिले का हो। छपरा के लाखो आदमी दस के दूसरे शहरो मे जाकर रोजी कमाते हैं हजारो ने बिहार के कम घनी आबादीवाले जिलो मे जाकर खेती शुरू कर दी।

१५ मई को ठाकुरानी गुलाबकुमारी आई। पिछले मास वह पूरे राजसी ठाठ से आकर स्टेफरटन होटल में उतरी थी। अपनी मोटर थी, साथ में आधे दर्जन के करीब नौकर चाकर और मुसाहिब थे। अब की केवल एक नौकर और एक लड़की के साथ आई थीं। नये भारत में रियासतों और वहां के जागीरदारों पर जो प्रभाव पड़ रहा था, उसका ही यह उदाहरण था। जो सामन्त "न ते पाव पसारिये, जेती लाँबी सौर"। इस वाक्य का जल्दी समर्थन में समय हुये के अधिक अच्छे रहते।

निर्वाचन में पहले पिछड़ी जातियों में कुछ सुगबुगाहट हुई थी, विशेष कर बिहार और उत्तर प्रदेश में वे बड़ी जाति के नामों से अब कर विद्रोह करने की बात कर रहे थे। छूत-अछूत दोनों प्रकार की पिछड़ी जातियां मिलकर आबादी की ७० ८० सैकड़े हैं। उनके मनके हो जाने पर यह निश्चय ही है, कि लोकतन्त्र में "ब्राह्मण-क्षत्री-लाला" के अगुवापन के लिए कोई संभावना नहीं रह जाती। पर बड़ी जातियां या उनमें भी मुट्ठी भर सामन्त अपने सख्या-बल पर हजारों वर्ष से देश के सारे वैभव के स्वामी होते इन्हीं शोषितों और पीड़ितों को हथियार बनाकर अपना काम बनाते आये हैं। कांग्रेस के ब्राह्मण-क्षत्री लाला" पंचायतों के चुनाव के वक्त घबरा गये थे उनके पैरों के नीचे से धरती खिसकती-सी मालूम हुई थी। उस समय वे शायद भूल गये थे, कि शत्रु की शक्ति को शत्रु की फूट से धता बताया जा सकता है। चुनाव के समय उन्होंने ऐसा ही किया। शोषित नेताओं में से जिनको अधिक प्रभावशाली देखा, उन्हें कांग्रेस का टिकट दे दिया। बैल की जोड़ी की जय मनाने लगे। चुनाव के बाद दो चार को पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी बना देने भर में उनका काम निकल गया।

तारकेश्वर में श्री धूमनाथसिंह आ गये। अब हमारी कुटिया में बहार थी। धूमनाथजी की मेरे साथ मैत्री तीस वर्ष से ऊपर की है, जिसका उत्स्थ जीवन यात्रा में जगह जगह हुआ है। उनकी सच्चाई और सरलता से मैं मुग्ध हूँ।

मैं अपने से समझता था, कि हरेक समझदार आदमी बुद्धि के सामने सिर झुकाने के लिए मजबूर होगा, लेकिन उन्होंने बतलाया, कि दुर्योधन के नाम से मशहूर वाक्य ठीक है— जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः

जानाम्यधर्म न च मे निवृत्ति । बुद्धि के मूल्य को जानते हुए भी यदि उसकी सम्मति ठुकराने के लिए आदमी तयार हो जाता है तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पडता है। बुद्धि जिस वक्त कान मे कुछ धीमे धीमे बात करना चाहती है, उसी वक्त दिमाग मे झटका लगता है, और आदमी बुद्धि को निराश करके दूसरी ओर दौड पडता है। दुनिया मे सभी आदमियो मे केवल गुण ही गुण नही होते कुछ दोष भी होते हैं। अगर उनके दोषो ही को देखा जाए तो आदमी की जीवन यात्रा कठिन हो जायगी। अपने मित्रो की सख्या बढाना जरूरी है। यदि जरा-जरा से दोषो के लिए "अय न अय न" कहते हुए सबका प्रत्याख्यान किया जाये तो आदमी अकेला रह जायेगा। लेकिन किसी को हाथ पकड कर रास्ते पर चलाया नही जा सकता। मनुष्य का समाज मे पैदा होने पर भी बहुत बातो मे अपने आप पर छोड दिया गया है। ठोकरें खाकर वह अपने आप ही सभलता है।

रियासतो का विलयन हुआ। वहाँ के राजाओ और सामन्तो के शताब्दियो नही सहस्राब्दियो से चले आते जीवन की समाप्ति बहुत नजदीक है और उसकी समाप्ति के साथ ऐतिहासिको और समाजशास्त्रियो मे ही नही बल्कि दूसरे भी पाठको के लिए सामन्ती युग के बारे मे जानने के सारे साधन नष्ट हो जाएँगे। मेरा ख्याल कितने ही दिनो से हो रहा था कि सामन्ती जीवन को लिपिबद्ध करना चाहिये। अपने मित्रो से इधर कुछ वर्षों से कहता रहा। हाँ भरनेवाले तो मिले लेकिन करनेवाले कोई नही दीख पडे। मैंने सोचा इसे अपने हाथ से ही करना चाहिए और २६ मई को 'राजस्थानी रनिवास' के लिखने मे हाथ लगाया, जो वस्तुत अभी अभी हमारे सामने खतम होते समाज का काल्पनिक नही वास्तविक चित्र है।

३० मई को साहित्याचार्य श्री बलभद्र ठाकुर आये। चाय पीते समय दूकान पर अपना पोर्टफोलियो छोड आये थे लौट कर जाने पर वह मिल गया। उन्हे पहाड की ईमानदारी पर जरूरत से अधिक विश्वास हो गया। किसी समय जरूर पहाड मे ईमानदारी का राज्य था पर जबसे जीवन-सघर्ष बना उचित श्रम करने पर पेट भरने का ठिकाना नही रहा तब से पहाडियो ने भी मदानियो का रास्ता पकडा।

३१ मई को परीक्षा-परिणाम निकल आया। कमला एफ० ए० पास

हो गई, एक विषय छोड़ने का अब अफसोस कर रही थी।

अब मलानी सूत्र दिखलाई पड़ रहे थे। हमारे देश में आधुनिकता अब असूर्यपश्याओं तक में फैल गई है बल्कि कहना चाहिए, भाग्य के सारे साधन सुलभ होने के कारण उनमें आधुनिकता के तेजी से फैलने की संभावना और भी अधिक थी। राजस्थान की रानियां और राजकुमारियां अपनी राजधानी में भले ही असूर्यपश्या हों भले ही वहाँ काले सीसे लगी बन्द मोटर में उन्हें बाहर जाना पड़ता हो लेकिन मसूरी के माल पर उन्हें देख कर कोई कह नहीं सकता, कि ये पर्दे की रानियां हैं। एक तरुण रानी जिनका केश कट चुका है, कभी सिर खोले पतलून पहने घूमती दिखाई पड़ती तो कभी घाघरा-ओढ़नी पहने। उनको अपने राजस्थानी ननिहाल का और यूरोपियन साज सज्जा का अभिमान है।

२ जून को पृथ्वीराज और राजकपूर का नाम सुन करके हम "आवारा" फिल्म देखने गए। अभी उसकी विदेशों में ख्याति नहीं हुई थी तो भी मैंने लिखा था—"अब तक देखे भारतीय फिल्मों में अच्छा है इसमें सन्देह नहीं। सब दृष्टि से अच्छा कहना पड़ेगा।" अधिकतर फिल्मों से मुझे निराश ही लौटना पड़ता है इसलिए भी "आवारा" को देखकर संतोष हुआ था। लौटते समय वर्षा और ओले पड़े। वर्षा के मारे तो हम भीग गए। स्टैण्डर्ड के पास रिक्शा लिया। गांधी चौक तक आते आते रिक्शेवाले भी लथपथ हो गए और आगे चलना उनके लिए संभव नहीं हुआ। मित्तल जी के स्टोर में पहुँचे। चाय पिलाकर ही उन्होंने संतोष नहीं किया बल्कि भोजन भी कराया। साढ़े १० बजे वहाँ से पैदल रवाना हुए और ११ बजे घर पर पहुँचे।

जून में 'रूस में पच्चीस मास' का बीकानेर में प्रूफ आने लगा। पुस्तकों के लिखने में मुझे जितना आनन्द आता है उससे कहीं अधिक आनन्द उनके प्रूफ देखने में आता है। पुस्तकों का लिखना माना उनका गर्भ में आना है और प्रकाशित होना जन्म लेना। आदमी इससे अपने परिश्रम का फल पाता है।

६ जून को स्वामी सत्यस्वरूपजी आए। हमारे लिए अब स्थान की समस्या थी। वस्तुतः एक ही तो लम्बा-सा कमरा है, जिसमें विभाजन

करके इमन दो बना लिया है। और मेहमान का उसमें रहने के लिए कहने में संकोच मालूम होता है, लेकिन स्वामीजी और बलभद्रजी ने उसे पसन्द किया।

अतिथियों से भरे साधुओं के मठों को मैंने वर्षों देखा है। वह सह जीवन तथा साधु सेवा मुझे हमेशा बहुत पसन्द आई। अतिथियों का समागम और उनकी सेवा मेरे लिए लालसा की चीज है। लेकिन यहां दंग रहा था अपना मकान लेने पर भी उनको रखने के लिए स्थान देना संभव नहीं था। धूपनाथजी एक महीने के बाद १० जून को गए। गर्मियों में उन्हें काम से छुट्टी रहती है लेकिन वर्षा के आरम्भ होते ही खेती के काम को देखना पड़ता है। वह छपरा के अपने गाव अतरसन में न रहकर भागलपुर में खेती बारी करते हैं। काम में उनका मन भी लग जाता है, और साथ ही जीविका की चिन्ता भी नहीं रहती।

डा० किरणकुमारी गुप्ता अपने भतीजे प्रो० प्रताप के साथ आई। उन्होंने और मैंने भी सोचा था कि साहित्यिक कार्यों के बारे में कुछ काम होगा। खासकर उन्होंने 'अग्रवाल विवाह प्रथा' लिखने का जो काम अपने हाथ में लिया था विवाह सम्बन्धी सैकड़ों गीत जमा कर लिए थे, उसके कारण मैं और भी सहयोग देने के लिए उत्सुक था, लेकिन आने के दिन ही प्रो० प्रताप को जोर का बुखार आ गया। यदि पहाड़ में आकर अपना या अपने साथी को बीमारी का सामना करना पड़े, तो सारा मजा किरकिरा हो जाता है। फिर नीचे लौटने की ही इच्छा बलवती होती है। क्योंकि वहां चिकित्सा और शुश्रूषा का अधिक सुभीता रहता है।

११ जून को श्री गयाप्रसाद शुक्लजी, प्रिंसिपल कालीप्रसाद भटनागर की पत्नी के साथ आए। प्रिंसिपल भटनागर हमारे प्रदेश के जाने माने शिक्षा विशारद तथा यहां से सबसे बड़े कानपुर के डी० ए० वी० कालेज के प्रिंसिपल थे। (इन पंक्तियों के लिखने के समय अब वह आगरा युनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर हैं।) प्रिंसिपल भटनागर उदार विचारों के आर्य समाजी हैं जिसका मतलब है धर्म के बहुत भीतर घुसकर माथापच्ची करने से दिमाग को अलग रखना। लेकिन, उनकी इस कमी को उनकी पत्नी पूरा करती है। वह योग और आत्मवाद के पीछे मीरा हैं। सचमुच वह मीरा

ही है, क्योंकि कीर्तन में वह बाज वक्त तन्मय हो जाती हैं। गुरु में अपार श्रद्धा रखती हैं। सौभाग्य से उन्हें एक महिला मिद्धा मिल गई थी, लेकिन जान पड़ता है 'घर का जोगी जोगिना, आन गाँव का मिद्ध" की कथा चरितार्थ हुई। हाथ में आने से अधिक पाने की इच्छा रखती हैं। कानपुर में रहते वाले शिक्षा के लिए कुछ समय देती। गर्मियों और बरसात में वर्षों से पहाड़ की आदी हो गई, मसूरी आ जाया करती थी। कालेज की छुट्टियों का अधिक समय प्रिंसिपल साहब भी यहीं बिताते थे। उन्हें एक दर्जन वर्ष से अधिक किराए के बगलों में रहते हो गए। प्रिंसिपल साहब उससे सतुष्ट थे। श्रीमती भटनागर की इधर इच्छा होने लगी कि अपना बंगला होना चाहिए, जिसे अपनी रुचि से फूलों से सजाया जाए, अपनी रुचि के अनुसार बनाया जाए। मैंने अपने पड़ोसी "क्लिडेर' बंगले को दिखलाया। उन्हें बहुत पसन्द आया। ऐसे बंगले के कानपुर में होने पर तो २५ हजार रुपये मुँह दिखाई देनी पड़ती है। कितने ही समय तक यही मालूम होता था, कि 'क्लिडेर" की स्वामिनी वही होगी। काम में अच्छा या बुरा जो काम हो जाता है, वह हो जाता है देर होने में चीज के गुण ही नहीं दोष भी मालूम होने हैं, फिर वह काम नहीं हो पाता। मैं सोचकर कहता हूँ कि मकान को न लेकर श्रीमती भटनागर ने अच्छा ही किया।

श्री भारतभूषणजी का इस साल ब्याह हुआ। उस समय मास्टर विश्वम्भरदयालजी भी यहीं पर थे। ब्याह होकर नई-नई बहू आई थी। १२ जून को हम भी वहाँ पहुँचे। मसूरी में मौजूद बहुत से इष्ट मित्र चाय-पार्टी में जमा थे। बहू ग्रेजुएट थी, जो आजकल के जमाने के लिए कोई असाधारण बात नहीं थी। मास्टर विश्वम्भरदयाल भी गुणी थे।

नए मिलनेवालों में १३ जून को प्रयाग के डा० कपिलदेव व्यास आए। वह मसूरी के लिए नए नहीं थे। मेरे आने से पहले कई साल तक तो वह हमारे ऊपरवाली कोठी की बगल में 'हन लौ' में ठहरा करते थे। प्रयाग के मालवीय होने के कारण चाहे डाक्टर हो या वकील, अपने साहित्य और संस्कृति की ओर कुछ रुचि होती है। व्यासजी हर साल आने, 'हन लौ' में नहीं ठहरते, जहाँ भी ठहरें हमारे यहाँ दर्शन देने की कृपा जरूर करते हैं।

१५ जून को स्वामी सत्यस्वरूपजी के साथ पटलाद (गुजरात) के ७० वर्ष के एक सेठ आए। वह तीर्थ व्रत और परोपकार में काफी धन खर्च करते हैं, और विद्या से भी शौक रखते हैं। बातचीत होने पर मैंने सलाह दी, कि दान पुण्य के पात्रों में साधुओं के आश्रमों का ही नहीं बल्कि साहित्यिकों के आश्रमों का भी ख्याल रखना चाहिए। मुझे मालूम होता था 'क्लिंडेर' खरीदकर उसे साहित्यिकों का आश्रम बना दिया जाए। यह कहने में मेरा क्या बिगड़ता था। यद्यपि मैं जानता था कि कान में बात डालने और उस पर हुँ-हुँ करने का यह अर्थ नहीं कि वह काम हो ही जाएगा।

यहाँ से १० अप्रैल को ही शिवकुमार घुमक्कड़ी के लिए निकले। ढाई महीने बाद २० जून को वह जमुनोत्री गंगोत्री केदार-बदरी होकर लौटे। अपनी यात्रा का विवरण बड़े उत्साह से सुना रहे थे। यद्यपि वे पिसी पगडंडिया है लेकिन घुमक्कड़ी जीवन के क ख सीखने के लिए यह नीचे की रेल की यात्रा से कहीं अधिक उपयुक्त है। उनसे बात हो रही थी, तभी हमारे दार्शनिक श्री रामचन्द्रसिंह भी आ गए। वह भारतीय दर्शन और धर्म निरपेक्ष दिव्य जीवन के प्रचार की धुन में हैं। सारी योजना कह लीजिए सस्था भी उनकी जेब में चलती है। चाहे वह व्यावहारिक न हो किन्तु जमे शुद्ध सरल और भटकती अद्भुत प्रतिभा के हृदय से बात निकल रही थी उन्हें कौन सुनना नहीं चाहेगा? शाम को अपनी पत्नी सहित सत्येन्द्रजी (बदरीपुर) भी आए। सत्येन्द्रजी और उनकी पत्नी के प्रति हमारी विशेष आत्मीयता है। यह ऐसे दम्पती हैं जिनके आदर और स्नेह पाने में हम दोनों एकमत हैं। इतने मित्रों के समागम से आज का शुक्रवार महोत्सव का दिन मालूम होता था। शिवकुमारजी अब मानसरोवर जाने का सकल्प और बलभद्रजी भी साथ देने की बात कर रहे थे।

डा० सत्यकेतु के ज्येष्ठ पुत्र श्री निरंजन ने एम० ए० छोड़कर एल एल० बी० ले लिया। अबकी साल उन्होंने प्रथम श्रेणी में उसे पास किया। लेकिन वकालत की परीक्षा वस्तुतः युनिवर्सिटी में नहीं बल्कि कचहरी में होती है जहाँ सबसे अधिक प्रतियोगिता है और मुश्किल से १० प्रतिशत वकील निश्चिन्त जीवन बिताने में सफल होते हैं।

पंडित हरनारायण मिश्र देहरादून से आए। वृद्ध साहित्य प्रेमी हैं।

पढ़ा बहुत और मौलिक तौर से उसका उपयोग भी बहुत किया, लेकिन उनकी लेखनी हमेशा सकोची रही है। उनके फारसी के ज्ञान को देखकर मैंने कहा, आप एक "पारसी काव्यधारा" लिख डालें। पहले हिचकिचाए, लेकिन जब मैंने बतलाया, कि मैं भी आपको सहयोग देने के लिए तैयार हूँ, तो उन्होंने उस काम को अपने हाथ में लिया। कुछ महीनों तक तो मालूम हुआ, कि हिन्दी की यह कमी पूरी हो जाएगी और विश्व के एक उन्नत साहित्य की कृतियाँ हिन्दी में आ जाएँगी। मैंने उन्हें बतलाया था मूल को भी नागरी अक्षरों में बाँयें पृष्ठ पर रखें और हिन्दी अनुवाद उसके सामने दाहिने पर। मिश्रजी डायबटीज के पुराने मरीज थे। अब आँख भी जवाब देने लगी। आदमियों को देख सकते थे। किताब को पढ़ना उनके लिए मुश्किल हो गया, फिर 'पारसी काव्यधारा' का ख्याल छोड़ना पड़ा। कभी-कभी ख्याल आता है क्या उसे भी मुझे करना होगा। मैंने संस्कृत काव्यधारा" लिखने के लिए दूसरे मित्रों को कहा था। जब कोई नहीं आया, तो स्वयं ही उसे करना पड़ा। "पालि काव्यधारा" और प्राकृत काव्यधारा' के बारे में भी दूसरे मित्रों को वर्षों से कह रखा है, लेकिन अभी कोई सुगबुगा नहीं रहा है। पहले वे खाना हो जाएँ तभी "पारसी काव्यधारा' को हाथ में लिया जा सकता है। जीवन चाहिए, काम की कमी नहीं है।

जून के साथ अच्छे अच्छे आम आने लगे। और मसूरी में महँगे भले ही हों लेकिन वे बिल्कुल सुलभ हैं। २५ जून को श्री पुरुषोत्तम कपूर (कानपुर) का भिजवाया लखनऊ में दसहरी का पार्सल आया। अतिथियों के साथ आम का इस ऋतु में भाज हो जाना मामूली बात थी। अधिक प्रेम से आग्रहकर करने के लिए १० बजे दिन का समय हमें ज्यादा अनुकूल मालूम होता है।

२६ जून को गुजरात के राना वरियो आए। प्रौढ़ और वृद्ध अवस्था में सामान्य लोगों की धर्म की ओर विशेष भक्ति होती है। स्वामी सत्य स्वरूप और उनके गुरु स्वामी गंगेश्वरानन्द को उनसे परिचय था। धर्म की मेरी निरपेक्षता भी धर्माचार्यों और धार्मिकों को उपेक्षा का पात्र नहीं बनाती। राना साहिबा का कुछ परिचय मिला था। उनकी नानी हमारे

विहार के डुमराव के महाराज की पुत्री थी। वह बचपन से ही अपग है सब तरह की दवाइया की लेकिन उससे कोई लाभ नहा हुआ। अब महात्माओ की आशा है। बड़ा निश्चित हैं। गुजरात के राजवशा का राजस्थान के राजवशा से बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है दोना की भाषाए भी बहुत नजदीक हैं इसलिए गुजरात के अन्त पुरा म हिन्दी का प्रवेश कोई असाधारण बात नहीं है। उन्होने चाय छाड रखी थी सयोग से हमारे यहाँ काफी मौजूद थी।

ठाकुरानी गुलाबकुमारी भी अभी हमारे बगल म ही ठहरी थी। लेडली के अर्टेन' के बारे म बातचीत हुई। बूढे लेडला युग के भाडे स एक पसा कम करने के लिए तयार नही होते थ लेकिन किराये पर न लगन के कारण उन्होन आधे अर्टेन को साढे तान सौ रुपया साल पर दे दिया। मसूरी के मकान साल भर के किराय पर ही उठते है आप चाहे बारहा महीने रह या दा महीने।

३० जून का महीने का अन्त था। इसी दिन हमारे दो घुमक्कड शिव शर्मा और बलभद्रजी पाण्डवो के रास्ते पर पर बढ़ाने के लिए आगे बढे। पाण्डव बल्कि हिम नेणिया के पार नही पहुँचे थ जबकि हमारे दाना तरुण घुमक्कड उसके पार कलाश मानसरावर का धावा बोलने जा रहे थे। बूढा पहलवान जिस तरह अखाडे के किनारे बठकर दाव पच सिखलाता है, वसी ही मुझसे भी आशा रखी जाती है। मै इसके बारे म घुमक्कड शास्त्र' लिख चुका हूँ। मेरे कहने के अनुसार दोना घुमक्कडो ने किसी कुली का सहारा न लेकर अपने शरीर के बल पर यात्रा करने का निश्चय किया। आवश्यक चीजें उन्होने झोला म भरकर अपनी पीठ पर रखी। शिवकुमार की पीठ पर ३० सेर से क्या कम बोझा हागा? ठाकुर महाशय के लिए उसका दो तिहाई ही काफी था। यात्रा की प्रगति के लिए आगे की प्रतीक्षा न करने के वास्ते यहा लिख देता हूँ। दाना यहाँ से पहाड ही पहाड पदल धरासू गए जहाँ वे ऋषिकेश होकर मोटर से भी जा सकते थे। उत्तर काशी, हर्सिल होते भारत के अन्तिम गाँव नेलग पहुँचे। कभी नेलग तिब्बत का अन्तिम गाँव माना जाता था यहा नहीं, बल्कि उससे २० २५ मील और इधर के जगहा पर तिब्बत वालो का दावा था। जसे शान्तिपूर्ण रीति से कम्युनिस्ट तिब्बत म चले जाए तो हमारी भी सीमा शान्तिपूर्ण रीति स

नेलंग और उसके आगे के डांडे तक पहुँच गई। कम्युनिज्म के कीटाणु उधर से भारत की ओर न बढ़ें, इसके लिए सरकार ने वहाँ पुलिस बैठा दी। दोनों घुमक्कड़ों को वहाँ रोक लिया गया, और बेतार से बातचीत होने लगी, यह ख्याल करके, कि यदि अधिकारियों की अनुकूल सम्मति आ गई, तो आगे जाने की इजाजत दे दी जाएगी। शायद एक हफ्ते तक वे वहीं रुके रहे, कोई जवाब नहीं आया। दोनों ही चाहते, तो किसी मिनिस्टर का प्रमाण पत्र ले सकते थे, किन्तु अभी तक ऐसा होता देखा नहीं गया था। निराश होकर शिवकुमार ने निश्चय किया — हम ये हथकड़ी बेड़ी लगा बन्दी बनाकर तो रखे नहीं हैं, रात को हम निकल भागेंगे। यह मंदाकिनी या हमारे पहाड़ों का इलाका नहीं था, जहाँ पगडंडियाँ का पकड़कर कुछ मील पर दूसरा गाँव मिल सकता था। बीसियों मील तक वहाँ न कोई गाँव मिलता, न पहाड़ों पर वृक्ष-वनस्पति थी। भटककर आदमी कहाँ जाता, इसका भी पता नहीं। सौभाग्य से मानसरोवर हो आया एक तरुण साधु उन्हें मिल गया, जो भी पुलिस के कारण गतिरुद्ध था। वह ठीक से पथ प्रदर्शन करेगा, इसकी तो सम्भावना नहीं थी, क्योंकि एक बार हो आया आदमी ज्यादा से ज्यादा पड़ाव वाले थोलिंग या किसी दूसरे पड़ाव वाले गाँव को जान सकता था। वहाँ पहुँचने से पहले बयाबान में दूसरी पगडंडियाँ मिल सकती थीं, जो गाँवों की तरफ नहीं, बल्कि किसी चरागाह की ओर ले जातीं। रास्ते में आदमी के मिलने की सम्भावना कम थी, और मिलने पर भी तिब्बती भाषा दोनों में से किसी को नहीं मालूम थी। तो भी दोनों ने साहस से काम लिया। आधी रात के बाद एक दिन वे भाग निकले। यह मालूम ही था, कि कांस्टेबल उनका पीछा करने के लिए नहीं आ सकते, और यदि आना भी चाहें तो तब तक वे १५ १६ मील दूर चले गए होंगे। वैसे ही हुआ। शिवकुमार थोलिंग गए, कैलाश गए, मानसरोवर की भी परिक्रमा की। पुरङ (तकलाकोट) पहुँचे, तभी उन्हें कम्युनिस्ट सैनिक मिले। फिर रहे थे वहाँ कोई पूछ-ताछ करने वाला नहीं था। कम्युनिस्ट सैनिकों ने उन्हें बड़ी खातिर से चाय पिलाई, और वे काफी प्रभावित होकर वहाँ से लौटे।

दो साल रहने और "हेन विरफ" के दोष भी मालूम होने लगे। मालूम हुआ, नाहक हमने २० हजार से ऊपर इस बंगले पर खर्च किए। अर्टेन

की तरह का कोई बगला चार-पाच सौ रुपये साल म मिल जाता। मन कहने लगा यदि यह बिक जाए ता वहा करें। मकान के सूट से बचने क प्रति पहिले पहिले दुर्भाव पदा हुआ।

२ जुलाई का दिल्ली की जामिया मिलिया क कुछ छाटे लडक अपने दा अध्यापका के साथ आए। कुछ लडके ल्हासा के मुसलमान थे और वहा के मरे परिचितो को जानते थ। तिब्बती भापा बोलने स उन्होने अधिक आत्मीयता महसूस की। ल्हासा के मुसलमान सभी जगह पुराने विचारा वाले मुसलमानो की तरह धम के मामल म बडे कट्टर हाते हैं। बौद्धा की लडकी ब्याहने के लिए हमेशा उत्सुक रहते है लेकिन मजाल क्या कि काई बौद्ध उनकी लडकी ले जाए। उनके लिए बौद्ध धम और विहार तथा उनका साहित्य काफिरा की चीज है लेकिन वहाँ उनकी सख्या दाल म नमक क बराबर है। चाहते हैं कि हमारे लडक पक्के मुसलमान हा इसके वास्ते उपयुक्त सस्था दवबन्द हा सकती थी जहा अरबी भापा और इस्लामी दशन का अध्ययन अध्यापन हाता है। लेकिन, ल्हासा के मुसलमान व्यापारी हैं, उन्ह भारत म आना-जाना पडता है। अग्रेजी के महत्त्व को समझते हैं, इसी लिए वे अपने लडको को जामिया मिलिया म भेजे हुए थ। लडका म से कुछ अब समथन की भी शक्ति रखत थ। एक लडका बडे गौर स सामन टगी माओ त्से-तुग की तस्वीर को देख रहा था। मार्क्स और लेनिन से उसका परिचय नही था। पर यह जानता था कि अब ल्हासा की सडका पर अध्यक्ष माओ की जय बाली जा रही है। मैंने कहा अरबी पढना तुम्हारे लिए धार्मिक उपयोग की चीज है किन्तु नये तिब्बत म उर्दू और अग्रेजी की उतनी उपयोगिता नही है जितनी कि तिब्बती भापा की। वहा का सारा काम तिब्बती म हा रहा है, यह उस मालूम था। लेकिन अभी उनक पिता पुरान युग क थ।

"राजस्थानी रनिवास" पर हमारी कलम नियमपूवक चल रही थी और उसके लिखे हुए को दोहराना भी जा रहे थे।

मकान का लेते वक्त मैंने गल्ती की थी जो उसे अपने नाम लिया था यद्यपि मैं जानता था कि कमला उसकी मालकिन हैं। अब उस गल्ती का सुधारने की जरूरत थी। ३१ जुलाई का मुझ बडा सताप हुआ, जब श्री

विश्वरंजनजी की सहायता से दानपत्र रजिस्टरी कमला के नाम हो गई। दो-तीन सौ के बरबाद होने का सवाल रहा बंगले पर तो कई हजार बरबाद कर चुके थे।

रजिस्टरी के बाद हम बाजार से लौट रहे थे, तभी रास्ते में कमला देहरादून से लौटती मिली। वह रही थी गर्मी के मारे जान निकल रही थी। बड़ी मुश्किल से मोटर के अड्डे तक अपने को रोककर लाई जहाँ के हो गई। 'नेपाल" लिखने की कल्पना मन में चुलबुला रही थी। वह अपने साथ पर्सिवल लैंडन के नेपाल की दो जिल्दों को ले आई थी। मैंने सोच लिया कि अब नेपाल में हाथ लगाना ही होगा और साथ ही जनवरी १६५३ में नेपाल-यात्रा भी करनी होगा।

५ जुलाई को "प्रमाणवार्तिकभाष्य' का पहला प्रूफ आया। मुँह से निकला—"बुम दूटा खुदा-खुदा करके"। १६ १७ वर्ष बाद इस ग्रन्थ का और मेरा सौभाग्य खुला।

उसी दिन शायद उसी डाक से बनारस से एक करुणाजनक चिट्ठी एक तरुण कहानीकार की मिली। उनकी पचासों कहानियाँ पत्र पत्रिकाओं में छप चुकी थीं, पाठक उन्हें पसन्द करते थे। उनका अपने और अपने मध्यम श्रेणी के छोटे से परिवार का चलाना मुश्किल था। आज यदि आधा पेट खा लेते तो कल की चिन्ता दिल को मुर्दान लगती, भद्र वर्ग के होने के कारण उसके साथ ही सम्भावितस्य चाकीर्तिर मरणादतिरिच्यते'। वह अपमान की जिन्दगी को जीना कैसे पसन्द कर सकते थे? कहानियों के लिए कोई प्रकाशक पैसा देने के लिए तैयार नहीं था। प्रकाशक भी तभी किसी पुस्तक का प्रकाशित करने के लिए तयार होता है जब उसे विश्वास होता है कि यह पुस्तक बिकेगी। नये लेखक पर वह कम विश्वास कर सकता है? मेरी सिफारिश को प्रकाशक रद्दी की टोकरी में डाल देगा, यह मुझे विश्वास हो था, लेकिन अपने तरुण सधर्मा को निराशापूर्ण पत्र लिखना उचित नहीं था।

६ जुलाई को पटना से आमा को पार्सल श्री वीरेन्द्रजी ने भेजा। चार पाँच ही खराब हुए किन्तु वे उतने मीठे नहीं थे। इस दिन उत्तरकाशी से गिरा बल्भद्रजी का भी ४ जुलाई का पत्र मिला जिससे मालूम हुआ,

६

मजदूर संघ में

लोग बराबर झूठ क्यों बोलते हैं? एक दिन एक व्यक्ति शराब पीकर आए। मुंह से शराब की गंध आ रही थी, बोलने चालने पर भी उसका असर था। मैंने शराब कभी नहीं पी और इस रेकार्ड को कायम रखना चाहता हूं, इसलिए मैंने उसमें हाथ कभी नहीं लगाया। लेकिन मैं शराब पीने को पाप नहीं समझता, न पीने वाले को दुराचारी मानता हूं। आखिर मैंने भांग तो कभी पी ही थी। उसका भी नशा होता है। आदमी अधिक पीने पर सुध-बुध भी खो बैठता है। मेरी दृष्टि में शराब और भांग में कोई अंतर नहीं। अगर मात्रा की बात है, तो दोनों के लिए एक सी है। अगर कोई संयमी नहीं है, तो उसे दया का पात्र समझना चाहिए, घृणा का नहीं। लेकिन उस दिन उस व्यक्ति ने कसम खाकर कहना शुरू किया, मैंने शराब नहीं पी, तो मुझे जरूर बुरा लगा। आखिर गंध तो साफ भेद खोल रहा था।

भदंत बोधानंद महास्थविर पहले पुरुष थे, जिन्होंने कुछ बातें बतलाते बौद्ध ग्रंथों के प्राप्ति स्थान का पता दिया। तब से हमारा सम्पर्क घनिष्ठ होता गया। उस समय (प्रथम विश्व युद्ध के मध्य में) एक धम्मपद छोड़कर और किसी बौद्ध ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद नहीं था, और न स्वतंत्र तौर से ही ऐसे ग्रंथ लिखे गए थे, जिनसे बौद्धधर्म से परिचय प्राप्त करने में सुविधा हो। बंगभाषी और बौद्ध होने से उन्हें कुछ सुभीता था। उन्होंने एक बंगला बौद्ध मासिक पत्रिका का भी मुझे पता दिया था। मैं वह

सकता है, कि बौद्ध साहित्य भडार क दरवाजे पर पहुँचाने वाले वही थे । इनका देहान्त होने पर मैंने 'नया समाज' म उनकी जीवनी पर एक छोटा सा लेख लिखा । लखनऊ म उनके बनवाए बौद्ध विहार (रिसालदार बाग) और उनकी सग्रहीत हजारो पुस्तको को मैं जब भी लखनऊ जाता हूँ देखता हूँ। और उनकी स्नेहिल मूर्ति सामने आती है। उनके शिष्य भिक्षु प्रज्ञानन्द ने अपने गुरु के विहार की रखवाली का ही भार अपने ऊपर नही लिया है बल्कि वह वहाँ से बौद्ध ग्रन्थो के प्रकाशन का भी काम कर रहे हैं।

किदवाई पिल्ले—मिस्टर किदवाई आई० सी० एस० हमारे प्रदेश के जिला-जज थे। उन्होने 'हन क्लिफ" के पास ही एक बडे बगले (आराम हौस) को खरीदा, जो यहाँ के असाधारण बगलो म है। बगला और उसके कमरे ही बहुत विशाल नही हैं, बल्कि उसम बगीचे के अलावा आगे पीछे काफी लम्बी-चौडी समतल भूमि है। इसे देखकर मुझे ख्याल आता, कि जिस समय हमारे यहाँ कम्युनिस्ट देशो की तरह बच्चो की परवरिश का ख्याल किया जाने लगेगा, तो यह उनके लिए बहुत उपयुक्त स्थान होगा। यहाँ उनके फुटबाल हाकी, कबड्डी खेलने के लिए बहुत जमीन है और बगले के आस-पास इतना बगीचा है जो फलो और फूलो की बहुत बडी वारी हो सकता है। पर यह तो भावी भारत की बात है। किदवाई पेन्शन पाए या शायद बिना पाए ही मर गए। उन्होंने एक अग्रेज महिला से विवाह किया था जो गर्मी और बरसात म बराबर यहाँ आकर रहा करती थी। बगले की मरम्मत करना उनकी शक्ति से बाहर की बात थी, उनके दामादो ने भी बगले के ऊपर दावा कर रखा था। मुकदमा चला। इसलिए भी पैसा खर्च करने म सकोच करती थी। शायद किदवाई कोई बडी सम्पत्ति छोडकर नही मरे थे। किदवाई की एक लडकी पाकिस्तान मे और एक लडका आसाम म सरकारी नौकर था। करल क श्री पिल्ले अच्छे इजीनियर थे। उन्होने भी एक अग्रेज महिला स शादी की। उनकी एक लडकी किदवाई के लडके से ब्याही थी। दोनो सन्तानें दुहरी-आग्लियन थ इसलिए व एक-दूसरे को समझ सकते थे। दोनो समधिनें एक ही बार इसी साल यहाँ आकर रही थी। उसके एक या दो साल बाद बेचारी मिसेज किदवाई जाडो म समधी क पास प्रयाग गई, और वही उनका देहान्त हो गया। लडके को

१६४२ के आंदोलन में डा० गैरोला ने हिंदू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का नेतृत्व किया था उस संघर्ष में वे प्रधान नेताओं में थे। संघर्ष के समय ही मुझे उनके बारे मे मालूम हुआ था। यहां आकर मुलाकात हुई। बाबा की पार्टी से मैं उनसे मिलने गया। वे मसूरी के मजूरों के संगठन के एक नेता थे। मैं यहां रहने लगा था, वे यहाँ गर्मियों में कुछ समय के लिए आते थे। उन्होंने जोर दिया कि आप मजूर सभा के सभापति बनें। मैं अब लेखनी के काम को छोड़कर किसी दूसरे काम में हाथ नहीं लगाना चाहता था खासकर मजूरों और किसानों के संगठन में हल्के दिल से शामिल होना मैं पसन्द नहीं करता था। लेकिन उन्होंने बाध्य किया। ३ अगस्त को यहाँ की मजूर सभा का मैं सभापति भी चुन लिया गया जिसकी, सूचना देने उसी दिन मन्त्री और उप मन्त्री मेरे पास आए। सभा में बोझा ढोने वाले और रिक्शा के मजूर शामिल थे। दोनो ही यहां बारहो महीना रहने वाले नहीं थे। बोझा ढोने वाले अधिकतर नेपाली थे और रिक्शा वाले गढवाली। गढवाली भारवाहक एक मन से अधिक बोझा उठाने में अपने को असमर्थ पाता है जबकि नेपाली के लिए दो मन बोझा उठा लेना मामूली बात है। कितने ही तीन मन से भी ऊपर उठाकर ले चलते हैं। नेपाली मजूरी कम लेने को भी तैयार थे जबकि गढवाली अपने कम बोझे को कम मजूरी में ले नहीं जा सकते थे। वर्षों की प्रतियोगिता के बाद बोझा ढोने का काम नेपा लियों के हाथ में चला गया और काम का बटवारा हो गया। बोझा केवल सैलानियों के सामान के रूप ही में नहीं होता बल्कि खाने पीने और व्यापार की दूसरी चीजें भी उसमें शामिल थी। नेपालियो में से बहुत से जाड़ों में भी यहीं रह जाते हैं। मजूरों के असली नेता इनमें संगठन करने के लिए कभी पहुँचे ही नहीं। मजूरों का संगठन एक शक्ति है जिस हथियार से दूसरे बाज कब आ सकते थे? मुझसे पहले उनकी सभा के सभापति यहां के एक करोड़पति होटलपति थे और मन्त्री कई लाखों के स्वामी यहाँ के सबसे धनी व्यापारी। खैर एक साल देखने का मैंने निश्चय कर लिया।

श्री टीकाराम कुंज हेपीवली चौका में पुलिस के राइटर कांस्टेबिल थे। वे साहित्य प्रेमी थे यह मैं पहले बतला चुका हूँ, साथ ही बड़े सरल और सज्जन पुरुष थे। रविवार को वे पुस्तकों और पत्रिकाओं को ले लौटाने

जरूर आया करते थे। दूसरे दिन भी उनका स्वागत था। १७ अगस्त को मालूम हुआ, कि उनकी बदली यहाँ से देहरादून हो गई। नौकरी-पेशा आदमी एक जगह कैसे रह सकता है, लेकिन स्नेही पुरुष का वियोग तो बुरा लगता ही है। एक बार चले जाने पर फिर नदी-नाव संयोग की तरह कहाँ मिलना? ऋषिकेश से एक बार "कुंजजी" यहाँ मिलने आए।

श्री कृष्णप्रसाद दर के कारण लॉ जर्नल प्रेस 'गढ़वाल' को प्रकाशित करने लगा था। 'कुमाऊँ' भी उनके पास चला गया था। मैं समझता था अब हिमालय-सम्बन्धी पुस्तकों के प्रकाशन की चिन्ता नहीं रहा और वे अच्छी सफाई के साथ छपेंगी। सितम्बर के पहले सप्ताह में मालूम हुआ, कि दर साहब लॉ जर्नल प्रेस से हट गए। हमारे यहाँ का पूँजीवाद यूरोप से पीछे आरम्भ हुआ, इसलिए इसमें बहुत अपरिपक्वता है। जो साधारण व्यावसायिक ईमानदारी और उदारता यूरोप वालों में देखी जाती है, उसका भी यहाँ अभाव है। लॉ-जर्नल को एक छोटे प्रेस से बहुत बड़े और कलापूर्ण छपाई करने वाले प्रेस के रूप में परिणत करने का श्रेय कृष्णप्रसादजी को है। जब उसमें आमदनी नहीं घाटे का सवाल था और बड़ी भावना के साथ ही आगे बढ़ा जा सकता था, उस समय यह सारा काम कृष्णप्रसादजी ने किया। प्रेस को बहुत बड़ा करने के स्वप्न ने उन्हें यह समझने की फुर्सत नहीं दी कि पूँजीपति पंछियों के हाथ में एक बार जाने के बाद फिर खैरियत नहीं। दर साहब को अब साथ न रखने में लाभ नहीं समझा, हालाँकि यह बात पीछे गलत साबित हुई। क्योंकि दर साहब के हटने के कुछ ही समय बाद प्रेस अपनी पुरानी अर्जित कीर्ति को खो बैठा। यह एक ही उदाहरण नहीं है। पटना के अंग्रेजी दैनिक 'सर्चलाइट' को खून-पसीना एक करके मुरलीबाबू ने खड़ा और बढ़ाया था। पीछे पूँजीपति मालिकों ने उनकी भी वही हालत की। मेरे लिए तो यह और भी चिन्तनीय बात थी। 'कुमाऊँ' को मानो पर पत्र करके नए प्रबन्धकों ने लौटा दिया, और पत्र व्यवहार में इतनी अभद्रता का परिचय कभी मुझे किसी प्रकाशक से नहीं हुआ था। दर साहब अगर रहते, तो दार्जिलिंग से जम्मू-कश्मीर की सीमा तक के हिमालय-सम्बन्धी मेरी लिखी हुई पुस्तकें अब से पहले ही प्रकाशित हो गई होतीं। उस समय बिल्कुल सम्भव था कि मैं जम्मू-कश्मीर और

भूटान आसाम के हिमालय पर पुस्तकें लिखकर सारे हिमालय का परिचय हिंदी पाठकों के सामने रख सकता।

पुस्तकों के प्रकाशन की अड़चन देखकर अब दिमाग में ख़याल आया, कि क्यों न स्वयं प्रकाशक बना जाए। कम-से-कम तजर्बा करने में क्या हर्ज है।

१९ सितम्बर को शिवकुमार आ पहुँचे। उन्होंने नेलंग के रास्ते थोलिंग, कैलाश मानसरोवर होते गरब्याग और अल्मोड़ा के रास्ते दिल्ली जाने की अपनी सारी यात्रा की बातें बतलाई। कुछ गम्भीरता की कमी तो जरूर है लेकिन इस तरुण के साहस की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता। उन्होंने और किसी यात्रा के बारे में सलाह मांगी, मैंने कहा, अल्मोड़ा जिले की सीमा से घुसकर सारे नेपाल में होते दार्जिलिंग निकल जाओ।

सितम्बर के अन्त में दूसरा सैलानी-सीजन आरम्भ हो जाता है। ३० सितम्बर को स्वामी सत्यदेवजी और श्री मुकुन्दीलालजी से मुलाकात हुई। स्वामीजी को देखकर हमेशा मुझे उनका बनारस वाला रूप और सरस्वती में प्रकाशित होने वाले उनके स्फूर्तिदायक यात्रा-सम्बन्धी लेख याद आते हैं। बिना जाने उनके यात्रा-सम्बन्धी लेखों ने मुझे प्रेरणा दी, यह कहूँ तो अनुचित नहीं होगा। इस प्रकार मैं अपने को उनका ऋणी मानता हूँ। जब कभी भी भेंट होती है तो मुझे उनकी बातें सुनने में बड़ा आनन्द आता है। वर्षों से वे आंखों से वंचित हैं किन्तु आवाज में अब भी वही कड़क है।

किसी कृति का आरम्भ यद्यपि क्रमशः होता है किन्तु होता है अभाव से ही। इसका उदाहरण मेरा ऐतिहासिक उपन्यास 'विस्मृत यात्री' है जो कि इसी साल (१९५६) प्रकाशित हुआ। १९५१ में नरेन्द्र यश ने अपनी ओर मुझे आकृष्ट किया। फिर ख़याल में आने लगा कि ऐसे महान् घुमक्कड़ को लेकर कोई उपन्यास लिखना चाहिए। उपन्यास लिखने से पहले ३० सितम्बर को मैंने 'घुमक्कड़ नरेन्द्र' पर एक लेख लिखा। दो वर्ष और लगे, उस उपन्यास के रूप में कागज पर उतरने में। 'राजस्थानी निवास' का भी आरम्भ इसी तरह अभाव से हुआ। मसूरी आने से पहले यदि कोई कहता कि आप इस विषय पर कभी पुस्तक लिखेंगे, तो मैं मानने के लिए तैयार न होता। अब वह ग्रंथ तैयार हो गया था, और दिल्ली के हिंदु

स्तान' साप्ताहिक ने धारावाहिक रूप से उसे निकालने के लिए लिखा था।

मजूर सभा के सभापति हुए तो उसके लिए कुछ करना भी जरूरी था। मजूरों की सबसे बडी शिकायत यह थी कि उन्हे बरसात मे बाहर भीगना पडता है और रिक्शा के रखने के लिए कोई जगह नही है। कुछ स्थानो पर टिन के घरो के बनाने की आवश्यकता थी। हम दो-तीन आदमियो के साथ उस समय की नगरपालिका के मुख्याधिकारी तिवारीजी से मिलने गये। अभी सरकार ने म्युनिसिपल कमेटी को बर्खास्त करके प्रबन्ध अपने हाथ मे ले रखा था और प्रबन्ध एक योग्य डिप्टी-कलक्टर के हाथ मे दे दिया था। वैसे सर्वेसर्वा देहरादून के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे, मजूरों की शिकायतें हमने रखी, यह भी बतलाया कि इन इन स्थानो पर रिक्शा शेड बनने चाहिएँ। हमारे मन्त्री और उप-मन्त्री भी बीच मे बातो को बतला रहे थे। मेरी तो वह इज्जत करने के लिए तैयार थे, क्योकि मैं प्रसिद्ध व्यक्ति था, पर जब हमारे मन्त्री और उप मन्त्री को उन्होने मुंह कह डाला तो मुझे बहुत बुरा लगा। मुझे डर लगा मेरे साथी भी कुछ जवाब न दे बैठें। लेकिन उन्होने बडे जब्त से काम लिया। नौकरशाही मे यह बहुत बुराई है कि वहाँ दास और स्वामी का ही क्रम है। अपने से ऊपर के अफसर या मन्त्री स्वामी हैं। उनकी चरण धूलि सिर पर रखना नौकरशाह अपना धर्म समझता है। जब से अंग्रेज गये हैं तब से तो सचमुच ही,-चरण धूलि ली जाने लगा है। जो स्वामी नही और अपने समान वर्ग के नही हैं, वे सभी दास हैं उनके साथ उसी तरह का बर्ताव होना चाहिये। भला ये लोग जनता के साथ आत्मीयता कैसे स्थापित कर सकते हैं! जान पडता है, इस सारे सडे ढाँचे को उखाड फेंकने के सिवा और कोई रास्ता नही।

वैसे भैयाजी अक्तूबर के अन्त तक रहा करते थे लेकिन अब के साल भाभीजी की मानसिक दशा के कारण रहने की इच्छा नही हुई, और वह २३ सितम्बर को ही यहाँ से अमृतसर चले गये। उस दिन हम भी विदाई देने के लिए गये थे। शकराचार्य का जलूस निकल रहा था। जोशी मठ के शंकराचार्य अब की वर्षावास मे यहीं रहे। शिक्षा के विस्तार के साथ साथ ज्ञान ही का नही अज्ञान का भी विस्तार होता है प्रकाश का नहीं मूढ़ता का भी प्रसार होता है। शिक्षा का स्तर ऊँचा होने के साथ यह आवश्यक

हो जाता है। मुझे मालूम है जब मैं पहली बार घुमक्कडी के लिए निकल कर मुरादाबाद पहुंचा था तो वहां पाठकजी के सुपुत्र ने मेरे साथी दहाती अनपढ साधु को बड़ा तुच्छ दृष्टि से देखा था, और उसे डरा धमकाकर भगा दिया था। किंतु वही किसी आधुनिक शिक्षित साधु के सामने साष्टांग पडने के लिए तयार थे। शंकराचार्य अंग्रेजी के विद्वान् नहीं थे लेकिन संस्कृत के अच्छे पण्डित थे और बोलने चालने का ढंग भी उन्हें मालूम था। उनके पास दिल्ली से अपनी कार पर लोग सत्संग के लिए आते थे। आई० सी० एस० पुरुष के बारे में तो नहीं लेकिन आई० सी० एस० की स्त्री के आने के बारे में जानता हूं। ऐसे ब्रह्मलीन पुरुष विलासपुरी में क्या आते हैं उनके लिए तो तपोभूमियां और तप पून पुरियां उपयुक्त होती। पर भक्त ही भगवान् को नहीं ढूंढते बल्कि भगवान् भी भक्तों को ढूंढा करते हैं। वे पहले हपी वली के ही एक बडे बंगले में रहते थे। किरायेदार आ जाने पर मालिक ने उन्हें बाहर के घर में रख दिया। यह अपमानजनक बात थी लेकिन पैसे का सवाल था। फिर वह कुल्हडी में एक राजा साहब के बंगले में चले गए। उनके साथ १२ १४ आदमियों की मण्डली रहती थी। व्याख्यान के लिए लौड स्पीकर लगाया जाता था। कुछ चढावा चढाने पर इन्कार होने से लोग समझते थे कि वह किसी से कुछ नहीं लेते लेकिन इसका मतलब यही था कि वह दस बीस रुपया का लेना आवश्यक नहीं समझते थे। यहां से जाने के बाद सहारनपुर में ७० ८० हजार की उनके यहां चोरी हो गई। दाई से पेट थोडे ही छिपता है। २४ घंटे साथ रहनेवाले भक्तों ने सोचा होगा इतना रुपया उनके पास रहने की जरूरत नहीं इस लिए वह हलका करके चले गए। पुलिस ने किसी को पकड़ा या नहीं यह नहीं मालूम। हां, यह पता लगा कि दिल्ली में जाने पर किसी भक्त ने मैसूर से चन्दन का सिंहासन बनवाकर उन्हें अर्पित किया था। जगद्गुरु का चौमासा खतम हो रहा था, और उसी विदाई के लिए यह जलूस निकाला गया था। जगह जगह तोरण वंदनवार लगे। लोगों ने आरती उतारी।

सीजन भर हमारे यहाँ बच्चू काम करता रहा। पहली जगह जिन लोगों के यहां काम किया उनकी सिफारिशी चिट्ठियाँ उसके पास थीं, और हमारे रिल्डेर वाले पडोसी ने भी उसकी तारीफ करते हुए यह बतलाया

था कि वह हमारे नौकर का सम्बन्धी है। यदि रसोइया हरिजन हो तो एक विशेष मानसिक आनन्द मिलता है। मैंने उसे रख लिया। खाना अच्छा बनाता था, मुस्तैद भी था। कमला ने भण्डार भी उसी को सुपुर्द कर दिया था। २४ सितम्बर को मालूम हुआ, वह भाग गया। देखा जाने लगा तो मालूम हुआ कि टिन के दूध और खाने की दूसरी चीजें सब गायब हैं। कुछ बरतन भी लापता हैं। दो अच्छी अच्छी कटोरियाँ एक बार गायब हो गई थी, तो उनमें लक्ष्मीचौक में आये एक मिस्त्री मिश्र को लच्ची पर लाछन लगाया था। क्या-क्या चीजें उसने गायब कीं, इसका पता उसी दिन नहीं मालूम हो सका। पास-पड़ोस में पूछने पर मालूम हुआ कि वह यहाँ से आटा चावल आलू बराबर ले जाकर बेचा करता था। रजाई-दरी हमारे यहाँ से गायब थी। चौकीदार बरयामसिंह से मालूम हुआ कि उनसे कुछ रुपया उधार ले गया और गनिशाला ने भी रुपये उधार देने की बात की। भिक्खू शाला से मालूम हुआ कि वह रात को १० बजे यहाँ आया था। अन्त में यह भी पता लगा कि वह 'हालीवुड' के चौकीदार की बीबी को भी भगा ले गया। चौकीदार ने बहुत दौड़ धूप की, लेकिन बच्चू कहाँ से हाथ आता ?

डा० किरणकुमारी गुप्ता के पति श्री बाबूलाल गुप्त एम० ए० ही रह गये थे। सचमुच ही पति के लिए विद्या में अपनी पत्नी से एक सीढ़ी नीचे रहना अपमान की बात थी, और गुप्तजी पत्नी से बुद्धि में कमजोर नहीं थे। उन्होंने अपने पी एच० डी० का विषय 'हिन्दी में भारतनाट्य' लिया। वह हल्के दिल से अपने निबन्ध में नहीं जुटे, जैसा कि आजकल अक्सर देखा जाता है। अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए कलकत्ता भी गये। मैंने उनको कुछ परामर्श दिया था। अब उन्हें अपनी थीसिस पास करानी थी, उससे पहले मुझे भी सिलसिलेवार सुधार कराना चाहते थे। मैं भी एक परीक्षक था। ३० सितम्बर को वह आये और उनके निबन्ध को देखकर कुछ सुझाव दिये।

सत्र की छोटी मानव के मिलनेवालों में डा० रामचन्द्र जोशी और उनके करीब बाबू शिवप्रसादजी थे। बाबू शिवप्रसाद अभ्यास के जमाने में रहते थे, और उन्होंने आजादी में काम किया था। देहरादून में जन्म हुआ

गाँव के पास रहनेवाले होने से वह उनके घनिष्ठ सम्बन्ध में आये थे, और हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक सम्बन्ध में बहुत उदार दृष्टि रखते थे। उर्दू पढ़ना बिहार में बहुत कम देखा जाता है और शिवप्रताप बाबू को उसका भी परिचय था। उनसे बिहार के बारे में बातें मालूम हुई। वह तरुण चेहरा मुझे याद आता था जो बुढ़ापे में परिवर्तित हो गया था।

'किल्डेर' बेचने के लिए पुत्र बहिन बहुत चिंतित थी। जाड़ा सिर पर आ रहा था। जाड़े से बड़ी बहन के लिए बड़ा डर था। श्रीमती मोहिनी जुत्शी ५ अक्तूबर को आई तो उनसे भी मैंने बात की। मैं 'किल्डेर' का आनरेरी एजेन्ट बन गया था। उसमें स्वार्थ यही था कि कोई अच्छा पड़ोसी आकर बस जाय। २८ हजार में वह मिल सकता था। जुत्शी दम्पती ने उसे देखा उन्हें भी पसन्द आया। मैंने कहा, ऊपर नीचे चार परिवारों के लिए अलग-अलग सूट हैं अगर साढ़े छ हजार रुपया लगाने के लिए चार व्यक्ति तयार हो जायें तो इसे मुफ्त ही समझिए। लेकिन साझे में रहना अभी हमारे यहाँ पसन्द नहीं किया जाता। साझे में रहने के लिए एक दूसरे के साथ जिस सहिष्णुता का बर्ताव करना चाहिए, उसे हमने सीखा नहीं। ९ अक्तूबर को श्रीमती भटनागर ने बातचीत करके २४ हजार पर किल्डेर का लेना तै कर लिया। हमने समझा श्रीमती भटनागर और प्रिंसिपल कालिका प्रसाद अब हमारे पड़ोसी बन जाएँगे लेकिन निश्चित करके भी बात पूरी नहीं हो सकी। उस सीजन में प्राय पूरे समय जुत्शी परिवार यहीं रहा, और रविवार को उनके दर्शन जरूर हुआ करते थे। मोहिनीजी शायरा ही नहीं है बल्कि कहानियाँ भी उन्होंने लिखी हैं। उन्होंने अपनी कई कहानियाँ सुनाई। विचार आधुनिक और बड़े उदार थे। कहानियाँ सभी स्त्रियों की समस्याओं को लेकर थी, और उनकी हमेशा कोशिश रही कि अपनी हिराइन के ऊपर पाठक की कृपा को आकृष्ट न किया जाए बल्कि आत्मगौरव और आत्मावलम्बन के लिए किये गए प्रयत्न की पाठक दाद दें। जुत्शीजी इन्जीनियर हैं। वह रहे थे कि मुझे थोड़ी-सी जमीन मिल जाय तो मैं पाँच-छ हजार में उसी पर एक छोटा-सा साफ सुथरा बंगला खड़ा कर दूंगा। देवदार की लकड़ियों की अधिकता के साथ वन बंगले का मैं बड़ा प्रशंसक हूँ। कलाकार रायरिक के नगर आश्रम में एक ऐसे ही

बगले म रहा था, जहाँ देवदार की भीनी भीनी सुगध उसके दरो दीवार से आकर चित्त को प्रसन्न रखती थी।

१५ अक्तूबर को प्रभा बहिन आ गई। सरदार पृथिवीसिंह का हाल-चाल बतलाया। अजमेरी (अम्बई) म एक बालिका विद्यालय म वे अध्यापिका थी। वहाँ से बहुत-सी लडकियो को सैर कराने के लिए लाई थी। उनसे मालूम हुआ, कि सरदार चीन गये हुए है। उन्हे उसी दिन मसूरी देखकर लौट जाना था। मैं भी उनके साथ लण्ढौर के आखिरी मकान मलिंगार तक गया, फिर वल्लभ होटल तक पहुँचाकर लौट आया।

१७ अक्तूबर को माचवेजी मधु, शरद, बाबा और दूना के साथ आए। बाबा (असग) कभी अपने नाम को अंचिगा कहता था, अब वह शुद्ध बोलने लगा था। मराठी और हिन्दी दोनो पर अधिकार था। अंचिगा कहने को वह आत्मगौरव पर प्रहार मानता था। उसका स्थान लेने के लिए बहिन दूना तैयार थी। मधु—माचवेजी के भतीजे—इलाहाबाद युनिवर्सिटी म साइस के अच्छे विद्यार्थी थे, अब वे दिल्ली की अनुसन्धानशाला म काम कर रहे थे। ये कुछ ही दिनो के लिए मसूरी आए थे। हमारे घर मे बच्चो से चहल-पहल होने लगी।

प्रकाशन कार्य का आरम्भ हमने 'राजस्थानी रनिवास' से करने का निश्चय किया। श्री विश्वरजन अपने प्रकाशन के काम से लखनऊ आ रहे थे उन्हें आठ सौ रुपये का ड्राफ्ट नेशनल हेरल्ड प्रेस के लिए दे दिया। दो हजार से अधिक इस पुस्तक पर लगे। उसके बाद 'वोल्गा से गगा' के अग्रेजी अनुवाद को भी हमने छपवाया, अन्त म तीसरी पुस्तक, "बहुरगी मधुपुरी" प्रकाशित हुई। प्रकाशन म मैं सफल नहीं हो सकता था क्योकि उसके लिए पूरा समय नहीं दे सकता था। प्रकाशन करने से भी बढकर विक्रय का प्रबन्ध करना था। जब तक एक दजन पुस्तकें न हो तब तक अपना सफरी एजेट रखना मुश्किल है। सफरी एजेंट हमने रखा उन्हे कुछ अग्रिम दिया, और अफसोस यह कि डा० सत्यकेतु से भी अपने विश्वास पर अग्रिम दिलवाया। वह सब पीकर बैठ गए।

१६ अक्तूबर के रविवार को कमलाजी के साथ उनकी सहपाठिनी गार्गी गुप्ता आई। उन्होने तीन चार साल पहले एम० ए० किया था,

स्वास्थ्य खराब था। कहने लगी मुझे कोई काम बतलाइये। वह सहारनपुर के तीनरो गाव की थी। परिवार दादा के समय से आयसमाजी था, जो लोक कला के लिए हानिकारक बात थी। तो भी मैंने कहा आप कौरवो लोक गीता और लोक कथाओं को जमा करें। यदि हजार जमा करके ला सकें, तो मैं कुछ और बतलाऊँगा। मैंने इस तरह का परामर्श कितनों को दिया होगा इसलिए मुझे कैसे विश्वास हो सकता था सत्याजी उस बात को सीरियसली लेंगी ?

२० अक्तूबर को पेकिंग से डा० जगदीशचन्द्र जैन का पत्र आया। वे वहाँ युनिवर्सिटी में हिन्दी पढ़ाने गए थे। अभी चीन का सारा ध्यान आर्थिक समस्याओं को हल करने में लगा था। इस समय सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक अनुसंधान सम्बन्धी कामों में पूरा ध्यान देने के लिए उसके पास फुरसत कहाँ थी। उन्होंने लिखा था, यहाँ अभी अनुसंधान का वातावरण नहीं है। वह इस विचार से गए थे कि यदि अनुकूल हो, तो अपने सारे परिवार को वहाँ बुला लेंगे साथ में अपनी बड़ी लड़की को ही ले गए थे।

१७ नवम्बर तक अब सर्दी बढ़ गई थी। ऋतु परिवर्तन का असर पड़ा और नाक जुकाम के साथ पकी-सी मालूम होती थी। जरा भी घाव या फोड़े का संदेह हो तो तुरन्त उसकी तरफ ध्यान देना चाहिए, यह मैं सीख गया था। पेनिसिलिन की नाक छूने में भी दर्द होता था और ठुड्डी में भी एक जगह घाव था। पेनिसिलिन और इन्सुलिन लेते चारपाई पर पड़े रहना आवश्यक था। २० तारीख से हो कुछ आराम मालूम होने लगा।

मसूरी में श्री भटनागर नायब-तहसीलदार थे। बड़े भद्र आदमी थे। नायब-तहसीलदार भर्ती हुए और अब एकाध साल में नायब-तहसीलदार के पद से ही पेन्शन लेने वाले थे। उनकी लड़की शकुन्तला एक स्कूल में पढ़ाती थी। भटनागरजी बाद के लिए कोई काम ढूँढ रहे थे। बुढ़ापे के साथ जीवन की निश्चिन्तता हमारे देश में क्या किसी भी पूंजीवादी देश में असम्भव है। पेन्शन के बाद वह कभी किसी एजेंट के यहाँ नौकरी करते रहे, और कभी किसी के प्राइवेट सेक्रेटरी बने। चिन्ता के भारी भार को एकाध हो साल बाद मृत्यु ने उतार दिया उनकी पत्नी और पुत्री निरालम्ब हो गईं।

एक धनाढ्य तरुण विधवा के बारे में मालूम हुआ, कि वह अपने सजा

तीय एक डाक्टर से ब्याह करना चाहती है, जिसके बच्चे और दूसरी पत्नी मौजूद हैं। इतना बड़ा कदम तीन-चार महीने के परिचय से ही उन्होंने उठाने का निश्चय किया था। मुझे इसके लिए बहुत खेद हुआ। लागों की सम्पत्ति का आज वह मालकिन हैं। नवीन सम्बन्ध स्थापित होते ही उनके दायादों का मौका मिल जाएगा, जो उन्होंने फूटी आंखों देखना नहीं चाहते। उनकी घनिष्ठ परिचिता ने भी इस अनुभव किया, और मैंने भी जोर देकर उनसे कहा कि उन्हें समझावें, कम-से-कम छः महीने के लिए रुक जाएँ। एक और उदाहरण हम लोगों के सामने था, जबकि एक डाक्टर महिला ने दूसरे ऐसे ही डाक्टर से ब्याह किया। आज जिन्दगी भर उसे पछताना पड़ रहा है। आज के समाज में तो स्त्रियाँ हाथ पैर बाँधकर पुरुषों के सामने पटक दी गई हैं। बड़ी खुशी हुई, जब मालूम हुआ कि उक्त तरुणी ने अपने ख्याल को बदल लिया। अब अपने समाज की सेवा में लगी हुई हैं।

चार्लविल होटल हमारे बंगले से केन्ट दो फर्लांग पर ही है। सवाय और चार्लविल दोनों यहाँ के बहुत बड़े होटल हैं जिनमें सौ-सौ कमरे हैं। चार्लविल का यह भी अभिमान है कि पंचम जार्ज के दिल्ली में गद्दी पर बैठने के समय उनकी रानी यहाँ कुछ दिनों रही थीं। अंग्रेजों के शासनकाल में उस कमरे को खाली रखा जाता था, और वहाँ राजा रानी की तस्वीर विराजती थी। ऐसे होटल में डाकखाने का रहना जरूरी था। पहले चार्लविल का डाकखाना बारहों महीने रहता, लेकिन अब कितने ही वर्षों से उसे १ अप्रैल से ३१ अक्तूबर को बन्द कर दिया जाता था। मैंने डाकखाने के अधिकारियों में लिखा पढ़ी की तो ऊपर से जवाब आया, घाटे को यदि आप पूरा करने के लिए तैयार हों, तो हम खोल सकते हैं। इसका अर्थ यही था, कि हम खोलना नहीं चाहते। पुस्तकों के प्रूफ बराबर आते थे। प्रमाणवार्तिकभाष्य' के कई फार्मों का प्रूफ आया, जिसे मैंने अपने रमादेवा गुराहाट में हाथों डालने के लिए भेज दिया। वह चार्लविल के डाकखाने के लेटर-बक्स में डाल आया। प्रूफ वापस कितने ही दिनों तक इन्तिजार करने पर फिर लिखा। पूछताछ में पूछने पर मालूम हुआ, कि वह सनी के लेटर बक्स में डाल आया जो १ अप्रैल १६५३ को ही बन्द हो गया। बड़े पोस्टमास्टर के पास गए, उन्होंने आदमी भेजकर उसे निकलवाया।

३ दिसम्बर को मालूम हुआ कि प० रामदहीन मिश्र अब नहीं रहे १ दिसम्बर को उनका देहात हो गया। ६८ वर्ष की आयु की मृत्यु अकाल मृत्यु नहीं होती, किन्तु वह अब भी कार्यविरत नहीं हुए थे। संस्कृत के विद्वान् और हाई स्कूल के अध्यापक से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह व्यवसाय की बड़ी कल्पना करेंगे। उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध के समय ही पुस्तक लिखने और फिर प्रकाशन का काम हाथ में ले लिया। आज वह पटना के सबसे बड़े प्रकाशक हो गए। उन्होंने अपने संस्कृत साहित्य के गम्भीर ज्ञान का लाभ हिन्दी वालों को देने के लिए कई पुस्तकें लिखीं जो हमेशा याद रहेंगी। मेरी भी दो पुस्तकों के एक संस्करण को उन्होंने प्रकाशित किया था। उनसे और उनके सुपुत्र देवकुमार मिश्र से सदा मेरी आत्मीयता रही। एक एक करके पके आमों को टपकना ही होता है किन्तु छूटी डालियाँ कुछ समय तक जरूर खटकती हैं।

८ दिसम्बर को फीजी के ज्ञानीदास की चिट्ठी आई। वह १ दिसम्बर को डाली हुई थी। उपनिवेशों में बसे भारतीयों के घनिष्ठ सम्पर्क में आने की मेरी हमेशा आकांक्षा रही जिसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकी और अब तो शायद उसकी तमादी भी लग गई है। तो भी जब कभी कोई ऐसा अवसर मिलता है तो मैं सम्पर्क स्थापित करने से बाज नहीं आता। उनके पास मैंने कुछ अपनी किताबें भेजी और उन्होंने भी वहाँ के कुछ प्रकाशन भेजे। उनसे मालूम होता था कि फीजी में हमारे लोगों ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। वहाँ आधे के करीब संख्या उनकी है। कुली बनकर गए हमारे भोजपुरी और अवधी क्षेत्र के लोग अपनी तीसरी पीढ़ी में सभ्य और सुसंस्कृत बन दीख रहे हैं। उनके साथ अधिक जीवित सम्बन्ध स्थापित करने की जरूरत है। वस भारत के स्वतन्त्र होने के बाद हमारी सरकार के प्रतिनिधि इस दिशा में कुछ काम कर रहे हैं। अंग्रेज उपनिवेशकों ने अपने आरम्भिक जीवन पर बहुत सुन्दर उपन्यास और कहानियाँ लिखीं हमारे लोग भी वैसा क्यों नहीं करते? डा० बाबूलाल गुप्ता ने लंका में भारतीयों के बारे में अपना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। मैंने उन्हें सुझाव दिया था, कि आप डी० लिट० के लिए उपनिवेशों में भारतीय' ले और इस पर एक बड़ा ग्रन्थ लिखें। वस हमारे लोगों का ध्यान इस तरफ जाएगा जरूर

लेकिन उसे जल्दी जाना चाहिए, ताकि बहुत-सी अभी भी उपलब्ध सामग्री नष्ट न हो जाए।

१२ दिसम्बर को सीवान के बाबू व्रजनाथप्रसाद किसी विवाह के सम्बन्ध मे देहरादून आकर हमारे पास भी आए। ७० वर्ष के हो गए थे, लेकिन मुझे तो वह वैसे ही मालूम होते थे जैसा बीस वर्ष पहले देखा था। आर्यसमाज के बिहार मे वह अग्रदूत थे और सीवान (छपरा) मे उन्होंने डी० ए० वी० हाई स्कूल खोल कर उसे डिग्री कालेज तक पहुँचा दिया उनका जीवन तपोमय है। सभी उनका सम्मान करते हैं। पंजाब से प्रौढ आर्यसमाजियों को दाढी रखने की बीमारी लगी, वह बिहार मे व्रजनाथबाबू तक पहुँच गई। दाढी पूरी सफेद है। दुर्बल वह हमेशा ही रहे, लेकिन स्वास्थ्य की शिकायत कभी नही हुई। देर तक छपरा और सीवान के बारे में बात होती रही। मालूम हुआ, दो साल से छपरा जिले में यह दूसरा डिग्री कालेज चल रहा है। तीन सौ से ऊपर लड़के हैं, अभी भी दो हजार रुपया मासिक का घाटा लग रहा है। बतला रहे थे कि आर्थिक कठिनाइयाँ भयंकर रूप से लोगों को पीडित कर रही हैं, खून और डकैती आम हो गई है, जिसके कारण सम्पन्न लोग गाँवों को छोड़कर शहरों मे आ रहे हैं।

लोक भाषाओं और लोक-साहित्य की ओर विशेष रुचि के कारण कहीं भी इस विषय मे यदि कोई काम होता हो, तो मैं उससे प्रसन्न ही नही होता बल्कि भरसक प्रोत्साहन और सहायता भी देना चाहता हूँ। हिन्दी-क्षेत्र की सभी लोक भाषाओं के प्रेमी इसे जानते हैं, और वह बराबर अपनी कृतियों और कठिनाइयों को मेरे पास भेजते हैं। श्री रामनारायण उपाध्याय ने निमाड़ी लोक गीतों का एक संग्रह १७ दिसम्बर को मेरे पास भेजा। अभी अच्छे प्रकाशक ऐसी कृतियों को छापने के लिए तैयार नही हैं इसलिए अच्छी छपाई न होने की शिकायत नहीं करनी चाहिए। उपाध्यायजी के संगृहीत गीत बहुत सुन्दर थे। मैं उन्हें पढ गया। ढोला मारू (पति प्रियतम) बन्नाबन्नी (दुल्हा-दुल्हन) आदि जिनमे हो उसमें कुछ कौरवी हरियानी और मारवाड़ी से मिलते हैं। जिस तरह पजाबी या मध्यदेशीय भाषा ननाताल की तराई से लेकर मध्यदेश मे मराठी और छत्तीसगढ़ी की सीमा तक चली गई, वैसे ही उसकी पश्चिमी पड़ोसी कौरवी स्थानीय परिवर्तनों

के साथ राजस्थानी मालवी होते नीमाडी तक चली गई। वस्तुत नीमाडी और मालवी एक ही भाषा है। इसका सबूत इस संग्रह के निम्न वाक्यों से मालूम होता है

वनी म्हारा देस मालवा, मुलक नेमाड गावटा को छे रिनवास। कौरवी है हरियानी में से मारवाडी मालवी निमाडी में छे हो गया है।

१८ दिसम्बर को नागरी प्रचारिणी सभा के मन्त्री ने सूचित किया कि सभा ने मुझे 'वाचस्पत्यसदस्य' निर्वाचित किया। लिखा "शिरोधार्य है।"

कमला ने इस साल साहित्यरत्न की परीक्षा का फार्म भरा था। परीक्षा देने के लिए २४ दिसम्बर को वह देहरादून गई। और वहाँ से ३१ दिसम्बर को लौटी। वह हमेशा ही परीक्षा देने के बाद निराशा प्रकट करती थी पर लिखने और समझाने की शक्ति उनमें है। परीक्षक अपने दूसरे हजारों परीक्षार्थियों के स्तर को देखकर पास फेल करता है, इसलिए मुझे पास होने में सन्देह नहीं था।

२६ दिसम्बर को छाती में हल्का हल्का दर्द जब-तब मालूम होने लगा। सर्दी के कारण होगा। सोचने लगा, यदि लोमडी की छाल का गम जाकेट इस्तेमाल करूँ तो शायद दर्द कम हो। दो तीन दिन तक दर्द रहा, उसके बाद बन्द हो गया। आदमी को सिर पर रहते समय ही रोग याद आता है।

राजस्थान में राजपूत जंगली सूअर के मांस को बहुत पसन्द करते हैं। हमारे पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में तो इसे वैसे ही अभक्ष्य समझते हैं जैसे गाँव के सूअर को। राजस्थान में राजा और ठाकुर जंगली सूअरों का शिकार दूसरे को करने नहीं देते थे। इसलिए उनके लिए वह बहुत सुलभ थे। ठाकुरानी गुलाबकुमारी ने २६ दिसम्बर को आठ दस सेर सूअर के मांस भेजे। उनके कहने से मालूम होता था कि वह कनस्तर का कनस्तर भेजा जा सकता है, लेकिन उन्होंने यह ख्याल नहीं किया था कि रियासतों और जागीरों के उठने के बाद लोग जंगली सूअरों के शिकार में बाज नहीं आएँगे। खेतों के चर जाने पर भी पहले डण्डे के भय से हाथ नहीं उठाते थे। सचमुच ही एक दो साल बाद सूअरों का उच्छेद सा हो गया और 'शूकर मार्दव' मिलना मुश्किल हो गया।

साल का अन्तिम दिन ३१ दिसम्बर था। कमला देहरादून से भागती

हुई आई। आज माल का स्मा आगा किया। ' यात्रा के पन्ने" और "हम म पच्चीस मास छप कर निकल गय। ' राजस्थानी रनिवास" छप चुकी है, प्रेस म बाहर आन की देर है। इस साल म ग्रथ लिखे हैं—(१) "मध्य एसिया का इतिहास (२)," (२) 'गढ़वाल (३) "नेपाल'। डेढ हजार पृष्ठ लिखना असतोषजनक नहीं कहा कहा जा सकता।

'नेपाल म प्राप्य सामग्री का इस्तेमाल कर चुका था, और चाहता था नेपाल जान म पहले उस पुस्तकाकार बना लूँ। इसम भी सफलता हुई थी।

इस साल आर्थिक कठिनाइयो के सामना करने की सम्भावना थी, लेकिन सब मिलाकर नौ हजार स कुछ ऊपर आमदनी हुई। जमा करना तो मैंने सीखा नहीं है। प्रकाशन हाथ म लेन स खर्च बढ गया।

दाम्पत्य जीवन के बारे म आचार्य गोवर्धन (११०० ई०) न कितना सुन्दर लिखा है—

' निष्कारणापराधं निष्कारणकलहरोषपरितापम्।
सामान्यमरणजीवनसुखदुःखं जयति दाम्पत्यम्।"

(जिसम अकारण अपराध अकारण कलह रोष परिताप हैं।
एक साथ मरण जीवन, सुख-दुख वाला दाम्पत्य (जीवन) जिंदाबाद)

कमला और मेरे स्वभाव म अन्तर है कभी विरोध भी है। जहाँ बुद्धि के पीछे जीभ मूँद कर जान क लिए तैयार हूँ, वहाँ कमला उसका धता बताती है। इस पर मुझे आश्चर्य होता है। उन्हे मुझ पर आश्चर्य होता है। कि मैं क्या नहीं समझ पाता। लेकिन आचार्य के कहन क अनुसार रोष के परिताप म बदलने म देर नहीं होती।

आचार्य न एक और भी बात कही है, जो उस समय म उचित माना जाती थी, जब कि स्त्री की समानता का कोई विचार न आया था, न समाज म उनका स्थान था—

' गृहिणीगुणेषु गणिता विनय सेवा विधेयतादि गुणा।
मान प्रभुता सौम्य विभूषण वामनयनानाम्।'

(गृहिणी क गुणो म नम्रता सेवा और आज्ञाकारिता य गुण गिने गए हैं। सुनयनाओ क मान, प्रभुता और सौम्य को भूषण कहा गया है।')

७

नेपाल मे

१९५३ का पहला दिन आया। सवेरे देखा आकाश घन बादलो से ढका हुआ है। दोपहर तक वर्षा होती रही और तापमान नीचे गिरता गया। फिर बजरी पडी और अत म हिम ने गिर कर सारे भूभाग को ढाँक दिया। सर्दी कल से ही बहुत थी और कमरे को आग जलाकर गरम किया गया था। अगले दिन और भी अधिक बर्फ दिखाई पडी। पिछले दो सालो म इतनी बर्फ नही पडी थी। दो-तीन इच से कम मोटी क्या होगी? सवेरे बर्फ का बडा सुन्दर दृश्य था। पत्ते पत्ते और झाड की लौहजालियाँ रुपहली हो गई थी। जब तक यह दृश्य मसूरी से बाहर से कोई देखने के लिए आए तब तक गायब हो जाता है। क्योकि पतली बर्फ ७ ८ बजे के बाद पत्तो का नहीं मढे रह सकती। दूर से वृक्ष देखने म सामान्यत सटे मालूम होते है लेकिन ऐसे समय बर्फ पीछे आकर हरेक वृक्ष को अलग-अलग कर देती है। मसूरी म रहने का हिमस्नान एक आनन्द है।

४ जनवरी को हमने सवेरे मसूरी से देहरादून जा गुप्तजी के यहाँ भोजन किया। यहाँ सर्दी कम थी। फोटो के लिए कुछ फिल्म खरीद और एकाध और चीजें। रात का ७ बजे लखनऊ की रेल पकडी। डब्बे म अकेले सवारी करने वाले के खून होने की खबर अखबारो म निकली थी। कमला ने आग्रह किया कि पहले दर्जे म न चलें। दूसरे दर्जे म रात को सोना मिले या न मिले यह भी भय था। खैर हम सोने के लिए जगह मिल गई। अगले दिन सवेरे पौने ९ बजे गाडी लखनऊ स्टेशन पहुँची। उतर कर श्रीमती

प्रकाशवतीजी के यहां जा चाय पीकर बुद्ध विहार गए। अकस्मात स्मृति सान्याल से मुलाकात हो गई। आजकल वह नैनीताल में पढ़ रही थी, और अभी घर आई थी। भोजन के बाद नेशनल हरल्ड प्रेस में "वोल्गा टु गंगा" की दो हजार प्रतियाँ छापने के लिए कागज का दाम दे दिया। श्री श्यामसुन्दर श्रीवास्तव ने प्रेम दिखलाया। छपाई की इतनी अपटू-डेट मशीन शायद ही किसी प्रेस में होगी। आश्चर्य होता था, फिर यह प्रेस क्या लस्टम पस्टम चल रहा है।

पटना—रात को ही हमने गाड़ी पकड़ी और ६ जनवरी के ७ बजे पटना पहुँच गए। वीरेन्द्रजी, अद्भुतजी स्टेशन ही पर मिल गए। ठहरने का प्रबन्ध वीरेन्द्रजी के यहाँ हुआ था। पता मैं निकल जाने के कारण कितने ही इष्ट मित्र आए, लेकिन व्याख्यान देने का नेपाल से लौटने के बाद ही निश्चय किया था। नेपाल विमान से जाना था, जो रोज रोज नहीं जाता था, हम वह गुरुवार को ही मिलने वाला था।

७ तारीख का भोजन अद्भुत शिवचन्द्रजी के यहां हुआ। शिवचन्द्रजी को बचपन ही से मैं जानता हूँ। उनके पिता आचार्य कपिलदेव शर्मा का असहयोग के समय में ही मेरा घनिष्ट परिचय रहा है। उनके घर में स्त्रियाँ तक ही नहीं, बल्कि काम करनेवाली नौकरानी भी संस्कृत बोलती। घर में संस्कृत बोलने का प्रण था। एक तरफ वह 'लौट चलो गुहा मानव की ओर' मनोवृत्ति का परिचय देते, दूसरी ओर ब्राह्मण-ब्राह्मणी अपने हाथ से अपने घर के पाखाने को साफ करते। शिवचन्द्रजी ने सरजूपारिया से बाहर बंगाली लड़की से ब्याह किया, लेकिन इसको कपिलदेवजी ने बुरा नहीं माना। शिवचन्द्रजी मांसाहार हैं, यद्यपि उनके यहाँ सैकड़ों पीढ़ियों से मांस खाया जाता रहा। लेकिन पत्नी मांसाहार कुल में पैदा हुई। उस दिन मछली के कई प्रकार के व्यंजन तयार किए गए थे। नलिनजी और दूसरे साहित्यिक भी शामिल हो गए थे। वह छोटा मोटा भोज बन गया था।

भोजन के बाद म्युजियम गया। क्यूरेटर शेर साहब मिले। अपने लाए संग्रह को देखा और नई चीजें जो इधर संगृहीत हुई, उन्हें भी। फिर नीचे जायसवाल प्रतिष्ठान में डा० अल्तेकर के पास गया। डा० अल्तेकर विद्वान् भी और बड़े चुस्त भी हैं। सचमुच ही जो आदमी केवल वेतन के लिए काम

करता है उसमे चुस्ती कहाँ से आ सकती है ? डा० अल्तेकर बराबर अनुसन्धान म लगे रहते हैं। भारतीय सिक्को के बारे मे उनसे बडा ममज्ञ आज कोई नहीं है। तिब्बत से तालपत्रा के फोटो १६ १७ वर्षों से यहा आकर पडे हुए थे अब वह उनके प्रकाशित करान के प्रयत्न म हैं। मेरे द्वारा सम्पादित प्रमाणवार्तिकभाष्य का तो बहुत सा भाग छप भी चुका है। चाय पीने के लिए वह अपने घर पर ले गए। अल्तेकर साहब को इस बात का अफसोस था, कि बिहार म सस्कृत की ओर युनिवर्सिटी के विद्यार्थी ध्यान नहीं दे रहे हैं। बिहार के पण्डिता की महिमा सारे भारत मे मशहूर है—प्राचीन काल म ही नहीं अर्वाचीन काल म भी। पिछले पचास वर्षों म यहाँ के हर जिले म सकडा सस्कृत के विद्यालय खोले गए। मिथिला मे तो शायद ही कोई ब्राह्मण ग्राम होगा, जिसम सस्कृत पाठशाला न हो। अब हिन्दी द्वारा उच्च शिक्षा का द्वार खुल जाने और कितने ही सुभीता के कारण एक एक जिले मे दो-दो तीन तीन डिग्री कालेजो के होने से कालेजो की पढाई की ओर उन विद्यार्थियो और उनके अभिभावको का ध्यान गया है जो सस्कृत विद्या एमों तक ही अपनी शिक्षा को सीमित रखते थे। इसके कारण सस्कृत के परीक्षार्थियो की कमी हुई है। सचमुच ही यह बडी समस्या हमारे सामने है कि पुरानी परिपाटी के सस्कृत के गभीर विद्वानो की परम्परा को कैसे उच्छिन्न न होने से बचाया जाए।

८ जनवरी को चाय पीकर हवाई अड्डे पर पहुचे। काठमाण्डू से खबर आई, कि अभी वहाँ के अड्डे पर कुहरा है। जब तक वहाँ से कुहरा हट न जाए तब तक विमान कैसे उडता ? कुछ देर इन्तजार करना पडा। फिर विमान उडा। गगा को पार करते समय ही हिमालय के शिखर दिखाई देने लगे। फिर छपरा के भीतर से होते गडक पार हम चम्पारन के ऊपर पहुँचे। चौरस भूमि को पार करके नीचे तराई के जगल और फिर चुरिया (सिवालिक पर्वत श्रेणी) आ गई। जगल पिछले सौ सालो म बहुत कट गया है, लेकिन अब भी उसके अवशिष्ट भाग को देखने पर कजली बन की कहावत याद आती। विमान नीचे के स्थानो को देखकर ही आगे बढता है। नेपाल उपत्यका का पानी बागमती बहा ले जाती है थोडी देर मे विमान उसके ऊपर से उडने लगा। मेरी नजर हिमगिरिया पर थी। दाहिनी ओर निरभ्र

आकाश में उनकी निर्मल छटा आँखों के सामने थी, बाईं ओर कुछ धुंध थी। उत्तर की ओर पूर्व पश्चिम तक हिमश्रेणियाँ चली गई थीं इनके ही परले पार तिब्बत है। दक्षिण जाकर एक हिमश्रेणी दक्षिण की ओर मुड़ जाती है, जिसमें ही धौलागिरि का उच्च शिखर है।

नेपाल—गिरि मण्डल को लाँघ कर अब विमान उपत्यका के ऊपर उड़ रहा था। यहाँ दृश्य अपना खास आकर्षण रखता था। भातगाउँ, पाटन काठमाण्डू के नगर अनेक गाँव और बीच-बीच में बागमती तथा उसकी सहायक नदियों की धाराएँ दीख पड़ रही थीं। अड्डे पर पहुँचने में देर नहीं लगी। पटना से चलकर ९५ मिनट बाद हम नेपाल की धरती पर उतर गए। अड्डे पर ही श्री जनकलाल शर्मा, श्री धर्मरत्न यमि उनके चचा श्री मानदास और दूसरे मित्र मिले। नेपाल में प्रवेश करना पहले बहुत मुश्किल बात थी। सिर्फ शिवरात्रि के दिन एक हफ्ते के लिए छूट मिलती, नहीं तो राणाशाही ने ऐसी कड़ाई कर रखी थी कि कोई भारतीय घुस नहीं सकता था। हाँ, अंग्रेजों के लिए कोई उतनी रुकावट नहीं थी, सिर्फ खबर दे देना काफी समझा जाता था। राणाशाही के उठने का एक लाभ तो यही है, कि आप अपने जिले के किसी मजिस्ट्रेट की दस्तखत मुहर के साथ अपना फोटो बनवा लें, और बेखटके साल में किसी समय नेपाल चले जाएँ। हमारे सामान को कस्टम (जकात) वालों ने देखा, और छुट्टी मिल गई। कारपर पहले जनकलालजी के घर पर गये। वहीं भोजन का इन्तिजाम था। ठहरने के लिए श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला ने पुतली सड़क पर अवस्थित अपने बँगले को दे दिया था। बँगला साफ-सुथरा था, किन्तु हम तो यहाँ नेपाल-संबंधी सामग्री जमा करने के लिए आए थे, जिसके लिए लोगों से अधिक मिलने जुलने की आवश्यकता थी। यह बँगला मुख्य शहर से दूर था।

शाम को टहलने के लिये निकले। मानदासजी के यहाँ गये, फिर भाजूरत्न शाहु के यहाँ। उसी दिन जगतरत्न शाहु से भी मिल आए।

६ जनवरी को गुरुवार था। आकाश बादलों से ढँका हुआ था। आधी रात से सर्दी बढ़ती और सवेरे अधिक हो जाती थी। मसूरी में इससे उल्टा है शाम को सर्दी कर आधी रात के बाद वह कम हो जाती है। मसूरी में हमारा घर साढ़े छ हजार फुट पर था और यह नगर चार हजार फुट पर

है। तो भी बादल वर्षा के कारण सर्दी मसूरी जितनी मालूम होती थी।

प्रूफ साथ ले आए थे। उसे भी लौटाना था। इसके लिए भारतीय दूतावास के डाकखाने में गए, जो ठहरने के स्थान से काफी दूर था। राणाशाही के जमाने में नेपाल उपत्यका की दुर्लभ समतल भूमि का एक बड़ा भाग राणाओं के महल और बाग बगीचे के रूप में परिणत हो गया। रनिवास के लिए जेल की तरह ऊँची चहारदीवारी का घिरावा आवश्यक था, इसलिए उनके महलों से नगर के सौंदर्य को बट्टा ही लगा। नारायणहिट्टी महल एक शताब्दी तक श्रीहीन पड़ा था। इस बीच पृथ्वीनारायण की सन्तान केवल गुड़िया राजा बने रहे। अब शक्ति राजा त्रिभुवन के हाथ में थी, इसलिए वहाँ बहुत चहल पहल दिखलाई देती थी। नेपाल में मोटर छोड़ और कोई सवारी नहीं है। सड़कें भी इतनी खराब हैं, कि घोड़े के तांगे या साइकल रिक्शे का चलना मुश्किल है। फिर राणाशाही के समय की परम्परा है, कि सामान्य जन शासक जाति के सामने सवारी पर न निकलें। जनकलालजी हमारे पथ प्रदर्शक थे। घूमते घामते माहिला गुरु श्री हेमराज शर्मा के यहाँ पहुँचे। मैं कम्युनिस्ट विचार रखता हूँ, यह उनको मालूम था और मुझे भी मालूम था, कि वह परम निरंकुश सामन्तवाद के समर्थक हैं। तो भी संस्कृत, भारतीय संस्कृति तत्सम्बन्धी अनुसंधान ऐसी चीजें थीं जिनके कारण हम में १६ वर्ष से घनिष्ठता स्थापित हो गई। सबसे पिछली बार जब मिले थे तो माहिला गुरु शासन के एक सबल स्तम्भ और प्रभावशाली राजगुरु थे। अब राणा चले गए इसलिए वह पानी के बाहर मछली जैसे थे। आयु का उनके ऊपर पूरा प्रभाव था। पहले ही की तरह खुले दिल से बड़े प्रेम से मिले। दो-तीन घंटा साहित्य और अनुसंधान की चर्चा चलती रही।

धर्मरत्नजी आकर अपने घर ले गए, जो शहर के भीतर था। यहाँ हम मिलने-जुलने में अधिक अनुकूलता थी, इसलिए अगले दिन से हम यहीं चले आए। उनके पैतृक घर को सरकार ने राजनीतिक अपराध के कारण जब्त कर लिया था जो अभी तक नहीं लौटा था। उन्होंने किसी का अधपरित्यक्त सा तिमंजिला बहुत बड़ा घर खरीद लिया था, जिससे वह सन्तुष्ट नहीं थे और उसी स्थान में अपने लिए बंगला बनवा रहे थे। उसी दिन साहु धर्म

मान के सहकारी ८३ वर्ष के बूढ़े मिले। आँखों से कम सूझता था। सड़क पर चलते वक्त मालूम होता था कि कंकाल चल रहा है। पुराने युग के अवशेष थे। उनसे कितनी ही बातें मालूम हो सकती थीं, लेकिन इस उमर में स्मृति भी तो धोखा देती है। उस दिन नाटककार श्री बालकृष्ण सम और दूसरे कितने ही भद्रजन मिलने आए।

१० जनवरी को मैं और कमला, जनकलालजी और दूसरों के साथ देवपाटन गए। यह उस मुहल्ले का नाम है, जिसमें भारतविख्यात पशुपति का मन्दिर है। यद्यपि बस्ती सटी चली गई है, लेकिन किसी समय यह काठमाण्डू से अलग नगर था। यही प्राचीनकाल में नेपाल की राजधानी रहा। १४वीं सदी के मध्य में बंगाल के मुसल्मान शाह ने तिरहुत की राजधानी समरौनगढ़ को ध्वस्त करके नेपाल पर चढ़ाई की थी, जिसे छिपाने की बराबर कोशिश की जाती रही, यह हम बतला आए हैं। पशुपति मुख लिंग के रूप में है, अर्थात् वह उस काल से पूज्य रहते आए हैं, जब कि पाशुपत धर्म उत्तरी भारत में सर्वत्र फैला हुआ था। मुस्लिम आक्रमण के समय पशुपति मन्दिर को लूटा गया, मूर्ति को खण्डित किया गया। यह खंडित मूर्ति अब भी सड़क पर एक जगह पड़ी हुई थी। पहले यह पास के कैलास 'श्लेष्मान्तक' पर थी, जिसे पशुपति के पुजारी ने उठवाकर यहाँ सड़क के किनारे रखवा लिया। मुखलिंग लिंग यहाँ काफी हैं। सारा देवपाटन मुहल्ला अपने धरातल और अन्तस्तल में पिछले दो हजार वर्षों की ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर होता है। किसी समय इसका भी भाग्य खुलेगा।

आज महाकवि देवकोटा के दर्शन हुए। वह बहुत बातों में निराला से मिलते जुलते हैं यद्यपि इतने नहीं कि उन्हें अप्रकृतिस्थ कहा जा सके। निरालाजी आजकल कितने ही दिनों से अब अँग्रेजी में बात करते हैं। देवकोटाजी अपना एक बड़ा नाटक अँग्रेजी पद्य में लिख रहे थे, जिसके कितने ही अंशों को उन्होंने सुनाया। उनका अंग्रेजी पर अधिकार है। पर अपनी भाषा छोड़कर अंग्रेजी में कविता करने से क्या मतलब, जब कि यह निश्चित है कि अग्रज अमरिकन नहीं हैं उनकी कृतियों की पूछ इंग्लैण्ड-अमेरिका में होना मुश्किल है। लेकिन धुन है। हाँ उन्होंने नेपाली भाषा के उपयोग में

करने की कसम नही खाई है, और वह उसमे बराबर लिखते रहते है। गद्य पद्य नाटक निबन्ध, खण्डकाव्य महाकाव्य सबम उनकी लेखनी निरबाध माधिकार चलती है। मस्तमौला है। कागजो पर कविता उतार रहे है, फिर कोई लडका खेलने आया, तो कागज को उसे द दिया या स्वय ही फाडकर फेंक दिया। फिर दुबारा लिखने हैं। उनकी कितनी ही कविताएँ नष्ट हो चुकी है। मैंने तरुण मित्रा से कहा—इनकी रक्षा की कोशिश आप लोगो को करनी चाहिए।

फिर बालचन्द्र शर्मा स मिलते और कुछ जगहा म गए। भोजन वहा नपाल की एक महिला नेता श्रीमती प्रभादेवी म यहा हुआ। नेपाली भोजन म मुझे एक विचित्र रस मिलता है। एक बार किसी भोजन के साथ आदमी का जब पक्षपात हो जाता है ता वह कम हाने का नाम नही लता निरा मिष भाजन भी मधुर मालूम होता है। दाल भात और कितनी ही तरह की भज्जियाँ सभी नेपाली महिला के हाथ म पहुँचकर अमृतरस म डूब जाती हैं। राणाशाही के खिलाफ सघर्ष करने वाला मे नेपाल उपत्यका की महिलाए भी शामिल हुइ उन्हाने तरह तरह से अपमान और कष्ट सहे। प्रभादेवी उनम से एक थी।

सरकार ने किसानो की अवस्था बेहतर बनाने के लिए भूमि सुधार कमीशन बनाया। मेर स्वागत म उसकी तरफ स हिमालय होटल म चाय पार्टी का प्रबन्ध था। ३ बजे हम वहाँ पहुँचे। नगरी के २५ ३० गणमान्य पुरुष मौजूद थे। वह भूमि सुधार क बार म मरे विचारा को जानना चाहत थ, जिस मैंन बतलाया। वहाँ से उठते उठते अधेरा हो गया। हमारा सामान पहले धर्मिजी क घर पर चला गया था इसलिए हम वहाँ चल गए। रात मे १० बजे तक गाष्ठी चलती रही। नेपाल म मेरी पुस्तकें पढी जाती हैं। मैं खतरनाक आदमी था तब भी छिप कर यहाँ के जो तरुण मरे पास पहुँचत थ अब वह प्रौढ हो चुके थे।

नपाल राणाशाही के जूए स मुक्त ता हुआ लेकिन इस वक्त एक विचित्र परिस्थिति म था। राणाओ और उनके उस स्वार्थ वाला की रक्षा क लिए गोरखा दल कायम हुआ जिसक पास अब भी बहुत पसा और पुरान लग्गू भग्गू हैं। राणा और धिराज के आपस म ब्याह-सम्बन्ध हाते रह हैं जिनक

कारण घिरगन्न कभी पसन्द नहीं कर सकते, कि राणा कौड़ी के तीन हो जाएं। बाकी कई दल हैं, जो सभी राजशक्ति केवल अपने हाथ में रखना चाहते हैं। विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला एक समय सबसे शक्तिशाली मन्त्री रहे। धिरान से खटपट हो गई। उन्हें हटाकर उनके बड़े भाई मातृकाप्रसाद कोइराला को आगे बढ़ाया। दोनो भाइयों का वैमनस्य इतना गहरा है कि वह कभी मिल सकेंगे इसमें सन्देह है। प्रजा परिषद्, राष्ट्रीय कांग्रेस आदि कुछ और पार्टियाँ भी इसी तरह अलग-अलग दफ्तरों अलग-अलग राग वाली हैं। कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी घोषित है, किन्तु लोगों का उसकी ओर अधिक झुकाव है। यह तो इसी से मालूम होगा, कि कुछ दिनों बाद उप स्थकाली नगरपालिका के चुनाव में उन्हीं को अधिक वोट मिले। नेपाल की उत्तरी सीमा पर तिब्बत में कम्युनिस्ट जो नवराष्ट्र की रचना कर रहे हैं, उसका प्रभाव नेपाल पर पड़ेगा, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। यह भी ठीक है कि भारतीय सरकार चाहे कम्युनिस्ट चीन के साथ जितना भी सद्भाव रखती हो नहीं चाहेगी कि लोग उससे प्रेरणा लें। राजा त्रिभुवन बारे पीछे से नजरबन्द बन्दी रहे। उन्होंने आज की दुनिया देखी नहीं, इस लिए भविष्य का पथ उनके लिए साफ नहीं है। बँधे हुए हाथों को खुला देख कर उन्हें चारों तरफ मारना यही काम है।

भादगाउँ में—१२ जनवरी को जीप से जाना तय हुआ था लेकिन साढ़े ९ बजे तक जब वह नहीं आई, तो टुडीखेल के अड्डे में आने-जाने के १४ रुपये में एक टैक्सी ली। कमला, मेरे मित्र पाँच और मित्र साथ थे। रास्ते में ठेमी गाँव मिला, जो अपने मेहनती किसानों के लिए प्रसिद्ध है। आजकल का कृषि विज्ञान इन्हें क्या सिखला सकता है? यह अगुल-अगुल जमीन को बेकार नहीं रहने देते। काठमाण्डू साफ-सुथरा रखने जाते हैं। वहाँ कहीं कूड़ा-कर्कट या पाखाना पड़ा देखते हैं, तो उसे उठा ले जाते हैं। नेवार किसान को गोबर करते समय पाखाने से बिल्कुल परहेज नहीं। इस बात में यह चीनी और जापानी किसान जैसे हैं।

साढ़े १० बजे हम भादगाउँ पहुँचे। शहर के पक्के पोखर पर मोटर खड़ी कर दी। पोखरे का तल आसपास से ऊँचा है उसमें काफी पानी है लेकिन साफ रखने की कोशिश नहीं की गई है। उसके किनारे बोमियो त्रिब्बती

स्त्री पुरुष डेरा डाले बैठे हुए थे। जाड़े के दिनों में वह चीजों के क्रय विक्रय के लिए नेपाल आया करते हैं। वह इतना ही जानते थे कि ल्हासा में मर्पो (लाल) आ गये हैं। दो वर्ष हो गए, अब भी उन्होंने कम्युनिस्टों के किसी काम को अपनी आंखों नहीं देखा।

भादगाउं उपत्यका तीन महानगरों में सबसे छोटा है, लेकिन पिछले काल में यही प्रधान राजधानी रहा। नान्यदेव की सन्तानें जब मैदानी राज्य और राजधानी सेमरौनगढ़ को मुसल्मानों के हाथ में चले जाने पर भागने के लिए मजबूर हुईं, तो वह पहले यहीं आईं फिर राजा ने अपने तीन लड़कों में राज्य को बांट दिया, जिसके कारण कान्तिपुर (काठमाडू) पाटन और भादगाउं तीन राजधानियां हो गईं। तीनों ही नगरों के निवासी नेवार आपणजीवी हैं। आजकल यातायात की सुविधा के कारण अधिकतर लोग काठमाण्डू से चीजें खरीदना चाहते हैं, इसलिए व्यापार व्यवसाय में उसी की प्रधानता है। राजधानी के पुराने अवशेषों को देखने हम शहर में गए। पहले ही से लोगों को पता था। एक जगह भोजन का प्रबन्ध हुआ। भादगाऊँ अपने जुजुधौ (राजदही) के लिए मशहूर है। छिछले चौड़े बरतन में दही जमाई जाती है, जो थक्का बन जाती है। कुछ मीठा भी मिला देते हैं। काठमाण्डू वाले भी जुजुधौ बनाने की कोशिश करते हैं, लेकिन उसमें भादगाउँ जैसा स्वाद नहीं होता। नेपाल उपत्यका का प्रधान भोजन भात है। हमारे लिए भात दही के साथ भैंस का मांस भी था। भैंस का मांस दो-तीन जातियों को छोड़ यहाँ के सभी लोग खाते हैं, और वह बाजार में उसी तरह खुला बिकता है जैसे बकरे का मांस। शायद अधिक अच्छी तरह से गला कर बनाया गया होता तो अच्छा लगता। वह चिमड़ा वस्तु था। पर जुजुधौ के सामने उसकी क्या पूछ होती? जुजुधौ जितना चाहे उतना खा सकते।

भोजनोपरान्त यहाँ का राजमहल देखने गए। सुवर्णद्वार यहाँ की अद्भुत कृति है। पिछले भूकम्प ने पुरानी निशानियों को नहीं मिटाया। अब भी राजप्रासाद तलेजु मंदिर आदि यथापूर्व थे। कितनी की दीवारों में चित्र थे।

लोगों के सामने व्याख्यान नहीं दिया, पर खाने के समय गोष्ठी हो

गई। सब देखने के बाद ४ बजे हम मोटर के अड्डे पर चले आए। टैक्सी इस बीच में एक से अधिक बार काठमण्डू हो आई थी। सवा ४ बजे हम उस पर बैठकर ५ बजे अपने दरवाजे पर उतर गए।

श्री बालचन्द्र शर्मा ने नेपाली में नेपाल का सबसे अच्छा इतिहास लिखा है, जिससे मैंने भी काफी लाभ उठाया था। उनसे पूर्वाह्न में भी बातचीत हुई। अगले दिन और शाम को तो ५ बजे से ६ बजे तक उनसे ही सत्संग होता रहा। मैंने अपने लिखे इतिहास के कुछ ही भाग को सुनाया।

महाराज ने कांग्रेसी मन्त्रिमंडल को तोड़कर सलाहकारों का शासन स्थापित किया था। जिसमें ले देकर एक ही केसरशमशेर को योग्य और कार्यतत्पर कहा जा सकता था। एक मन्त्री को शराब पीकर मस्त रहना और २ बजे दिन से पहले सोकर उठने से फुर्सत नहीं थी। इनकी अयोग्यता और दुःशासन का फल इनके अधिष्ठाता को भोगना पड़ेगा, इसमें क्या सन्देह है?

१४ जनवरी की शाम को हमारे रहने के स्थान से थोड़ी दूर पर साहित्यकारों की गोष्ठी हुई, जिसमें श्री बाबूराम आचार्य, लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा, बालकृष्ण सम, बालचन्द्र शर्मा, भीमनिधि तिवारी, सिद्धिचरण, केदारनाथ व्यथित, महानन्द सापकोटा, चित्रधर उपासक आदि सभी महान् साहित्यकार उपस्थित थे। गोष्ठी तीन घण्टे तक रही। कवियों ने कविताएँ सुनाईं, समजी ने अपने नाटक का कुछ भाग बड़े नाटकीय ढंग से दोहराया। मैंने भी अन्त में कुछ कहा। गोष्ठी में मुझे मालूम ही नहीं हो रहा था कि मैं किसी पराई भाषा के साहित्यिकों में बैठा हूँ। सचमुच ही भाषा और साहित्य के तौर पर नेपाली हमारे हिन्दी-क्षेत्र की अनेक भाषाओं में एक है। चम्बा तक फैली हिमालय की भाषाओं से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस एक गोष्ठी में नेपाली साहित्य की प्रगति का पता लग गया। उस दिन दोपहर का भोजन प्रोफेसर चन्द्रभानजी के यहाँ हुआ, जिसमें सूअर का स्वादिष्ट भोजन भी सम्मिलित था। चन्द्रभानजी को राष्ट्रीय आन्दोलन के समय बहुत कष्ट उठाना पड़ा था।

अबकी मैं उस समय नेपाल में आया था, जब आसमान बारबार बादलों से घिरा रहता, बूँदाबाँदी भी होती रहती थी। [illegible] के [illegible] में

जितनी खाली जमीन थी सब खेत बनी हुई थी। ऐसी उगाऊ भूमि को कैसे छोड़ा जा सकता था, जब कि कोई किसान उसे अच्छी मालगुजारी पर लेने के लिए तयार था। नेपाल म खाद डालने की ओर बहुत ध्यान दिया जाता है साथ ही किसान हर वक्त हाथ म कुदाल लिए खड़ा रहता है। बीज भी शताब्दियो से उन्होंने अच्छे पैदा किय हैं, और पानी की भी दिक्कत नही है। हमारे हाते म दो दो तीन-तीन सेर के गोभी क फूल लगे थे जिन्ह यहा बडा नही माना जाता। मूली तो यहाँ दस-दस सेर की काट कर बिक रही थी।

१५ तारीख का मध्याह्न भोजन थी कलानाथ अधिकारी के यहा हुआ। कलानाथजी मकमिलन कम्पनी मे अच्छे वेतन पर नेपाली प्रकाशन के अधिकारी थ। स्वतन्त्र नेपाल की सेवा करनी चाहिए यह ख्याल करके नौकरी छोडकर चले आये। वामपक्षी विचारो को रखते है और मौके-बे मौके हर जगह बहस म भिड जान के लिए तयार रहते हैं। सगीत का घर भर को प्रेम है। लोक गीत बडे सुन्दर ढग से गाते हैं और रचते भी है। यदि वह लोक-गीतो के सग्रह म लगते तो बडा काम करते पर इसके महत्व को समझ नही पाते। आधे दजन बच्चे और दोनो प्राणियो का खच ऐसी बेकारी म भारी सकट का कारण था। भोजन के बाद भी ३ बजे तक हम वही रहे। बच्चो ने गीत सुनाये। उनकी बहिन किशोरीजी बडी सुकण्ठी हैं और नेपाल रेडियो पर गाया करती हैं। उन्होने भी अपने गीत सुनाये। मधुर सगीत का आनन्द लेते हुए भी बीच-बीच म मेरे हृदय म टीस उठती थी, जब ख्याल करता कि इतने बडे परिवार की कुछ भी पर्वाह न कर यह तरुण अपने निश्चिन्त जीवन को छोडकर यहाँ चला आया।

आज शाम को सास्कृतिक सघ म जाकर भाषण देना पडा। मरे पुराने मित्र डा० त्रिलोकीरमण रेगमी अध्यक्ष थे। पहले माहिल्ला गुरुजी भी कुछ बोले।

दूसरे कामो के साथ साथ मेरा ध्यान बराबर अपनी पुस्तक के लिए नये आँकडे और नई सामग्री लेने की ओर था यमिजी का मकान अब अखड गोष्ठी-स्थल बन गया था। लिखने-पढ़ने का मौका नहीं मिलता था इसके लिए मुझे अफसोस नही था।

१६ जनवरी को संस्कृत छात्रो की सभा मे बोलना था। राणाओ के संघर्ष के समय यहा के संस्कृत छात्रो ने बडी हिम्मत का परिचय दिया था। मैं उनकी सभा म जाना चाहता था, लेकिन वह दो घटा देर से आए और उधर कन्या मन्दिर का प्रोग्राम सिर पर आ गया था। संस्कृत छात्रो म जाने से इन्कार करना पडा, जिसका उन्हे दु ख होना ही चाहिए था पर मेरा क्या कसूर? हाँ, उस समय इस इन्कार का अधिक अफसोस हुआ, जबकि मालूम हुआ कि कन्या मन्दिर म सभा नही होने वाली है।

१७ जनवरी का मध्याह्न भोजन श्री माधवजी के यहाँ हुआ। माधव जी मारिशस म पैदा हुए। फिर भारत म आकर उन्होने युनिवर्सिटी की शिक्षा समाप्त की। आज के मध्यकालीन विभाग म बडी योग्यता स काम कर रहे थे। मारिशस को उनकी जरूरत थी, लेकिन वह भारत से नेपाल चले आए। फ्रेंच, अग्रेजी और हिन्दी तीनो पर उनका अधिकार था। यहाँ कोई स्थायी नौकरी नही थी सिर्फ ट्यूशन का भरोसा था। ब्याह कर लिया था, और एक शिशु पुत्री भी आ गई थी। मैं तो उनसे कहता था, छोडो मारिशस म जाकर काम करो।

१८ जनवरी को म्यूजियम देखने गए। श्री चन्द्रमान मास्के कलाकार हैं, और राणाशाही की जेलो म वर्षो रह चुके हैं। वही इसके क्यूरेटर थे। पिछली बार इसे देखा था, तब से अब सामग्री बहुत अधिक है। उसे अच्छी तरह व्यवस्थित करके रखा भी गया है। लेकिन, नेपाल के लिए ये अनुरूप नही हैं, जहाँ कि प्राचीन वस्तुओ का भडार भरा पडा है। किसी अग्रेज ने लिखा था, यहाँ मकानो स अधिक मन्दिर हैं और लोगो म अधिक मूर्तियाँ। इन मूर्तियो म बहुत-सी खडित जगह जगह चौरस्तो, गलियो और खेतो म पडी हुई हैं। इनम कुछ डेढ डेढ हजार वर्ष पुरानी भी हैं। उन्हें म्यूजियम म सगृहीत होना चाहिए। शिलालेखो का इतना कम सग्रह कर जगह-जगह बरबाद होने के लिए उन्हे छोड देना अखरता था। चित्रपटो का सग्रह अच्छा ही कहना चाहिए लेकिन सबसे अधिक सग्रह पुराने हथियारो का था जिनमे द्रव्यशाह और पृथ्वीनारायण के अपने हाथ के शस्त्र भी थे।

म्यूजियम से फिर विष्णु विहार गए। तिब्बत की पहली यात्रा म यहीं मैंने अज्ञातवास किया था। बगीचे के उस एकान्त मकान को ढूँढा जिसम

जितनी खाली जमीन थी, सब खेत बनी हुई थी। ऐसी उगाऊ भूमि का कैसे छोड़ा जा सकता था, जब कि कोई किसान उसे अच्छी मालगुजारी पर लेने के लिए तयार था। नेपाल मे खाद डालने की ओर बहुत ध्यान दिया जाता है साथ ही किसान हर वक्त हाथ मे कुदाल लिए खडा रहता है। बीज भी शताब्दियो से उन्होने अच्छे पैदा किय हैं, और पानी की भी दिक्कत नही है। हमारे हाते म दो दो तीन-तीन सेर के गोभी के फूल लगे थे जिन्हे यहा बड़ा नहा माना जाता। मूली तो यहाँ दस-दस सेर की काट कर बिक रही थी।

१५ तारीख का मध्याह्न भोजन श्री कलानाथ अधिकारी के यहाँ हुआ। कलानाथजी भवमिलन कम्पनी मे अच्छे वेतन पर नेपाली प्रधान के अधिकारी थ। स्वतन्त्र नेपाल की सेवा करनी चाहिए यह ख्याल करके नौकरी छोडकर चले आये। वामपक्षी विचारो को रखते हैं और मौके बे मौके हर जगह बहस म भिड जाने के लिए तयार रहते है। सगीत का घर भर का प्रेम है। लोक गीत बडे सुन्दर ढग से गाते हैं, और रचते भी हैं। यदि वह लोक-गीतो के सग्रह म लगते तो बडा काम करते पर इसके महत्व को समझ नही पाते। आधे दजन बच्चे और दोनो प्राणियो का खर्च ऐसी बेकारी म भारी सकट का कारण था। भोजन के बाद भी ३ बजे तक हम वही रहे। बच्चो ने गीत सुनाये। उनकी बहिन किशोरीजी बडी सुकण्ठी हैं और नेपाल रेडियो पर गाया करती हैं। उन्होने भी अपने गीत सुनाये। मधुर सगीत का आनन्द लेते हुए भी बीच बीच म मेरे हृदय म टीस उठती थी, जब ख्याल करता कि इतने बडे परिवार की कुछ भी पर्वाह न कर यह तरुण अपने निश्चिन्त जीवन को छोडकर यहाँ चला आया।

आज शाम को सास्कृतिक सघ म जाकर भाषण देना पडा। मेरे पुराने मित्र डा० दिल्लीरमण रेगमी अध्यक्ष थे। पहले माहिला गुरुजी भी कुछ बोले।

दूसरे कामो के साथ साथ मेरा ध्यान बराबर अपनी पुस्तक के लिए नये आँकडे और नई सामग्री लेने की ओर था, यमिजी का मकान अब अखड गोष्ठी-स्थल बन गया था। लिखने पढ़ने का मौका नही मिलता था, इसके लिए मुझे अफसोस नही था।

१६ जनवरी को संस्कृत छात्रों की सभा में बोलना था। राणाओं के समय के समय यहाँ के संस्कृत छात्रों ने बड़ी हिम्मत का परिचय दिया था। मैं उनकी सभा में जाना चाहता था, लेकिन वह दो घंटा देर से आए और उधर कन्या मन्दिर का प्रोग्राम सिर पर आ गया था। संस्कृत छात्रों में जाने से इन्कार करना पड़ा, जिसका उन्हें दुःख होना ही चाहिए था, पर मेरा क्या कसूर? हाँ, उस समय इस इन्कार का अधिक अफसोस हुआ, जबकि मालूम हुआ कि कन्या मन्दिर में सभा नहीं होने वाली है।

१७ जनवरी का मध्याह्न भोजन श्री माधवजी के यहाँ हुआ। माधवजी मारिशस में पैदा हुए। फिर भारत में आकर उन्होंने युनिवर्सिटी की शिक्षा समाप्त की। आज के सम्पादकीय विभाग में बड़ी योग्यता से काम कर रहे थे। मारिशस को उनकी जरूरत थी, लेकिन वह भारत से नेपाल चले आए। फ्रेंच, अंग्रेजी और हिन्दी तीनों पर उनका अधिकार था। यहाँ कोई स्थायी नौकरी नहीं थी सिर्फ ट्यूशन का भरोसा था। ब्याह कर लिया था, और एक शिशु पुत्री भी आ गई थी। मैं तो उनसे कहता था, छोड़ो, मारिशस में जाकर काम करो।

१८ जनवरी को म्यूजियम देखने गए। श्री चन्द्रमान मास्के कलाकार हैं, और राणाशाही की जेलों में वर्षों रह चुके हैं। वही इसके क्यूरेटर थे। पिछली बार इसे देखा था तब से अब सामग्री बहुत अधिक है। उसे अच्छी तरह व्यवस्थित करके रखा भी गया है। लेकिन, नेपाल के लिए यह अनुरूप नहीं है, जहाँ कि प्राचीन वस्तुओं का भंडार भरा पड़ा है। किसी अंग्रेज ने लिखा था यहाँ मकानों से अधिक मन्दिर हैं और आदमियों से अधिक मूर्तियाँ। इन मूर्तियों में बहुत-सी मलिन जगह-जगह चौरस्तों, गलियों और खेतों में पड़ी हुई हैं। इनमें कुछ डेढ़-डेढ़ हजार वर्ष पुरानी भी हैं। उन्हें म्यूजियम में सुरक्षित होना चाहिए। शिलालेखों का इतना कम संग्रह कर जगह-जगह बरबाद होने के लिए उन्हें छोड़ रखना खटकता था। चित्रपटों का संग्रह अच्छा ही रहना चाहिए लेकिन सबसे अधिक संग्रह पुराने हथियारों का था, जिनमें पृथ्वीनारायण और पृथ्वीनारायण के अपने हाथ के शस्त्र भी थे।

म्यूजियम से फिर किन्दु विहार गए। तिब्बत की पहली यात्रा में यहीं मैंने अज्ञातवास किया था। बगीचे के उस एकान्त मकान को ढूँढ़ा जिसमें

रात के वक्त आध घंटे के लिए बाहर निकलने के सिवा मैं इस ख्याल से बराबर बन्द रहता कि राणाशाही को पता न लगे, और मेरे तिब्बत जाने में बाधा न हो। पर उसे न देख पाया। किन्दु में पहले एक विहार था, अब वहाँ तीन बन गए थे। पिछले बत्तीस वर्षों में बौद्ध धर्म की ओर लोगों की रुचि ज्यादा बढ़ी। तीन विहारों में एक का नाम कुन्नीगारा है। एक विहार में एक तिब्बती सम्माननीया भिक्षुणी ठहरी हुई थी।

म्यूजियम से इधर आने में परेड का बहुत बड़ा मैदान मिला, जिसके एक तरफ सिपाहियों की बैरकें हैं। भारतीय सेना के अफसर नेपाली सेना को सिखाने-पढ़ाने का काम कर रहे हैं। लोग शिकायत कर रहे थे— पहले के सिपाही मेहनती थे। फसल के समय जाकर घरों में काम करते थे। अब विदेशियों ने उन्हें सिखलाया है कि तुम्हारा काम सिर्फ बन्दूक चलाना और राइट लेफ्ट करना है। इसलिए वह सुकुमार हो गये। हमारे काम चार अफसर और दूसरा क्या सिखलाएँगे ? वह सिर्फ अंग्रेजी सैनिकों के बारे में जानते हैं और उन्हीं को अपना आदर्श मानते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि चीन और रूस के पास भी भारी पल्टन है जो भयंकर लड़ाइयों में तप कर विजयी होकर निकली है। वहाँ सेना को सिर्फ कवायद परेड तक अपने काम की इतिश्री समझने नहीं दिया जाता। तिब्बत में नहरों और सड़कों का जाल बिछाने में सैनिक बड़ी तत्परता से काम कर रहे हैं।

किन्दु से स्वयम्भू गए। यह यहाँ का सबसे पवित्र और पुराना बौद्ध स्तूप है। लेकिन गन्दगी देख कर तबीयत बिगड़ जाती है। बन्दरों ने और स्थानगन्दा कर रखा है। वहाँ से कुछ नीचे उतरकर आनन्द विहार में गए। यहाँ गुरुकुल की तरह का एक विद्यालय खोला गया है जिसमें तीन श्रेणियों में विद्यार्थी पढ़ते हैं। भाजुरत्न साहु के उत्साह और भक्ति का यह प्रमाण है।

लौट कर घर आए। श्री बालकृष्ण शमशेर के यहाँ से मोटर आई और चाय पीने के लिए उनके घर गये। बालकृष्ण राणा वंश के हैं। बहुत सम्भव है यह वंश मूलतः मगर नहीं, तो मगरों के साथ उसका सम्बन्ध भी रहा। पालपा के राजा मगर थे जिनका ब्याह-सम्बन्ध नीचे के राजपूत घराना में होता था। पुराने राणाओं के चेहरे पर मंगोल

यित भुग मुद्रा वतलाती है कि उनमे मगर गुरु ग जसे किरातवशी जातिया का रक्त है। पर, प्रभुत्व प्राप्त करने के बाद राणा अपने को सूयवशी सीसादिया के साथ सम्बन्ध जोडे बिना कसे रह सकते थे ? उन्होने उदयपुर के राणा तक दौड मारी—हमे अपने वश का स्वीकार कर लें। स्वीकार कर लेते, तो कोई हज नही था। आखिर आज राजस्थान के सूयवशी चन्द्रवशी, जाट और मराठे राजाओ से विवाह सम्बन्ध करते ही है। राणाओ ने यद्यपि ब्याहता या रखेल रत्न के लिए दरवाजा खोल दिया था पर अपने को श्रेष्ठ साबित करने के लिए असली उन्ही सन्तानो को मानते थे जो राजपूत स्त्रियो से होती थी। समजो के पिता भी राजपूत माता की सन्तान नही थे इसलिए वह तीन सरकार के अधिकारियो की सूची म नही आ सकते थे। चाहे तीन-सरकार बनने का अधिकार न हो पर पिता की उदारता का लाभ तो पुत्र को मिलता ही है। समजी के पिता भी मौजूद थे, और समजी भी अब दादा की उमर के थे। राणा वश म इधर विद्या का कुछ प्रचार हुआ पर कला और साहित्य की ओर विशेष प्रगति किसी ने नही की। समजी इसके अपवाद हैं। उनका सारा घर कला और साहित्य का प्रेमी है। वह स्वय श्रेष्ठ नाटककार हैं। उनका पुरानी मूर्तियो का सग्रह बहुत सुन्दर और बडा है, जिसस मालूम होता है कि वर्षों से उन्होने इस तरफ ध्यान दिया था। चित्रकला का भी उन्हे शौक है। चाय पीन परिवार म बातचीत करन म हम बडी प्रसन्नता हुई।

१६ को रात का भोजन श्री शिवप्रसाद रौनियार के यहाँ इन्द्र चौक म हुआ। रौनियार लोग भोजपुरी इलाके के निवासी व्यापारी हैं। पुराने समय म भी इनके साथ (कारवाँ) चला करते थे, जिसे सुनकर मुझे 'सामनायका' का पवाडा याद आता। शिवप्रसादजी के पूवज नेपाल के साथ कपडे का व्यापार बहुत पुराने काल से किया करते थे। बला पर कपडा लाद कर वह यहाँ पहुँचते और उसे बेचकर चले जाते थे। एक बार उनका कपडा बिका नहीं। लोग कपडा लौटा कर ले जाने की जगह वह यहा रह गए। फिर तो ऐसा हुआ कि वह यहीं बस गये। आज उनकी चौथी या पाँचवीं पीढ़ी चल रही है। अब देश से उनका इतना ही सम्बन्ध है—कि ब्याह नाता करने भर का हैं। शिवप्रसादजी से नहीं मालूम हुआ, लेकिन पुस्तक प्रहार एह-

रियासराय के स्वामी श्री रामलोचनशरण बिहारी से पीछे पता लगा, कि शेरशाह के योग्य मंत्री और पीछे हेमचन्द्र विक्रमादित्य के नाम से कुछ दिनों के लिए दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले वीर का जन्म रौनियार कुल में ही हुआ। पश्चिम के और पूर्व के बनिया में खास कर भोजपुरी-क्षेत्र के बनिया में एक अन्तर यह है, कि जहाँ पश्चिम वाले अग्रवाल आदि घासाहारी होते हैं वहाँ पूर्व वाले मांसाहारी। शिवप्रसादजी की मां सिवान (छपरा) की थी। उन्होंने छपरा के ढंग का सामिष भोजन तैयार किया था।

२१ जनवरी को माहिला गुरु हमारे यहाँ चले आए। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी उनका स्नेह ऐसा ही मेरे ऊपर था। पर उनका स्वास्थ्य अब बहुत खराब था, और चेहरे पर बुढ़ापे का बहुत असर भी था इसलिए मुझे यह अच्छा नहीं लगा। मैं उनके पास स्वयं जानेवाला था। वह कहने लगे—कोई बात नहीं बहुत दूर नहीं था मैं धीरे धीरे चला आया। फिर तीन घंटे तक उनसे नेपाल के इतिहास पर बातचीत होती रही। वह नेपाल के विश्वकोश थे, इसलिए उनसे बात करने में बड़ा आनन्द आता था। मैंने अपने हिमालय सम्बन्धी ग्रंथ में वहां की जातियों के बारे में भी एक अध्याय रखा है। नेपाल के ढाई-तीन सौ भिन्न भिन्न ब्राह्मणों की सूची भी दी है। नेपाली ब्राह्मण कुमाई और पूर्बिया दो भागों में विभक्त हैं। मैं यही सुनता आया था कि कुमाई ब्राह्मण लोग कुमाऊं से आए हैं। माहिला गुरु का परिवार भी कुमाई ब्राह्मण कहा जाता था। जब प्राप्य सामग्री का विश्लेषण किया तो मुझे मालूम होने लगा कि कुमाई का मतलब आजकल के कुमाऊं से नहीं है बल्कि पुराने कुमाऊँ से है जिसकी सीमायें कर्नाली और उसकी शाखाओं तक फैली थी। हो सकता है कत्यूरिया के वक्त सप्तगंडी के क्षेत्र में भी कुमाऊँ का शासन रहा हो। यह लोग अपने पुराने सम्बन्ध के कारण कुमाई कहे जाने रहे होंगे जिसे आज कल के भूगोल के साथ जोड़कर लोग यह ख्याल करने लगे कि यह लोग कुमाऊं में आए हैं।

मैंने अपना विचार माहिला गुरु से कहा। उन्होंने समर्थन करते हुए कहा—यह बिल्कुल संभव हो सकता है।

उस दिन हनुमान ढोका आदि काठमाण्डू के पुराने राजप्रासाद देखने गए। नेपाली बाजार में लोगों में बड़ा असन्तोष फैला हुआ था, क्योंकि नेपाली रुपये का भाव गिरता जा रहा था। जो कभी भारतीय रुपये के बराबर थी वह अब भारतीय रुपये का १५१ रुपये पर पहुँच गई थी—मेरे सामने ही १६० तक चली गई। नेपाल भारत से भारी परिमाण में चीजें मँगाता है, जिनमें से कितनी ही शौकीनी की होती हैं। जितनी मात्रा में चीजें मँगाता है उतनी ही मात्रा में उतनी ही अपनी चीजें नेपाल बाहर भेज सकता। इसके ही कारण नेपाली रुपये का दाम गिरता गया। उस समय व्यापार में किसी व्यवस्था का पता ही नहीं लगता था। कस्टम से आँख बचाकर चीजों को मँगाना, बड़े-बड़े लोगों का चोरबाजार में शामिल होना, ऐसी चीजें थीं, जिनके कारण हालत दिन पर दिन बदतर होती जा रही थी। २१ जनवरी को युद्धसड़क के एक भोजनालय में हम भोजन करने गए। दो आदमी के भोजन पर चार रुपया खर्च करना पड़ा, और उस भोजन को बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता था।

नेपाल उपत्यका गोरखा शासन में पहले शुद्ध नेवार भाषा का देश था। १८वीं सदी के उत्तरार्द्ध में गोरखा शासन राजधानी के स्थापित होने के बाद यहाँ पश्चिमी नेपाल के लोग भी आकर बसने लगे। तो भी यहाँ के बहुसंख्यक लोग नेवार भाषा बोलते हैं। जिसको हम लोग नेपाली भाषा कहते हैं, उसे वह गोरखाली भाषा कहते हैं। नेवारी भाषा को अपने को नेपाल भाषा कहना बिल्कुल उचित है पर दोनों भाषाओं को अलग करने के लिए एक को नेपाल और दूसरे को नेवार भाषा कहना ठीक होगा। पर, नेवारभाषी लोग अपने अधिकार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। नेवार भाषा किरात भाषा वंश से सम्बन्ध रखती है यद्यपि उसमें संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द बहुत भारी संख्या में मिलते हैं। इसका लिखित साहित्य भी बहुत पुराना और समृद्ध है। अब तो उसमें पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलती हैं साहित्य सृजन भी हो रहा है। नेवार महिलाओं में अब भी कितनी ही ऐसी मिलेंगी जो गोरखाली भाषा नहीं समझतीं। २२ जनवरी को नेपाल भाषा साहित्य-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन उसी हनुमान ढोका के विशाल आँगन में हुआ जिसमें आज से पौने दो सौ वर्ष पहले वह राज

भाषा के तौर पर विराजमान थी। नेवार सरस्वती आज उस आगन म मुखरित हो रही थी। बाहर के आगन क एक तरफ के फाटक स हम भीतर के एक छोटे आँगन म गए जहाँ कोत पर्व हुआ था—वहाँ छोटी महारानी के हुकुम स जगबहादुर और उसक भाइयो ने निहत्थे आदमियो के साथ खून की होली यहा खेली थी, उनका निमम वध किया था। वह झरोखा भी मौजूद था जहा स उस निष्ठुर रानी न हुकुम देकर इस बीभत्स दृश्य देखन का आनन्द प्राप्त किया था।

नेवार भाषा का यह पहला अधिवेशन था, लेकिन उसके देखन स साफ पता लगता था कि नवारभाषियो म सास्कृतिक परिलक्वता है।

पटना के श्री कीर्तिराज डावना मेरे बहुत पुराने कृपालु मित्र हैं। प्रथम तिब्बत यात्रा म मैं छिपकर नेपाल स वहाँ गया था और महीने भर स अधिक की यात्रा करने के बाद शिगचे म उनके घर पर ठहरा। इन्ही स मैंने अपना रहस्य बतलाया। कीर्तिराज उस वक्त तरुण थ लेकिन अब वह ३० ३२ वर्ष बीत भी तो चुके थे। डावना तिब्बत से व्यापार करनेवाले नेपालियो म बहुत धनी और सम्मानित माने जाते थे। कीर्तिराजजी ने मरी बडी सहायता की थी, और यदि मैं ट्शीलुन्पो म रहना चाहता, तो उनका घर मरा स्वागत करने क लिए हाजिर था। उन्होने अपने घर म भोजन करने को बुलाया। २३ जनवरी को हम उनके साथ मोटर पर चले। रास्ते म वह वृक्ष देखा जिस पर लटकाकर शहीद शुक्रराज शास्त्री को गोली मारी गई थी। वृक्ष को काटना राणाशाही भूल गई लोगो न उसे सिन्दूर से टीक रखा था।

बादल खुलने का नाम नहा लेता था, सर्दी की शिकायत ज्यादा मैं नही कर सकता था क्योकि मसूरी की सर्दी का अभ्यासी था। जिस तरह नवार किसान अपनी भूमि क एक एक अगुल का मूल्य वसूल करना चाहता है वैस ही नेपाली गृहस्थ अपन घर क एक एक अगुल अवकाश को बेकार जाने नहा दना चाहत। जितनी ऊँचाइ म हमारे दो मजिले मकान होते हैं, उतन म वहाँ चौमजिला बन जाते हैं। हमारे 'हन क्लिफ' क बगले की ऊचाई म तो वह चौमजिला घर बनात और इस समय विशेषकर जाडों में यह अधिक आरामदेह होता क्योकि थोडी सी भी आग जलान स

उनके भीतर की हवा गरम हो जाती है। हाँ, यह शिकायत जरूर होती कि मेरे जैसे आदमी को हर दरवाजे में सिर बचाने की कोशिश करनी पड़ती। बाहर से मकानों को देखने से चाहे वह कितने ही साधारण से मालूम होते, गलियाँ और आँगन गन्दे दिखाई पड़ते, किन्तु भीतर वह अच्छे साफ और सुन्दर सजे हुए होते। पाटन के कितने ही व्यापारियों का सम्बन्ध तिब्बत से है। उनके कमरों के सजाने में तिब्बत की चीजों का उपयोग किया जाता है। पाटन अपने पुराने मन्दिरों के लिए काठमाण्डू से कम प्रसिद्ध नहीं है बल्कि धातु के बर्तनों और मूर्तियों के बारे में वह आगे है। काठमाण्डू और पाटन के बीच में सिर्फ बागमती का अन्तर है जिसे कहीं भी आप पार कर सकते हैं। मोटरों के लिए राह के पुल से ही गुजरना पड़ेगा जो थापाथली में पड़ता है। पाटन भी नेपाल के तीन राजाओं में एक की राजधानी रहा। वहाँ का महेन्द्र विहार बहुत सम्माननीय देवालय है। इसका सम्बन्ध सिद्ध महेन्द्र से नाहक जोड़ा गया है। वस्तुतः यह बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का विहार है। पाटन के राजाओं को मन्दिरों और महलों के बनाने का बड़ा शौक था। कृष्ण मन्दिर को तो नीचे से ऊपर तक समूल पत्थर का शिखरदार बनाया गया है। वैसे नेपाल के मन्दिरों की अपनी विशेष शैली है, जो यहाँ से तिब्बत चीन होते जापान तक चली गई है। उनमें लकड़ी का इस्तेमाल ज्यादा होता है जिसके कारण भूकम्प को भी वह अधिक सहन कर सकते हैं। कमला ने कुछ बर्तन खरीदे। चाय पीने के लिए फिर हम कौशिकजी के घर पर गए। नीचे उपत्यका में वर्षा हुई लेकिन नेपाल उपत्यका को घेरने वाले पहाड़ छ-सात हजार फुट से भी ऊँचे हैं। उन पर बर्फ पड़ गई थी। उपत्यका में शायद ही कभी बर्फ पड़ती हो। घर लौटने पर मालूम हुआ श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला आए थे।

२८ जनवरी को सराफों ने हड़ताल कर दी। नेपाली रुपये का भाव इतना अनिश्चित हो गया था यह इसी से मालूम होगा कि एक दिन में तीन चार रुपये का अन्तर पड़ गया था। ऐसी स्थिति में कौन सिक्कों के विनिमय का काम करने की हिम्मत करता।

उस दिन ८ बजे श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला अपनी मोटर लेकर आए। उनके साथ कवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा के घर पर गए। विश्वेश्वर

प्रसाद नपाली सिद्धहस्त लेखक हैं, यद्यपि राजनीति इस तरफ बढने के लिए उन्हें समय नही देती। देवकोटा को देखकर तो मुझे बार बार निरालाजी याद आते थे—वैसा ही अकृत्रिम सौहार्द और वसा ही काव्य प्रतिभा। अभी उनकी आयु ४४ वर्ष की थी। उनका तरुण पुत्र हाल ही में मरा था जिसका भारी रज हृदय पर पडा था। यद्यपि उसे मुह पर आने देना नही चाहते थे। कितने ही दिनो तक वह "नेपाली भाषा प्रकाशिनी समिति" में सौ रुपये मासिक पर नौकरी करते रहे। वकालत के साथ पटना युनिवर्सिटी के वह ग्रेजुएट थे तो भी वह ऐसी स्थिति में थे। खुद भी वह अपनी कृतियो की सुरक्षा की परवाह नही करते। लिखते फाडते भूलते उन्हें देर नही लगती। उनकी २६ पुस्तकें समिति की उपेक्षा से नष्ट हो गई। प्रमेथियेस को उन्होंने नेपाली भाषा में भी लिखा है। एक बार १२ १३ सर्ग लिख चुके थे जो नष्ट हो गए। अब फिर उसे दुबारा लिख रहे थे। खेतो के बीच में एक मकान में वह सपरिवार रह रहे थे। अब की नेपाल-यात्रा में सबसे अधिक जिस व्यक्ति ने आकृष्ट किया वह महाकवि देवकोटा थे।

२५ जनवरी को भोजनोपरान्त जनकलालजी के साथ मैं बौद्धा चला। काठमाण्डू और देवपाटन से अलग स्थान में नेपाल का यह सबसे बडा बौद्ध स्तूप है जो आयु में भी बहुत पुराना है। इसकी महिमा तिब्बत और मंगोलिया तक फैली हुई है। नजदीक ही समझा था लेकिन चलते चलते मालूम हुआ कि चार मील से कम न होगा। इस विशाल स्तूप की परिक्रमा के चारो ओर दुमजिले तिमजिले घर हैं जिनके निचले भाग में दूकानदार और उपरले भाग में तीर्थयात्री ठहरते हैं। जाडो होने से आजकल बहुत से तिब्बती लोग आए हुए थे। चिनिया लामा के पास गए। प्रथम तिब्बत यात्रा में इनके पिता से भेंट हुई थी और इनके ही एक घर में दूसरा लामा के साथ निश्चित जान की लालसा से स्वच्छापूर्वक मैंने नजरबन्दी स्वीकार की थी। उस समय यह तरुण थे। इनके पिता चीना थे लेकिन यहाँ आकर उन्होंने तिब्बती स्त्री से ब्याह किया। कितने ही वर्षों बाद मिल थे, इसलिए लामा को पहचानने में कुछ देर हुई। बूढे हो गए थे—विलासी जीवन और शराब की छूट ना थी। लोग कह रहे थे—खूब धन कमाया है। कुछ देर बैठे बमन से बात करते रहे। उनसे पता लगा कि सावया के पुनछोक

महल के मेरे कृपालु लामा अब नहीं रहे। उनके बाद डाल्मा प्रासाद के लामा गद्दी पर बैठे। तिब्बत के तीर्थयात्रियों से मालूम हुआ कि उन्हें अपने साथ पैसा लाने में कोई रुकावट नहीं है पिछले साल से भी इस साल अधिक यात्री आए हैं। लाल सैनिक अभी सभी सीमान्ती डाँडा पर नहीं पहुँचे हैं। जागीरदारों पर अभी हाथ नहीं लगाया है, किन्तु पाठशालाएँ जगह-जगह गाँवों में खोली जा रही हैं।

बौद्ध की परिक्रमा करके वहाँ से साढ़े ४ बजे घर लौट आए। उस दिन डा० रेग्मी के यहाँ चाय पीनी थी लेकिन भूल गए।

२९ जनवरी को सिंह दरबार गए। चन्द्रशमशेर ने बड़े खर्च लगाकर इस विशाल महल को बनवाया था। पहले यहाँ जनसाधारण की पहुँच कहाँ हो सकती थी? अब सचिवालय है जिसके दफ्तर उसके कमरों में हैं। सचिवालय से कुछ सूचनाएँ लेना चाहता था। पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी अब भी वहाँ नरसिंहशमशेर थे, जो अपनी क्रूरता के लिए राणा शासन में कुख्यात थे। इससे मालूम हो रहा था कि शासन में कितना कम परिवर्तन हुआ है। सिंहदरबार में जेनरल कैसर शमशेर सबसे अधिक प्रभावशाली थे। इस ओर मेरे पूर्व परिचित भी थे। उनसे मिलने के लिए गया, तो वहाँ इतनी भीड़ थी, कि आशा नहीं थी बातचीत हो सकती। दो घंटे तक मैं वहाँ से लौट पड़ा। किसी आदमी ने सूचना दी। उन्होंने आदमी दौड़ाया और उसके बाद स्वयं दौड़े-दौड़े आए। सुबह से घोर गाढ़ पड़े ही होंगे। मुझे अफसोस हुआ। थोड़ी-सी बातचीत की और ३१ तारीख को ... बजे ... घर पर आने का वचन लिया। कलापकदर-साहब तो नहीं आए किन्तु डिप्टी ... आदि से मिले। जिस सड़ी से अनुज्ञा पत्र (राहदानी) लिए बिना किसी को ... नहीं मिलता, इसलिए हम वहाँ जाने को मजबूर थे।

सिंह दरबार की ... उपयोग कहाँ तक करना है। कितने ही बड़े-बड़े हाल ..., ... दफ्तर बन गए। ... हाल हैं ... में चित्र लगे हुए हैं—... के शिकार की यादगार है। सभी आधुनिक ढंग के हैं। ... में राणा तानाशाह अपने ... और अनुओं का स्वागत किया करते थे। ... का ढंग है, लेकिन ...

विशाल महल के बनाने में ईंटों को ज्यादा इस्तेमाल किया गया। वास्तु कला की दृष्टि से यह यूरोपीय इमारतों की अंधी नकल है, जिसमें नेपाली कला का पूरी तौर से बायकाट किया गया है। वहाँ से रेडियो स्टेशन गए। रेडियो की मशीन नेपाली कांग्रेस ने अपने संघर्ष के दिनों में कहीं से प्राप्त की। वही काम कर रही थी।

बाहर निकलकर हम जंगबहादुर के घर को देखने चले। यह मुहल्ला थापाथली कहा जाता है। पुराने महल को ढूंढ निकालने में काफी देर हुई। अब वह सूना है और गिरने की तैयारी कर रहा है। इसी के हाते में शरणार्थी अवध की बेगम और नाना की रानी की हवेलियां थीं, जो अब गिर चुकी हैं। वहां से बाहर निकलने पर एक और पुराना महल मिला उतना पुराना नहीं जितना जंगबहादुर का। हम उसके बारे में जानना चाहते थे, उसी समय एक प्रौढ़ पुरुष निकले। वही उस समय इस महल में रहते थे। नाम मसूरी शमशेर मालूम हुआ। देवशमशेर बड़े ही भले प्रधान मंत्री थे, लेकिन भलमनसाहत के कारण ही उन्हें जल्दी पद छोड़कर नेपाल से भागना पड़ा और उनका स्थान उनके चलते पुर्जे अनुज चन्द्रशमशेर ने लिया। देवशमशेर ने मसूरी में अपने लिए महल बनवाया था। वहीं पैदा होने के कारण पुत्र का नाम मसूरीशमशेर रखा गया। कान्वेंट और यूरोपियन स्कूल में पढ़े हुए थे। वह साहित्य और संस्कृति का अंग्रेजी में ही जानते थे। न उन्हें नेपाली साहित्य से कोई मतलब था न हिन्दी साहित्य से। हां यह सुनकर उन्हें कौतूहल हुआ कि मैं भी मसूरी में रहता हूँ। लेकिन जानकर उन्होंने पूछा—आप तो राणाओं के खिलाफ लिखेंगे। मैंने कहा—हाँ किन्तु देवशमशेर के खिलाफ नहीं।

वहां से टूटा मन, घरहरा होते कल की भूल चूक का माफ कराने के लिए डा० दिल्लीरमण रेग्मी के घर पर पहुँचा। सौभाग्य से वह मिल गये। देर तक उनसे नेपाली की राजनीति पर बात होती रही। उन्होंने अपनी लिखी पुस्तकें भी दीं। लौटते वक्त सड़क पर गखासुर की यात्रा निकल रही थी। सभी जगह जनता तमाशे की प्रेमी होती है नेपाल के नागरिक उसमें विशेष रुचि रखते हैं यह जरूर है।

२७ जनवरी को धूप-छाँह रही। १० बजे तक हम अपने स्थान ही पर

थे। अधिकतर भोजन बाहर ही करना पड़ता था, लेकिन सवेरे का जलपान धर्मिनी के यहाँ होता था। स्वयम्भू के पीछे स्वामी ईश्वानन्दजी का आश्रम सरस्वती अखाड़ा था। ईश्वानन्दजी शिक्षित, सुसंस्कृत और जनसेवी पुरुष हैं। स्वयम्भू पर्वत के पीछे की ओर ही यह सरस्वती अखाड़ा पुराने समय से चला आया था। वहीं भोजन हुआ, देर तक बातचीत होती रही। यहाँ से वह पहाड़ी भी दिखाई पड़ती थी, जहाँ होकर भारत से नेपाल मोटर-सड़क आनेवाली है। दूर तक खेत ही खेत थे। वस्तुतः नेपाल उपत्यका कृषि के लिए बहुत ही उपयुक्त भूमि है। वर्षा बहुत होती है, इसलिए सिंचाई के लिए पानी की जलनिधियाँ पहाड़ों में बनानी मुश्किल नहीं हैं। लोग हमेशा से मेहनती रहे हैं, लेकिन उस मेहनत का परिश्रम उनको नहीं मिलता रहा। नेपाली शिल्पी अपने काम में बड़े दक्ष थे। उन्होंने उस ख्याति को गँवाया नहीं है, जो कि किसी समय चीन तक पहुँची हुई थी। एक बड़े रोग से नेपाल मुक्त हुआ, लेकिन अभी उसे वहाँ जाना है, इसका पता भी नहीं है। बतला रहे थे, यहाँ से पाँच दिन में तिब्बत पहुँच सकते हैं। नेपाल का पुराना रास्ता इधर ही से भिक्खनाठोरी होकर जाता था। भिक्खनाठोरी के पास अब भी रमपुरवा में दो अशोक-स्तम्भ मौजूद हैं, जो शायद उसी की साक्षी में रह रहे हैं। वहाँ से लौटते वक्त आनन्दकुटी विधार्थ में फिर गये। ३० ३५ लड़कों ने स्वागत किया, यहीं चायपान हुआ।

शाम को ६ बजे माहिला गुरु की अध्यक्षता में 'नेपाल शिक्षा परिषद्' की सभा में मैंने शिक्षा पर भाषण दिया। मेरे भाषा-सम्बन्धी विचारों के लिए गलतफहमी होने की गुंजाइश न रहे, इसलिए भाषा-नीति के बारे में मैंने विशेष तौर से कहते हुए बतलाया, कि सारे नेपाल में नेपाली (गोर-खाली) भाषा का वही स्थान है और रहेगा, जो कि भारत में हिन्दी का। पर, नेपाल बहुभाषिक देश है। यहाँ के लोगों को यदि जल्दी से जल्दी साक्षर और शिक्षित करना है, तो प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम उनकी भाषाओं को रखना होगा। नेवार भाषा का अपना पुराना लिखित साहित्य है। उसमें पढ़ने के लिए पाठशाली नेवार करना मुश्किल नहीं है। पर गुरुङ, मगर आदि अन्य भाषाओं को भी नागरी लिपि में शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए, जो अभी तक लिखी नहीं गई है। कुछ लोगों को ख्याल था कि मैं

नेपाली भाषा का पक्ष कमजोर करूँगा, लेकिन मैंने कमजोर करने की बात तो दूर, इसे और सबल करते हुए कहा कि जिस राष्ट्र में बहुत सी भाषाएं हैं, वहां एक सम्मिलित भाषा की अत्यन्त आवश्यकता है और सौभाग्य से नेपाल में वह भाषा पहले ही से मौजूद है। इसलिए उसे हम छोड़ना नहीं है। नेपाल अपना विश्वविद्यालय कायम करे जिसमें उच्च शिक्षा का माध्यम नेपाली हो। माहिला गुरु ने भी अन्त में अपने भाषण में मेरे विचारों से सहमति प्रकट की। नया नेपाल ने भाषा के सम्बन्ध में कुछ गलत सलत बातें लिख डाली थीं जिसके कारण उस दिन मुझे अपने विचारों को और स्पष्ट करने की जरूरत पड़ी।

२८ जनवरी का मध्याह्न भोजन श्री गणेशमानजी के यहां हुआ। स्वतन्त्रता आंदोलन में राणाशाही के खिलाफ गणेशमानजी ने बड़ी हिम्मत के साथ लोहा लिया उन्हें कष्ट भी बहुत सहना पड़ा था। कांग्रेस मन्त्रिमण्डल में वह एक मन्त्री थे। मुझे उन लोगों की बात सच्ची नहीं मालूम हुई जो उन्हें मस्तिष्कहीन ताता बतलाना चाहते थे। शालीन और समझनेवाले आदमी थे। वह रहे थे— राणा-नेहरू त्रिभुवन के तिकड़म में पड़कर कांग्रेस मन्त्रिमण्डल अपने काम में सफल नहीं हुआ। नेहरू और उनके प्रतिनिधि चन्द्रेश्वरसिंह यहाँ किसी भी प्रगतिशील कदम उठाने का विरोध करते थे। राणा नजरबन्दी से निकलते ही निराज को बाहर की हवा लगी और वह गुलछर्रे उड़ाने लगे। राणा साल में ८८ हजार खर्च के लिए लेते थे। प्रथम अन्तरिम सरकार ने उसे छः लाख कर दिया। मातृका मन्त्रिमण्डल ने दस लाख दिया। अब नेहरूशाही सलाहकारों की कृपा से बारह लाख से ऊपर सालाना उन्हें मिल रहा है। महेन्द्रशमशेर ८० लाख से ऊपर की सोना चाँदी की सम्पत्ति नेपाल से बाहर ले जा रहे थे। हमने उसे रोका। नेहरू ने दबाव डाला और हम छोड़ देना पड़ा। सरकार के पक्ष में बने सिनेमा को जिसे राणाशाही ने भी वैसे ही रखा था और जिसका दाम छः लाख देने के लिए लोग तैयार थे—धिराज ने अपने कृपापात्र को पहले डेढ़ लाख पर बेचने की बात कहा और पीछे एक तरह मुफ्त ही दे दिया। जहाँ के विधाता स्वयं शराब सिगरेट और दूसरी चीजों को कस्टम न देकर नेपाल के भीतर लाकर चोरबाजार में देने के लिए तैयार हैं, वहाँ क्या आशा हो

सकती है? सचमुच नेपाल के शासन की भीतरी स्थिति की जो बातें उस दिन मालूम हुई, उनसे नेपाल के किसी हितैषी को खेद हुए बिना नहीं रह सकता।

गणेशमान का परिवार नेपाल राज्य के बड़े-बड़े पदों पर रहा, सामन्तशाही जीवन में उनका बचपन बीता। नेपाल में शराब पीना आम चीज है। ब्राह्मणों में भी कितने ही उसे पीते हैं। देवी और शक्ति के उपासक होने से उनको इसका बहाना भी मिल जाता है। पुराने जमाने की शराब की सुराहियाँ और छोटे छोटे चषक उन्होंने दिखाये। मेरे साथियों में उसके आनन्द लेनेवाले भी कुछ थे। चाँदी-सोने की सुराहियों में सुन्दर हुडल और पतली लम्बी टोंटी लगी थी। चषक साधारण लोगों के काम के और उच्च वर्ग के चाँदी-सोने के होते थे। बहुत ऊपर में पतले प्याले में छोटी जाली जिसके कारण उसमें फेन उछल आता। इसी फेनिल मदिरा को लोग पीते हैं।

२६ जनवरी को दोपहर बाद मैं अपने पुराने महाशय धर्ममान साहु के घर गया। यहाँ और ल्हासा में धर्ममान साहु के घर में जब-जब मैं गया, घर की तरह वहाँ स्वागत हुआ। साहु अब नहीं थे। उनके योग्य मझले पुत्र ज्ञानमान साहु भी जवानी में ही चल बसे। बड़े पुत्र त्रिरत्नमान और छोटे पुत्र पूर्णमान आजकल ल्हासा में थे। उनकी दूसरी पीढ़ी के कुछ तरुण घर में थे। उनकी बहुएँ तो मुझे अच्छी तरह जानती थीं क्योंकि नेपाल में कभी-कभी महीनों मैं उनका अतिथि रहा, और खिलाने पिलाने का भार उन्हीं के ऊपर था। ज्ञानमान साहु की बहू ने बड़ी शिकायत की आप हमेशा हमारे यहाँ उतरते थे, अब की बार क्यों नहीं आये। मैंने अपना दोष स्वीकार किया। लेकिन, मैं जानता था त्रिरत्नमान दोनों भाई यहाँ नहीं हैं, इसलिए नहीं आया। पहले मिठाई के साथ तिब्बती चाय और ग्याथुक (चीनी सूप) आया। इसी से पेट भर गया। यदि मालूम होता कि मामा भी खानी पड़ेगी, तो उसे कम लिया होता। मामा को २ बजे पर टाल दिया। सबसे ऊपरी मंजिल पर छोटी-सी छत को दिखलाया गया, जहाँ धर्ममान साहु बैठकर ध्यान-पूजा किया करते थे। यह छोटी मंजिल ऊपर है और आसपास के घरों की छतें नीची मालूम होती थीं।

यहां से सड़क शहर का दूर दूर का नजारा देखने में आता।

धर्ममान साहु ने अपने परिश्रम से अपने को तिब्बत के नेपाली व्यापारियों में सर्वश्रेष्ठ बना दिया। उदारता तथा दान-पुण्य में तो उनका कोई मुकाबिला नहीं कर सकता था। तिब्बत के बड़े बड़े लामा या अफसर यहीं उनके घर में ठहरा करते थे। उनकी उदारता और दानशीलता ने ही आज उनकी कोठी को आज छठे नम्बर पर ही नहीं रहने दिया। मूल पूंजी से लाख रुपये उन्होंने विहारों की मरम्मत और दूसरे धार्मिक कामों में लगा दिये। कुछ कर्मचारियों ने भी धोखा दिया, जिससे कोठी को सँभालना मुश्किल हो गया। परिवार में आधे दर्जन से अधिक लड़के हैं जिनमें से चार काम करने लायक हैं। प्रायः कमान तिब्बत में ही रहते हैं, एक भद्रिक पास भी है। बहू ने बड़े दुःख से कहा। अब बँटवारा करने जा रहे हैं आप समझाइये।' उनके घर में मेरी बात चलती थी, इसी विश्वास पर उन्होंने यह कहा। लेकिन संयुक्त परिवार में यह दिन आता ही है। अभी हमारे व्यवसायियों ने यह नहीं समझा है कि चूल्हे का बँटवारा करना चाहिए व्यवसाय और पूंजी का नहीं। वस्तुतः जिसमें किसी के दिल में सन्देह न पैदा हो उस तरह व्यवसाय चलाने का गुर भी नहीं मालूम है, जिसके कारण झगड़े पैदा होने लगते हैं। कितनी ही जगह बँटवारे का कारण स्त्रियों का कलह ही होता है लेकिन यहां स्त्री बँटवारे के विरुद्ध थी। बड़ों के विलास और आलस्य ने भी कारबार को धक्का लगाया।

मैंने यहां की भाषाओं को दर्ज करके अपने नेवार मित्रों के सामने भी कहा—नेवार भाषा भी उसी किरात भाषा की शाखा है, जिसकी शाखाएँ गुरुंग, मगर, सुनवार, तमंग, याखा लिम्बू, राई ही नहीं बल्कि नेपाल से बाहर पश्चिम में चम्बा कुल्लू की लाहुली, कुल्लू की मलाणा, कनौर, गढवाल की मारछा कुमाऊं के राजकिरात और पूर्व में सिक्किम के लप्चा और आगे आसाम के नागा होते दूर तक कम्बोज तक फैले लोगों की भाषा है। यह बात एक शिक्षित भद्रपुरुष को पसन्द न आई। किरात शब्द वस्तुतः संस्कृत में बहुत पिछड़े लोगों के लिए इस्तेमाल होता है जो पूर्वी नेपाल में रहते हैं। पर कोई जाति सबड़ा वर्षों से यदि पिछड़ी चली आई है तो भविष्य में भी वह ऐसी ही रहेगी यह मानना गलत है। एक देश को रहने

बाकी सभी जातियों का आज के युग में एक से सांस्कृतिक और आर्थिक स्तर पर आना अनिवार्य है। मैंने कहा, किरात शब्द को छोड़िये आजकल के नृतत्त्ववेत्ता जिसे मान्-ख्मेर जाति कहते हैं उसी को यह लागू है जिसमें कन्यात और धाद (स्वामी) जैसी जातियाँ भी हैं। इसका यह मतलब नहीं कि जो लोग आज किरात भाषा बोलते हैं वह सबके सब मूलतः किरात थे। कितनी ही बार दूसरी जगहों से आई जातियाँ नये स्थान में बहुसंख्यकों में रह कर उन्हीं की भाषा अपना लेती हैं। इसलिए यहाँ के नेवार ब्राह्मण क्षत्रियों के हजारों परिवार मधेस से आये इस मानने में किसी को आपत्ति नहीं है और ऐतिहासिक काल में आज से तीन ही चार सौ वर्ष पहले ऐसे बहुत से लोग आए इसका प्रमाण मौजूद है। आज सभी नेवार लोगों की आँखों पर जो थोड़ी-बहुत मंगोलायित छाप है, वह उसी रक्त-सम्मिश्रण के कारण है।

३१ जनवरी नेपाल प्रवास का अन्तिम दिन था। उस दिन हम जनरल कैसर शमशेर से १० बजे उनके महल में मिलने गए। पहले भी मैं इस महल में आ चुका था और जनरल ने बड़े स्नेह और सम्मान के साथ अपने पुस्तकालय को दिखलाया था। वह राजनीति और सैनिक विद्या में विशेष रुचि रखते हैं। इन विषयों पर सैकड़ों अंग्रेजी पुस्तकों का इस पुस्तकालय में बहुत अच्छा संग्रह है। दूसरी रुचि उनकी प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह की है। उनके पास सैकड़ों ताड़पोथियाँ हैं। यद्यपि उनका महल आधुनिक ढंग पर ईंट और सीमेंट का बना है जिसमें कम-से-कम लकड़ी लगाई गई है तो भी आग लगने के डर से इन अनर्घ प्राचीन पुस्तकों को अग्निरक्षित लोहे की आलमारियों में रखा है। जनरल कैसर राजा त्रिभुवन के बहनोई हैं। पहली पत्नी का देहान्त हो चुका है जिससे उनका एक पुत्र है। दूसरी राना तरुणी थीं जिनसे दो बच्चे और एक बच्ची थी। उन्होंने अपने परि-वार से भेंट कराया। मैंने दम्पती और बच्चों का फोटो लेना चाहा उन्होंने उसे भी खुशी से मान लिया। यद्यपि कैसर चन्द्र शमशेर के सुदीर्घ राणा-शाही तानाशाही में पले, और उसी में बूढ़े हुए। अपने पिता के महान् वैभव से करोड़ों के स्वामी बने, पर इतना अध्ययनशील व्यक्ति नये जमाने की गति से अपरिचित नहीं रह सकता था। शायद इसकी कमी होती तो

राणा वश का उस तरह से अत नही हुआ होता जैसा कि हुआ। उनसे बडे दो भाइ—मोहन शमशेर और बबर शमशेर—थे जिनम बबर यथा नाम तथा गुण थे। वे दुर्योधन की तरह कहते थे सूच्यग्र न दातव्य विना युद्धेन केशव' (हे कृष्ण, युद्ध के बिना सूइ की नोक भर भी जमीन मैं नही दूगा)। राणाशाही शासन के जाने के बाद भी केसर शमशेर का प्रभाव नही घटा यह उनके सुथरे विचारो के कारण ही है। सलाहकार सरकार म वही एक तरह सर्वेसर्वा हैं। त्रिभुवन म न शासन की योग्यता है न अच्छी-बुरी सलाह म विवेक करने की बुद्धि। केसर शमशेर उस समय भी मेरे साथ सौहार्द्र प्रकट करन म पीछे नही रहे जबकि म नेपाल म बडी सन्देह की दृष्टि स देखा जाता था। ६२ वष के हो चुके है इसलिए फिर मुलाकात होने की क्या आशा हो सकती है ?

वहा स लौटकर माहिला गुरु मे विदाई लेने गया। वे तो और पक्के हैं स्वास्थ्य भी जवाब दे चुका है। विदाइ के समय व बात स भी प्रकट करते थे कि अब फिर मुलाकात नही हो सकेगा। नेपाल म सस्कृत विद्या और सास्कृतिक ज्ञान के य अद्भुत भडार थ। राजनीतिक विचारो म अपने स्वामी (राणाशाही) के विरुद्ध वह जाकर वहा क्या रह सकत थ ? किन्तु और बातो म व बहुत उदार थे। मैं परम नास्तिक और वह परम आस्तिक थे। मैं कम्युनिस्ट और वह सामन्तवादी तब भी मिलन पर कोई कह नही सकता था कि किसी तरह का मतभेद रखते हैं। बडा लडका जिस पिछली बार मैंने १०-१२ वष की उमर म देखा था और फोटो लिया था अब वह छ फुट का जवान सस्कृत म साहित्याचाय करके बी० ए० की परीक्षा देने वाला था। छोटा लडका बी० ए० करके बम्बइ म रहते पिता स विलायत जाने की आज्ञा माँग रहा था। यह उसका शिष्टाचार था नही तो जहाज पर बठकर उस इग्लण्ड या अमरिका जाने म क्या रुकावट हो सकती थी ? पिता के लिए आज्ञा देना मुश्किल था क्योकि यह राजगुरु का वश ठहरा राणा और धिराज दोनो वश को कई पीढ़िया स य मत्र देते आए थे। नेपाल म छूआछूत और खान पान का ढकोसला यही वश रहा है। विलायत जाने पर फर क्या वह इन बातो का विचार कर सकेगा ? और सबस मुश्किल तो यह थी कि अभी वह अविवाहित था। वहाँ जाकर यदि मेम ब्याह

लाया तो पिण्डदान से महरूम होना पड़ता। चिन्तित थे, लेकिन जानते थे कि आजकल के ज़माने में पंख उग आए पंछी की तरह सयाने बेटे को उड़ने से नहीं रोका जा सकता।

भोजनोपरान्त देवपाटन की ओर जयवागेश्वरी में गए, जहाँ नेपाल (गोरखाली) साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हो रहा था। यहीं पास में वह बाग है जिसमें धिराज रणबहादुर आकर अक्सर रहा करते थे। रणबहादुर ने एक निरहृता विकासोन्निता ब्राह्मण तरुणी कान्तिमती पर मुग्ध होकर उस पर सर्वस्व निछावर किया। उसे पटरानी ही नहीं बनाया, बल्कि उसी की सन्तान आज के धिराज हैं। यह प्रतिलोम विवाह था, जिसके कारण सन्तान को हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार ब्राह्मण क्षत्री से निचले वर्ग में जाना चाहिए था, लेकिन 'समरथ' को कौन ऐसा कर सकता था। बस कौन-सा राजवंश दूध का धुला है? आजकल मौजूद भारत के महाराजाओं में एक के पिता सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ थे, उन्होंने इस काम के लिए एक स्वस्थ मुसलमान तरुण को अपने यहाँ रखा। जिस सीसोदिया वंश से धिराज का अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं, उसमें स्वयं पहले एक अन्य जातीय विधवा पटरानी हुई थी। पुराने शास्त्राचार में कोई फायदा नहीं। जहाँ तक आज का सम्बन्ध है, इन पुराने सम्बन्धों के कारण किसी का हुक्का पानी बन्द नहीं किया जा सकता। चाहे कलियुग कहिए या आधुनिक युग, अब तो सारा भारत एक वर्ण होने जा रहा है—सबकी रोटी-बेटी एक होनी शुरू हो गई है। शायद इस शताब्दी के बाद यह अब रूढ़िवादियों के बेहूदापन का सबूत मात्र रह जाएगा।

सम्मेलन खुली जगह में हो रहा था, जो मकान सा नहीं, बल्कि एक स्वाभाविक सूखा तालाब जैसा मालूम होता था। नर-नारी काफी संख्या में वहाँ मौजूद थे। निबन्ध, कविता-पाठ, कथा-कहानी-पाठ, गान और नृत्य सभी प्रोग्राम में थे। नेपाल में कुछ बातों में सदा मुक्त वातावरण रहा। पर्दा तो यहाँ के लोग जानते ही नहीं थे, और हाल में हुए नारी-नवजागरण के कारण भी स्त्रियाँ काफी आगे बढ़ी थीं। कमला की कुछ कहानियाँ हिन्दी पत्रों में छप चुकी थीं, इसलिए वह अपने अधिकार से वहाँ उपस्थित थी। श्री बालकृष्ण शर्मा और दूसरे मित्रों ने आवाज दी, महापण्डितानी भी कुछ

सुनाएँ। लेकिन महापण्डितानीजी की हिम्मत नहीं हुई।

सम्मेलन से हम अंतिम बार पशुपति के दर्शन को गए। हमारे दर्शन का मतलब है ऐतिहासिक वस्तुओं का श्रद्धा भक्ति से अवलोकन, उनका फोटो और उनके बारे में कुछ नोट लेना। पशुपति मन्दिर का,सामने से फोटो फाटक के भीतर घुसकर ही लिया जा सकता है और यह मना था। ऐसी जगह पर कैसे काम लेना चाहिए इसका मुझे तजर्बा था इसलिए वहाँ के रक्षक के नहीं करने से पहले ही मैंने रोलेफ्लेक्स को टिकट दिया, फिर भलेमानुस की तरह मैंने अजान होने का बहाना करके छुट्टी ले ली। नेपाल उपत्यका की और विशेषकर देवपाटन की खण्डित मूर्तियाँ में यद्यपि दसवीं शताब्दी के बाद की ज्यादा हैं पर कुछ उनमें गुप्तकाल और उससे तुरन्त बाद की भी हैं। बागमती के घाट पर प्राय पुरुष प्रमाण बुद्ध की एक खण्डित प्रतिमा बहुत पुरानी है। जनकलालजी ने बतलाया कि परले पार एक लेख सहित पुरानी मूर्ति खेतों में पड़ी है। हम पुल से पार हो नदी के किनारे किनारे उधर गए। किनारे से ऊपर खेत में चलते समय बड़ी बदबू आने लगी। इधर उधर देख रहे थे कहाँ से गंध आ रही है। देखा, जिस खेत की मेड़ से होकर हम चल रहे हैं, उसमें ही कृषक दम्पती बाल्टी में भर पाखाने को हाथ से बड़े इत्मीनान से थोड़ी थोड़ी जगह पर रख रहे हैं। किसान को ऐसा ही होना चाहिए। मैंने जापानी किसानों को ऐसा ही देखा। यदि ऐसे किसान हमारे भारत के गाँवों में होते, तो गाँव इतने गन्दे न होते, कि भीतर घुसते वक्त नाक पर रूमाल रखनी पड़ती। मूर्ति के पास गए। वह निविक्रम की तथा लिच्छवि शासनकाल की (छठी सातवीं शताब्दी) की थी। इसका उल्लेख किसी विद्वान् ने नहीं किया था। नेपाल में ऐसी अनुल्लिखित बहुत सी मूर्तियाँ और ऐतिहासिक चीजें हो सकती हैं, नेपाल उपत्यका के बाहर सप्तगण्डकी और करनाली की उपत्यका भी सांस्कृतिक केन्द्र रही है वहाँ का अनुसन्धान तो एक तरह अभी हुआ ही नहीं है। एक बार श्री जनकलाल शर्मा कुछ दिनों के लिए वहाँ जाकर कुछ बातें और अभिलेख जमा करके लाए थे। जनकलाल शर्मा जन्म-जात इतिहास और पुरातत्त्व के अन्वेषक हैं। 'व्याकरणतीर्थ' होने से संस्कृत पर उनका अधिकार है और साहित्य रत्न" होने से हिन्दी के साहित्य पर भी। उन्होंने पुरानी लिपियों का स्वयं

परिश्रमपूर्वक सीखा है। पुरानी चीजों के लिए उनके हृदय में तीव्र जिज्ञासा है। उसी का यह परिणाम था कि हम दूर खेतों में पड़ी इस त्रिविक्रम की मूर्ति को देखने गए। यदि उन्हें अवसर मिला, तो नेपाल के पुरातत्व के वे कनिंघम हो सकेंगे।

उस दिन रात्रि भोजन श्री शिवप्रसाद रौनियार के यहाँ हुआ। पहले दिन निरामिष था और आज सामिष।

८

मसूरी में

१ फरवरी को हमने शर्मा परिवार से विदाई ली। मैंने उन्हें लड़का धर्मरत्न के तौर पर देखा था। अब वह आयु और ज्ञान दोनों में प्रौढ़ थे। उनकी पत्नी हम लोगों के आतिथ्य में और भी लगी रहती थीं। घर का सारा काम उन्हें करना पड़ता था। कई बच्चों को सँभालना था। लेकिन वह साधारण चूल्हा चक्कीवाली महिला नहीं थी। जब उनके पति ने जेल को अपना घर बना लिया और कोई सहारा नहीं रह गया तो वह अपनी शिक्षा को बढ़ाकर अध्यापिका बन गई। जब मौका आया तो वह स्वतन्त्रता की लड़ाई में भी कूदने से बाज नहीं आई। इसमें सन्देह नहीं, उनकी वीरता पुरुषों की वीरता से कहीं बढ़कर थी क्योंकि नेपाल में क्रूर सामंतवादी पुरुषों का शासन था।

साढ़े आठ बजे चलकर ९ बजे हवाई अड्डे पर पहुँच गए। दो चार बरतन, चिउड़ा और कुछ नेपाल की सौगात हमारे साथ थी। कस्टम के लायक कोई चीज नहीं थी। चार हफ्ता रहने से उपत्यका के शिक्षितों ने नाम सुन लिया था। जनकलालजी, मानन्दासजी, शर्माजी और दूसरे बहुत से मित्र अड्डे पर विदाई देने आए। नेपाल से पटना, सिमरा, वीरगंज और भैरवा तीन जगहों को विमान आया करते थे। विमान चलानेवाली कम्पनी भारतीय थी। अभी विमान चालन का काम भारत सरकार ने अपने हाथ में नहीं लिया था, इसलिए प्रबन्ध में गड़बड़ी भी थी। पहले सेमरावाला विमान आया। उसके उड़ जाने पर पटनावाला आध घंटा लेट रह कर

आया इसी से श्री खड्गमानसिंह उतरे। राणाशाही के खिलाफ आन्दोलन में भाग लेनेवालों में वह एक प्रमुख व्यक्ति थे। आजकल सरकार के सलाहकारों में थे। हम कुछ ही मिनट तक बातचीत कर सके। फिर श्री बालचन्द्र शर्मा, कवि केदारनाथ व्यथित, श्री धर्मरत्न यमि, मानन्दसजी, श्री कला-नाथ अधिकारी और उनके परिवार से नमस्ते की।

नेपाल में नये और पुराने परिचित सहृदय पुरुषों और महिलाओं की मधुर स्मृति लेकर ११ बजकर ५ मिनट पर हम पटना के लिए उड़े। आसमान साफ था। उपत्यका अपने सौन्दर्य रूप में नीचे पड़ी हुई थी। गिरि परकोट को लाँघकर विहार की ओर बढ़े। बादल नहीं था, लेकिन धुन्ध बहुत थी। तराई के जंगलों को पारकर उस भूमि में पहुँचे, जहाँ कभी लिच्छवियों का प्रतापी गण था। वैशाली गण के उच्छिन्न होने पर मगध की परतन्त्रता स्वीकार करने की जगह लिच्छवियों ने पहाड़ में शरण लेना पसन्द किया। इस वक्त हम आधा घंटे में उनकी पुण्य नगरी के ऊपर पहुँच गये। लेकिन उन्हें अपने परिवार और कुछ स्थावर जंगम सम्पत्ति लेकर नेपाल पहुँचने में महीनों लगे होंगे। वहाँ पहले उन्होंने अपना शासन गण व्यवस्था के अनुसार ही स्थापित किया होगा। पीछे वहीं लिच्छवि राजवंश हो गया जो कि नेपाल के प्रथम ऐतिहासिक शासक थे और जिनके पुरा-तात्त्विक अवशेष उपत्यका में मौजूद हैं। प्राचीन लिच्छवि भूमि पहले गण्डक के पार भी कुछ रही होगी, क्योंकि यह नारायणी (गण्डक) मुक्त बहा करती उतनी धारें बदला करती थी। नरकट-सरीखे घासों के ऊपर से होते हुए हम गये थे। फिर हम बाढ़ की ओर बढ़े और गंगा पार हो सवा १२ बजे पटना की धरती पर उतरे। श्री सान्द्र निधारा, वागेन्द्र बाबू, अद्भुनजी आदि वहाँ मौजूद थे। सामान लेकर मोटरों के बगल पर छज्जूबाग में पहुँचे। इनके ज्येष्ठ भाई और मेरे अभिन्न मित्र पं० गोरखनाथ त्रिवेदी पटना में आकर इनके घर पर रहते थे। उनकी पत्नी यहीं बीमार पड़ी थीं।

पटना—२ फरवरी को मित्रों से मिलते रहे। पुराने साथी भाई चन्द्रमासिंह रास्ते में मिल गये। चन्द्रमासिंह के रूप में तरुणों के सच्चे शहीद नजर के सामने आ जाते हैं। लाहौर षड्यन्त्र में मुखबिर बनकर क्रान्तिकारियों को फाँसी दिलवाने वाले गद्दारों को बेतिया में मारकर इसके

पाप का बदला चन्द्रमा भाई ने ही लिया था। उस समय क्रांतिकारी अपन काम के लिए पैसा जमा करने के वास्ते डाके डालते थ लेकिन ज्यादातर सरकारी सम्पत्ति पर ही। चन्द्रमा भाइ ने रेल क खजाने पर हाथ साफ किया। चाहत थ स्टेशन मास्टर हट जाए लेकिन उसन पकडना चाहा, इस पर गोली दागनी पडी। सयोग ही समझिए जो फाँसी न मिलकर उन्ह आजन्म कालापानी की सजा मिली। बहुत वर्षों तक जल म रहकर उन्ह छुट्टी मिली। वह विचारा म और आगे बढे। उन्ह मालूम हुआ कि कम्युनिज्म (साम्यवाद छोड कोई दूसरा रास्ता नही। वह कम्युनिस्ट बन तब म और बराबर मजूरा की सेवा म लगे हुए है। ४०-४२ के ढाई वष क जेल जीवन म हम एक साथ रह। उस समय चन्द्रमा भाइ से कितना मजाक होता था कितना आत्मीयता स्थापित हुई थी ? आज भी उनक प्रति वही स्नेह और सम्मान मेरे हृदय म था। वह पटना म नही रहा करत थ। यह सयोग था जो मुलाकात हो गइ। पार्टी के दूसरे साथिया स भी भट की। फिर अपन जिले के श्री गोरख पाण्डे का गूगा स्कूल को देखन गय। वकील बनकर उन्होंने वकालत नही की कुछ दिना तक अग्रजी समाचार पत्र म काम किया फिर उनका ध्यान गया असहाय गूगे बहरे बालका की आर। अपन ही उनके बारे म अध्ययन किया और अपन ही एक किराए क मकान म पटना म आकर स्कूल खोल दिया। बगरा सामानी थी लेकिन लगन उनक पास थी। उनकी पत्नी भी सहायक हुइ। अब यह देखकर बडा प्रसन्नता था कि उन्होंन अपना पक्का घर बना लिया है। सरकार भी स्कूल म सहायता दती है। १६४२ म अभा वह तरुणाई की सीमा से पार नही हुए थ, और जब उनकी तीसरी पीढी सामन आ गई है, दादा दादा क स्थान लने वाले आ मौजूद हुए है। उन्होंने स्कूल दिखलाया।

वहाँ से लौट कर योगेन्द्रना क यहाँ भोजन किया। छपरा के राजनीतिक जीवन क मित्र ब्रह्मचारी मगलदेव (वनिनापुरी) न अपन सांस्कृतिक विद्यापीठ क देखने का आग्रह किया। हम उनक साथ गगा क किनारे टेसरीकी वाठी म गए। ५० स ऊपर विद्यार्थी थ। उस समय सस्कृत बोलन का नियम था और छ सात महीन म विद्यार्थी उसम अच्छी प्रगति कर लेन थ। वह सस्कृत क प्रचार तक ही अपने को सीमित नही रखना

चाते थे, बल्कि चाहते थे, कि सात आठ साल पढ़कर विद्यार्थी मट्रिक की परीक्षा दे दे। मैंने कहा इसमें आप युरोपियन स्कूलों की कुछ अच्छी बातें ले लें। वहाँ अंग्रेजी का माध्यम रखते हैं, जिसका हमारी भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है। संस्कृत हिंदी का जीवन साथ है। आप इसको जारी रखें। पीछे न जाने क्या विद्यापीठ की इस विशेषता को छोड़ दिया गया।

उस दिन शाम को चाय थी मोहनलाल विसनाई के यहाँ थी। उन्होंने आग्रह पूर्वक "नेपाल" को प्रकाशित करने के लिए मांगा। हमने उनके कुछ भाग को उसी समय दे भी दिया। यह २ फरवरी १९५३ की बात है आज १९५६ का अंत है तीन वर्ष हो गए "नेपाल" उनके पास पड़ा है। ३०४ पृष्ठ छापकर न आगे बढ़ने का नाम लेते हैं न पीछे। लेखक क्या करे? इतनी महत्त्व पूर्ण नए आँकड़ों के साथ जिस पुस्तक को तैयार करके दिया वह चटाई में पड़ी हुई है। उन्हें टेक्स्ट बुक और दूसरी छपाइयों से फुरसत नहीं है। कोफ्त होती है ख्याल आता है कब ऐसी स्थिति से छुटकारा मिलेगा।

३ फरवरी को सम्मेलन भवन में शिवपूजन बाबू से मिलने गये। कमला को भी आना था। गाड़ी अभी पूरी तरह से ठहरी नहीं थी, मैंने जल्दी बाहर जाकर उनसे मुंह निकालने का मौका लेना चाहा। गाड़ी चल नहीं रही थी, पर झोंक उसके साथ था। गिर गया दाहिने घुटने में दो जगह खून खून निकलने लगा। बन्दर की मार और डायबटीज वाले के घाव होना ही खतरनाक होते हैं। खैर, शिवपूजन बाबू के कमरे में गया। उनसे थोड़ी देर बातचीत हुई। डायबटीज उन्हें भी है। वह तो कभी चर्बीधारी नहीं हुए। डायबटीज मुझे भी थी लेकिन मैं उसे चिन्ता की बात नहीं समझता था, यद्यपि आज घाव के कारण न वह चिन्ता की चीज हो गई थी। मैंने उनसे कहा कि इन्सुलिन लीजिए और बिना परहेज के सब चीजें खाइए। आप नगर के मत हैं लेकिन क्या पता है फिर दुनिया में आने का मौका मिले या न मिले, इसलिए मीठे माठे रसगुल्ले और गुड़ी के लड्डुओं से क्या अपने को वंचित करें।

डेरे पर आकर पेनिसिलिन लगी। अब तो यही ख्याल हुआ कि सीधे मसूरी चलें, क्योंकि इन्सुलिन, पेनिसिलिन, सिवाजाल पोडर क्या आल्ट-पाट की अब एकान्त आराधना करनी थी। रास्ते में बनारस, लखनऊ

तथा इलाहाबाद में भी आने के लिए चिट्ठियाँ लिख दी थीं लेकिन वे सब प्रोग्राम छोड़ने पड़े। पर पटना के प्रोग्राम को तो छोड़ा नहीं जा सकता। उस दिन शाम के सवा ४ बजे बी० एन० कालेज के विद्यार्थियों के सामने भाषण देना पड़ा। अगले दिन (४ फर्वरी) शकुन्तलाजी मगध महिला कालेज में लड़कियों के सामने भाषण देने के लिए ले गईं। पर माइना मुश्किल था, कार पर जाने पर भी कुछ दूर चलना पड़ा। चाय साथी चन्द्रशेखर सिंह और उनकी पत्नी शकुन्तलाजी के यहाँ थी। चन्द्रशेखर पार्टी के मेम्बर होने से हमारे साथ घनिष्ठता रखते थे। युद्ध के दिनों में नजरबंद होकर हम एक साथ रहे थे। शकुन्तलाजी हमारे छपरा के पुराने सहकर्मी और मित्र नारायण बाबू की पुत्री थीं जिन्हें मैं बचपन से ही जानता था। आज नारायण बाबू की पत्नी भी यहाँ उपस्थित थीं और चन्द्रशेखर की माँ भी। पटना से छुट्टी ली। सवेरे ५ बजे की गाड़ी पकड़नी थी। योगेन्द्र बाबू ने हमें स्टेशन पहुँचाया। पंजाब मेल में जिस दर्जे का टिकट था उसमें जगह नहीं थी इसलिए निचले दर्जे में बैठे। अँधेरा ही था जब कि ट्रेन चली। पटना और आरा के जिलों के भीतर से दौड़ती वह ८ बजे मुगलसराय पहुँची। १० बजे देहरादून एक्सप्रेस आया। पंजाब मेल से चलते, तो आधी रात को लक्सर में पहुँचकर गाड़ी बदलनी पड़ती और अब पर में चोट लेकर जा रहा था इसलिए गाड़ी का यही बदलना पसन्द किया। दोपहर बनारस पहुँचे। आज मैं खबर छपी देखी कि राहुल जी २ बजे आ रहे हैं। और हम बनारस से आगे बढ़े। ट्रेन अयोध्या-फैजाबाद के रास्ते चक्कर काट कर चली। साथ बैठे सज्जन रात में यात्रियों के लूट और कटन की बात कर रहे थे। कमला घबराईं। मैंने कहा— "दसियों हजार यात्रियों में एक दो को ऐसा मौका आता है। हम क्या वैसे अभागों में नाम लिखाएँ?" फैजाबाद में कन्या विद्यालय की कोई अफसर महिला अपने बच्चे के साथ चलीं। उनके पतिदेव गाड़ी पर चढ़ा कर जब विदाई लेने लगे और ट्रेन चलने को हुई तो पत्नी ने पतिदेव की चरण धूलि माथे पर लगाई। मैंने कमला से कहा 'देखा।' वह कितनी ही बातों में प्राचीन पंथिनी हैं, लेकिन उन्हें भी यह पसन्द नहीं आया।

लखनऊ पहुँचने अँधेरा हो गया था। जगह मिल चुकी थी, इसलिए

भीड़ होने पर भी हमें कोई परवाह नहीं थी। ६ फरवरी को हरद्वार में सवेरा हुआ। आगे इंजनों की गड़बड़ी के कारण ट्रेन लेट होकर साढ़े ९ बजे देहरादून पहुँची। महनाजी सहायता के लिए स्टेशन पर मौजूद थे। गुरुजी के यहाँ ठहरने का ख्याल था, लेकिन पैर की चोट लेकर अब एक दिन भी और रुकना पसन्द नहीं आया, और १२ रुपये में टैक्सी पर बाजार से कुछ चीजें खरीद हम सीधे मसूरी पहुँचे। बम्बई में मोटर की सवारी करने पर कमला को अवश्य के होती थी, लेकिन आज नहीं हुई। शायद जुकाम के कारण घ्राणशक्ति का बेकार होना कारण था।

मसूरी—किताबघर से रिक्शा लेकर चले। एक मोड़ पार करने पर बर्फ मिलने लगी। आज से हफ्ता पहले—१६ १७ जनवरी को—बर्फ पड़ी थी, जिसके अवशेष अब भी कई जगहों पर मिले, जो बतला रहे थे कि यहाँ फुट डेढ़ फुट बर्फ पड़ी होगी। घर पर पहुँचे, भूननाथ स्वागत के लिए तैयार थे। यद्यपि मोटे नहीं हुए थे, पर एक महीने की गैरहाजिरी में काफी ऊँचे कद दिखलाई दे रहे थे।

कमला पिछले साल कलिम्पोंग हो आई थी, अब फिर जाने के लिए उत्सुक थी। मैंने आग्रह देखकर कहा, अच्छा जाओ।

अब पाँव की अच्छी तरह देखभाल करती थी। बायें घुटने में कोई खास नहीं थी, लेकिन दाहिना घुटना मुड़ नहीं रहा था। इन्सुलिन और पेनिसिलिन के इंजेक्शन रोज चलने लगे। कमला इंजेक्शन लगाने में निपुण हो गई थी। लेकिन, उनके जाने पर इंजेक्शन की भी समस्या थी। इसी समय उनकी मँझली बहिन के बीमार होने की चिट्ठी आई। उनका जाना निश्चित था। खुशहाल भी अब काम छोड़ना चाहता था, यह दूसरी समस्या थी। पर अब अपने घर में थे, इसलिए काम किसी न किसी तरह चल ही जाता।

२५ रविवार को कमला कलिम्पोंग के लिए रवाना हुईं। अकेले इतनी लम्बी यात्रा कर रही थीं, और ट्रेन में सुनने और डरने की बात सुनकर डरती भी थीं, लेकिन महिलाओं का बाहर निकलना प्रिय होता है। देहरादून में महनाजी ने कलकत्ता वाली गाड़ी में बैठा दिया, और वहाँ से आगे जाने में महानन्द भाई तथा मंगरजी सहायता करने के लिए तैयार थे। लेकिन तब

तक कलिम्पाग पहुचकर उन्होने चिट्ठी नही लिखी, तब तक चिन्ता बनी रही।

१७ को ममगाईजी न अपने लडके की बात बतलाई। वह काग्रेस के लिए कई बार जेल गये थ। म्युनिसिपलिटी के मामूली कमचारी थे। बडी कठिनाई से अपन इकलौते बेटे का उन्होने यहा के युरोपियन स्कूल और पीछे देहरादून डी० ए० वी० कालेज मे पढाया। लडका तेज स्वस्थ था और सेना मे जाना चाहता था। परीक्षा मे उसका २४वा नम्बर आया उसे प्रवेश मिलने का हक था लेकिन २४ का ३४ बना दिया गया और उसके पास सूचना भी नही दी। दम्भू होता तो बात उतने ही म खतम हो जाती लेकिन लडका दिल्ली पहुँचा। आफिस वाले पकडे गए। गलती हो गई' कहकर उसे स्थान दिया गया। अब भरती कराने म हजार रुपय स ऊपर खच की जरूरत थी। इस तरह के सकट उपस्थित कर क्या हमारी वतमान व्यवस्था लोगो को जबदस्ती बेईमान बनाने के लिए मजबूर नही कर रही है।

उसी दिन महादेव भाई क तार स मालूम हुआ कि दोपहर के ३ बजे कमला कलिम्पाग के लिए रवाना हो गई।

२० तारीख को 'पुरानी और नई पीढी' पर एक लेख लिखा। मैं पुरानी पीढी को बहुत बातो म अयोग्य समझता हूँ, कि समस्या का हल निकालना नई पीढी के ही बस की बात है। पुरानी पीढी शरीर स ही निबल और बूढी नही है बल्कि मानसिक तौर म भी वह अक्षम ही है। पहले स गद्दी जमा लेने के कारण फसला पुरानी पीढी के हाथ म होता है। वह नई पीढी को किसी तरह का सुभीता देना नही चाहती है न उसकी योग्यता को स्वीकार करती है। पुरानी पीढी यह नही समझती कि भाग्य का फसला करना उनके हाथ म नही है—नई पीढी क ऊपर उनका फसला लागू नही होगा बल्कि नई पीढी का फैसला पुरानी पीढी पर लगेगा। हाँ अधिक सचित ज्ञान पुराना क लिए कुछ सुभीता प्रदान करता है। उनके अध्ययन और तजर्बे की गहराइ नई पीढी का सहज सहायता पहुचा सकती है। तो भी फासीलो क पास बहुत सीमित अधिकार होना चाहिए। नइ पीढी को भी हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि हम भी पुरानी पीढी बन जाना है तब हम भी वही गलती न करें।

२३ फर्वरी को अब घाव सूखना मालूम हुआ, जिससे कुछ सन्तोष हुआ। १३ मार्च को कमला भी कलिम्पोंग से लौट आई। चिन्ता और उत्सुकता दूर हुई। अब तक घाव भी बहुत कुछ अच्छा हो गया था। फर्वरी के अन्त में मसूरी नगरपालिका के चुनाव की धूम थी। कई सालों तक बोर्ड को हटाकर सरकार ने अपने हाथ में सारा काम ले रखा था। चुनाव में होटल के मालिक कप्तान कृपाराम अध्यक्ष पद के लिए खड़े हुए थे। वही मसूरी कांग्रेस के प्रधान थे, इसलिए और साथ ही सबसे बड़े होटल के मालिक होने से उनकी पहुँच भी ऊपर तक थी, कांग्रेस का टिकट उन्हीं को मिला, हालाँकि उनमें भी पुराने कांग्रेस कार्यकर्ता वकील मुकरती साहब मौजूद थे। उनके मुकाबिले में समाजवादी श्री रामकृष्ण वर्मा वकील यदि मुकरतीजी खड़े होते, तो निश्चय ही उनको हराना मुश्किल हो जाता। खड़े हुए।

३ मार्च से साथी स्तालिन बीमार थे। उनका सारा जीवन एक महान् काम के लिए अर्पित था। प्रथम महायुद्ध में लेनिन के दाहिने हाथ होकर उन्होंने काम सम्भाला, और दूसरे में विजय प्राप्त करने का काम उनके ऊपर था। उन्होंने अपने जीवन के एक-एक क्षण का मोल चुका लिया था। ५ मार्च की रात के ९ बजकर ५० मिनट पर मास्को में उनका देहान्त हो गया। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'—७३ वर्ष की आयु पाकर वह विदा हुए। उनका यश शरीर ही नहीं काम भी सदा अमर रहेगा। मार्क्स ने जिस साम्यवाद का दर्शन दिया था और उसे पृथ्वी पर लाने का रास्ता बतलाया था, उसे पृथ्वी पर लाने में लेनिन सफल हुए। साम्यवादी क्रान्ति के लिए साधन जुटाना और उनका सफलतापूर्वक इस्तेमाल करना लेनिन का महान् काम था। लेकिन साम्यवादी शक्ति को आर्थिक तौर से मजबूत करना, फासिस्तवाद के दानव मुख से पार कराने का महान् काम स्तालिन का था। मैं उनके समय दो वर्ष रूस में रह चुका था। वहाँ की प्रगति को मैंने आँखों के सामने देखा था। मुझे वहाँ की एक-एक बात प्रेरणाप्रद मालूम होती है। पर, स्तालिन की व्यक्ति पूजा खटकती थी। लेकिन इसे ज्यादा दिन तक चलाया नहीं जा सकता था, क्योंकि व्यक्तिपूजा साम्यवाद के विरुद्ध थी। जितना ही बढ़ इस एक दोष ने स्तालिन के महान् काम को

नगण्य नही कहा जा सकता। इसी समय ख्याल आया कि स्तालिन पर कुछ लिखूं। पहले लेख लिखा। उससे सतोष नही हुआ—खास करके यह ख्याल करके हिंदी में स्तालिन की कोई अच्छी जीवनी नही है। 'स्तालिन' का लिख डालने पर सोचा लेनिन के बिना पूरी तौर से रूस साम्यवाद को समझा नही जा सकता। लेनिन भी लिखा। फिर महान द्रष्टा मार्क्स कैसे छोड़े जा सकते थे। मार्क्स भी लिखा। एसिया के ६० करोड आद मियो को साम्यवाद के रास्ते पर आरूढ करने का जिसने महान काम किया और जिसके पथ प्रदर्शन में चीन आज इस तरह आगे बढ रहा है उस माओ त्से तुग की जीवनी को कैसे छोडा जा सकता था? मैंने इस साल ये चारों जीवनिया लिख डाली। अगले दो सालो में स्तालिन लेनिन छप कर निकल गई इस साल मार्क्स भी प्रकाशित हो गया, और माओ अगले साल जरूर निकल आएगा।

मुमूर्ष पूजीवाद और उसके समर्थक आततायी अमरिकन धन्नीमान आशा लगाए बैठे थे कि स्तालिन ने सभी सूत्रो को अपने हाथ में रखा है उनके मरते ही रूस का सारा शीराजा बिखर जाएगा। लेकिन उन्हे उसमे पूरी तौर से निराश होना पडा।

११ मार्च को श्री शिवकुमार सिंह अपनी पत्नी मालतीजी के साथ आए। मालतीजी की कितनी ही कहानियां पत्र पत्रिकाओ मे छपी थी पर यह नहीं मालूम था कि वह बनारस के श्रद्धेय प० रामनारायण मिश्र की नंदिनी हैं। नाना ने नाती के बारे मे पत्र लिखकर मुझे परिचित कराया था। इस सुसस्कृत दम्पति से अनेक बार मिलने का मौका मिला। टिढाजी अपने काम मे बडे दक्ष और निरालस थे। वह स्वय भी उर्दू के कवि थे। निर्वाचित हो बाद नगरपालिका मे जो दलबदी और सघर्ष पैदा हुआ उसका कुफल उन्हे भी भोगना पडा। कितने ही महीनो तक अध्यक्ष ने उन्हे निलम्बित कर दिया। फिर बहाली हुई। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अब उन्हे सडगा (कच्छ) के नये नगर के सम्भालने का काम मिला है। आजकल की व्यवस्था मे योग्यता की कद्र बहुत कम होती है।

१५ मार्च को यहाँ के तार टेलीफोन के अफसर गौतमजी आए। आदमी मे बुद्धि है। लेकिन जब मस्त हो जाए तो बुद्धि पूरी तौर से अपना काम नही

कर सकती। हस्तरेखा और गणित पर उनका विश्वास है उनके बारे म व अपन को सवज्ञ समझते हैं यह बुरी बात नही है। पर वे यह नही देखना चाहते, कि कोई क्या इन 'महान विद्याओ' को मानने से इन्कार करता है। इसी तरह ईश्वर को भी व लाठी क हाथ स मनवाना चाहते हैं। वह कविता को भी सत्य है। ऐसे कवियो को कोई कम समझा सकता है कि तुकबन्दी कविता नही है। आप उदू म भी कविता करते हैं और हिन्दी म भी और कितने ही छन्दो पर अधिकार रखते हैं। मेरे पास उन्होंने लम्बी लम्बी कविताएँ लिखकर कई बार भेजते हुए सीधी गाली छोडकर पूरी तौर से आक्षेप किये। मैंने उनका भी जवाब नही दिया। उन्हें इस अपनी विजय समझनी चाहिए थी, लेकिन उसमे उन्हे सन्तोष नहीं हुआ और तुक बन्दियां म बराबर पत्र भेजते रहे। खैरियत यही है कि मैं उनसे यहाँ से ढाई-तीन मील दूर रहता हूँ नहीं तो हर दूसरे-तीसरे आ धमकते।

आजकल चाहे वन ही भीषण जगल म एकान्त म आप चले जाएँ, लेकिन यदि रेडियो हो तो दुनिया की गतिविधि को समझने म दिक्कत नही होती। "हन किस्से म आज ही इसने रेडियो ले लिया था। वह अच्छा तरह काम करता रहा। १७ मार्च को एकाएक बिगड गया। अभी रेडियो वाली दूकानें आई नही थी। मैंने स्वयं उसे ठीक करने का विचार किया। आजकल के जमाने म बिजली पानी क मामूली तौर म बिगड जाने पर यदि कोई उसे सुधार नही सकता, तो मैं समझता हूँ वह आधुनिक काल का नाग रिक नही है। इसी तरह रेडियो क बारे म भी मैं विचार रखता हूँ। लेकिन ग्राम म रेडियो एक-दो बार बिगड़ा था उसे ठीक करके अपने पड़ोसी मजद सा मैंने लेगा था। इसलिए हिम्मत की। खोला। क्या खराबी नहीं मालूम होती थी फिर यही क्या है? जान का भी गुन लिया था लेकिन आखिर म मन ही निमाग न बतलाया, कि भीतर डायल घुमाने वाला तार टूट गया है। तार खास तरह का लगता है। लेकिन, मैंने सोचा, कोई भी मजबूत धागा होना चाहिए। एक ऐसा धागा लेकर उसमे लगा दिया, और रेडियो काम करने लगा। हाँ उसकी सुई अपनी पर ठीक करने म बड़ा लगी, उसके लिए और भी परिश्रम की जरूरत थी। इस अन्दाज से काम लेने लगा। उस

दिन का मरम्मत किया हमारा रेडियो आज १६ दिसम्बर १९५६ का भी काम कर रहा है।

भूतनाथ बड़े हो मनमानी करना चाहते थे। अलसेसियन जैसे बड़े कुत्ते का पीट पाटकर ठीक करना भी सम्भव नही है। मैं कई कहानियाँ इनके बारे म सुन चुका था। डाटने पर मेरे ऊपर भी उसने झपट्टा मारा था, और कमला क ऊपर भी दो बार। मैं सोचने लगा, इससे पिण्ड छुड़ाना चाहिए। लेकिन कमला मानने के लिए तैयार नहीं थी।

यद्यपि घुटन का घाव अच्छा हो गया था, लेकिन जब तक पपडी सही सलामत उखड न आए तब तक उसका क्या भरोसा? सोते वक्त किसी समय असावधानी से कुछ हरी पपड़ी उखड आई। फिर चिन्ता होने लगी लेकिन मैंने सावधान रहने का निश्चय कर लिया था। बीच बीच म कुछ उदासी मन मे उठ खडी होती थी जिसका कुछ कारण कमला की जिद्द भी होती थी। उनसे बराबर शिकायत रहती थी कि वे बुद्धि से क्या काम नहीं लेती? मैं चाहता था, उनकी पढ़ाई अविच्छिन्न रूप से चलती रहे। जब उन्हे सारे समय मोजा स्वेटर बुनते और रेडियो सुनते देखता, तो बोलना ही पडता। ६० वर्ष की अवस्था म घुसने पर जान पडता है जीवन का एक नया मोड़ आता है और आदमी समझने लगता है कि अब हमारा समय बीत चुका। मृत्यु किसी समय आ जाए, इसकी मुझ पर्वाह नही थी। मैं समझता था इतने सालो म जो करणीय था वह कर डाला। अब न मेरी जरूरत दुनिया का है न मुझे उसकी। कभी ख्याल आता क्या ही अच्छा होता यदि यही सोने मृत्यु आ जाती और ६१वे साल के भीतर। अल्ला अल्ला खैर सल्ला। न ऊधो का लेना न माधो का देना।'

३१ मार्च को पता लगा, कमला साहित्यरत्न की परीक्षा म पास हो गई एक कड़ी मंजिल पूरी हो गई।

६ अप्रैल का चिट्ठी म शान्ति भिक्षु ने लिखा मैं गृहस्थ हो गया। स्वच्छन्द जीवन से बन्धन म आना मैं किसी का पसन्द नहीं करता। गृहस्थ बनने पर आदमी की काम करने की शक्ति आधी रह जाती है। शान्ति भिक्षु ने अब तक का सारा समय विद्या म लगाया था। लिखने पढ़ने दोनो की उनमे प्रतिभा है बौद्ध साहित्य और दर्शन का गम्भीर अध्ययन

किया है, और उसी के लिए उन्होंने तिब्बती और चीनी पढ़ी।

९ अप्रैल मेरे ६०वें वर्ष की पूर्ति थी। पिछले साल कमला ने उसे पहली बार मनाया था। अब की बार उसी दिन सबसे पहले अमृत का बधाई का तार मिला। पिता गोवर्धन पांडे शायद ४०वें वर्ष को भी नहीं देख सके। यही अवस्था पितामह जानकी पांडे की भी हुई। मैं उनसे ड्योढ़ा जी चुका इसलिए और का लोभ करना उचित नहीं। ११ को प्रयाग 'परिमल" ने भी तार से बधाई दी—'जीवहु लाख बरीस।" बधाइयाँ बुढ़ापे की याद दिला रही थीं। मुझे भी अंतरावलोकन करने के लिए मजबूर होना पड़ा। सावधान होने लगा कि बुढ़ापे की प्रवृत्तियाँ तो मेरे भीतर नहीं आ रही हैं ?

मेहर बाबा—अब की अप्रैल में एक महीने के लिए हमारे ऊपर की कोठी "हनहिल" में भारत के एक महान् सिद्ध अपनी शिष्य मण्डली के साथ आकर ठहरे। मेहर बाबा का नाम जब-तब मैंने सुना था। लेकिन, सिद्ध महात्माओं के ऊपर न मेरी आस्था रह गई थी और न उनकी ओर आकर्षण था, इसलिए मेरी कोई जिज्ञासा भी नहीं थी। लेकिन जब वे रोज टहलने के लिए हमारे फाटक के सामने से गुजरते, तो उधर नजर न जाए यह कैसे हो सकता था ? मैं अच्छी तरह जानता था, कि मेहर बाबा, अरविन्द और रमण महर्षी से किसी तरह भी कम नहीं हैं। यदि वे दोनों उनसे बाजी मार ले गए, तो उसका कारण यही था, कि वे हिन्दू थे और हमारे देश में हिन्दू ही अधिक बसते हैं। भक्ति में भी यह संकीर्ण साम्प्रदायिकता है। नन्दू मेहर बाबा के पास काम करता था। वह बतलाता था— 'हन हिल' कोठी की तरफ किसी को जाने की आज्ञा नहीं है। अपनी हरेक चीज को रहस्यमय बनाना भारतीय साधुओं की टेकनीक है। मेहर बाबा बाहर आते थे, सड़क पर भी चलते थे। लोगों से मिलने में उन्हें उतना एतराज नहीं था। हाँ बीस वर्ष से उन्होंने बोलना छोड़ दिया था। शिष्यमण्डली में उच्च या मध्यम वर्ग के बीस बाईस स्त्री-पुरुष थे। अधिकांश पारसी थे, कुछ हिन्दू अमेरिकन और युरोपियन भी थे। बिना विज्ञापन के ही मसूरी में ख्याति हो गई थी। नन्-नये लोग दर्शन करने के लिए पहुँच भी जाते, लेकिन उन्हें निराश होना पड़ता। कुछ निराश हुए मुझसे

शिकायत करते थे। मैं उन्हें कह देता, शाम सवेरे वह टहलने निकलते हैं, उस समय दर्शन कर लीजिए।' क्लिन्डेर की पूसग सहोदराएँ मेहर बाबा की पड़ोसी थीं। वे फाटक की सामने से रोज उन्हें जाते देखती थीं। उन्होंने यह भी देखा था, कि मेहर बाबा की भक्तिनों में अमेरिकन और युरोपियन महिलाएँ भी हैं। क्या कोई ईसाई किसी हिन्दुस्तानी सिद्ध के पीछे पीछे फिरे यह उनके लिए आश्चर्य ही नहीं अप्रसन्नता की भी बात थी। रसोई दारिन एक एंग्लो इंडियन भक्तिन थी। उनकी आलोचना सुनकर मैंने कहा—संतों और सिद्धों की आलोचना नहीं करनी चाहिए। वे यह भी कहती थीं कि क्या स्त्रियाँ ही उन्हें घेरे रहती हैं। जब बाहर घूमने निकलते थे, तो मैं भी देखता, छत्रधारिणी और दूसरी अनुचराएँ स्त्रियाँ ही होतीं। उनके अपने निवास स्थान में पुरुष का प्रवेश निषिद्ध था। इस पर भी नुक्ताचीनी होती थी। उन्हें मालूम नहीं था कि हमारे देश के परम सिद्ध अरविन्द एक युग से लोगों को साल में एक ही दो बार दर्शन देते थे। हमेशा बन्द रहने के कारण डायबेटिज हो जाना स्वाभाविक था। उनके यहाँ चौबीस घंटे की ड्यूटी करने का सौभाग्य एक महिला को ही मिला था। सिद्धों में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं रह जाता। ब्रह्मलीन लोग परम अद्वैतवादी होते हैं। यदि मेहर बाबा के पास की महिलाओं के साथ पुरुषों का सम्पर्क कम रखने दिया जाता था तो इसके कारण ढूँढने की जरूरत नहीं थी। मैं मेहर बाबा का पक्ष ले रहा था और पूसग बहनें उनकी नुक्ताचीनी करने पर तुली हुई थीं। वह कहती थीं। मौन और एकान्तवास के इतने प्रेमी हैं तो बंगले में टेलीफोन क्यों लगवा रखा है, क्यों रेडियो सुनते हैं और क्या अखबारों का पढ़ना है?

मेहर बाबा के साथ एक ईरानी भी थे। उनसे फारसी में कितनी ही बार बातें होतीं। जब मैंने जिज्ञासा नहीं प्रकट की और न दर्शन की मेरी इच्छा ही देखी तो उनके भक्तों ने इंगलैण्ड और अमेरिका में छपी बीस के करीब मेहर बाबा-सम्बन्धी पुस्तकों का ढेर मेरी मेज पर लगा दिया। उनसे मालूम हुआ कि इंग्लैंड और अमेरिका में मेहर बाबा के कितने भक्त हैं। एक पुस्तक को मैंने ध्यान से पढ़ा, जिसमें भारतवर्ष के मस्ताने-बाने के पागलों का विवरण दिया गया था, कुछ के फोटो भी थे। मेहर बाबा ने उन सबको सिद्ध

उन्होंने बतलाया, पिछले साल जिस इतिहास अध्यापक को मैंने 'वोल्गा से गंगा' (उर्दू) दी थी, उसमें मुसलमान लड़की से हिंदू के ब्याह करने की बात देखकर उन्होंने उसे फाड़ डाला। आजकल के युग में तरुण और शिक्षित ऐसे ख्याल अपने दिमाग में रख सकते हैं यह आश्चर्य की बात थी।

२२ मई को धीरेन्द्र का पटना से भेजा लीचियों का पार्सल आया। लीची और आम के फलों का मौसिम आ गया। मई के अन्त तक मसूरी अब जम गई। शाम के वक्त माल रोड पर भीड़ होने लगी। व्यवसायी लोग अब भी सन्तुष्ट नहीं थे। कह रहे थे लोग तो हैं, लेकिन पैसा नहीं खर्च कर सकते।

श्री भूदेव विद्यालंकार—बल्देवजी के बड़े भाई—से कानपुर में पीछे भी भेंट हुई लेकिन मुझे उनका १९१७ के आसपास का ही चेहरा याद आता है जब मैं महोबा आर्यसमाज में ठहरा था, और वह गुरुकुल से अभी अभी स्नातक होकर आये थे। दोनों भाई एक ही जगह पहाड़ पर नहीं जाते, इसलिए अबकी बार बल्देवजी नहीं आये।

२७ मई को वैशाख पूर्णिमा थी। दफ्तरों में छुट्टी देखकर अनुमान हुआ कि शायद भारत सरकार ने बुद्ध जयन्ती को राष्ट्रीय छुट्टियों में गिन लिया है।

प्रमाणवार्तिकभाष्य छप चुका था अब उसकी भूमिका लिखनी थी। डा० अल्तेकर ने तिब्बत से लाये बौद्ध संस्कृत ग्रंथ 'भिक्षुप्रकीर्णक' को सम्पादित करने के लिए लिया था। मैंने स्वीकृति दे दी।

श्री कन्हैयालाल सहल पिलानी से यहाँ आये। वह अपने साथ राजस्थानी लोक गीत के गायक पिलानी के एक अध्यापक तथा लोक गीतों के गायक को लाये। मालूम हुआ कि वहाँ पर लोक-गीतों के संग्रह का काम हो रहा है। स्वामी ने कुछ गीतों के नमूने सुनाये जो बड़े ही करुण थे। मालूम हुआ, राजस्थान में भी 'निहाल्दे' गाई जाती है और इतनी विशाल है कि सारी वर्षा गाने हैं। यह जान कर और प्रसन्नता हुई कि वहाँ की निहाल्दे का उस्तादों ने नहीं छेड़ा है, जैसा कि कौरवी में किया जाता है। कौरवी के उस्तादों ने निहाल्दे और सुल्तान का नया रूप दिया जिसके कारण परम्परा से कंठस्थ आये गीत की विशेषता बहुत कुछ लुप्त हो गई।

लोक-गीतों के सम्बन्ध में राजस्थान बहुत समृद्ध है। कारण यही है कि सामन्तवाद वहाँ रियासतों के विलयन के समय तक बहुत कुछ अछूता बना आया। लोक-गीतों के पारखी गायक वहाँ मौजूद थे, जिनको पोषण और संरक्षण राजस्थानी राजा और ठाकुर करते आए थे। अब वह हाथ उठ गया है, इसलिए लोक-गीतों की सुन्दर परम्परा के नष्ट होने का डर है। यद्यपि लोक-गीतों के संग्रह की ओर अब ध्यान गया है, लेकिन इतनी निधि को जमा करके सुरक्षित करने के लिए जितने धन और परिश्रम की आवश्यकता है, वह सरकार के उधर ध्यान देने से ही हो सकता है।

डा० राम हमारे मुहल्ले के हैं। मैं १९५० में यहाँ आकर रहने लगा था, और इन्होंने १९५४ में ही बाग खरीद लिया। उनकी पत्नी कमला हैं। २१ मई को उनके पास गया। वहाँ विरागी हैं। गर्मियों के तीन-चार मास यहीं बिताते हैं। फर्रुखाबाद घर है और प्रैक्टिस भी अच्छी है। पास में लाला कुन्दनलाल की कोठी को भी देखने गया। बुढ़िया के तलवों पैरों के घाव वर्षों चलते रहे। पास में डाक्टर भी थीं और सूई लेना छोड़कर देहाती दूसरी दवाइयाँ करती रहीं। घाव बढ़ हो गया। फिर पिंडलियों में आग लग गई। दर्द के मारे बुढ़िया कराहती। पैर तो बिल्कुल ही सूख कर काँटा हो गये थे, अब आँखें पथराई थीं। वह कहती थी, अब तो भगवान बुला लें।

१ जून को लेनिन' लिखना शुरू किया। आज मानदजी आये। शाम को वैद्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य यादवजी त्रिकमजी के साथ आये। चिकित्सा चूड़ामणि यादवजी का नाम उनके शिष्यों से मैं बिहार में सुन चुका था। आधुनिक काल में आयुर्वेद के ग्रंथों के उद्धार और हमारी प्राचीन चिकित्सा-पद्धति के प्रचार के लिए जितना काम यादवजी ने किया उतना किसी ने नहीं किया। प्राचीन परम्परा के सम्पूर्ण रूप अनुगामी होते हुए भी वह आधुनिक प्रवृत्तियों के घोर विरोधी नहीं थे। वस्तुतः आयुर्वेद की बहुत सी मौलिक देन हैं, जिन्हें हमें छोड़ना नहीं है और जिन पर हमारा देश गर्व कर सकता है। आधुनिक चीन का रुख इसमें अच्छा है। वह वहाँ की पुरानी परिपाटी न लेकर फिर आधुनिक पद्धति के समन्वय को भी प्रश्रय करता है। औषधियों के सम्बन्ध में अनुसंधान करने में वैद्य और

डाक्टरों के सहयोग से आधुनिक ढंग से औषधियों का परीक्षण मूल्यांकन होना है। रोगों के निदान में भी डाक्टरों की दवा की विधि से परिचित होने की प्रेरणा दी जाती थी। हमारे चार हजार वर्ष के सांस्कृतिक इतिहास में वैद्यों ने अपने परीक्षण द्वारा बहुत से तत्त्व और औषधियाँ प्राप्त की हैं जिनमें से कुछ के गुणों को डाक्टरों ने भी स्वीकार किया है। एक बार तो हमारी सारी औषधियों का विश्लेषण होना चाहिए।

४ जून को घुमक्कड़ शिव शर्मा के पिता वैद्य श्री देवराज शर्मा आए। लड़के के पीछे बावले थे। वह रहे थे उसकी मां बहुत रोती है। शिव कभी पटियाला आता भी है तो घर नहीं आता। मैंने कहा—आप उससे जितना अधिक चिपकना चाहेंगे उतना ही वह दूर भागता रहेगा। ऐसा न करने पर वह अपने-आप ठीक रास्ते पर आ जायगा। सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है कि आप उसकी शादी का प्रयत्न न करें। आजकल के युग में शादी के बारे में लड़के मां-बाप के वचन का ख्याल नहीं करा करते। पीछे मैंने भी शिव शर्मा से कहा बन्धन में मत पड़ो लेकिन पिता माता को नाखुश समझना बहुत बुरा है।

सत्या गुप्ता के पिता श्री वेदमित्र जी बहुत वर्षों से एकाकी जीवन व्यतीत करते थे। अभी वह प्रौढ़ नहीं हो पाये थे कि उनकी पत्नी का देहांत हो गया। गायत्री और सत्या दो पुत्रियां थीं। खानदान पुराना आर्य समाजी था। उन्होंने धार्मिक स्वाध्याय और सत्संग में अपना समय बिताना शुरू किया लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलाई। गायत्री डाक्टर हो गई और सत्या एम० ए०। गायत्री ने एक विवाहित डाक्टर से अपनी मर्जी से ब्याह किया। पिता को यह नहीं पसन्द हुआ। पुत्री को जिन्दगी भर के लिए दुःख भोगना पड़ा। वह चाहते थे, सत्या का ब्याह हो जाय, पर सत्या तैयार नहीं थी। गर्मियों में वह चार पाँच महीनों के लिए मसूरी आ जाते थे। तातरा (सहारनपुर) में अपना घर था लेकिन वहाँ गये वर्षों हो गये। जाड़े हरद्वार या ऋषिकेश में बिता देते। इधर उनका हृदय का रोग हो गया था। उस दिन मैं उन्हें देखने गया। पुत्रियों की चिन्ता उनके लिए बुरा है। अपनों की हार्दिक सांत्वना ही उस हालत में सहायक होती है। वेदमित्र जी आर्य समाजी हैं। आर्यसमाज में ऐसे सन्त नहीं हैं जो उन्हें आध्यात्मिक संतोष

द सकें इसलिए जिन विना मन क पाठ फिरत रहत हैं। मुझने भी इनके बार म पूछा। मैंन कहा— अनीश्वरवादी नास्तिक का नुस्खा जब इस स्तर म आयक लिए कारगर नहीं होगा। मनुष्य क मन की अलग अलग भूमिकायें हैं इस भूमिका म पहुँचन क लिए आपको फिर म स्वाध्याय और मनन करना होगा। और आपकी उमर ५५ साल हो गई। वजन घटान की कोशिश कीजिए।' निरामिषाहारियो क लिए यह और भी मुश्किल है क्योंकि उनक प्रिय भोजना म चीनी और घी की बहुतायत होती है जो वजन क बढान मे परम सहायक होत हैं। केलमित्रजी बहुत वर्षों स कम्प नियों म लग अपन व्यय क भाग पर ही गुजारा करत हैं और वह उनक लिए काफी है।

इलाहाबाद के प्रो० महानारायण सक्सेना प्राय हर साल मसूरी आकर यहा गर्मिया की छुट्टिया बिताते हैं। प्रयाग स ही उनसे परिचय था। ७ जून को देर तक बात होता रहा। सगीत की तरफ उनकी स्वाभाविक रुचि थी। एम० एस-सी० प्रथम वर्ष पास किया था, लेकिन उधर जाना नहीं था, इसलिए एम० ए० पास किया। फिर उन्होंने अपना सारा ध्यान सगीत की ओर लगाया। कितने ही दिनो तक इलाहाबाद म एक सगीत विद्यालय म अध्यापक रहे। अब युनिवर्सिटी म हैं। ऐसा व्यक्ति प्राच्य और पाश्चात्य सगीत क तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयुक्त था और साथ ही वह हमार लोक-गीतो का भी गम्भीर अध्ययन कर सकता था। उन्होने बतलाया, मैंने अपन डी० फिल० क लिए 'सत कवि और सगीत' को लिया है। यह महत्वपूर्ण विषय था। विद्यापति स लेकर हमारे सत कवि ही गीतो क पद नहीं बनाते थे बल्कि यह परम्परा आठवीं सदी के पूर्वार्ध क आदि सिद्ध सरह तक जाती है। वस्तुत हमारा बहुत-सा सगीत तिन पदो क रूप म सुरक्षित है वह सिद्धो और सन्तो क ही हैं। उन्होंने अपन हरक पद क साथ रागो का उल्लेख किया है। नोटेशन (स्वर लिपि) उस समय नहीं थी। इन पदो क द्वारा उन रागो का आकार निश्चित करना एक महत्वपूर्ण बात है। वस्तुत शिष्ट सगीत और लोक सगीत क ऐतिहासिक अनुसधान का काम हमारे यहा नहीं क बराबर हुआ। मैंन उन्हें यह भी कहा कि अन्त राष्ट्रीय स्वर लिपि क प्रचार की ओर भी ध्यान देना चाहिए क्योंकि अन्त-

राष्ट्रीय सगीत समाज मे इसी क द्वारा हम आसानी से अपनी चीजा को पहुँचा सकते है।

उसी दिन शाम का स्वामी गगेश्वरानन्द जी आये। नत्रविहीन है। नेत्रविहीन सभी प्रतिभाशाली हा, यह आवश्यक नही लेकिन जो प्रतिभा शाली हात ह वह असाधारण होते है। प० सुखलालजी भी इसके उदाहरण हैं। स्वामी गगेश्वरानन्द जी ने सस्कृत शास्त्रो का गभीर अध्ययन किया है। मेरा परिचय उनस यद्यपि पीछे हुआ पर नाम मैं पहल ही सुन चुका था। उन्होन १६२२ म गया काग्रेस म मेरा भाषण सुना था और उसी समय स परिचित थे। सस्कृत की गम्भीर विद्वत्ता के साथ साथ उनम कूप मडकता और सकीर्ण साम्प्रदायिकता नही है। सस्कृत विद्या के प्रसार का भी उनको ध्यान है इसका प्रमाण बनारस का उदासी सस्कृत विद्यालय है। अहमदाबाद म चार पाँच लाख लगवाकर उन्होन वेदमन्दिर बनवाया। मैंने उनस कहा सस्कृत के बहुत से ग्रथ अप्रकाशित है कितने ही प्रकाशित होकर अब दुलभ हो गय हैं। इन्ह चिरस्थायी हाथ के कागज पर निकालना चाहिए। दस बीस ग्रथो तक तो आशा नही रखनी चाहिए कि यह प्रकाशन स्वावलम्बी हो जायेगा पर आगे स्वावलम्बी होन की भी सभावना है। साथ ही वेदान्त के मूल ग्रथो का हिन्दी म एसा अनुवाद होना चाहिए जिसम मूल का आनन्द आय टीका न मालूम हो। स्वामी सत्यस्वरूपजी उनके शिष्यो म हैं, जिनस साल म एक दो बार मुलाकात हो जाया करती थी। अब भी मैं इन बातो की ओर उनका ध्यान दिलाता रहता हूँ।

प्रसाद जी कृत "कामायनी" का सस्कृत अनुवाद राष्ट्रभाषा प्रचार समिति म छपने के लिए गया था। मुझे आशा था कि अहिन्दी भाषा भाषी प्रान्तो म हिन्दी के प्रभाव को मनवानेवाले इस ग्रथ का प्रकाशन अब हो जायेगा पर वहाँ से लौट आया। फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन स आशा हुई। महीनो पाण्डुलिपि वहा रही। अब चिट्ठी आई, कि आदाता ने उस प्रकाशित करन की स्वीकृति नही दी। आदाता वकील है उन्ह साहित्य स विशेष रुचि नही है। फिर आदमी को सहज ही ख्याल हो सकता है कि हिन्दी की सस्था का सस्कृत क ग्रथ के प्रकाशित करन म क्या मतलब ? वह यह कैसे समझ सकते हैं कि हिन्दी क ग्रथरत्न का सस्कृत म

अनुवाद अहिंदी भाषाओं के धुरंधर साहित्यिकों के पास पहुँच कर अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है। हमारे कितने ही महान् ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवादों ने एक विस्तृत क्षेत्र में उनकी महिमा पहुँचाई है, यह हम देखते ही हैं।

१० जून को हर्मिटेज सरकार की ओर से नीलाम हुआ। यह हर्मिटेज बंगला का काटेज या कुटीर था। हर्मिटेज को बिड़ला ने लेकर लाखों रुपया लगा उसे बिड़ला निवास बना दिया। उस समय काटेज एक मुसल्मान सज्जन की सम्पत्ति थी जो २५ ३० हजार से नीचे उतरने के लिए तैयार नहीं थे। विभाजन के समय वह पाकिस्तान भाग गये। बंगले का सारा फर्नीचर और सामान लोग उठा ले गये, छत दीवार और दरवाजे रह गये। दरवाजों को भी लोग निकालने लगे थे। चौकीदार नहीं तो कौन उनकी रक्षा करे? नीलाम में बोली बोलने के लिए कितने ही लोग आये थे। श्री माहिनी जुत्सी भी पाँच हजार तक जाने के लिए तैयार थी। डा० राम के आदमी ने साढ़े सात हजार तक बोली बोली। बिड़ला की ओर से जब आठ हजार दिया गया तो फिर किसी की हिम्मत नहीं हुई। उस दिन तो बात तै नहीं हुई, पीछे नीलाम के अफसर ने कह दिया कि दस हजार से कम में हम बेचने का अख्तियार नहीं है। अगले नीलाम में दस हजार में मकान बिक गया। उस समय अब भी मकानों की कीमत थी। पिछले दो वर्षों में वह और गिरी। बिड़ला निवास से लगा होने के कारण वह दस हजार रुपये में बिक सकता। जुत्सी जी हमारे पड़ोस में रहने के ख्याल से ही उसे ले रहे थे।

एक दिन बादल रहकर १४ फरवरी की रात से ही वर्षा होने लगी। सवेरे भी कुछ रही, फिर दिन भर खुला रहा। हवा और वर्षा मसूरी के तापमान पर जल्दी प्रभाव डालते हैं। उस दिन तापमान इतना उठ गया कि एक दो घड़ी के लिए गरम कपड़ा और कंटोप पहनना पड़ा। अब बादल और वर्षा की संभावना थी। यद्यपि यह नियम नहीं है कि १५ जून से वर्षा आरम्भ ही हो जाय। सर्ववाले अपने तजर्बे से २६ जून को वर्षारम्भ मानते हैं।

१६ जून को लेनिन समाप्त हो गया। जब-तब वर्षा हो जाने से सलानियों को घर याद आने लगे। वह धड़ाधड़ मसूरी छोड़ने लगे।

स्तालिन', लेनिन और मार्क्स की जीवनियों को समाप्त करने के बाद २२ जून से चौथी पुस्तक 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' में मैंने हाथ लगाया। उसी दिन उनाव के एक मुसलमान वकील साहब आए। अंग्रेजों के शासनकाल में देश में फूट पैदा करने के लिए जो मुसलमानों को शह देते रहे, उन्हें यह समझना मुश्किल है कि नये युग में पुराने बिलगाव के खयाल को सहायता नहीं दी जा सकती। उनके लिए केवल वही रास्ता है जिसे अकबर ने चार शताब्दियों पहले दिखलाया था। अंग्रेजों के चले जाने के बाद और पुरानी मनोवृत्ति के कारण देश के विभक्त हो जाने पर शिक्षित मुसलमानों को किंकर्तव्यविमूढ़ता-सी आ गई है। उनमें से कितने ही निराश होकर पाकिस्तान भाग गए। पर सब क्या अधिकांश भी वहां भागकर नहीं जा सकते। जिनके भाईबन्द पाकिस्तान चले गए हैं, वह वहां की कठिनाइयों को जान कर अब समझने लगे हैं कि हमारे लिए पाकिस्तान नहीं, हिन्दुस्तान ही अच्छा था। यह अवस्था उन्हें महसूस नहीं होती कि उन्हें कोई नहीं समझा जाए। वकील साहब यह सब दिक्कतें बतला रहे थे। मैंने कहा—इस्लाम को खतरे में कहना गलत नारा है। हमारे देश में सभी धर्म स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकते हैं, हमारी पुरानी परम्परा भी इसके अनुकूल है। पर बिलगाव की मनोवृत्ति को हटाना पड़ेगा, और मुसलमानों को अपनी विशेषता उतनी ही माननी होगी जितनी ईसाई, बौद्ध, जैन या हिन्दू मानते हैं।

आजकल योग्यता नहीं बल्कि जाति और सम्बन्ध को नौकरियों में पूछ है। प० गयाप्रसाद शुक्ल के सुपुत्र श्री विश्वनाथ शुक्ल ने एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी। देहरादून डी० ए० वी० कालेज में पढ़े और वहां उनका घर है। वहीं अध्यापकी मिलती तो घर में रहने के कारण बहुत से सुभीते थे। लेकिन, डी० ए० वी० कालेज में कायस्थों का प्रभुत्व है। कायस्थ तीसरे दर्जे का एम० ए० भी विभागाध्यक्ष हो सकता है। अध्यापक की जरूरत थी। विज्ञापन दिया जाए और कोई योग्यतम साबित हो, तो अपने आदमी का रास्ता रुक जाएगा। सबसे अच्छा तरीका यह समझा गया कि उस समय यह कहकर बात टरका दी जाए कि अभी आदमी की जरूरत नहीं है। योग्य व्यक्ति अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते, वह किसी घाट लग जाएंगे और फिर अपने आदमी को घुसने से

बठा दिया जाएगा। विश्वनाथजी अपने विषय के बहुत याग्य थे इसलिए उन्हे बरेली कालेज म काम मिल गया और एक ही दो वष बाद वह अहमदा बाद म हिन्दी विभाग क अध्यक्ष होकर चले गए। उनके पिता प्रा० गया-प्रसाद शुक्ल देहरादून म अपना मकान बना, वही रहते है। घर छाडकर अहमदाबाद जाना विश्वनाथ को रुचिकर थाडे ही हो सकता था ? देहरादून के डी० ए० वी० कालेज की शिकायत क्या की जाए, सभी जगह यही बात है। सम्बन्ध या खुशामद काम करती है। खुशामद म जा याग्य साबित हा वह योग्यनमा का भी धक्का दे आगे बढ जाता है। हमारे प्रा न के एक दुट-पुंजिया अथशास्त्री हैं जो मन्त्री के कृपापात्र हाने क कारण यूनिवर्सिटी के विभागाध्यक्ष बन गए। ऐस आदमिया का सम्माननीय गद्दिया पर बैठता देखकर सचमुच दिल जबदस्त बगावत करने लगता है। एक दूसरे तरुण का जानता हू। आइ० ए० एस० म वह हरेक विषय म सबसे अधिक नम्बर पाने वाले तीन चार उम्मीदवारा म था। उसे पास हाना चाहिए था। लेकिन नेहरूशाही ने पसनल्टी (व्यक्तित्व) सबसे आवश्यक चीज मानी है, जिसके लिए शायद ३०० माक हैं। पसनल्टी की परीक्षा कुर्सी पर बठे लाग जबानी करते ह और उनका ही फसला आखिरी है। कोई भी आदमी देखकर उस तरुण को कह सकता है कि व्यक्तित्व म वह तरुण किसी से कम नही है, लेकिन उसको व्यक्तित्व मे १० नम्बर दिया गया। अन्धेर नगरी चौपट राजा न्याय की पूछ कहाँ हा सकती है ? विशेषकर जबकि नेहरूजी इस सन्दिग्ध व्यक्तित्व परीक्षा के भारी समथक हैं। उसी तरुण ने एक विषय पर पी एच० डी० की थीसिस लिखी। बहुत अच्छी थी यह इसी स सिद्ध है कि एक प्रकाशक न इस ग्रन्थ का अग्रजी म प्रकाशित किया। एक यूनिवर्सिटी म भाड़ू विभागाध्यक्ष बन गए। तरुण न दूसरा निबन्ध लिखकर दा साल हुए उनके पास दिया। खुशामदी दरबारी का इतनी फुरसत कहाँ ? अभी उनको शायद वाइस-चासलर बनने की आशा है। इसलिए उन देवताआ को रिझाना आवश्यक है जिनकी कृपादृष्टि मे वह इस गद्दी पर पहुँच सकते हैं। दा वष स उन्हें फुरसत नहीं हुई कि थीसिस को परीक्षको के पास भेज। एक तरफ एक तरुण क जीवन का सवाल है, और दूसरी तरफ इस आदमी का यह कमीनापन। ' धिक् व्यापक तम ।

२४ जून का साथी यज्ञदत्त शर्मा अपनी पत्नी सरलाजी के साथ आए। नौ दस वर्ष के भीतर इतना परिवर्तन हो सकता है यह मुझे विश्वास नहीं था। इस साल पहले उन्हें दिल्ली में देखा था। साथी यज्ञदत्त एक कालेज में प्रोफेसर थे। कम्युनिज्म ने लाखों की तरह उन्हें फकीर बनाया। अपनी योग्यता और क्षमता को उन्होंने गरीबों के उद्धार में लगाया। वह दिल्ली के कम्युनिस्ट नेता हैं। उनकी पत्नी सरला गुप्ता अपने विद्यार्थी जीवन से ही विद्यार्थियों फिर स्त्रियों और कमरों के संगठन में काम करने लगी थीं। अब दोनों पति पत्नी हैं। यज्ञदत्तजी पहले छरहरे जवान थे, अब कुछ मोटापा आ गया है और काले बालों में कितने ही सफेद भी दीख रहे थे।

गर्भ परिपक्व हो रहा था। कमला को मेटर्निटी अस्पताल में ले जाने की जरूरत थी। मिशनरियों का सेंट मेरी अस्पताल मसूरी के अच्छे अस्पतालों में है जो हमारे से नजदीक भी है। लेडी डाक्टर ने परीक्षा की। बतलाया खून का दबाव कुछ कम है। विटामिन बी का इन्जेक्शन देने और कैल्सियम खाने के लिए कहा।

उस दिन डा० धीरेन्द्र वर्मा डा० विश्वेश्वरप्रसाद और प्रिंसिपल सद्गुरुशरण अवस्थी से बातचीत हुई। अगले दिन प० नरदेव शास्त्री आए। शास्त्रीजी चार मील दूर लण्ढौर में हर साल मसूरी में ठहरते हैं, सीजन में जरूर दर्शन देते हैं।

३० जून को जामिया मिलिया के अध्यापक डा० सलामतुल्ला अपनी पुत्री सल्मा के साथ आए। तीन घंटे तक भाषा और दूसरी बातों के सम्बन्ध में बात होती रही। मेरे हिंदी प्रेम को कितने ही लोग उर्दू द्वेष समझना चाहते हैं। सुनी सुनाई बातों में लोगों को विश्वास भी हो जाता है। मैं उर्दू को हिन्दी समझकर उसी की तरह उसके साथ प्रेम रखता हूँ और चाहता हूँ कि उर्दू की अनमोल निधियाँ नागरी में मुद्रित होकर व्यापक रूप से पढ़ी जाएं। मैं उर्दू लिपि के त्याग करने की भी बात नहीं करता। डा० सलाम तुल्ला साहित्य प्रेमी तथा उदार विचार रखते थे इसलिए हम एक दूसरे के भावों को समझ सकते थे।

१ जुलाई को अमृतसर से भैया की चिट्ठी आई कि भाभीजी की छोटी जुबैदिन का २६ को देहांत हो गया। परिपूर्ण गर्भ का बड़ सावधान

रहने की आवश्यकता होती है। बेचारी गिर पड़ी। गर्भस्राव के साथ भीषण रक्तस्राव होने लगा। अस्पताल ले गए। चौदह घंटे के भीतर मर गई। पिछली साल अपनी बहन के साथ वह मसूरी आई थी। उमर ही क्या थी किन्तु मृत्यु उमर पूछकर थोड़े ही आती है? नन्हा बच्चा और एक लड़की छोड़ गई।

मसूरी में रहते तीन वर्ष हो गए। यहां मैंने सब तरह के जीवन को देखते हुए मन में ख्याल आया कि इसकी झांकी दूसरों को भी देनी चाहिए, इसलिए मैंने कहानियां लिखने का निश्चय किया। पहली कहानी 'महाप्रभु' थी, जिसे १२ जुलाई को लिखा। मेरी कहानियां प्रायः एक काम (१६ पृष्ठ) की होती हैं। अधिकतर मैं एक बैठक में एक कहानी समाप्त करता हूं। 'महाप्रभु' आधुनिक काल के एक धर्म के दूकानदार शिरोमणि की कथा है। मसूरी-सम्बन्धी कहानियों को पहले मैं 'मधुपुरी' नाम से रखना चाहता था, इसी बीच 'मधुपुरी' के नाम से किसी का काव्य निकल आया, इसलिए मुझे पुस्तक का नाम 'बहुरंगी मधुपुरी' रखना पड़ा। २१ कहानियों में यद्यपि एक व्यक्ति के जीवन की छाप अधिक हो सकती है, पर उसके बनाने में अनेक व्यक्तियों की जीवनियों को लिया गया है।

१६ को बाजार गए। कुल्हड़ी में पता लगा, एक वृक्ष पर एक महात्मा तपस्या कर रहे हैं। बाजार से यह पेड़ नजदीक ही था। सचमुच ही वन के वृक्ष पर गेरुआ कपड़ा दिखलाई दे रहा था। मचान-सा बांधकर मुंह ढांके कोई साधु वहां बैठा था। मसूरी तपोभूमि नहीं विलासभूमि है। तपस्या करने के लिए यहां का सबसे बड़ा बाजार ही क्या अनुकूल साबित हुआ? कुछ लोग समझने लगे कि यह निरा भोंदू है, जो इस जगह आकर अपने पाखण्ड से लोगों को प्रभावित करना चाहता है। लेकिन, पेड़बाबा—इसी नाम से उन्हें पुकारा जाने लगा—भोंदू कहने वालों को भोंदू समझते थे। बरसात का दिन था, जिसके कारण सर्दी भी बढ़ गई थी। उस समय चौबीसों घंटे पेड़ के ऊपर रहना जन मन को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए काफी था। वह मील-दो-मील दूर भी तपस्या करने जा सकते थे, पर यदि कहीं रीछ से भेंट हो जाती, जो मसूरी के आस-पास के जंगलों में रहते हैं, तो बेचारे की तपस्या भंग हुए बिना नहीं रहती, और फिर भक्त और भक्तिनें

उनके पास कैसे पहुँच सकते थे? पेडबाबा १८ जुलाई को एकाएक यहां बैठे दिखाई पड़े। अभी तीन ही दिन हुए कि लोगों के दिल में भक्ति अंकुरित हुई और दर्शकों की भीड़ होने लगी। लोग कह रहे थे महात्मा न कुछ खाते हैं न पीते हैं और हर वक्त ध्यान में लीन रहते हैं। पीने के लिए उनके भीगते कपड़ों से काफी पानी मिल सकता था और खाना देखने के लिए कौन वहां चौबीस घंटा पहरा देता था? पेडबाबा अकेले नहीं आए होंगे। उनके सिद्ध साधक मसूरी में अपना प्रापगंडा कर रहे होंगे यह निश्चित हो था। हफ्ता बीतते बीतते पेडबाबा बहुत से मिलिमिल्यनीलों को अपनी ओर खींचने में सफल हुए। आर्यसमाजी और दूसरे नुक्ताचीनी करते रहे लेकिन भक्ति की बाढ़ में उनकी आवाज डूब गई। पूरे महीना भर तपस्या कर लेने पर मसूरी में अब किसी को इस महान् तपस्वी के खिलाफ बोलने की हिम्मत नहीं रह गई। वह वहाँ से उतरे। एक अच्छे मकान में ले जाकर ठहराये गए। अब उन्होंने कहा कि भागवत की कथा होनी चाहिए, और एक बड़ा यज्ञ भी। भक्तों ने हजार रुपये जमा कर लिए। भागवत की कथा होने लगी। पेडबाबा एक पेड़ पर खड़े होकर उसे सुनने लगे। कथा के बाद बिदाई हुई। पेडबाबा का जलूस निकला और मसूरी दिग्विजय करके उनके विलासियों के हृदय में भक्ति की गंगा बहाकर वह यहाँ से बिदा हुए। कितने ही आधुनिक ढंग के शिक्षित ग्रेजुएट और वकीलों को भी उन्होंने कारण नास्तिकता के दलदल से उद्धार हुआ। यह २०वीं सदी का उत्तरार्ध है क्या भारत में यह सिद्ध हो पाया?

२३ जुलाई को जोरहाट (आसाम) के राजहोली गाँव के निवासी घुमक्कड़ मेघनाथ भट्टाचार्य आये। भारत के बहुत से भागों में घूम चुके थे काश्मीर ही नहीं पश्चिमी पाकिस्तान की सीमा पर भी पहुँचे। उनको दुर्गम पहाड़ी यात्राओं का मुझे विश्वास हो गया कि यह आदमी प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ होने लायक है। निश्चिन्त होते भी शारीरिक परिश्रम से उनको कोई दुराव नहीं था, यह सोने में सुगंधी थी।

२६ जुलाई को पता लगा कोरिया में युद्ध विराम-संधि हो गई। अमरिका ने दक्षिणी कोरिया से संतुष्ट न होकर उत्तरी कोरिया को भी चुटकी बजाते बजाते लेना चाहा। पर उसके पिट्ठू सिंगमन री की एसी

दुर्गति हुई कि एक समय जान पड़ा उसे भी चांग काइ-शेक की तरह समुद्र में ढकेल दिया जाएगा। फिर अमरिका खुद युद्ध में कूदा। जब उसकी सेनायें पुरानी सीमा से उत्तर की ओर बढ़ने लगीं, तो भारत ने कहा कि ऐसा नहीं करना चाहिए नहीं तो चीन चुप नहीं रहेगा। चीन अपनी सीमा के ऊपर अमेरिकनों को कैसे देख सकता था? चीनी स्वयंसेवक मैदान में आये और अमरिका को भागना पड़ा। उसने उसे कई देशों का सम्मिलित युद्ध बनाया था, लेकिन युद्ध में मारे जा रहे थे अमरिकन तरुण। यह डालर का व्यय नहीं था बल्कि आदमी के प्राणों की आहुति थी। अमरिकन थैलीशाह समझे बैठे थे, कि हमारा काम डालर बरसाना होगा, और प्राणों की कुर्बानी दूसरे देंगे। अमेरिकन जनता ने देखा उल्टा विरोध हुआ, और अन्त में अमरिका को विराम-सन्धि करनी पड़ी।

बन्दूक और रिवाल्वर का लाइसेंस मेरे नाम था। मेरे अनुपस्थित रहने पर कमला को उनकी जरूरत पड़ सकती थी, इसलिए लाइसेन्स में उन्हें भी साझीदार बनाने के लिए मैंने जिला मजिस्ट्रेट को लिखा। उन्होंने २६ जुलाई को दोनों के लाइसेंस भेज दिये। साथ ही बन्दरों से साग सब्जी की रक्षा के लिए टोपीवाली बन्दूक देना भी मंजूर किया।

अब की कुछ देर में भैया और भाभी मसूरी आ गये। पिछले साल से भाभीजी को मानसिक रोग का सामना करना पड़ रहा था। छोटी बहिन के मरने के कारण उनकी स्थिति और भी बुरी थी। जान पड़ा दो साल पहले की भाभी फिर नहीं लौटेंगी। यहां रहने पिछले सालों की तरह फिर हमारा एक प्राणी सा घर का जीवन था। हर सप्ताह कम से कम एक दिन मुझे उनके यहां जाना पड़ता। ४ अगस्त को मैं लण्ढौर तक गया। किशन सिंह बहुत दुर्बल हो गये थे, चलना फिरना भी मुश्किल था। हृदयशूल की बीमारी थी, जीवन से निराश थे। लण्ढौर में कुछ दूकानदार भाग चुके थे लेकिन दो-तीन सुनारों की दूकानें बढ़ गई थीं। पुरुषोत्तमजी की दूकान महीनों से बन्द पड़ी थी। मसूरी में कुछ का दिवाला निकलना और उनकी जगह कुछ का फिर भाग्य-परीक्षा के लिए आ जाना अब मामूली बात थी।

अगस्त को कम्पनी बाग में बनभोज हुआ। मंगल और ठाकुरानीजी के साथ हम यहां से कम्पनी बाग गये। कुलड़ी में भैया और भाभीजी

उषा और बाबा को लेकर आये। १२ बजे वहां पहुँचते ही मूसलाधार वर्षा होने लगी, इसलिए खुले बाग में नहीं बल्कि उसके एक मकान में शरण लेनी पडी। तरह-तरह के पकवान बनकर आये थे। हमारा भोज चलता रहा। वर्षा ३ बजे खत्म हुई। फिर हम वहां से घर लौटे।

वृद्ध सर सीताराम गर्मियों में बराबर मसूरी आते हैं। ७० से कम उमर नहीं है, लेकिन अब भी सडकों पर टहलते मिलते। आंख जरूर ज्यादा कमजोर थी। अंग्रेजों के कृपा पात्र होते भी वह देश के प्रति उदासीन नहीं थे। अध्ययन का उन्हें व्यसन है। १५ अगस्त को टौनहाल की मीटिंग से लौटते वक्त उनसे देश की परिस्थिति पर बातचीत होने लगी। सभी जगह भ्रष्टाचार, सभी जगह बेकारी यह चिन्ता की बात थी। कह रहे थे इसका क्या हाल है? मैंने कहा—कम्युनिस्टों के लिए यह कोई समस्या नहीं है। उन्हें मौका दिया जाये, तो चुटकी बजाने बजाते वे उन समस्याओं का हल कर सकते है। चीन में ऐसा ही हुआ। पुरानी पीढी ऐसी बातों को समझ नहीं सकती थी। लेकिन पुराने नेताओं के घरों में नये ढंग की नई पीढी आ गई है जो तस्वीर के दूसरे रुख को देखने के लिए मजबूर करती है। सर सीताराम के पुत्र मार्क्सवादी हैं जिन्होंने उनके मन से कम से कम कम्युनिस्टों के प्रति द्वेष को हटा दिया है।

अगस्त में 'जौनसार-देहरादून' के लिखने में भी मैंने हाथ लगा दिया। मन करने लगा कि दार्जिलिंग से उठाये हिमालय सम्बन्धी ग्रंथों को जम्मू कश्मीर की सीमा तक पहुँचा देना चाहिए।

शहर से दूर रहने का अब एक बुरा पक्ष यह देखने में आया कि यहाँ अस्पताल दूर है। कमला को न जाने किस वक्त आवश्यकता पडे। भया ने कहा, उन्हें हमारे पास रख दें। वह १६ अगस्त को वहाँ चली गई। भाव के समय ही आदमी को आत्मा का मूल्य मालूम होता है। यहा तो अपने पोथी पत्तरे को छोड और किसी चीज की फिकर करने की मुझे फुरसत नहीं था।

सोवियत रूस के पास परमाणु बम है उसने उसका विस्फोट किया है इसकी सूचना अमरिका ने दुनिया को दी। अगस्त के तीसरे सप्ताह में वहाँ हाइड्रोजन बम फूटा इसकी भी सूचना अमरिका ने ही दी। अमरिका ने

लिए यह सकट की बात थी, क्योकि वह अपने इन्ही अस्त्रो के भरोसे स दुनिया म गाल बजा रहा था। यह यदि अमेरिका के लिए बुरी खबर थी, ता ईरान मे उसे खुशखबरी भी मिली। प्रगतिशील शक्तियो को साथ लेकर मुसद्दिक ने वहा के सडे सामन्तवाद पर भयकर प्रहार किया। दुनिया की सभी प्रतिगामी सडे गले हितो को जीवित रखने का ठेका अमेरिका ने ले रखा है। वह ईरान म कैसे बर्दाश्त कर सकता था। जब ईरान का शाह राजधानी छोड कर भाग गया, तब तो अमेरिकन थैलीशाहो क घरो म कुहराम मच गया। मुसद्दिक दल ने अपनी स्थिति स जल्दी फायदा उठाने का कोशिश नही की। लेनिन क्रान्ति के एक एक मिनट को बहुमूल्य समझते थे और उन्ही जैसे दूरदर्शी पुरुष का यह काम था कि रूस म मार्क्सवाद की विजय हुई। बूढे मुसद्दिक मिनटो और सेकडो क मूल्य को क्या समझते? जनता के मनोभाव ऐसी स्थिति म एक एक क्षण म बदलते रहते है। वह अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नही हो सकती। बदले भाव से प्रतिगामियो न लाभ उठाया और शाह फिर आकर ईरानी जनता की छाती पर कोदो दलने के लिए मौजूद हुआ।

जब मैं मसूरी के एग्लो इडियन परिवारो का देखता हू, तो मुझे वह समय याद आता है जब कि भारत से यूनानियो का प्रभुत्व उठ रहा था। लाखो की तादाद म यूनानी यहाँ मौजूद थे। ज मभूमि से पीढियो स उनका सम्बन्ध नहीं था, और अपन जाति भाइयो क शासन के कारण ही वे यूनानी होन का गव करते थे। प्रभुत्व हटन से पहले ही भारतीय संस्कृति से व प्रभावित हुए। उनक मिनान्दर जैस राजा तक बौद्ध हो गये। इस प्रकार व सास्कृतिक तौर से भारत क दूसरे लोगो स उतना भेद नही रखते थे जितना कि य एग्लो इडियन। अग्रेजो ने इस वग को जन्म दिया। अपनी सन्तान होने से शिक्षा और आर्थिक तौर से उनकी सहायता की लेकिन हमेशा उन्हे घृणा की दृष्टि से देखते हुए अपन समाज म अपमानित किया। अपमान सहते हुए भी एग्लो इडियन यह देखकर खुश थे कि हम काले आदमियो पर वसे ही धौंस जमा सकते हैं जैसे अग्रेज और नौकरी तथा वतन म भी हम विशेष सुविधाएँ मिली हैं। अग्रेजो के शासन के य जबदस्त समथक थे। इन्हे क्या पता था कि अग्रेजो को एक दिन भागना पडेगा,

फिर हमारे अलग थलग जीवन का इस देश में स्थान नहीं रहेगा। अंग्रेजों के जाते ही एंग्लो इंडियनों में भगदड़ मच गई। दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि अंग्रेजी उपनिवेशों ने उनके लिए दरवाजा खोल दिया। पर शर्त यह रखी कि रंग रूप में वह अंग्रेजों जैसे हों। एंग्लो इंडियनों में सांवले से लेकर यूरोपियनों की तरह गोर भभूके रंग के नर नारी मिलते हैं। लेकिन इन रंगों में सीमा रेखा एक के परिवार में भी मिलनी मुश्किल है। जिन्हें ज्यादा गोरा रंग मिला था, वह अपनी जायदाद बच बाचकर उप निवेशों में चले गये। जिनका रंग खपनेवाला नहीं था उनमें से भी रिश्वत देकर कुछ आस्ट्रेलिया और दूसरे देशों में चले गये। इस गड़बड़ी का लेकर जब वहां विरोध प्रकट किया गया तो कितने ही रिश्वत में रुपया बरबाद कर तथा अपनी जायदाद को बेंच करके भी यहीं रह जाने के लिए मजबूर हुए।

लेकिन उनकी आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त सांस्कृतिक समस्या भी कम नहीं है। अभी तक अंग्रेजी उनकी मातृभाषा थी जिसकी अंग्रेजी राज में सबसे अधिक कदर थी, और हमारे अंधे शासकों के कारण अब भी वह अक्षुण्ण है। एंग्लो इंडियनों के अपने विशेष स्कूल हैं जिनमें केम्ब्रिज की परीक्षाएँ होती हैं जिन पर खर्च भी बहुत आता है। उसका बहुत बड़ा भाग सरकार बर्दाश्त करती है जिसे अब एक वर्ग विशेष के साथ पक्षपात होने के कारण बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। एंग्लो इंडियनों के मैंने मुखिया जब नेता यह समझने में भी असमर्थ हैं कि अंग्रेजों के जाने पर अंग्रेजी का प्रभुता नहीं रह सकती। अंग्रेजी कुछ भारतीयों की मातृभाषा रहे वह अपना धर्म भी ईसाई रखें इसमें कोई हर्ज नहीं है। हमारे देश की विविधता बहुरंगिता शोभा की चीज है पर, भारतीय भाषा और संस्कृति को काट काट करके यह होना असम्भव है। दो हजार वर्ष पहले यूनानियों ने भी अपने भाषा और वर्ण को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न जरूर किया होगा परन्तु काल और देश की सम्मिलित शक्ति का वे कब तक मुकाबिला कर सकते। सौ पचास वर्ष बाद अर्थात् आज से चार पांच पीढ़ी आगे आनेवाली एंग्लो इंडियन सन्तान इस प्रकार के विलगाव को कभी पसन्द नहीं करेंगे। तब क्या एंग्लो इंडियनों की भी वही हालत होगी जो पुराने भारतीय ग्रीकों

की ? इतिहास म क्या वे बालू के पदचिह्न की तरह मिट जाएगे ? नदियाँ अपने अस्तित्व को मिटा कर समुद्र म अभिन्न हो जाती हैं इसे कोई रोक नहीं सकता। पर, इतिहास के विद्यार्थी होन के कारण मुझे ख्याल होता है एंग्लो इडियनो की ऐतिहासिक सामग्री को सुरक्षित करना चाहिए। मैंने यहा के हर्सी और विल्सन जैसे पुराने परिवारो के साथ सम्पर्क स्थापित करके कुछ सामग्री जमा करने की भी कोशिश की है। और भी करना चाहता था लेकिन समय की शिकायत ठहरी। ८० वर्ष से ऊपर की बुढ़िया स कुछ बातो का पता लगाना चाहता था। मैं आज कल करता रहा, और बुढ़िया चल बसी। इसी तरह एक और ८० वर्ष से अधिक उमर के बूढ़े का पता लगा। उसके पास म भी जाने म असमर्थ रहा। मेरे पड़ोसी पूमग का एंग्लो इडियन परिवार मूलत मसूरी का नहीं है और वही बात लेडली की भी है। बूढ़े लेडली स भी कितनी ही बातें मालूम हो सकती थी। वह २०वी सदी के प्रथम दशक ही म यहा आ गये थे और कम से कम पचास वर्ष का मसूरी का इतिहास उन्हें मालूम था। लेकिन उनसे भी मैं सामग्री जमा नहीं कर पाया। लेडली और उनके पुत्र जान शक्ल-सूरत म अग्रेजो से कोई भेद नहीं रखते। जान को जब सघर्ष करते देखता हू, तो सोचता हूँ इनके लिए आस्ट्रेलिया म जा बसना मुश्किल नहीं है।

बूढ़े लेडली म बात करने म उन्हें आनन्द आता था। वह बड़े रोचक ढग से पुराने जगत की बातें बतलाते थे। कमठ तो इतने थे कि ७० वर्ष से ऊपर के हो जाने पर भी समझते थे उनका शरीर अब भी पहले ही जैसा है। अपनी फुलवारी म लगे रहते टहलने का भी उन्हें शौक था। कभी कभी ८ ६ बजे रात को मैं उन्हें टहल के लौटते देखता था। पूछने पर कहते— 'केमल्स बैक की तरफ से घूम कर आ रहा हू।' जाडा अधिक पड़ने पर यहा बूढ़ो को तकलीफ हो जाती है। सर्द मुल्को म क्या होता है उनके बारे म वही के बूढ़े जानें। लेडली को जान और बारबारा जाडा म सर्दी बढ़ने पर देहरादून भेज दिया करते थे। १६४२ म कहने पर बूढ़े लेडली ने कहा— क्रिसमस करके जाएँगे। इस महान् पर्व को अपने परिवार म बिताने की किसकी इच्छा नहीं होगी ? लेकिन उन्होंने गलती की। लकवा मार गया और दो-तीन दिन बेहोश रह कर चल बसे। मैं भी शव के साथ केमल्स बैक

की सेमेटी में गया जहाँ उनकी पत्नी अनन्त निद्रानिलीन थी। वही पेटी में बन्द चूहे लड़ली को भी सुला दिया गया। पादरी ने कुछ धार्मिक वचन कहे। जाने वाला में मिसेज कोमरी भी थीं। उनके पति आई० सी० एस० अफसर थे। जो पैसा उन्हें यहाँ मिल रहा था, वह इंगलैंड में भी मिलता। उनके बच्चे भी इंगलैंड में थे लेकिन वह इंग्लैंड जाने के लिए तयार नहीं थीं। पीछे आकर्षण हुआ यहाँ का लगा पटा बेच कर वह इंग्लैंड गई। यहाँ का जीवन कितना ही खर्चीला होने पर इंगलैंड की अपेक्षा बहुत सस्ता है। ३० ४० रुपया और खाने पर अच्छा बैरा था, जो खाना बनाता था और फूल बाग का भी देख लेता था। अभी भी कितने ही इंगलिशभाषी परिवार यहाँ मौजूद है इसलिए मिलने जुलने बातचीत करने का भी सुभीता था। इंगलैंड गई वहाँ के खर्च का देखकर आँख खुली। कोई नौकर नहीं रख सकती थी पैसा पूरा नहीं पड़ता। उमर भी अपने हाथ से काम करने की नहीं थी। वह तरुण ब्याहता होकर भारत में आई, तब से हमेशा नौकर उनका काम करता था। सबसे बढ़ कर उनके लिए इंगलैंड में कठिनाई यह थी कि चीज बहुत महँगी थी। सात आठ महीने बाद वह फिर मसूरी लौट आई। अपने फर्नीचर को मिट्टी के मोल बेचने का उन्हें अफसोस था, तो भी अब वह नौकर रखकर अपने बुढ़ापे को इंगलैंड की अपेक्षा यहाँ अच्छी तरह काट सकती थी, इसका उन्हें सन्ताप था। उस दिन मिसेज कामरी ने यहाँ मेरी माँ की भी यही कब्र है। वर्षों से वह यहाँ नहीं आई थी। पहले चौकीदार रजिस्टर देखकर बतला सकता था लेकिन अब उसका भी कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं था। हम दोनों ने ढूँढने की कोशिश की और अन्त में कब्र मिल गई। वर्षों से किसी ने सुध नहीं ली थी। कहने लगी—"इसकी मैं मरम्मत करवाऊँगी। वह मरम्मत करवा सकती हैं क्योंकि उनके माँ या बाप यहाँ सो रहे हैं। पर उनके बाद कौन इस कब्र की देखभाल करेगा? क्या इससे मुर्दा जलाने की प्रथा अच्छी नहीं है?

१५ अगस्त का लिखी लाला की चिट्ठी ३ सितम्बर को मिली। वर्षों बाद यह चिट्ठी मिली थी। तब से जीवन का प्रवाह किस तरफ मुड़ गया। ईंगर अच्छा तरह चल रहा है, यह सुनकर प्रसन्नता हुई। पर मेरा जीवन तो अब कमला और आने वाली उसकी सन्तानों से बँध गया था। ४ सितम्बर

को ईशर का जन्मदिन था, इसलिए ४ को मैंने बधाई का तार भेज दिया। कमला को इस पत्र के आने की बात सुनकर बहुत दुःख हुआ। बराबर उन्हें शंका बनी रहती है। मैंने कहा—' मगी आवश्यकता यन्त्र है। ईशर ऐसे देश मे पदा हुआ है जहाँ उसकी पढाई लिखाई म कोई दिक्कत नहीं हो सकती। समय बीतता जाएगा। अपनी विद्या समाप्त करके वह अपने योग्य काम पा लेगा। अब वह १४ साल का भी हो गया है। मैं यह कभी नहीं कर सकता, अपने दोनो बच्चो (जया उसी सितम्बर म २० तारीख को पदा हुई और जेता ३१ जनवरी १९४५ को) को छोडना मेरे लिए बिल्कुल असम्भव है।

जया—१९ को भया क फोन से मालूम हुआ कि अभी कोई बात नहीं है लेकिन अगले दिन २० को अस्पताल टेलीफोन किया तो पता लगा आज ७ बज कर २८ मिनट पर जया का जन्म हो गया। जया जब गर्भ म थी तभी मैंने कह दिया था कि लडकी होगी और उसका नाम जया रखा जाएगा। कमला इसे मानने के लिए तैयार नहीं थी। जेता के बारे म भी मैंने इसी तरह दृढतापूर्वक भविष्यवाणी की। वस्तुत इस भविष्यवाणी का इससे अधिक कोई मूल्य नहीं था कि मेरे लिए पुत्री भी उतनी ही अधिक प्यारी थी, जितना पुत्र। शाम का सेंट मरी अस्पताल मे गए। मालूम हुआ कि पूर्वाह्न म ही पीडा होने लगी थी, अपराह्न म पीडा बढ चली। रात को नींद लाने के लिए मार्फिया का इंजेक्शन दे दिया गया। आज सबेरे पीडा अधिक बढने लगा। मध्याह्न तक वह चरम सीमा म पहुँची। जया का वजन आठ पौंड से अधिक था इसलिए प्रसव म कुछ आपरेशन करना पडा। मैंने देखा बच्ची का सिर और चेहरा गोल बाल काले हैं। शिशु कुछ महीनो तक अपने चेहरे को इतनी तेजी से बदलता रहता है कि उसके बारे म कुछ नहीं कहा जा सकता। कमला पुत्र के लिए लालायित थी। पर जया के ससार म आने पर उन्हें कम सतोष नहीं हुआ। मुझे तो इसका विशेष आनन्द हुआ। कमला बहुत कमजोर था, बोलने म कठिनाई हो रही थी। अभी दस बारह दिन उन्हें यहाँ रहना था। उस दिन जया की आँखें बन्द थी। २२ को भी वह उन्हें अच्छी तरह नहीं खोल रही। पाचवें दिन से वह आँखें खोलने लगी। प्राय सभी माताओं का बच्चे की आँख खोलने पर यह ख्याल

होने लगता है कि वह देख रहा है। पर वस्तुतः दो महीने तक आँखें खुली रहने पर भी बच्चा देखता नहीं। नेत्र और प्रकाश बाह्य लक्ष्य के दोनों साधन मौजूद होने पर भी जब तक नेत्र का सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ ठीक से स्थापित नहीं हो जाता तब तक बच्चा नहीं देखता।

२३ सितम्बर को अस्पताल से घर लौटने पर केदारनाथ के पण्डा आए मिले। कहने लगे—गढ़वाल में केदारनाथ के पण्डों के बारे में जो आपने लिखा है, उस पर हम लोगों को आपत्ति है। मैंने उस स्थल को देखा। वहाँ विशालमणि के आक्षेप का जिक्र जरूर था, लेकिन मैंने साफ लिखा था कि वह कथन ठीक नहीं है। प्राचीनकाल से इतने प्रतिष्ठित केदारनाथधाम के तीर्थपुरोहित ब्राह्मण छोड़ दूसरे नहीं हो सकते। और क्या चाहिए था? किसी के मत का खण्डन करने के लिए भी उद्धृत न किया जाए यह अयुक्त बात थी। तो भी मैं नहीं चाहता था कि किसी को दुःख पहुँचे। इसलिए मैंने कहा—प्रकाशक यदि उस अंश को निकालने के लिए तैयार हों तो मैं बदलने के लिए प्रस्तुत हूँ। पण्डाजी ने यह भी कहा कि इसके लिए जो खर्चा लगेगा हम देंगे। वह प्रकाशक के पास इलाहाबाद गये भी। मैंने परिवर्तन के लिए चिट्ठी भी लिख दी, लेकिन वह उत्साह बहुत दिनों नहीं रहा और बात यों ही रह गई। २७ सितम्बर को केदारनाथ के दो और पण्डे आये। उनसे भी मैंने वही बातें बतलाईं।

१ अक्तूबर को कमला को अस्पताल से लाने के लिए पौने ६ बजे हम वहाँ पहुँचे। अस्पताल का प्रबन्ध बहुत ही सुन्दर था। लेडी डाक्टर और नर्स सभी दक्षता के साथ सहृदयता भी रखती थीं। बच्चे के २१२ रुपये बहुत नहीं थे। जया अब आँखें खोल सकती थी। जन्म के समय यद्यपि जया का वजन ८ पौंड ४ औंस था, लेकिन फिर वह ८ औंस कम हो गया। फिर बढ़ने लगा। अभी भयाजी का वहाँ रहने का आग्रह था, इसलिए वहाँ ले गए और ४ अक्तूबर को हो वह घर आ सकी। पत्नी और माता की स्थिति में बहुत अन्तर होता है, यह धीरे-धीरे मुझे मालूम हुआ। जब पति-पत्नी केवल ही रहते हैं तो अक्सर मतभेद क्षणिक कड़ुआहट का रूप लेता है, पर सन्तान इस कड़ुआहट को पहले तो उठने नहीं देती, और उठने पर जल्दी ही दूर कर देती है। सन्तान दाम्पत्य संबंध का जबर्दस्त सीमेंट है।

मिस पूमग न जया क लिए पहले ही से कपडे और खिलौन तैयार कर रखे थे। कलेजे की बीमारी के कारण वह अपने हाते से भी बाहर नही निकल सकती थी, लेकिन जया की सौगात का उन्होने बडे प्रेम से भेजा। जया चौबीस घट सान रहन वाली थी। किसी बच्चे को आरम्भ से और इतना अधिक देखन का मुझे मौका नही मिला था इसलिए उसकी हर चीज को मैं ध्यान स देखता था। राता बडे जोर से थी। कमला कहती रही थी कि अस्पताल मे भी वह सारे घर का गुजा देती थी। अँगुलिया लम्बी और पतली पतली थी। मिस पूसग न कहा, कलाकारिणी हागी। अनामिका और मध्यमा का आकार बिल्कुल समान था। शिशु को कष्ट हो रहा है, इसे जानन के बहुत ही कम साधन है। रोने तो तकलीफ है, लेकिन इसे पहचानना मुश्किल है। हँसने पर सुख का भान जरूर हाता है।

मा का दूध पर्याप्त न होने पर पौडर दूध का इस्तमाल करना आवश्यक हो जाता। पर्याप्त हान पर भी बोतल से दूध पिलान म फायदा है क्योकि उसके द्वारा शिशु के भाजन पर नियत्रण किया जा सकता है। यदि पेट म गडबडी है ता दूध म पानी ज्यादा मिला दें, यह मा के दूध के साथ नही हो सकता। हो सकता है, पौडर के दूध म कुछ विटामिनो की कमी है पर उसे ऊपर से दूध म मिला कर पूरा किया जा सकता है। १३ अक्तूबर को भयाजी ने अमृतसर से जया के लिए झूला मगवा दिया, और उसे बराण्डे और कमरे म टाँगने का इन्तजाम भी कर दिया लेकिन झूले पर हमेशा नजर रखने की जरूरत थी। एक बार रस्सी कटी झूला नीचे आ पडा। गद्दी बहुत थी, इसलिए चोट नही आई। दो-दो महीने तक मनुष्य के बच्चे की आँखो का काम न देना बतलाता है, कि वह कितना असहाय पैदा हाता है। हिरन का बच्चा पैदा होते ही दौड सकता है भैस गाय का भी अपने पैरो पर खडा हो सकता है। निष्पक्ष कुक्कुट शावक भी स्वय अण्डा तोडकर बाहर आ अपने पैरो पर खडे हो सकते है। मनुष्य का शिशु माता पिता के ऊपर निर्भर रहता, हाथ-पैरो पर भी काबू नही रखता और न आँख पर ही।

१४ अक्तूबर को जया के जन्म के उपलक्ष्य म हिंदु मित्रा का एक छोटा सा भोज हुआ। २० अक्तूबर को जया एक महीने की हो गई। उस वक्त २१.५८२ इच और वजन १० पौड था। नेत्र छोड बाकी सारी इन्द्रिया काम

कर रही थी, विशेषकर स्पर्श इन्द्रिय अधिक तीक्ष्ण थी। शायद मस्तिष्क उतना सक्रिय नहीं था। ललाट पर बहुत से रोमों को देखकर कमला सोचने लगी कि इन्हें रगड़कर निकालना चाहिए नहीं तो जिन्दगी भर ऐसे ही रह जाएंगे। सातवें आठवें महीने का मानव शिशु वानर की तरह अपने सारे शरीर पर बाल रखता है। प्रकृति अपने ही आप उन्हें खतम कर देती है। इस पर कमला का विश्वास नहीं था। पड़ोसिन चौकीदारिन ने भी बतलाया, कि मैं तो रोज मल-मलकर अपने बच्चों के रोमों को निकाल देती हूँ। पांच बच्चों की मां का काफी तजर्बा होना ही था। खैर, कमला इतनी जबर्दस्त रोम निकालने के पक्ष में नहीं हुई और वह अपने आप निकल भी गए। दूसरे महीने को समाप्त करते समय जया लम्बाई में आध इंच बढ़ी और वजन जैसा का तैसा रहा। तीसरे महीने की समाप्ति पर अब वह २५ इंच की थी। पहले हाल सारी चर्बी चेहरे पर एकत्रित हो जाती है फिर वह वहां से कम होकर सारे शरीर में बढ़ने लगती है। दूसरे महीने की समाप्ति पर अब वह हँसने और मुसकुराने भी लगी, चीजों को गौर से देखने लगी। अभी उसका सारा ध्यान दूध की ओर रहता। आहार मनुष्य की पहली आवश्यकता है इसलिए शिशु का उसके साथ विशेष पक्षपात हो यह स्वाभाविक है। जया बहुत समय लेता, तो भी कमला ने आगरा युनिवर्सिटी के बी० ए० का फार्म भरवा दिया। जो भी समय मिलता उसमें पढ़ती रही।

१९८३ के छोटे सीजन (अक्तूबर) में नगरपालिका की ओर से विशेष उत्सव का प्रबन्ध हुआ। वायसराय यद्यपि गर्मियों के बिताने के लिए शिमला जाते थे लेकिन उनके घोड़े देहरादून आया करते थे। वायसराय के खर्च को गणराज्य बनने पर कम नहीं किया गया बल्कि उसे कई गुणा बढ़ा दिया गया। नहरूशाही में खर्च का बढ़ना प्रताप और सम्मान का बढ़ना है। चाहे वह रुपया लोगों के मुंह के आहार और आँखों के आँसुओं से बनता हो। राष्ट्रपति के प्रथम श्रेणी के ४० घोड़े घुड़दौड़ के लिए आए थे। इनसे अच्छा प्रचार किया जा सकता था, किन्तु काठ की मशीन में लकड़ी कहाँ? वे रखे गए थे हैपीवली क्लब में जहाँ बहुत कम सवारी आते। यदि एक बार इन ४० घोड़ों को लण्ढौर तक घुमा दिया जाए, तो इसमें शक नहीं, उनकी दौड़ देखने के लिए सारी मसूरी टूट पड़ती। सुना गया सिनेमा

तारिकाओं को भी बुलाया गया है। हजारों रुपया को इस प्रकार खर्च करने में देने के लोग मसूरी की ओर टूट पड़ेंगे, इसकी सम्भावना कम ही थी। लेकिन सरकारी माल को खर्च कर देने में ही अपने काम की इतिश्री समझती है।

मसूरी नगरपालिका के चुनाव की धूम थी। एक ओर काग्रेसी उम्मीदवार थे। दूसरी ओर बाकी लोगों ने मिलकर जनता पार्टी बना ली थी। जनता पार्टी से श्री शम्भूनाथ वैद्य गुप्त हाम निकल गए और उन्होंने डा० प्रकाश को म्युनिसिपैल्टी के अध्यक्ष पद के लिए खड़ा कर लिया। इससे अध्यक्ष पद के लिए कप्तान कृपाराम का पक्ष मजबूत हुआ यद्यपि हाल की भेड़ियाधसान में मसूरी काग्रेस के सर्वेसर्वा होने के कारण वह उतने जनप्रिय नहीं थे किन्तु प्रतिद्वंद्वी एक नहीं दो थे जिनमें वोट बटने वाला था। डा० प्रकाश को कम्युनिस्ट या ही खड़ा कर दिया गया था क्योंकि सिवाय कुछ दांत के मरीजों के उनको जानने वाले वाटर बहुत कम थे। लेकिन जब खड़े हो गए, तो कितना ही हाथ सकोच कर, खीसे के कुछ हजार तो जरूर ही हवा हो जाएँगे। श्रीमती मोहिनी जुत्शी काग्रेसी थीं वह भी काग्रसी की ओर से प्रचार में शामिल थी। मेम्बरी के उम्मीदवारों में शीलाजी भी खड़ी थीं। जैसे जैसे चुनाव का समय नजदीक आता गया, वैसे वैसे प्रचार का वेग बढ़ता गया। हमारे मोहल्ले में अधिकांश लोगों का नाम वोटर-लिस्ट में नहीं था—ऐंडली परिवार भी नहीं, कुंदनलाल भी नहीं, पूसग भी नहीं। लोग बतला रहे थे यह जान बूझकर किया गया है। जिसको समझा गया कि वह काग्रेस उम्मीदवार को वोट नहीं देगा उसका नाम ही सूची पर आने नहीं दिया गया। हमारे पास भी उम्मीदवार लोग पहुँचे—मैं और कमला दोनों वोटर थे। २६ अक्तूबर को रविवार के दिन वोट देना था। हमारे मोहल्ले का वोट-स्थान चालविल के प्राइमरी स्कूल में था। हमने जाकर अपने-अपने वोट वहाँ दिए। कमला जिसको एक वोट देना चाहती थी उसका बक्सा ही जल्दी जल्दी में नहीं जान पाई और दूसरे को दे आई।

वोट देकर हम भैया के यहाँ चले। कचहरी में कुल्हड़ी वालों का वोट हो रहा था। मालूम होता था, उत्सव का दिन है। लोग अपना काम-काज

छाड वोट का तमाशा देख रहे थे। मोहिनीजी शिकायत कर रही थी—प्रचार म बहुत गदगी थी, कम-से कम वर्माजी से हम ऐसी आशा नही रखते थ। लेकिन, किसी भी नई चीज म आदमी प्रकृतिस्थ काफी अभ्यास क बाद होता है। अगले दिन (२९ अक्तूबर) को चुनाव का परिणाम निकला। वर्माजी अध्यक्ष चुन लिए गये, यह तो वोट क दिन ही मालूम हो गया था। कप्तान कृपाराम कई हजार के मरये पडे। डा० प्रकाश तो हारने लुटने के लिए ही खडे किय गए थ। अगले दिन सभी चुनावो क परिणाम निकल आए। शीलाजी भी नगरमाता बनी वर्माजी क सहायक वकील जगनाथ शर्मा भी आ गए, जो पालिका क उपाध्यक्ष बनने वाले थ। जनता सभा क छ उम्मीदवार चुने गए काग्रेस के चार और स्वतन्त्र दो। काग्रेस सरकार ने अपने हाथ म तीन मेम्बरो के नामजद करने का भी अधिकार रखा था। वह निश्चय ही वैसे आदमी लिए जाते जो काग्रेस के थ। इस प्रकार सात काग्रेस के और जनता के छ मेम्बर थे। भाग्य का फैसला दो स्वतन्त्र उम्मीदवारो के हाथ म था जिन्हे जनता वाले अपनी ओर करने म समर्थ थे। लोगो ने बडी बडी आशाएँ बाँधी किन्तु यह तो राजा भोज का सिंहासन था या काजल की कोठरी है। कैसा हू सयाना आदमी जाए वहाँ से बचकर निकलना मुश्किल है। पहले की तरह पालिका म अनाप शनाप खर्च किया गया उनके काल क पूरा होने पर यह आशा नही की जा सकती थी कि काग्रेस विरोधी दल के कर्णधार फिर जनता क विश्वासपात्र होगे।

अब क पाग मदान म १० अक्तूबर को पानी भी खेला गया और घुडदौड भी हुई।

११ अक्तूबर को पता लगा, कि ब्रिटिश गायना के भारी बहुमत वाली जगन सरकार को कम्युनिस्ट कहकर चर्चिल न तोड दिया। चर्चिल और इगलण्ड की सरकार अब अमेरिका के धर्मपुत्र थे। अमेरिका दुनिया म कही भी प्रगतिशील सरकार को सहन नही कर सकता। फिर वह जगन का अमेरिका की भूमि म क्या ऐसा करने देता? तीनो गायना म भारतीय कुलियो न जाकर देश को सरसब्ज किया उन्हीं की सताने भारी सख्या म वहाँ बसती हैं, इसलिए जगन सरकार का तोडा जाना भारतीयो के लिए विशेष खान थी। जहाँ शान्ति के रास्ते कम्युनिस्ट या प्रगतिशील शक्ति अधिकारा-

रूढ़ हो वहा धर्मीगाह जनतंत्र के खिलाफ जान की दुहाई देते हैं। और जहा तीन-चौथाई लोग वोट देकर अपने मन के मुताबिक सरकार सगठित कराएँ, वहाँ कम्युनिज्म का लाछन लगा उन्हे हटाया जाता। पूजीवाद दानव निष्ठुर और निर्लज्ज है, वह किसी तरह भी अपना मतलब बनाना चाहता है।

१८ अक्तूबर को जया के जन्मोपलक्ष्य में भया और भाभीजी ने अपने यहा चाय पार्टी दी। पिता माता को आना ही था। डा० सत्यकेतु, लीलाजी और पति-सहित श्री मोहिनी जुत्शी भी आइ।

आजमगढ से श्री ज्योतिस्वरूपसिंह ने 'कर्मयोगी' नाम से एक साप्ताहिक निकालने का निश्चय किया और मुझसे भी लेख चाहे। मैं चाहता था अपने जिले से जिले की आवाज को प्रकट करने वाला कोई अखबार निकले। मैंने स्वीकार कर लिया और अपने बचपन के सस्मरणो के सम्बन्ध में तीन दजन के करीब छोटे-छोटे लेख लिखे। मेरे १९१५ से घनिष्ठ मित्र तथा अपने जन्म के जिले के निवासी स्वामी सत्यानन्द (पहले बलदेव चौबे) अब ससार में नही रहे। एक एक करके मित्रो का इस तरह चला जाना खटकता है। उनके प्रति श्रद्धा दिखलाने से मेरी लेखनी कैसे रुक सकती थी? मैंने उनके ऊपर "नया समाज" में एक लेख लिखा।

२७ अक्तूबर को भाभीजी और भैया अमृतसर चले गए। हर साल की तरह अब के भी कुछ सप्ताहो के लिए उनका अभाव खटकने लगा।

हिमालय-सम्बन्धी पुस्तको के बारे में मैं यह समझकर निश्चिन्त था कि वे लॉ जर्नल प्रेस से निकल जाएँगे। "गढवाल" निकल चुका था, और "कुमाऊँ" को भी माता पर पच कर लिया गया था। लेकिन जैसा कि अनलाधा अब दर साहब वहा से हटा दिये गए थे और सेठो के अपने ढग के लोग वहा भर दिये गए थे जो सिर्फ यही जानते थे कि हरेक आदमी लक्ष्मी पात्र के सामने नाक रगडने के लिए बना है। मैंने दर साहब के अग्रिम न देने की असमर्थता प्रकट करने पर पटना के प्रकाशक को "नेपाल" दे दिया था। लॉ-जर्नल की नौकरशाही ने उसको बहाना बनाकर लिखा आपने इस ग्रन्थमाला की एक पुस्तक को दूसरी जगह देकर हमारी करार की खिलाफवर्जी की इसलिए हम 'कुमाऊँ' को छापने के लिए तैयार नहीं हैं। इधर उधर सब जगह पत्र खड-खडाया गया लेकिन उसका कोइ परि-

णाम नहीं हुआ। पच किये हुए ग्रन्थ को लौटा दिया गया। मैंने भी आये हुए अग्रिम के हजार रुपये भेज दिए। मैं उन्हें रोक सकता था, लेकिन कौन बखेड़ा मोल लेते? बड़े सेठ के साथ व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करने का यह पहला तजबा था। अभी तक दूसरों से सुनकर ही मैं कहता था—"बैंली-शाही तेरा बड़ा गर्क हो।" और खुद थैलीशाही की करामात देखी। और ऐसी करामात जिसमें हिमालय सम्बन्धी सभी पुस्तकों का प्रकाशन खटाई में पड़ गया। यदि इस प्रेस को "गढ़वाल" न दिया होता, तो जहाँ उसका प्रबन्ध होता, शायद वहाँ से और पुस्तकें भी निकल जातीं।

३ नवम्बर को हमारा पड़ोसी लाइनमैन कल्याणसिंह सपरिवार मसूरी से बदल कर देहरादून भेज दिया गया। दो लड़के, तीन लड़कियाँ और दो प्राणी खुद सात जनों का परिवार और उन्हें मिल रहा था महँगाई भत्ता मिलाकर ४६ रुपया मासिक। वर्षों से बेचारा हमारे फाटक के बाहर की कोठरी में रहता। अपने आसपास की जमीन के पत्थरों को चुन कर वहाँ उसने थोड़े से खेत बना लिये थे, जिसमें अपने खाने भर से अधिक साग सब्जी उगा लेता था। इस मोहल्ले में जंगल अधिक हैं, इसलिए बकरियाँ और गाय रखे हुए थे, अब हरेक चीज को उसे मिट्टी के मोल बेचना था। १४-१४ रुपये में तीन बकरियाँ बेचीं, जिनका इससे दूना तो अवश्य मिलता, ओसर गया को सिर्फ १५ रुपये में दे डाला। सभी जानते थे गरजू है। कितनी क्रूरता थी इस परिवार के साथ। यहाँ उसे लकड़ी खरीदनी नहीं थी, साग-सब्जी खरीदनी नहीं थी। देहरादून शहर में रहने उसे अब हरेक चीज को खरीदना पड़ेगा। यहाँ गाय-बकरी से भी कुछ आमदनी हो जाती थी, वह भी होला गया। महीना तक वह सूनी कुटिया मेरा दिल दुखाने के लिए मौजूद थी।

१० नवम्बर को एक हृदयद्रावक खबर सुनी। प्रतिभाशाली तरुण इंजीनियर वासुदेव पाण्डे २६ वर्ष की उमर में जीप की दुर्घटना से चल बसा। पिता गणेश पाण्डे ही ने उससे बहुत आशाएँ नहीं बाँधी थीं, बल्कि मैं भी बहुत आशा रखता था। मिर्जापुर की तरफ नहर के काम में नियुक्त हो उसने मुझे काम करने की अड़चनें लिखी थीं। आजकल नौकरशाही में योग्यता की कहाँ पूछ है? वहाँ तो खुशामद से सब कुछ होता है। परन्तु,

मुझे विश्वास था, वासुदेव अपनी योग्यता का सिक्का मनवा कर रहेगा। इजीनियरिंग विद्या के सम्बन्ध म हिन्दी म बहुत कुछ करने की उसकी इच्छा थी। सभी उमगें लेकर एक तरुण जीवन का अन्त हो गया।

अध्यक्ष के चुनाव म कृपाराम हार गये। पुरुष हार को कैसे खुशी-खुशी मान लेते। पता लगा श्री रामकृष्ण वर्मा ने अपने किसी मुवक्किल का रुपया अदालत से बरामद करके अपने पास कुछ समय रखा। इसी मुवक्किल को फासा गया मुकदमा दायर हुआ और तडाक फडाक फैसला होकर वर्मा जी मुअत्तल कर दिये गए। शहर मे इसके विरुद्ध हडताल की गई।

१३ नवम्बर को लेनिनग्राद से चिट्ठी और फोटो आया। उसे देखकर कमला बहुत उद्विग्न हुई। बहुत रोई। मैंने अपने भावो को प्रकट करते हुए कहा— मैं कह चुका हूँ कि जया को और तुम को मेरी आवश्यकता है। मैं रूस जाने की इच्छा नही रखता। लेकिन, उनकी इच्छा थी, मैं पत्र व्यवहार करना भी त्याग दू। क्या इससे आत्महत्या आसान नही है। जो पिता ईगर का प्रत्याख्यान कर सकता है, उस पर क्या विश्वास किया जा सकता है? जिस समय कमला से सम्बन्ध स्थापित हुआ उस समय क्या आशा थी कि रूस से फिर सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा? अब यदि यह हुआ तो ईगर के साथ नाता तोडना मानवता के खिलाफ है। यदि कमला यही चाहती है तो भी कोई भयकर कदम उठाने से पहले दोनो मा-बेटी का प्रबन्ध तो कर डालना ही होगा।

इसी सम्बन्ध म १४ नवम्बर को मैंने अपनी डायरी मे लिखा—कल से मैं अपनी नजर म गिर गया, सारे जीवन के लिए। कमला का समझना बिल्कुल ठीक है। मैंने उसकी असहाय अवस्था का फायदा उठाया। हा परोपकार, दया दिखाने और क्या-क्या बहाना करके। वह क्या मुझ पर विश्वास करने लगी?

हमारे मोहल्ले म मसूरी का एक सबसे बडा होटल चालविल है। जिसम सौ स ऊपर परिवारो के रहने का स्थान है। तरुण कालिदास उसी होटल म धोबी का काम बाप क समय से करते रहे हैं। बडा भाई ग्रेजुएट होकर पाच साल पहले मर गया। कालिदास पिछले साल बी० ए० मे फेल हो गए इस साल फिर तैयारी कर रहे थे। उनके पिता रुहेलखण्ड के ब्राह्मण थे

जिनका प्रेम धोबिन तरुणी से हो गया। धोबिन को वह ब्राह्मण नहीं बना सके तो स्वयं धोबी बन गये। अपने काम में दक्ष थे। कितने ही दिनों टेकारी के राजा के मुख्य धोबी रह कर मसूरी से बाहर भी घूमते रहे। पीछे होटल में काम करने लगे। कालिदास जन्म से ही मसूरी से परिचित हैं। सीधे सादे किन्तु सबके गाढ़े समय में काम आनेवाले आदमी। ऐसे आदमी कै मिनि भी होते हैं और शत्रु भी। वह १९४७ के हिन्दू मुस्लिम तूफान के बारे में बतला रहे थे १९४६ में लीगियों का यहाँ बहुत जोर था। लन्धौर में उन्होंने कहा था—हम सड़क पर गाय काटेंगे। बनियों की कहाँ हिम्मत थी? उनमें से कुछ भाग गये। १५ अगस्त १९४७ से पहले ही पश्चिमी पंजाब के विशेषकर लाहौर के हजारों हिन्दू भाग कर चले आए। नीचे नगरों में मकान मिलना मुश्किल था और यहाँ मकान खाली पड़े हुए थे। वह भी मुस्लिम लीग के खिलाफ अपने भावों को दिखाने के लिए तैयार थे। उनके कारण मुसलमान दब गये। फोन और रेडियो पर उनका बराबर कान लगा रहता था। सोचते थे, लाहौर के भारत में रहने की खबर आयेगी और हम अपने घरों में लौट चलेंगे। लाहौर पाकिस्तान में गया। उसके बाद खबर आई पश्चिमी पंजाब में हिन्दुओं का कत्ल-आम हो रहा है। यहाँ के मुसलमानों को वह कैसे क्षमा करते? यहाँ भी १७ १८ मौत के घाट उतारे गये। राजपुर में सौ डेढ़ सौ और देहरादून में उससे भी अधिक मुसलमानों की जान गई। एक ड्राइवर ने कोतवाली के सामने बस को खड्डे में गिरा दिया जिससे ज्यादा आदमी मरे। खच्चरखाने में चार पाँच मरे। सबसे दयनीय मृत्यु यहाँ के एक्जक्यूटिव अफसर किदवाई की थी। उनका सारा परिवार राष्ट्रवादी था। उनको विश्वास था कि मेरे जैसे लीगियों के दुश्मन के ऊपर कौन हाथ उठायेगा? लेकिन उस वक्त तो कितनों के ऊपर पागलपन सवार था। किदवाई रास्ते चलते मार दिये गए। अवसर प्राप्त आई० सी० एस० वृद्ध हामिद अली उस तूफान में भी सड़क पर टहलने से बाज नहीं आये। मसूरीवालों को डर हुआ कि उन पर भी कोई हाथ छोड़ देगा। वह अपने साथ रक्षक के तौर पर किसी को रखने के लिए भी तैयार नहीं थे, इसलिए उनसे ५० गज पीछे आदमी लगा दिये गए। बूढ़ा सारे तूफान में बखौफ घूमता रहा। मुसलमानों ने प्राणों से ही

हाथ नही धोया बल्कि धनी मुसल्माना का सवस्व लूट गया। लाखो का माल मुसल्माना के खिलाफ जहाद बोल्नेवाले नेताओ के घरो म चला गया। अभी भी तीन आदमियो का नाम लोग लेते हैं, जो उससे पहले बिल्कुल मामूली हैसियत रखते थे लेकिन तूफान के बाद लखपति बन गये। मुसल्मानो का नवाब रामपुर के बगला और दूसरी सुरक्षित जगहा मे रख दिया गया। पीछे वे सशस्त्र सनिको की देख रेख म बसो पर बैठा कर नीचे भेजे गये। उस समय सभी बडी बडी कोठियो म बल्ती मुसल्मान चौकीदार थे सडक बनाने का काम भी बल्ती मजदूर करते थे। सभी सकट म फँस गये, और फिर मसूरी को खाली करके चले गए।

नवम्बर म "बहुरगी मधुपुरी" की कहानियाँ लिखते रहे। नरेन्द्रयश के ऊपर एक उपयास लिखने का विचार कितने ही महीनो से दिमाग म चक्कर काट रहा था, जिसका आरम्भ २१ नवम्बर से किया। "राजस्थानी रनिवास" को नेशनल हेरल्ड म छपने का भी अब प्रब ध हो गया।

३१ दिसम्बर को साल खतम होने लगा। लेखा-जोखा करने पर मालूम हुआ, कि इस साल ३००० पृष्ठ से अधिक पुस्तकें लिखी। साल बुरा नही था। हाँ, आर्थिक चिन्ता रही जहाँ तक भविष्य का सम्बन्ध था।

९

वृद्ध लेडली

१९५४ के नव वर्ष के दिन वृद्ध लेडली शय्या-गत पड़े थे। पिछले पाँच छ दिन से उनकी तबीयत अस्वस्थ थी। १ जनवरी को लकवा मार गया। उनका ७८ वाँ वर्ष चल रहा था, पके फल तो थे ही, जरा सी हवा के धक्के की जरूरत थी। जाड़ा अधिक होने पर देहरादून चले गए होते तो शायद अभी और कुछ दिन जी पाते। लकवे के बाद फिर उनको होश नहीं हुआ। ६ जनवरी को देहान्त हो गया और ७ को उनकी शव यात्रा हुई।

३१ जनवरी को बर्फ पड़ी। कल रात को भी और १ तारीख को तो सारे दिन बर्फ पड़ती रही। भूमि पर ही नहीं बल्कि वृक्षों पर भी हिमखण्ड दिखाई पड़ते थे। हिमालय का एक एक अंगुल बर्फ से ढँक गया था। दिन भर आग जला कर घर के भीतर बैठे रहे। अगले दिन से आसमान साफ हो गया, धूप निकलने लगी और बर्फ खुली जगहों में गलने लगी। ३ जनवरी की शाम को महादेव भाई आये। साल में इतना अन्तर तो नहीं हो सकता, लेकिन बाल ज्यादा पके दिखाई पड़ रहे थे। शरीर का बढ़ा वजन बतला रहा था कि अब प्रौढ़ अवस्था में पैर काफी दूर तक पहुँच गया है।

यद्यपि हिमालय सम्बन्धी लिखी हुई पुस्तकें अभी प्रकाशित होने को बाकी थीं, किन्तु हमने जम्मू कश्मीर की सीमा तक के हिमालय को लिखने का निश्चय कर लिया था, इसलिए अब अन्तिम पुस्तक "हिमाचल प्रदेश" (जालन्धर-खण्ड) के लिखने में हाथ लगा दिया। इस साल कम्युनिस्ट दृष्टि से जनसाधारण की भाषा में एक एक फार्म के गाइड तीन दर्जन पम्फ्लेटों के

लिखने का निश्चय किया था। ६ ७ जनवरी को पहला पम्फ्लेट 'कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं' लिख भी डाला। ७ तारीख से ही 'हिमाचल प्रदेश' में भी हाथ लगाया। जाडा मे खुला आसमान और धूप अच्छी लगती है। हिमवर्षा भी बुरी नही लगती लेकिन यदि कई दिनों तक बादल घिरे और बूंदा बांदी रहे, तो अच्छा नही लगता। यहाँ का क्या? हवा बादल चले सर्दी बढ़ जाए। धूप निकल आये, तो अमन चैन की बंसी बजे। महादेव भाई सर्दी के फेर में पडे। दो दिन के लिए हरिश्चन्द्रजी अपनी पत्नी और पुत्र के साथ आकर ठिठुरते रहे। बेचारे की इस सर्दी को बर्दाश्त करने के लिए वह क्या तैयार होते?

१७ जनवरी को फिर जलवर्षा और हिमवर्षा का दौर शुरू हुआ। उस दिन दोपहर बाद बर्फ गिरने लगी, लेकिन जमीन ढँकने नहीं पाई। सर्दी तेज हो गई। अगले दिन मध्याह्न से हिमवृष्टि होने लगी, और सारी जमीन ढक गई। १९ जनवरी को बीच-बीच में बर्फ या बजरी पड़ती रही, हवा भी तेज थी। ३ बजे बराण्डे में तापमान ३२ डिग्री, अर्थात् हिमबिन्दु से एक डिग्री नीचे।

हिम देखने के लिए कितने ही लोग नीचे से आए। हमारे दोनों कमरों में आग जली रहती। जया ने दुनिया में पहला जाड़ा देखा। डर लग रहा था सर्दी प्रतिकूल न साबित हो, लेकिन लड़के काफी बर्दाश्त कर लेते हैं। कमला की बहिन गंगा और भाई हरिमंगल साथ के दूसरे कमरे में आग के सामने बैठे रहते। आग तापते सर्दी दूर करना दिन में बुरा नहीं होता, यदि बात करते और बीच बीच में गरम पेय पीते रहें। गरम-गरम मांससूप बहुत प्रिय लगता है, पर शहर से दूर रहने का एक फल यह भी मिल रहा था कि मांस अपनी इच्छा से सुलभ नहीं था।

अमृतसर—भया भाभी के यहाँ जाड़ा में जाने की पहले सलाह हो चुकी थी। सर्दी से बचने का यह अच्छा उपाय था। चाय पीकर हम २२ जनवरी के ९ बजे घर से निकले। रास्ते में बर्फ खूब पड़ी हुई थी पेड़ों पर भी लगी थी, जो अब पिघल कर गिर रही थी। जान पड़ता था, हम चीनी के मोटे दानों के ऊपर चल रहे हैं। टाउन के पास आध फुट से अधिक मोटी बर्फ थी। रिक्शा के आने तक अविनाश सड़क बर्फ से ढँकी मिली। कितान

घर के अड्डे पर कोई टैक्सी नही थी। किश्तेग मे दो सीटें मिली। ११ बजे चले। ३५०० फुट तक जहा तहाँ सड़क पर बर्फ मिली। बतला रहे थे, कल राजपुर मे भी बजरी गिरी थी, यदि दो घंटे और तापमान उसी तरह चला जाता तो देहरादून मे भी हिमवृष्टि हो जाती।

१२ बजे शुक्लजी के यहा पहुँचे। भोजन तयार था। जया और उसकी माता वहा शुक्लाइनजी से बातचीत करने लगी और मैं डेढ घंटे के लिए मिश्रजी के साथ मरगश्त करने चला गया। अगले दिन दिन मे ही अमृतसर चलने का निश्चय किया। साढे ३ बजे हमे अमृतसर की ट्रेन मिली। पहले दर्जे मे सीटे रिजर्व थी। नीचे की सीटें मिल गई थी। हरद्वार पहुँचते पहुँचते सूर्यास्त हो गया। लुक्सर मे पहुँच कर भोजन किया। मध्य रात्रि को भी देख रहे थे वृष्टि जारी है और सर्दी तो मसूरी से पीछा कर रही थी।

ठीक ७ बजे गाडी अमृतसर स्टेशन पर पहुँची। भयाजी मौजूद थे। ताँगे पर बैठ कर ८ बजे हम उनके घर पर पहुंचे। उस दिन शाम को ३ बजे टहलने के लिए कम्पनी बाग गये। कितनी ही दूर तक रिक्शे पर चले। अमृतसर की गलियाँ भी बनारस जसी ही हैं और भीड़ भी बहुत रहती है। मसूरी की सर्दी अप्रिय लग रही थी और यहाँ की बडी सुहावनी। भया का कहना था— चार महीने जाड़े के यही बिताओ।' पर जाडा बिताना हो तो जीवन का लक्ष्य नही हो सकता। लिखे पढे बिना दिन कैसे कटता और उसकी सुविधा मसूरी मे ही थी। वहाँ पुस्तकें थी और वहाँ मिलने जुलने वाले भी बहुत कम आते थे।

२४ जनवरी को ३ बजे रिक्शे पर छावनी गये। फिर वहाँ से पैदल कम्पनी बाग। कम्पनी बाग का अर्थ ही है कि इसकी स्थापना १८५७ से पहले हुई थी। चलने मे अब थकावट मालूम होती थी अमृतसर शहर का कुछ भाग जल गया है। यहीं हिन्दू मुसल्माना का डटकर संघर्ष हुआ था। मुसल्माना की संख्या कम थी इसलिए उनको ज्यादा जन धन की हानि उठानी पड़ी। अन्त मे एक एक को पाकिस्तान चला जाना पड़ा। वही बात उल्टी दिशा मे लाहौर मे हुई। जहाँ मुसल्माना की बड़ी-बडी दूकानें थी वहाँ अब शरणार्थियो की छोटी छोटी दुकान खड़ी थी बड़े मकान तो जल कर राख हो गए थे। हिन्दुओ ने इन्हे जलाकर अपना ही नुकसान किया,

किन्तु उस वक्त किसकी अक्ल ठिकाने थी ? इतवार को दूकानें बन्द रहती हैं लेकिन शरणार्थियों की दूकानें उस दिन भी खुली थीं दूसरी दूकानों से यहाँ चीजें सस्ती मिलती थीं। इसलिए ग्राहक अधिक आवें, यह स्वाभाविक था।

३ फरवरी तक हमारी एक ही तरह की दिनचर्या थी। छत पर एक जगह सबसे पहले धूप आती। वहीं दरी-तकिया लग जाता, जिस पर कमला, जया, मैं, भाभीजी डट जाते। भाई साहब बीच बीच में कोई और भी काम कर आते, लेकिन हम वहीं तब तक बैठे रहते, जब तक कि दोपहर को धूप वहाँ से हट नहीं जाती। गम्भीर नाश्ता और चाय के बाद १० बजे माल्टा-मुसम्बियों का दौर आरम्भ होता। एक पूरी टोकरी सामने रख दी जाती और हम तब तक काट काट कर चूसते रहते जब तक टोकरी साफ नहीं हो जाती। भाभी साहिबा इस मामले में बड़ी जबर्दस्त हैं। मजाल नहीं कि कोई मेहमान गले तक पेट भरे और अजीर्ण लिए बिना वहाँ से हट जाए। भाई साहब ने मकान को अपने मन से बनवाया था, और आम भारतीय मकानों की तरह यहाँ भी पाखाने का स्वच्छ प्रबन्ध नहीं था। वह स्वच्छ प्रबन्ध तब तक नहीं हो सकता, जब तक फ्लश का इंतिजाम न हो। हम कुछ दिन और रहते लेकिन कमला ने बी० ए० का फार्म भरा था, और यहाँ पढ़ना नहीं हो रहा था। उधर "बहुरंगी मधुपुरी" के प्रूफ भी आने लगे थे। कमला के प्रकाशन की यह तीसरी और अंतिम पुस्तक थी।

२८ जनवरी को ४ बजे अब पुराने मित्रों से मिलने के लिए निकले। देशभगत परिवार में बाबा केसरसिंह मिले। यह उन वीरों में थे, जिन्होंने अमेरिका के सुखी जीवन को लात मारकर विश्व युद्ध के समय देश के मुक्ति-यज्ञ में अपने सर्वस्व की आहुती दी थी। अंग्रेज सबको फाँसी पर लटकाने के लिए तैयार नहीं थे इसीलिये बाबा केसरसिंह और उनके कितने ही साथियों को आजन्म कालापानी की सजा हुई। ७६ वर्ष के हो गए थे। पूरा छ फुट का शरीर, लेकिन अभी भी कमर नहीं झुकी थी। चल भी लेते। उनसे मिलकर दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई। क्या पता, यह अंतिम मुलाकात है। उनसे मालूम हुआ कि तीन चार वर्ष पहले बाबा करमसिंह धूत का देहान्त हो गया। वह भी अमरिका से देश की स्वतन्त्रता के लिए आए थे।

घर के अड्डे पर कोई टक्सी नही थी। किंक्रेग म दो सीटें मिली। ११ बजे चले। ३५०० फुट तक जहा तहा सडक पर बर्फ मिली। बतला रहे थे, कल राजपुर म भी बजरी गिरी थी यदि दो घटे और तापमान उसी तरह चला जाता तो देहरादून म भी हिमवृष्टि हो जाती।

१२ बजे शुक्लजी के यहा पहुँचे। भोजन तयार था। जया और उसकी माता वहाँ शुक्लाइनजी से बातचीत करने लगी और मैं डेढ घटे के लिए मिश्रजी के साथ सत्सग करने चला गया। अगले दिन दिन म ही अमृतसर चलने का निश्चय किया। साढे ३ बजे हम अमृतसर की ट्रेन मिली। पहले दर्जे म सीट रिजव थी। नीचे की सीटें मिल गई थी। हरद्वार पहुँचते पहुँचते सूर्यास्त हो गया। लुक्सर म पहुँच कर भोजन किया। मध्य रात्रि को भी देख रहे थे वृष्टि जारी है और सर्दी तो मसूरी स पीछा कर रही थी।

ठीक ७ बजे गाडी अमृतसर स्टेशन पर पहुँची। भयाजी मौजूद थे। ताँगे पर बठ कर ८ बजे हम उनके घर पर पहुचे। उस दिन शाम को ३ बजे टहलने के लिए कम्पनी बाग गये। कितनी ही दूर तक रिक्शे पर चले। अमृतसर की गलियाँ भी बनारस जसी ही हैं और भीड भी बहुत रहती है। मसूरी की सर्दी अप्रिय लग रही थी और यहाँ की बडी सुहावनी। भया का कहना था—' चार महीने जाडो के यही बिताओ। ' पर जाडा बिताना ही तो जीवन का लक्ष्य नहा हो सकता। लिखे पन्ने बिना दिन कसे कटता और उसकी सुविधा मसूरी म ही थी। वहाँ पुस्तकें थी और वहाँ मिलने जुलने वाले भी बहुत कम आते थे।

२४ जनवरी को ३ बजे रिक्शे पर छावनी गये। फिर वहाँ से पदल कम्पनी बाग। कम्पनी बाग का अथ ही है कि इसकी स्थापना १८५७ से पहले हुई थी। चलने म अब थकावट मालूम होती थी अमृतसर शहर का कुछ भाग जल गया है। यहा हिंदू मुसलमानो का टक्कर सघर्ष हुआ था। मुसलमानो की सख्या कम थी इसलिए उनको ज्यादा जन धन की हानि उठानी पडी। अन्त म एक एक को पाकिस्तान चला जाना पडा। यही बात उल्टी दिशा म लाहौर म हुई। जहाँ मुसलमानो की बडी-बडी दूकानें थी, वहाँ अब शरणार्थियो की छोटी छोटी दूकानें खडी थी, बडे मकान तो जल कर साफ हो गए थे। हिन्दुओ ने इन्हें जलाकर अपना ही नुकसान किया,

किंतु उस वक्त किसकी अक्ल ठिकाने थी ? इतवार को दूकानें बन्द रहती हैं, लेकिन शरणार्थियों की दूकानें उस दिन भी खुली थीं दूसरी दूकानों से यहाँ चीजें सस्ती मिलती थीं। इसलिए गाहक अधिक आवें, यह स्वाभाविक था।

३ फरवरी तक हमारी एक ही तरह की दिनचर्या थी। छत पर एक जगह सबसे पहले धूप आती। वहीं दरी-तकिया लग जाता जिस पर कमला, जया मैं, भाभीजी डट जाते। भाई साहब बीच बीच में कोई और भी काम कर आते, लेकिन हम वहीं तब तक बैठे रहते जब तक कि दोपहर की धूप वहाँ से हट नहीं जाती। गम्भीर नाश्ता और चाय के बाद १० बजे माल्टा-मुसम्बियों का दौर आरम्भ होता। एक पूरी टोकरी सामने रख दी जाती और हम तब तक काट काट कर चूसते रहते, जब तक टोकरी साफ नहीं हो जाती। भाभी साहिबा परोसने में बड़ी जबर्दस्त हैं। मजाल नहीं कि कोई मेहमान गले तक पेट भरे और अजीर्ण लिए बिना वहाँ से हट जाए। भाई साहब ने मकान को अपने मन से बनवाया था, और आम भारतीय मकानों की तरह यहाँ भी पाखाने का स्वच्छ प्रबंध नहीं था। वह स्वच्छ प्रबन्ध तब तक नहीं हो सकता, जब तक फ्लश का इन्तिजाम न हो। हम कुछ दिन और रहते, लेकिन कमला ने बी० ए० का फार्म भरा था और यहाँ पढ़ना नहीं हो रहा था। उधर "बहुरंगी मधुपुरी" के प्रूफ भी आने लगे थे। कमला के प्रकाशन की यह तीसरी और अंतिम पुस्तक थी।

२८ जनवरी को ४ बजे अब पुराने मित्रों से मिलने के लिए निकले। देशभगत परिवार में बाबा केसरसिंह मिले। यह उन वीरों में थे जिन्होंने अमरिका के सुखी जीवन को लात मारकर विश्व युद्ध के समय देश के मुक्ति-यत्न में अपने सर्वस्व की आहुती दी थी। अंग्रेज सबको फांसी पर लटकाने के लिए तयार नहीं थे इसीलिये बाबा केसरसिंह और उनके कितने ही साथियों को आजन्म कालापानी की सजा हुई। ७९ वर्ष के हो गए थे। पूरा छ फुट का शरीर, लेकिन अभी भी कमर नहीं झुकी थी। चल भी लेते। उनसे मिलकर दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई। क्या पता यह अन्तिम मुलाकात है। उनसे मालूम हुआ कि तीन चार वर्ष पहले बाबा करमसिंह धूत का देहांत हो गया। वह भी अमरिका से देश की स्वतन्त्रता के लिए आए थे।

रूस में कितने ही समय रह कर साम्यवाद की शिक्षा प्राप्त कर, वर्षों देश के जेलों में रहे। तरुणों का कितना मनोरंजन करते थे? बाबा सोहनसिंह भाकना—अमेरिका में भारतीय गदर पार्टी के संस्थापक—अब भी जीवित थे। कमर उनकी पहले ही टेढ़ी हो गई थी, अब चलना फिरना भी उनके लिए मुश्किल था और अधिकतर अपने गांव में रहते थे। ३१ जनवरी को उनके गांव जाने का निश्चय था किन्तु कुछ बुखार आ गया, इसलिए यात्रा स्थगित करनी पड़ी। बाबा विसाखासिंह अब भी थे किन्तु बहुत दुर्बल। वह तो वर्षों से टी० बी० के मरीज थे। देवली कैम्प वाले और भी साथियों से मुलाकात होती लेकिन आजकल पेप्सू में पुनर्निर्वाचन हो रहा था, सारे साथी उसी में लगे हुए थे।

३१ जनवरी को खोज लिखारी सभा की ओर से रिपब्लिक हाल में मुख्य भाषण देना पड़ा। साहित्य, भाषा और कला पर बोला। पंजाबी भाषा और पंजाबी सूबे की बात भी आई। सिर्फ लिखारी ही नहीं नगर के दूसरे भी शिक्षित सम्भ्रान्त वर्ग के लोग मौजूद थे। अमृतसर में इसी एक भाषण से लोगों को मेरे आने का पता लगा था। मैंने यह भी कहा कि चंडीगढ़ में पंजाब की राजधानी बसाने जैसी बेवकूफी नहीं हो सकती। उसके भाग्य में उजाड़ बदा है। मृत प्रसव इसी को कहते हैं। अमृतसर यदि सीमान्त के पास था तो जलन्धर राजधानी के लिए सबसे अनुकूल नगर था। ऐतिहासिक तौर से भी यह पंजाब का सबसे पुराना नगर है और केन्द्र में भी है। कुछ ही मील पर कपूरथला से एक होकर वहाँ न जमीन की दिक्कत थी और न सरकारी आफिसों या लोगों के रहने के लिए मकानों की। एक धनी पुरुष ने कहा यहीं सोचकर जमीन लेकर भी मैंने वहाँ मकान नहीं बनाया। पंजाब के अध्यवसायी व्यापारी भली प्रकार जानते हैं कि उनके फलने फूलने का स्थान कौन सा हो सकता है? अगर इन्हें अपने शहर को छोड़ना है, तो वह इसके लिए दिल्ली को ज्यादा पसन्द करेंगे। अमृतसर की जन संख्या पहले से कम है किन्तु घर उतने नहीं बढ़े। कोई भी स्थायी सम्पत्ति या उसका साधन यहाँ कायम करना लोग पसन्द नहीं करते थे। जब ज्योतिषियों की भविष्यवाणी सुनकर हजारों की तादाद में लोग शहर छोड़कर भाग जाते हैं पाकिस्तान हिन्दुस्तान के सम्बन्ध के तरा से खराब होने से

हल्कप मच जाती है, तो वहां कौन नय कारखाने खोलेगा। पहले अमृतसर उभय-पंजाब और कश्मीर तक के कपड़े और कितनी ही और चीजों का मुख्य बाजार था, अब नहीं रह गया है। इसका बुरा प्रभाव अमृतसर के बाजार के ऊपर पड़ा है।

मसूरी—अमृतसर में बारह दिन रहकर ८ फरवरी की रात की गाड़ी से हम मसूरी के लिए रवाना हुए। जया की बाँह में चेचक का टीका लग आया था। पहली बार का लगाया उभड़ा नहीं, फिर दूसरा बार लगवाया। अब वह फूल आया था बुखार भी था। बेचारी का मुँह मुरझा गया था। बच्चों का हँसता चेहरा ही अच्छा लगता है। बुखार और चेचक की अवस्था में मसूरी ले जाने की सलाह तो नहीं मिल रही थी, लेकिन मजबूरी थी। ५ फरवरी का सवेरा सहारनपुर में हुआ। रात भर वर्षा हुई और वह मसूरी तक ऐसी ही थी। नदियों की धारा बढ़ गई थी नैनों में पानी भरा हुआ था। ९ बजे गाड़ी लक्सर पहुँची। गाड़ी ने छकड़े का रूप ले लिया था, और सवा बजे ही देहरादून पहुँचा। बहुत से मध्य हिमालय के पहाड़ भी हिमालय-श्रेणी बन गए थे। मसूरी का देहरादून की तरफ वाला भाग बहुत कम बर्फ से ढँका देखा जाता था, लेकिन आज वह भी ढँका था। नीचे रात का जो वृष्टि हुई थी, वह यहाँ हिमवृष्टि के रूप में परिणत हो गई थी।

डेढ़ बजे गुरुजी के घर पर पहुँच गए। अब की इलाहाबाद में कुम्भ लगा था। भारत के सभी देव महादेव कुम्भ का मेला देखने और अपना दर्शन कराने वहां पहुँचे थे। प्रबन्ध करने वाली पुलिस देवताओं के दरबार में उपस्थित हो गई और उधर आदमियों का ऐसा रेला आया कि हजारों आत्मा कुचलकर मर गए। इसकी खबर मिलने पर भी देवताओं की दावतें चलती रहीं। कैसा क्रूर परिहास? कुम्भ मेले में गुरुआनीजी भी गई हुई थीं। कहा—"जिन्दगी का क्या ठिकाना। अब तो फिर कुम्भ बारह वर्ष बाद हो आएगा। गुरुजी क्यों रोककर पाप के भागी होते?" तार पर तार खटखटा रहे थे, पर प्रयाग में कोई जवाब नहीं मिल रहा था। तार गेट खटखटाने वाले वह अकेले ही थोड़े थे? हजारों तारों को ठीक जगह पर पहुँचाना तारघर वालों के बस की बात नहीं थी। प्रयाग की हृदयद्रावक खबरें अखबारों में निकल रही थीं, जिसे पढ़कर चिन्ता और बढ़ गई थी। आज

तार आया लेकिन उसमे सकुशल यहा पहुँचने की बात थी।

उस दिन घूमते घामते कल्याणसिंह की कोठरी म भी पहुँचे। बेचारे की अवस्था बडी दयनीय थी। सात आदमी शहर का जीवन और रुपये दिन के दो भी नहीं।

६ फरवरी को श्री हरिनारायण मिश्र के यहा कितने ही विद्यार्थियों और अध्यापको की गोष्ठी रही। भोजनोपरान्त कन्या गुरुकुल म भाषण दिया। धीरे धीरे इस सस्था ने बडा रूप धारण कर लिया है। सौ एकड के करीब जमीन है दो लाख से अधिक की इमारत है। बहुत समय पहले समाज के लिए आवश्यक इस सस्था का निर्माण हुआ था। पर, स्त्री शिक्षा के कन्ते हुए वग स जितना लाभ उठाना चाहिए था, उतना इसने नही उठाया। यद्यपि शिक्षा की आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति यहा की गई है लेकिन आधे मन से ही। यही कारण है जो कन्या गुरुकुल उतनी उन्नति नहीं कर सका। डा० सत्यकेतु की पुत्री उषा इस वक्त यहाँ पढ रही थी। पढाई का लाभ उसे साफ दिखाई पडा। भाषा म उसने बडी तरक्की की और पढने म भी। वजन काफी बढ गया था। लेकिन माँ बाप को खयाल आया कि आधुनिक तरुणी को जैसा होना चाहिए वैसी वह नहीं हो सकेगी इसलिए कुछ समय बाद उसे हटा लिया यद्यपि वहाँ खर्च भी कम पड रहा था।

७ को सवेरे गुणानीजी आइ। लोग बडे खुश हुए। डर होने लगा था कि वह देहरादून की जगह बकुण्ठ पहुँच गई होगी। हमने पौने ११ बजे मोटर पकडी और साढ़े १२ बजे मसूरी अपने घर पर पहुँच गए। ४ तारीख की बर्फ अब भी रास्ते पर पडी थी लेकिन २१ जनवरी जितनी नहीं थी।

जया को टीके के कारण ज्वर था। बच्चो का करुण क्रन्दन सुनना असह्य होता है। घर पर आकर सबसे अधिक आराम बाथरूम का था। इतना आधुनिकपन तो अब हमारे म आ ही गया था कि बाथरूम कमरे की बगल म हो और पलंग का हो। डायबेटीज ने इसे आवश्यक भी बना दिया। ९ को जया का बुखार जब बिल्कुल हट गया, और वह हँसने लगा, तो बडी प्रसन्नता हुई। पानी म मिलाकर गाय का दूध भी पिलाया जा रहा था। वह उसे हजम भी करने लगी। उसकी सभी इन्द्रियाँ अब काम कर रही थी,

और तकिये के सहारे कुछ बैठ भी सकती थी। उठने बैठने का तो ताना लगा देती थी।

२ मार्च को जाडे की समाप्ति का पता लगने लगा, जब नग्न वृक्षों पर पत्तियों को कुडमलित देखा। इसमें हमारी नासपाती सदा पहले रहा करती है। ५ मार्च को उसमें लाल लाल पत्तियां दीखने लगीं। ८ मार्च को जया चढने लगा। 'हिमाचल प्रदेश' का डिक्टेट करके टाइप कराते बहुत दूर तक हम लिख चुके थे। हिमालय के किसी भाग के परिचय ग्रन्थ को हम पूरा नहीं समझ सकते, जब तक कि उसकी यात्रा भी उसमें सम्मिलित न हो जाए। इसीलिए अबके हिमाचल प्रदेश की यात्रा करनी थी। साथ में किसी के रखने की आवश्यकता थी। मैंने धूपनाथजी और जनकलालजी दोनों के पास को पत्र लिखा। दोनों इसके लिए तैयार थे।

गुरुजी की पुत्री मुक्ता (कमल) का ११ मार्च को ब्याह था। १० को मैं भी वहां पहुँचा। उसी दिन शाम को बरात आई। इकलौती लडकी का ब्याह माँ बाप ने पूरे उत्साह के साथ करना चाहा, यद्यपि लडके वाले इस उतना पसन्द नहीं करते थे। विद्वान् के घर मे विवाह हो, तो सबसे अधिक पण्डितों का आना स्वाभाविक था। वर कृष्णकान्त मिश्र पढने में हमेशा प्रथम आते रहे और यदि तिकडम न लगाया गया होता तो वह आई० ए० एस० में आ गए होते। वह एक डिग्री कालेज में अध्यापक थे। आशा है ऐसे प्रतिभाशाली तरुण का रास्ता सदा रुका नहीं रह सकता। श्री किशोरीदास बाजपेयी बरातियों की ओर से थे। कन्या के दादा दादी भी ब्याह में शामिल हुए थे। उन्होंने अपने पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रियों तक को देख लिया। शादी की मां ने तो एक और भी पीढ़ी देखी थी। ब्याह दिन में हुआ। यद्यपि पाशाक में प्राचीनता रखने की कोशिश की गई थी लेकिन वर में कोई संकोच नहीं था और कन्या भी उतनी छुई मुई सी नहीं हुई थी। विवाह कराने वाले पण्डितजी ने "रमणस्य" जब कहा तो हँसी आ गई। पुरोहित के लिए संस्कृत के ज्ञान की आवश्यकता नहीं। ब्याह के सम्बन्ध से आए थे सब भी दो व्याख्यान देने ही पडे। कमला भी हमारे साथ ब्याह में शामिल हुई थीं। उन्हें उत्तर प्रदेश का प्रथम ब्याह देखने का मौका मिला।

१३ मार्च को हम टक्सी करके दोपहर तक मसूरी पहुँच गए। लेड्ली के

घर तक पहुँचने में कुछ घबराहट मालूम हुई। दोपहर और रात को भी कुछ नहीं खाया। रात को बुखार मालूम हुआ। इस वक्त गौनमजा की लम्बी लम्बी तुकबंदियां में फटकारे आ रही थीं, जिनमें बौद्ध धर्म, साम्यवाद को गालियाँ रहती थीं। ऐसे आदमी से कुछ कहा भी तो नहीं जा सकता। कुछ भी अस्वस्थता होने पर चारपाई पर पड़कर पूरा विश्राम करना यही मेरा नियम है। बुखार या पेट की गड़बड़ी होने पर मैं खाना भी छोड़ देता हूँ, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि पढ़ना भी छोड़ दूँ, या आवश्यक प्रूफ आने पर उसे रख छोड़ूँ। अब की चारपाई पर पड़े पड़े मैंने प्रेमचन्द के 'गोदान' को पढ़ना शुरू किया। वर्षों पहले उसे पढ़ा था, जिसका मन पर संस्कार भी अब नहीं था। समाप्त करने पर डायरी में लिखा— 'अद्भुत लेखनी है। कितने गुण हैं? भाषा ही को ले लें, तो देखो कितना कमाल किया। जनता के मुँह से निकलने वाले शब्दों को धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं। अनावश्यक क्लिष्ट शब्दों को हटाकर देहाती शब्दों का भी प्रयोग किया है। हो सकता है, उनमें कुछ ऐसे भी हों, जो हिन्दी के पश्चिमी क्षेत्रों में नहीं बोले जाते। पर उसके लिए क्या चित्रण की एक उत्कृष्ट सामग्री को छोड़ अधूरा चित्र अंकित किया जाए? या अनावश्यक तथा अप्रयुक्त तत्सम या उर्दू के शब्दों को लिया जाए? किसान के दुःखमय जीवन का इतना स्पष्ट, विस्तृत और गम्भीर चित्रण किसने किया है?' भारत में तो कोई ऐसा नहीं हुआ? कोई अनावश्यक पात्र नहीं है—मालती और खन्ना भी नहीं। इतने नाम उपन्यास में आ जाएँ, उन्हें अन्त से पहले विस्मृत या मृत न बनाया जाए, यह कोई उचित माँग नहीं है। 'गोदान' के पात्रों में सबका अपना अपना अलग अलग व्यक्तित्व है।'

१७ मार्च से उठकर काम करना शुरू किया। १९ को कल्याणसिंह आए। 'कमलसिंह' के नाम से अधिकतर उनकी ही जीवनी को लेकर जो मैंने कहानी लिखी थी, वह साप्ताहिक हिन्दुस्तान में छप चुकी थी। देहरादून में किसी ने पढ़ा और माँग लिया। उसने कल्याणसिंह को भी सुनाया। कल्याणसिंह कह रहे थे— 'आपने सब बातें कैसे जान लीं?' हाँ, कुछ बातें मैंने उसमें कल्पना से लिया थीं, लेकिन उनकी स्थिति के आदमी के लिए वे बिलकुल सम्भव थीं, इसलिए ठीक बैठ गईं। अब नई नगर-

पालिका आ गई थी। मैंने उसके प्रभावशाली व्यक्तियों से सिफारिश की, और कल्याणसिंह से मसूरी में बदल देने के लिए दर्खास्त लिखवाई।

हमारे यहां करीब-करीब सभी त्योहार दो दिन होते हैं। त्योहार दो दिन तक रहे, लोग दो दिन उत्सव मनाएँ, यह बुरा नहीं है। लेकिन, तिथि का निश्चित होना जरूर बुरा है। इस मोहल्ले के लोग १६ को ही होली मना रहे थे अर्थात् १८ को ही उन्होंने होली जला दी। हमने अपने यहाँ २० को होली मनाई। पकवान बने। कमला ने पड़ोसिनों में भी कुछ बाँटा। जया आज छ मास की हो गई थी। कुछ बातों की नकल करने लगी थी। यद्यपि मोटी नहीं थी पर दुबली भी नहीं वह सख्त थ।

२१ मार्च को पूर्वी पाकिस्तान के साधारण निर्वाचन की खबर आई। जिस मुस्लिम लीग को अजेय समझा जाता था वह पाकिस्तान के अधिक जनता वाले सबसे बड़े साढ़े तीन सौ में से दस भी स्थान नहीं पा सकी। मुख्य मन्त्री और दूसरे मन्त्री सभी चुनाव में पराजित हुए। धर्म की दोहाई देकर उन्होंने लोगों की भाषा बंगला को दबाना चाहा विरोध प्रकट करने पर गोलियां चलवाई। सेना और सभी बड़ी-बड़ी नौकरियों में पंजाबियों का शासन करने के लिए वहां भेज दिया गया। सात वर्षों से वहां की जनता में जो दुर्भाव जमा होता रहा उसका ही यह परिणाम था।

२३ मार्च को "आर्यान पेशवा" के चार गण हमारे यहाँ भी आए। राजा महेन्द्र प्रताप आर्यान पेशवा के नाम को अधिक पसन्द करते हैं। इसके यौगिक अर्थ में धर्म के पैगम्बर होने की गंध आती है और रूढ़ि अर्थ में भारत के एक शक्तिशाली वंश की। आज राजा महेन्द्र प्रताप यद्यपि बुढ़ापे के असर में पूरी तौर से आ गए हैं और उनकी बातों से सहमत होना मुश्किल है लेकिन देश की आजादी के लिए जो कुर्बानी उन्होंने की उसको भुलाया नहीं जा सकता। प्रथम विश्वयुद्ध में घर और राजभोग छोड़कर बाहर निकले तो भारत के स्वतन्त्र होने पर ही देश लौटे। वह बराबर ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करते रहे, आज भी ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के वह उसी तरह विरोधी हैं। तपे हुए देशभक्त के अतिरिक्त वह बहुत बड़े घुमक्कड़ हैं। अनेक बार उन्होंने पृथ्वी परिक्रमाएँ की और धन के बल पर नहीं। ऐसे पुरुष के सामने मेरे जैसे आदमी का सिर नत हो जाए, यह स्वा

भाविक है। पशवा १० मई को दिल्ली 'पकड़ने" जा रहे थ। मुसोलिनी न राम पकड़ा था गायद वही ख्याल आर्यनि पशवा के दिमाग म भी घूम रहा था। वह गए भी लेकिन उनके साथ हजार की भी पलटन ता नहीं थी। वह अपन हिंदी अंग्रेजी उर्दू पत्रा म खूब खरी खरी बातें लिखते हैं जा कानून का उल्लंघन करती है। पर सरकार उस पर चुप साधे हुए रहती है इसका भी उन्ह दुख है। जेल भेजती ता गायद कुछ काम आग बढ़ता।

कमला क भाई हरि और बहिन गगा का यहा इसलिए बुलाया गया था कि उन्ह पढ़न का सुभीता होगा। गगा का नाम स्कूल म लिखवा दिया वह पढ़न भी जाया करती। हरि का नाम भी रमादेवी हाइस्कूल मे लिखन के लिए प्रिंसिपल मलहात्रा को चिट्ठी लिख दी। यह स्कूल अपने परीक्षा परिणामा की दृष्टि स मसूरी का सबसे अच्छा स्कूल है। हरि को यहाँ का जीवन पसन्द नहीं था। घर म अवश्य उसकी दो बहनें और नगल नपाली भाषा बालनवाले थ लेकिन बाहर वह कलिम्पाग का वातावरण नहीं पाता था। स्कूल म जान पर अपरिचित और दूसरी भाषावाल लड़के क सीधेपन स दूसरे लड़क लाभ उठा सकत हैं, किन्तु यह कोई एसी बात नहीं थी कुछ दिना म सब ठीक हा जाता। हरि अपने मनाभावा को किसी स कहता भी नहीं था। हम समझत थ वह पढ़ने जा रहा है।

अपनी बी० ए० परीक्षा क लिए २८ माच का कमला जय हरि के साथ देहरादून गई। प्रवेश पत्र यहा भूल गई था इसलिए कमला को रवाना कर हरि लौट आया और दूसरी बस स गया। जया की किलकारी बिना हमारा कमरा सूना सूना मालूम हाता था। साथ ही यह भी ख्याल आता था कि माच क अन्त म अब देहरादून म गर्मी आ गई है न जान उसक ऊपर क्या गुजरती हागी? ३० का कमला की चिट्ठी भा आई। उसम गर्मी और मक्खिया दोना की शिकायत थी। १ अप्रैल का १० बजे कमला लौट कर आयी तब चिन्ता दूर हुई। जया का मच्छरा न काट खाया था। परीक्षा क बार म निराश नहीं थी हाँ इसका अफसास जरूर था कि एफ० ए० म सभी विषया का लेकर दिया हाता ता दस साल भी सभी विषया म परीक्षा देता और पास हान पर पूरी डिग्री मिलती।

विस्मृत यानी पिछल ही साल पूरा हा गया था। दिल्ली के

'साप्ताहिक हिंदुस्तान' ने उसे धारावाहिक रूप से अपने यहां प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। 'हिंदुस्तान' की ग्राहक संख्या को देखते हुए हम पसन्द था कि वह पुस्तकाकार छपने से पहले यदि किसी पत्र में निकल जाए तो अच्छा है। लेकिन ऐसे ग्रंथों के साथ जिस तरह की मनमानी की जाती है वह लेखक को पसन्द नहीं आ सकती।

७ अप्रैल को बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की ओर से डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी का पत्र आया कि परिषद ने 'मध्य एसिया का इतिहास' प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया है। कितने ही वर्षों से यह बड़ी साध और मेहनत से लिखा हुआ ग्रंथ अधर में लटका हुआ था। प्रकाशक बहुत खुश मिले, लेकिन प्रेस के भूतों ने उसे ऐसा दबोचा कि १९५७ में भी दूसरे खंड के निकलने में सन्देह है।

हिमाचल की यात्रा के लिए धूपनाथजी और जनकलालजी दोनों तैयार थे। ४ अप्रैल को धूपनाथजी आ गए, और उससे अगले दिन जनकलालजी भी। जनकलालजी जवान और पहाड़ी थे, साथ ही वैद्यक भी जानते थे इसलिए उन्हीं को साथ ले जाना अच्छा जान पड़ा।

१० अप्रैल को हमने यहां से हिमाचल-यात्रा के लिए प्रस्थान करने का निश्चय किया था। तब तक "हिमाचल प्रदेश" की आवृत्ति करके उसे ठीक लगाने में लगे रहे। ७ तारीख को लण्ढौर गए और बड़ी लालसा से कि किशनसिंह से मुलाकात होगी। देखा उनकी दूकान पर ताला लगा हुआ था। माथा ठनका। वह अब तक दिल्ली में गर्मी बर्दाश्त करने के लिए नहीं रह सकते थे। फिर रामसिंह की बुढ़िया मां मिली। उसने बतलाया कि १ अप्रैल ही किशनसिंह दिल्ली में चल बसे। कनौर में पैदा हुए पहाड़ों का चक्कर काटते रहे फिर मसूरी में बस गए। वह कितने सरल और मधुर थे। मसूरी में उनका अभाव अब हमेशा हमें खटकेगा। बीवी को दो बच्चों को पालना है, बड़ा बहुत कम अक्ल रखता है, और छोटा अबोध है। किशनसिंह का ख्याल करके इष्टमित्र कभी कभी सहानुभूति प्रकट करेंगे, लेकिन सारी विपत्ति तो बेचारी इस स्त्री को ही सामना है। वह भारत के करोड़ों आदमियों में एक थे उनके अभाव को कौन याद करेगा? पर, मैंने तो किशनसिंह को नजदीक से देखा था। मैं कैसे उनको अपने जीवन भर भूल सकता हूं?

१०

हिमाचल प्रदेश में

मोहन—१० अप्रैल को जनकलालजी और मैं साथ-साथ डेढ़ बजे देहरादून के लिए रवाना हुए। उसी दिन रास्ते के लिए कैमरे के कुछ फिल्म और दूसरी चीजें खरीदीं और अगले दिन के लिए साढ़े ७ रुपये में मोहन रूट के बस के टिकट भी खरीद लिए। ठण्डी जगह रहनेवाले आदमी के लिए गर्मी बर्दाश्त करना बहुत है। ११ की दोपहर को बस निकलनेवाली थी। गर्मी के मारे माथा भिन्ना रहा था। हिमाचल सरकार ने जो अपनी बस सर्विसें जारी की हैं उनमें से एक हरद्वार तक आती है। लौटते हुए उसी ने हमें लिया। उसे जमुना के किनारे जाकर छोड़ना था, लेकिन बूढ़ेड़पुर बाजार में भी सवारी लेना था। बूढ़ेड़पुर अब बहुत बढ़ गया था, जिसमें शरणार्थियों का भी काफी हाथ था। सहसपुर के करीब के जल विभाजक से दून उपत्यका गंगा और जमुना के दो क्षेत्रों में बँट गई है। सहसपुर बूढ़ेड़पुर से काफी इधर ही पड़ता है। बूढ़ेड़पुर से लौटकर बस जमुना के किनारे गई। ठीक दुपहरिया का समय और जम्मू का मध्य वक्ष जमुना के तट से दूर थे। घाट पर गर्मी का क्या पूछना? भलेमानुसों से इतना भी नहीं हुआ था कि ऐसे समय नाव को पहले ही किनारे पर लगवाते। उसी धूप में मुसाफिरों को घंटे भर से ऊपर पड़ा रहना पड़ा। मेरे कपड़े लत्ते में कोई विशेषता नहीं थी, पर उसी बस में आए ठाकुर बहादुर ने जनकलालजी से मेरे बारे में पूछा। मेरे लेख नजरों के सामने से गुजरे थे, इसलिए नाम

जानते थे। वह नाहन मे को आपरेटिव इन्सपेक्टर थे। उन्होंने अपने यहाँ रहने का निमंत्रण दिया।

जमुना की धार यहाँ बड़ी तेज थी पर चौड़ी नहीं थी। नाव को आर-पार खींचने के लिए रस्सा बँधा हुआ था जिसमे प्रवाह नाव को बहा न ले जाय। पार हुए रास्ते मे कुछ पानी मे चलना पड़ा। मोजा पायजामा वालो के लिए दिक्कत थी। जनकलालजी के लिए और भी मुश्किल थी, क्योंकि उनके पैरों मे जवाहरशाही पायजामा था, जिसे पिंडली से ऊपर उठाना मुश्किल था। ठाकुरसाहब ने ५ मील पर अवस्थित गुरु गोविन्द साहब के रहने से पवित्र पावटा साहब के डाकबंगले में थोड़ा विश्राम करने के लिए कहा। तब तक बस की भी सवारियाँ लेनी थी। ठाकुर साहब साथ नहीं जा रहे थे किन्तु उन्होंने अपने एक आदमी को कर दिया। पाँवटा साहब मे शरणार्थी, विशेषकर सिक्ख अधिक आ गए हैं, इसलिए दूकानों ने उस कस्बे का रूप दे दिया है। देहरादून से नाहन ५८ मील है। बसें जमुना के दोनों तटों तक पहुँचती हैं। पावटा साहब से कुछ आगे पर फिर चढाई आई जो पाच मील से अधिक नहीं थी। नाहन ठाकुर साहब के मकान मे ठहरे। थोड़ी देर मे श्री युगलकिशोर सेवक भी सहायता के लिए आ गए। शाम को बाजार मे टहलने गए। नाहन राजा की राजधानी और इस छोर का अच्छा नगर है। यहा भी बाजार मे शरणार्थियो की दूकानें काफी दीख रही थी। रात को मुझे तो भोजन नहीं करना था लेकिन जब ४ आने मे जनकलालजी को मास भात मिला तो मुझे सतयुग याद आने लगा। मच्छरो मक्खियो का इस मकान मे पूरा इन्तजाम था। खिड़कियो दरवाजो मे बारीक जालियाँ लगी हुई थी। गर्मी की भी शिकायत नहीं थी।

१२ अप्रैल को सवेरे नगर परिदर्शन के लिए निकले। जगन्नाथ मन्दिर यहा का सबसे पुराना मन्दिर है। यहीं के बाबा बनवारीदास ने (राजा को यहा राजधानी बनाने का उपदेश) सवा ३०० वर्ष पहले दिया था। यह राजमान्य मन्दिर था। महन्तजी संस्कृत के पण्डित हैं। बनवारीदास इनसे दस पीढ़ी पहले हुए। पुराने कागज पत्रों मे नेपाली राजा गीर्वाण युद्धविक्रम शाह का एक दानपत्र मिला। राजा जगतप्रकाश के दिये हुए भी कुछ दानपत्र थे। कितने ही पुराने कागज पत्र अदालत मे पेश थे, वहां तो और भी कुछ

मिलते। पता लगा तरुण मृता राजकुमारी के नाम पर महिला पुस्तकालय स्थापित है, जिसमें काफी पुस्तकें हैं। नगरपालिका और जिला स्कूल इन्सपेक्टर ने भी सहायता देने में बहुत सौजन्य प्रकाशित किया। राजमहल के दरवाजे पर बन्दूक लिए सिपाही पहरा दे रहा था, लेकिन राजा अब अधिकतर देहरादून में रहते हैं। चाभी भी उन्हीं के पास थी इसलिए राज कीय संग्रह को नहीं देख सके। राजपुरोहित से भी सहायता लेनी चाही। वह ११ बजे अभी पूजा में थे और कहने पर ४ बजे बात करने के लिए बुलाया। आज का मध्याह्न भोजन मैंने भी कल के परिचित भोजनालय में किया। बेचारा बाबू लोगों को चटाई में बैठाने में सकोच कर रहा था। मैंने कह दिया हम तुम्हारे स्वादिष्ट भोजन को खाने आए हैं चटाई से कोई मतलब नहीं। श्री युगलकिशोर सबेरे सबेरे से हम लोगों के साथ साथ रहे जिससे परिचय पाने में आसानी हुई।

एक पक्के तालाब (जोहड़) की मिट्टी निकाली दिखाई पड़ी। बहुत दिनों से इसकी देखभाल नहीं हुई थी इसलिए मिट्टी भर गई थी। अब पानी से भर कर यह तालाब नगर की शोभा बढ़ाएगा। नगरपालिका की आमदनी डेढ़ लाख है, जिसमें एक लाख से ऊपर चुंगी होती है। इसीसे नगर के व्यापार प्रधान होने का पता लगता है। भोजनालय का मालिक शिकायत कर रहा था अब पहले जैसे लोग नहीं आते, किसी तरह रोटी चल जाती है। मैंने कहा—आजकल के जमाने में इसे भी गनीमत समझना चाहिए।

ठाकुर बड़ोत्रा दोपहर से पहले ही आ गए। वह यह पसन्द नहीं करते थे कि हम उनके यहाँ ठहरें और भोजन भोजनालय में करें। मैंने कहा—हम शहर में घूम कर काम करना है यदि खाने का निमन्त्रण रहेगा तो बीच में समय देना पड़ेगा। नाहन से २५ मील पर ददाहू एक तहसील का मुख्य स्थान है। हमने उसे देखने का निश्चय कर लिया था। वहाँ से वहाँ तक बस जाती थी, इसलिए जाने में कोई दिक्कत नहीं थी। ३ बजे मोटर चली। सड़क पहाड़ की रीढ़ पर और कभी उतराई पर चली जा रही थी। कुछ मील तक शिमला की सड़क पर ही गए। सूर्यास्त हो रहा था, जब हम ददाहू पहुँचे। आजकल कोई मेला था जिससे लोग लौट रहे थे लेकिन अब भी

नाटक देखने के लिए दो हजार के करीब लोग मौजूद थे। कुश्ती भी हुई। पहाड म इसका अच्छा शौक है। दगाहु म हाई स्कूल भी है। वडोला जी ने एक आदमी दिया था, जिसके कारण हमे ठहरने की दिक्कत नही हुई।

रेणकाजी—परशुराम की माता रेणका यहा से मील डेढ मील पर हैं, और वहाँ का तालाव अत्यत दर्शनीय सरोवर है। ५ बजे झुटपुटे ही म हम चल पडे। गिरी नदी रास्ते मे पडी। आरपार करने के लिए पुल नही। लोहे के तार पर खटोला था जिस पर आदमी बठ जाता, और रस्सी के सहारे इस पार स उस पार कर दिया जाता। इतने सबेरे खटोलेवाला आदमी नही था और खटोला भी उस पार वँधा हुआ था। एक आदमी ने पार होकर उसे खोल दिया। झूला इधर खीचकर हम लोग बारी बारी से पार हुए। रेणका एक मील से कम ही था। पहले परशुराम ताल मिला, जो छोटा और जल स भी अच्छा नही था। इसी के किनारे बाईं ओर लाल टिन का गिर्जे की तरह की छतवाला परशुराम का मदिर है। हमने इसे लौटकर देखा। मदिर भी नया और मूरत भी नई। आगे बढे। बने तालाव के पहले ही कुछ पुराने मदिर मिले, और सरोवर के पास मदिर और पक्का घाट भी था। तालाव तीन मील के घेरे म है। आसपास घेरने वाले पहाड नीचे स ऊपर तक हरियाली से ढँके है, जिससे रमणीयता और बढ जाती है। विश्वास किया जाता है कि पिता की आज्ञा पर परशुराम ने अपनी मा रेणका को यही मार दिया था और यहा वह इस तालाव के रूप मे प्रकट हुई। ऋग्वेद के ऋषि यामदग्न्य के बारे म एसी कोई परम्परा वैदिक काल म नही मिलती। पर उससे क्या ? क्या पीछे गढी गई और उसके साथ सरोवर को चिपका दिया गया। यहाँ हर साल बहुत बड़ा मेला लगता है। सकडो दूकान लग जाती है, और पहाड के नर नारी भर जाते हैं। सरोवर क छोर पर पानी म उगने वाले वनस्पति उसकी शोभा को बिगाड रहे थे, और उनके कारण मुक्त स्नान करने म भी बाधा थी। यह सैलानियो का तीर्थ बन सकता है लेकिन उनके लिए यहाँ ठहरने और खाने पीने का अच्छा इंतजाम होना चाहिए। सरोवर के किनारे लगी वनस्पति को साफ करके कितनी ही नावें रखी जानी चाहिए। यह सब तभी हो सकता है जब कि हमारे प्रति नर नारी की मासिक आय सौ रुपया हो

और साथ ही कोई निरक्षर न हो। पुरानी मूर्ति या दूसरी कोई चीज नहीं मिली लेकिन नवीं दसवीं शताब्दी तक की चीजें जरूर मिलनी चाहिए, यदि पूरी तौर से खोज की जाए।

बस दगाहू से ८ बजे खुलने वाली थी इसलिए हम जल्दी पड़ी थी। हम पौने ८ बजे ही पहुँच गये। चाय वाले ने चाय और अण्डा दिया। दगाहू अच्छा बाजार है और चाय की दूकानें भी हैं इसलिए यात्री के लिए कोई तकलीफ नहीं हो सकती। हाई स्कूल, अस्पताल तहसील होने से भी यह महत्वपूर्ण स्थान है। बस चली। एक चौड़ी किन्तु कम पानी वाली नदी को बिना पुल के पार किया। फिर चढाई शुरू हुई। शिमला वाली सड़क पर पहुंचे। फिर हाल ही में जल कर राख हुई टरपटीन की फैक्ट्री के पास से होते तीन घंटे में नाहन पहुँच गए। आज नाहन में बावी काम करके कल यहां से शिमला जाना था।

१४ सवेरे ही सेवलजी और दूसरे नये बने मित्रों के साथ घूमने निकले। महिमा लाइब्रेरी के वृद्ध पुस्तकालयाध्यक्ष बालकृष्ण शर्मा सज्जन ने असाधारण सौजन्य दिखलाया और बिना चाय मिठाई के वहाँ से हटने की इजाजत नहीं दी। पुस्तकालय में मेरी दो दर्जन के करीब पुस्तक थीं। इसी से महिला पुस्तकालय की विशेषता मालूम हुई। इन पंक्तियों के लिखने के समय तक नाहन में डिग्री कालेज भी खुल गया इसलिए पुस्तकालय की और वृद्धि होगी, ऐसी आशा करनी चाहिए। दोपहर का भोजन वडाथजी के यहाँ किया। उनकी वजह से नाहन में किसी तरह का कष्ट नहीं होने पाया।

शिमला—१६ रुपये में शिमला की बस के दो टिकट लिए। पौने बजे दोपहर को हमने प्रस्थान किया। साढ़े सात मील तक तो वही रास्ता था जिससे हम रेणुका गए थे। फिर चढाई चलते बस ६००० फुट तक पहुँची। २६ मील जाने पर सराहाँ मिला। अंग्रेजी में लिखने में यह और सिरमौर रियासत का सराहन एक हो जाता है और शायद मूल शब्द एक ही रहा हो। यहाँ तहसील थाना डाकबंगला और एक दर्जन से ऊपर दूकानें भी हैं। हिमालय बस सर्विस का बाबू भी रहता है, जो मुसाफिरों और सामान के लिए टिकट देता है। बस थोड़ी देर ठहरी। किसी किसी ने चाय पी। आगे

ववागधार मिला। धार का मतलब पर्वतश्रेणी है। यहाँ आलू का सरकारी फार्म था। नैणाटिक्करा में भी दो एक दुकानें थीं। सारे रास्ते में चील और बान (ओक) के वृक्ष ही ज्यादा दिखाई पड़े। कुम्हारहट्टी में कालका से शिमला जाने वाली सड़क मिल गई। सोलन अच्छा-खासा शहर है। यहाँ चाय पीकर चले, कंडाघाट में अँधेरा हो गया। ८८ मील की यात्रा साढ़े सात घंटे में पूरी हुई। रात को किसी परिचित का घर ढूँढ़ना पसन्द नहीं आया। रायल होटल नजदीक ही था। ६ रुपया दिन पर एक कमरा लेकर ठहर गए। फोन किया तो मालूम हुआ कि मन्त्री गौरीप्रसादजी मंडी गये हुए हैं, परसों लौटेंगे। दूसरे मंत्री पद्मदेवजी घर पर नहीं थे। उस रात को सो गये। सर्दी मसूरी से अधिक नहीं थी।

१४ को सबेरे चाय पीकर मौंट प्लेजेंट में कोआपरेटिव के डिप्टी रजिस्ट्रार पण्डित विद्यासागर शर्मा के यहाँ पहुँच गए। मोटर के अड्डे से उनका स्थान काफी दूर था। हिमाचल विधान सभा का भवन रास्ते में पड़ा। विद्यासागरजी अपने बड़े भाई को अस्पताल में देखने गये थे, लेकिन बड़े भाई (हिमाचल विधान सभा के अध्यक्ष) पं० जयवन्त के पुत्र शिवकुमारजी वकील घर पर ही थे। शिक्षित सम्भ्रान्त परिवार है, हर तरह से सहायता देने के लिए तैयार मिले। पं० विद्यासागरजी ने कितनी ही सूचनाएँ और आँकड़े दिए। वे इतनी थीं, कि और न भी मिलें तो भी काम चल सकता था।

१५ अप्रैल हिमाचल प्रदेश के निर्माण का दिवस था, जिसे बड़े उत्साह के साथ मनाया जाने वाला था। हम अस्पताल में पं० जयवन्तजी से भी मिले। पहले चर्च स्कूल के अध्यापक और वहीं के मयब्रह्मन्य के वर्षों अध्यक्ष रहे। हृदय की बीमारी से अस्पताल में पड़े थे। डाक्टरों ने पूर्ण विश्राम लेने की सख्त आज्ञा दे रखी थी, इसलिए उनकी तरफ से कुछ न कहने पर भी हम ज्यादा समय लेना नहीं चाहते थे। शिवकुमारजी ने आग्रह किया, कि होटल से हमारे घर चलें। सूचनाओं को जमा करने के लिए यहाँ रहने में सुभीता था, इसलिए लोटा-पटा लेकर ३ बजे होटल से मौंट प्लेजेंट में चले आए। जिस वक्त हम एक रेस्तोराँ में दोपहर का भोजन कर रहे थे, उसी समय मसूरी के मित्र मयाल मिश्र सगर मिल गए। बनारस रहे थे, सारे जाड़ा लखनऊ में रहे।

साढे ४ बजे बाद महोत्सव देखने गए। सचिवालय के बाहर थोडी-सी समतल जगह थी। यहीं लोग जमा हुए थे। लोक गीत और लोक-नृत्य के परिदर्शन का प्रबंध था। लेकिन लोक गीतों के नाम पर जब मिरासी और मिरासिनें उसे पक्के संगीत और गजल का रूप देने लगीं तो असह्य हो उठा। लोक कला की वहाँ कोई चीज नहीं थी, वाद्य भी आधुनिक थे। उसमें जो कोई अच्छी चीज थी वह थी चम्बा के चुराही नर-नारियों का लोक-नृत्य जिन्हे इस साल दिल्ली में गणराज्य महोत्सव के समय भारत का प्रथम पारितोषिक मिला था। स्त्री-पुरुषों की वेष भूषा भी स्वाभाविक थी और वाद्य भी। गीत भी मोहक थे। ७ ८ बजे तक हिमाचल धाम सचिवालय के प्रांगण में उत्सव देखते रहे। अभी दस लाख का हिमाचल अधूरा बना है। कांगड़ा जिले को इससे अलग करके पंजाब में रखना अनुचित है। उसके मिलने पर इसकी संख्या दूनी हो जाएगी और वह भी दूनी हो जाए यदि गढवाल कुमाऊँ को इसमें शामिल कर दिया जाए। फिर नई योजनाएँ यहाँ धड़ल्ले से चल सकेंगी।

१६ अप्रैल को चाय पीकर ९ बजे बाद निकले। छोटा शिमला तक गए। अभी सैलानी नहीं आए हैं। आसपास की सारी भूमि हिमाचल के महासू जिले में है और आठ वर्गमील का शिमला शहर पंजाब में रखा गया है। शिमला के नीचे का कुछ पहाड़ी भाग पेप्सू का है। अजब गोरखधंधा, आज गुड फ्राइडे था बहुत से आफिस बन्द थे इसलिए सिर्फ नगर परिदर्शन का ही काम हो सका।

१७ अप्रैल को आकाश खुला था। चाय के बाद सवेरे निकल गए। कभी कबाड़ियों के यहाँ अच्छी-अच्छी पुस्तकें मिल जाती थीं लेकिन अब मसूरी की तरह यहाँ भी अंग्रेजों के चले जाने का प्रभाव दिखाई पड़ता है। दो एक काम की पुस्तकें मिलीं और शिमला तथा चम्बा जिले के स्कूलों में पढ़ाया जानेवाला हिन्दी भूगोल भी मिल गया। प० विद्यासागरजी बड़ी तत्परता से पुस्तक-सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा कर रहे थे। प० जयवन्तजी ने बीमार रहने भी बहुत सी बातें बतलाई और कई पत्र जिलों के हाकिमों को लिख दिए। उनसे ही मालूम हुआ कि चम्बा के जिला मजिस्ट्रेट मेरे परिचित नेगी ठाकुरसेन हैं।

शिवकुमार और उनके भाई रामकुमार दोनो नई पीढी के उत्साही शिक्षित तरुण हैं। उनसे पता लगा कि हिमाचल के लोग पजाबी व्यवसायियो और ठकेदारो से किनने तग है।

उसी दिन रात को ८ बजे मत्री गौरीप्रसादजी से मिलने गए। उन्होने अपने विभाग की सामग्री देने मे सहायता का वचन दिया और पूरा भी किया। मैंने हिमाचल के मत्रियो के पास 'गढवाल' की एक एक प्रति भेजी थी ताकि हिमाचल के बारे मे वैसी पुस्तक लिखने जा रहा हूँ इसका पता लगे। गौरीप्रसादजी ने प्राप्ति की सूचना दी लेकिन मुख्य मत्री और शिक्षा मत्री को उसका फुरसत ही नही मिली। इसीलिए उनसे मिलना भी मैंने बेकार समझा।

हम १८ अप्रैल को सवेरे ही बस पकडनेवाले थे। पता लगा बस साढे ६ बजे यहा चल पडती है और हम ही साढे ६ बजे गए थे। शिवकुमारजी और रामकुमारजी ने बहुत कहा, लेकिन हमे भरोसा नही था। वस्तुत हमे अड्डे पर जाने की जरूरत नहीं थी मोटर एजेट से एक ही डेढ फर्लांग पर १०३ नम्बर की सुरग पर उसे पकडना था। बसवाले को टेलीफोन भी चला गया था इसलिए ७ बजे हम वहा बस मिल गई। हमारा अगला लक्ष्य बिलासपुर था, जो यहाँ से ४३ मील पर अवस्थित था।

बिलासपुर—रास्ता बहुत सकरा था। बहुत कुशल ड्राइवर ही इस पर मोटर चला सकता था। लेकिन बडी सडक बनाने के लिए रुपयो की बडी राशि की आवश्यकता होगी। ३५ मील पर घाट मिला। शिव मन्दिर देख कर बस से उतरते ही हम उधर दौडे। मन्दिर के आकार से प्राचीनता टपक रही थी। पुराने बेलबूटे वाले पत्थर थे, पर कोई खडित मूर्ति नही मिली। खडित मूर्तियो को नदियो मे बहाने का रिवाज सारे भारत मे है। खडित हो जाने पर उसके दर्शन से भी पाप लग जाता है, इसलिए लोग जल्दी से जल्दी उन्हे विलोप करना चाहते हैं जिसके साथ कितनी ही इतिहास की सामग्री सदा के लिए लुप्त हो जाती है।

घाट मे दो-तीन दुकानें थी। रोटी दाल भी मिल रही थी। हमने भोजन किया। बिलासपुर १८ मील और रह गया था। आगे वह पहाड ढालुआँ होने लगा, जिसमे विस्तृत खेत सब जगह फैले हुए थे। हम शिमला

क साढे ६ हजार फुट स बिलासपुर की एक हजार फुट की ऊँचाई पर पहुँच रहे थ । १२ बज कर २० मिनट पर जब अड्डे पर उतरे, तो गर्मी परेशान कर रही थी। ठहरने का स्थान पूछने पर बाजार म एक होटल बतलाया गया। जिसका न फर्श ठीक था न दरवाजा। मूज की चारपाई जरूर थी। हम दोनो को यहाँ घूमकर अपना काम करना था। ऐसे अरक्षित स्थान पर सामान रखकर कैसे जाते ? लेकिन भोजन के बारे म कोई शिकायत नही हो सकती थी। पास की सतलुज म मछलियाँ भरी हुई थी, और कस्बा इतना काफी बडा था कि जहा खानेवाले मिल जाते थे, इसलिए धीवर न मछली बना रखी थी। जनकलालजी तो भात के प्रेमी ही ठहरे और मास मछली न हाने पर मैं भी भातप्रेमी बन जाता हूँ। गर्मी के मारे दिमाग परेशान था, ठड पानी की माँग थी। चीजें स्वादिष्ट थी। अच्छी तरह भोजन किया। फिर उसी धूप म छत्ता लगाए निकल। अड्डे के पास एक शिखरदार मदिर मिला जिसम बहुत पुरानी कोई चीज नही थी। पास म साधु की कुटिया देखकर अपना पुराना जीवन याद आने लगा। बूढे बाबा अपनी आयु का नही बतला सकत थ लेकिन ७० स ऊपर के तो जरूर रहे होंगे। सारे भारत म घूमे हुए थे। सामने धुनी थी गाँजा कक्कड का चिलम तथा एक दो भक्त भी मौजूद थे। कुछ देर बैठ परिचय कराया। हमारे होटल स यह जगह अधिक सुरक्षित थी यद्यपि यहाँ भी ताला कुन्डी वाली कोठरी नही थी पर बाबा बराबर रहत थ।

हम और भी कुछ पुराने मदिरो को देख लेना चाहते थे इसलिए नीच की सडक पकडे शहर स बाहर चले गए। सडक के किनारे ही मन्दिरोवाला एक स्वच्छ जलकुड मिला। नीचे सतलुज के किनारे कई और पुराने मन्दिर मिले। मदिरो स मालूम होता था कि य पुराने हैं लेकिन प्राचीन खडित मूर्तियाँ का तो जान-बूझ कर सतलुज म डाल दिया गया था इसलिए व कहाँ स मिलतीं ? सतलुज यहाँ काफी चौडी है। भाखडा क बाँध के पूरा हो जाने पर यह समुद्र का रूप ले लेगी, और दोनो तरफ कई मील तक अपार जलराशि दिखाई पडेगी। उस वक्त य सारे मदिर पानी के भीतर चल जाएँगे। लौटते वक्त हम ऊपर की सडक स पुराने बाजार की ओर गये। रगनाथ मदिर का नाम सुनकर तुरत ख्याल आया, यह दक्षिण के रगनाथ

के नाम पर आचारी वैष्णव का बनाया कोई नया मन्दिर होगा, पर यह विष्णु नहीं शिव का और यहाँ का बहुत पुराना मन्दिर है। इसे वर्तमान राजवंश के पहले के किसी राजा एलन्व ने बनवाया था। यह ११वीं १२वीं शताब्दी से इधर का नहीं हो सकता। अधिकांश मूर्तियाँ यहाँ की भी सतलुज लाभ कर चुकी हैं, लेकिन कुछेक अब भी मौजूद हैं, जो अपने समय और उन्नत कला का बखान कर रही थीं।

पूछने पर लोगों ने यह भी बतलाया था, कि महाराजा साहब आनन्दचन्द आजकल यहाँ नहीं हैं। तो भी पुराने और नये महल को देखना था, इसलिए सतलज पार कर हम वहाँ पहुँचे। नये महल पर हथियारबन्द सिपाही मौजूद थे। उन्होंने भी नहीं होने की बात कहा। हम देखने की उत्सुकता से महल के फाटक के भीतर चले गए। आदमी ने बतलाया राजासाहब हैं। नाम भेजने हो वह चले आए और स्वागत करते हुए कहने लगे—मैं आपके आने की प्रतीक्षा कर रहा था। मैंने मसूरी से चलने से पहले ही बहुत जगहों पर चिट्ठियाँ भेज दी थीं। राजा आनन्दचन्द असाधारण तौर से सुपठित और सुसंस्कृत प्रौढ़ पुरुष हैं। अजमेर के राजकुमार कालेज में पढ़ते समय वह हमेशा अपने क्लास में अव्वल होते रहे। राज्य की बागडोर सम्भालने पर उन्होंने प्रजा की भलाई के लिए बहुत-सा चीजों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। पर, सात-आठ सौ वर्ष पुराने वंश के स्वाद को अपनी स्वेच्छा से कैसे छोड़ने के लिए तैयार हो जाते? पटेल के डंडे ने विलयन पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया, लेकिन तब भी उनकी जिद रही, कि उसे हिमाचल प्रदेश में न मिलाया जाए। रियासत में उनके पास सत्ता नहीं, राजा सरकार के कृपापात्र होकर मौज कर रहे हैं। यदि आनन्दचन्द जैसा दरबारी मनोवृत्ति को स्वीकार करते तो वह भी अगली पंक्ति में आ जाते। लेकिन उनको अपनी साधना का अभिमान है।

हम कुटिया में नहीं राजमहल में रात बिताने के लिए मजबूर होना पड़ा। राजा साहब ने इस महल को अपनी रुचि से बनवाया था। बनाने में स्वच्छता और आराम का पूरा ख्याल किया गया था। कला में भी उतना दूर तक ध्यान दिया गया था, जितनी दूर तक कि वह बहुत मँहगा नहीं पड़ती। कमरे बड़े-बड़े और हवादार थे। संगमरमर का भी सुन्दर इस्त-

माल किया गया था। सारा महल भाखड़ा सागर के गर्भ में चला जाएगा। लेकिन राजा साहब को महल का पैसा जरूर मिलेगा। पहले हम स्नान करने की इच्छा हुई जब देखा कि विलासपूर्ण स्नानागार में गरम ठंडे पानी का भी इन्तजाम है। स्नान के बाद फिर घंटों राजा साहब से बात होती रही। उन्होंने अपने राज्य सम्बन्धी बहुत सी सामग्री और दूसरी सूचनाएँ दीं।

१९ अप्रैल को सवेरे चाय पी फिर राजा साहब की किताबों की आलमारियों को देखते रहे। २२ आलमारियों को देखने से मालूम हुआ कि यह पुरुष कितना विद्याव्यसनी है। आजकल के जमाने में शोभा के लिए भी पुस्तकें जमा कर ली जाती हैं, खासकर आधुनिक सेठों के यहाँ तो अपनी शिक्षा और संस्कृति का रोब दिखलाने के लिए ऐसा किया जाना लाजिमी समझा जाता है। आज भी कितने ही समय तक राजा साहब से बातचीत होती रही। हिन्दी की तरफ उनकी भारी रुचि नहीं थी क्योंकि बचपन से ही अंग्रेजी की घुट्टी मिली थी तीव्र बुद्धि रखते भी भविष्य को वह दूर तक समझ नहीं सकते थे। तब भी उनकी पोशाक और रहन-सहन से मालूम होता था कि वह अंग्रेजियत के रोब में नहीं आए।

११ बजे बिलासपुर के डिप्टी कमिश्नर श्री महावीरसिंहजी के यहाँ गए। उन्होंने बड़े उत्साह के साथ आँकड़ों के जमा करने में मेरी मदद की। और एक अफसर को बुलाकर सब विभागों से आवश्यक चीजों को दिलवाने के लिए कहा। दोपहर की धूप में एक आफिस से दूसरे आफिस में जाना प्रिय नहीं मालूम हुआ पर 'अर्थी दोषं न पश्यति'। डिप्टी-कमिश्नर साहब कह रहे थे, अलग राज्य होने से सभी विभाग अलग अलग कायम हैं। उनकी फाइलों पर दस्तखत करने में ही मेरा तो बहुत-सा समय लग जाता।

२ बजे भोजन किया। राजा साहब के कृपापात्र शास्त्रीजी ने मर्न्त्री के लिए दो मिनट भी लग दिये। ३ बजे से कुछ पहले ही राजा साहब से विदाई ली उनकी सहायता के लिए कृतज्ञता प्रकट की और आशा की कि आप अपने ज्ञान को हिन्दी द्वारा लोगों के सामने रखेंगे। राजसी कार में अड्डे पर पहुँचे। ३ बजे हमारी मोटर चल पड़ी। बिलासपुर के आस पास काफी समतल जमीन है। रंगनाथजी का मन्दिर शहर के सबसे ऊँचे स्थानों में है पर वह

भी शिखर तक भखडा सागर म डूब जाएगा। भखडा बाध क बनाने म जितनी मुस्तैदी दखी जा रहा है उसका शताश भी बिलासपुर नगर के बारे म खयाल नही। डिप्टी कमिश्नर कह रहे थ यदि हमे बिजली और रुपये पहले से मिल जाए तो हम समय से पहल यहा की सभी चीजा को उस स्थान पर पहुँचा सकत है जहाँ भावी बिलासपुर बसन वाला है। पर, ऊपर के लाग बडी-बडी चीजा का खयाल करत हैं। दिल्ली के महादेव की यह बात उनक सामन हर समय रहनी है— 'छोटी छोटी बाता पर क्या खयाल करत हो ?'

बस पहाड क ऊपर की ओर बढन लगी। गर्मी स मुह सूख रहा था। इसी वक्त खरीदा हुई नारगी याद आई। मालूम हुआ, जनकलालजी न थाले के साथ उसे कुटिया म ही छोड दिया। अगर वह नारगी बाबा क काम आई हो तो हमार लिए बडी प्रसन्नता की बात थी। हम बिलासपुर क १६ हजार आदमी क उजडे आशियाना का खयाल करत चारा आर देख रह थ। बस कई पहाडी वाहिया का पार करती रहरा क पुल पर पहुँची। यहाँ चट्टाना न सतलुज की धार को सकरी कर दिया है उसी पर लोह का पुल है जा बस के लिए नही बनाया गया था। यह कुछ सालो बाद भखडा सागर म डूब जाएगा। उस समय पुल और ऊपर बनाया जाएगा। कुछ आग बढने पर दूकानें मिली, साथ ही कोई पुराना किला भी जो अब ध्वस्त हो रहा था। कुछ आग बस को बहुत चढाइ उतराई नही पार करनी पडी और ७ बजे क करीब हम पुरानी मुक्त रियासत की राजधानी सुदर नगर म पहुच गए। रियासती लोगो की गाढी कमाई राजाओ क शौक म लगती थी इसलिए महल भी थ बगले भी जिन्हे यदि किसी दूसरे काम म नही लगाया जाएगा तो कुछ दिना बाद गिर जाएँगे। बाजार काफी बडा है, जिसके भीतर स चलकर एक जगह बस का पानी म स चलना पडा और सवा ८ बजे रात को हम मण्डी क मोटर अडडे पर पहुँच गए। मण्डी म कई बार आ चुका था, लेकिन विभाजन के बाद शरणार्थियो का जो रेला आया उसम उसन बाजार का दूसरा ही रूप दे दिया है। कृष्णा होटल म जाकर ठहर।

मण्डी—तरुण श्री सुदरलालजी स पहले ही पत्र द्वारा परिचय था। वह मिल। २० अप्रल का सवेर पहल डिप्टी-कमिश्नर श्री अतानीजी के

बगले पर गए, जो शहर से बाहर बहुत रमणीय स्थान में था। अंग्रेज दीवान ने अपने लिए इसे बनवाया था, इसलिए फुलवारी, बाग सड़क अच्छे कमरे थे। अ तानीजी ने हर तरह की सहायता देने के लिए कहा, और निश्चय हुआ कि साढ़े १० बजे मैं नीचे आफिस में मिलूं। वहां जाने पर उन्होंने अपने अधिकारियों से मण्डी जिले के बारे में आंकड़ा आदि देने के लिए कह दिया। भारत में खनिज नमक की एकमात्र खान यहां है। हमने चाहा उस दफ्तर में भी नमक की उपज आदि के बारे में बात मालूम करें लेकिन नमक विभाग केन्द्रीय सरकार के हाथ में था और अ तानी साहब के हाथ से बाहर की बात थी। वहां के असिस्टेंट ने गुप्त रहस्य कह कुछ भी बतलाने से इन्कार कर दिया कहा—इसके लिए केन्द्रीय सरकार को लिखें।

दोपहर का खाना खाकर कुछ देर मुकुन्दलालजी और दूसरे मित्रों से बातचीत करके फिर निकले। आज सवेरे के परिदर्शन में शहर के भीतर भूतनाथ के मन्दिर में हरगौरी की मण्डित पुरानी मूर्ति देख चुके थे। अब पुल से ब्यास पार गए जहां पुरानी राजधानी थी और अब उसकी जगह एक गांव तथा बहुत से पुराने परित्यक्त मन्दिर हैं। त्रिलोकनाथ के मन्दिर में संवत् या शक १३३/ का शिलालेख लगा हुआ है। लेख बड़ा है। इससे पता नहीं कि मण्डी का यह भाग हिन्दू-काल का है। मुस्लिम काल में पहले इसको लूटा और ध्वस्त किया गया होगा। फिर सतलुज के बायें किनारे राजधानी बसाई गई। बाई तरफ भी नदी के किनारे यमराज के मन्दिर के द्वार में शिव की कुछ पुरानी मूर्तियां हैं जिससे इधर भी नगर का एक भाग पुराने काल में रहा होगा।

शाम को ६ बजे साहित्य सदन में साहित्यकारों की एक छोटी-सी मण्डली में भाषण दिया और ८ बजे चौरस्ते पर सार्वजनिक सभा में शान्ति पर बोलना पड़ा। अब तक मण्डी के शिक्षितों को मेरे आने का पता लग चुका था।

कुल्लू—२१ अप्रैल को चाय की जगह लम्बी पीवर हिमालय सरकार की जनता बस पर बैठ गए। इसमें सीट रिजर्व का कायदा नहीं था। जो पहले आ गया, अपनी रुचि के अनुसार बैठ जाना। मुझे ड्राइवर के पास जगह मिल गई थी। ७ बजे गाड़ी चली। ४४ मील पर कुल्लू था। गाड़ी के

चलते चलते लाहुल के ठाकुर निमलचन्द अपनी पत्नी के साथ चलते मिले। मैंने १९३३ में उन्हें देखा था, यद्यपि १९३७ में भी लाहुल गया था पर उस वक्त शायद मुलाकात नहीं थी। परिचय हुआ और उन्होंने अपने यहाँ ठहरने का आग्रह किया। कुल्लू में भी अब एक अफसर की सहायता मिलने का निश्चय हो जाने पर यात्रा सुफल होने की सम्भावना बढ़ गई। २६ मील पर ओट आया। यहीं कुल्लू और मण्डी की सीमा मिलती थी। कुल्लू के हरेक यात्री को ओट के मीठे बडूर भूल नहीं सकते। यहाँ कुछ दूकानें हैं। दोनों ओर की लारियों को यहाँ रुकना पड़ता है, क्योंकि सड़क कम चौड़ी होने से लारियाँ एक समय एक ही दिशा में चल सकती हैं। ओट में जरा-सा आगे शिमला से थनी होकर आने वाली सड़क मिल गई। यहाँ से ११ १२ मील पर बजार है जहाँ मोटर जाती है। मैं गलत समझता था मण्डी से मोटर की सड़क बजार होकर जाएगी और वहाँ डा० भगवानसिंह से मिलने का मौका मिल जाएगा।

१५ २० मिनट ठहरने के बाद हमारी बस चली। बजौरा ६ मील पर मिला। यहाँ विश्वेश्वर का ऐतिहासिक प्राचीन मन्दिर है लेकिन उसका देखना मैंने अगले दिन के लिए छोड़ रखा। कुल्लू के ढालपुर, सुलतानपुर, अखाड़ा आदि कई मुहल्ले हैं, जो एक-दूसरे से हटकर बसे हैं। ढालपुर पहले पड़ता है। यहीं स्कूल, अस्पताल, कचहरियाँ और डाकबँगले हैं। ठाकुर निमलचन्द का स्थान भी यहीं था। कुल्लू उपत्यका हिमालय की बहुत सुन्दर उपत्यकाओं में है। हिमालय के बहुत भीतर होने के कारण चार हजार फुट ऊँची इस जगह पर भी बर्फ पड़ती है। यह व्यास की उपत्यका सिर्फ प्राकृतिक सौन्दर्य ही के लिए अपनी विशेषता नहीं रखती, बल्कि अब तो यह सेबों के बाग के रूप में परिणत हो गई है। पहले सारे हिमालय का अध्ययन नहीं किया था, और लाहुल के बारे में इतना ही जानते थे कि वहाँ ऊपर के लोग तिब्बती बोलते हैं और नीचे के लोग पहाड़ी भाषा। और अब मालूम था कि तिब्बतियों और आर्य भाषा बोलने वाले लोगों से भी पहले यहाँ किरात लोग रहते थे, जिनकी भाषा के अवशेष अब भी जहाँ-तहाँ मिलते हैं। चन्द्रा और भागा लाहुल में जहाँ मिलकर चन्द्रभागा बन जाती हैं उससे काफी नीचे तक लाहुली लोग किरात भाषा बोलते हैं। ठाकुर निमलचन्द भोट

भाषी थ, लेकिन वहा कुछ किरातभाषी लाहुली भी मिल गए जिनसे कुछ भाषा के नमूने लिये। कुल्लू के सबसे बडे अफसर असिस्टेंट कमिश्नर से मिले। उनसे अपनी पुस्तक और आकडो के बारे म बातचीत की। उन्होने भी सहायता दी। टूरिस्ट ब्यूरो के इन्चार्ज ने और भी मदद की और बहुत से आँकडे तथा छपी सामग्री उसी दिन मिल गई। कुछ के कल मिलने का वचन मिला। टहलते हुए नदी (गौरी) पार सुल्तानपुर गए। कुल्लू राजा के महल यही थे। शताब्दियो तक हिमालय का यह राजवश स्वतन्त्रतापूर्वक यहाँ का शासक रहा। सिक्खो से लड पडा इसलिए उन्होने राज्य को खतम कर दिया। अग्रेजो ने जब सिक्खो के राज्य को अपने हाथ मे लिया तो उन्हे क्या पडी थी कि राजा को फिर उसकी गद्दी पर बैठाते। उन्होने उसे एक जागीर दे दी। लेकिन कुल्लूत लोग अपने राजा को राजा ही मानते रहे। अग्रेज उन्हे राय भगवानसिंह भले ही कहे लेकिन लोग उन्हे राजा भगवान सिंह कहते और उनके कुवर को टीका (युवराज) कह करके पुकारते है। टीका साहब का ब्याह नेपाल के जनरल कैसर शमशेर के अनुज कृष्ण शम शेर की लडकी से हुआ। राजा साहब ने अपने वश के सम्बन्ध मे उर्दू मे लिखी एक ऐतिहासिक पुस्तक दिखलाई। वहाँ से कुल्लू के तीसरे और सबसे बडे बाजार म अखाडा बाजार गए। पहले यह इतना जमा हुआ नही था अब तो वहाँ बहुत दूकानें हो गई थी।

मनाली—२२ अप्रैल को मौसम अच्छा था। हम ७ बजे चाय पीकर टैक्सी—बस से रवाना हुए। १२ मील पर कटराई मिली जहाँ से व्यास पार करके हम कभी नगर म रोयरिक निवास म गए थे। अब वह खाली पडा था नही तो उसके साथ नगर के प्राचीन स्थान को भी देख लेते। पहले कटराई म दोनो तरफ की मोटरें एक-दूसरे को पार करती थी अब कोई वैसा नियम नही है। ड्राइवर अपने ही समय देखकर चल देते हैं। १२ मील और आगे जा ११ बजे मनाली पहुचे। वही बस १२ बजे लौटने वाली थी। डेढ मील आगे वसिष्ठ कुड का गरम पानी का चश्मा था और उसकी प्राचीनता के बारे म लोगो ने बहुत बातें बतलाई थी। ड्राइवर ने कहा, आप वहाँ से होकर आ सकते है। हम वहाँ से चल पडे। जगह डेढ मील रही होगी, और आधे घटे से कम ही म हम वहाँ पहुच गए। कुछ दूर तक तो

ल्हाहुल जाने वाली समतल सडक पर गए, फिर दाहिनी ओर चढकर सेना मे
हान वसिष्ठ कुण्ड पर पहुँचे। अच्छा-खासा गाव है, और ७००० फुट मे
ऊपर होने के कारण बर्फानी जगह म है। यहा पास म देवदार के जगल भी
हैं। जो गेहू व हरे हरे खेत लहलहा रहे थे जिनम जगह-जगह स्यल्कुमुदिनी
फूली हुई थी। कुण्ड का जल बहुत गरम नही है। उसी की बगल म वसिष्ठ
का भद्दी पत्थर की मूर्ति है। उसमे कुछ हटकर राम का अच्छा शिखरदार
मन्दिर है। यहा के लोग स्त्री-पुरुष दाना अधिक गोरे थे। सदा का शुद्ध
नमूना इनमे मिलता था। पाजामा यहा वही ऊनी डोरू या जो चम्बा से
टामो (चुम्बी) उपत्यका तक देखा जाता है। सिर पर रुमाल बाधना भी
पहाडी स्त्रियो की अपनी विशेषता है। दूकान म मिश्री और गरी मिल गई।
हम लोग खात हुए यहा से लौट पडे। मनाली मे मोटर अड्डे पर पहुचने पर
अब भी समय था और हम माम भात खाकर साढे १२ बजे गाडी से लौटे।
मनाली कुल्लू का सबसे रमणीय स्थान है, और यहा सारो आर सेवो के बाग
तथा पहाडो म देवदार के वन हैं। कटराई म पहुँचने पर एक बार तो ख्याल
आया, नगर चले चलें। फिर ख्याल छोड देना पडा।

अखाडा बाजार मे ही गाडी से उतर गए। अकस्मात् पुण्यसागर मिल
गए। इधर वह स्पिती मे स्कूल मे अध्यापक थे। जाडा मे वहा से चले आए
थे। अब फिर अपने काम पर जाना चाहते थे। अभी जोत पर बर्फ बहुत
थी रास्ता खुला नही था इसलिए स्पिती के आदमियो के आने की प्रतीक्षा
कर रहे थे। कुल्लू अपने जनाने शाल्लो के लिए प्रसिद्ध है। शुद्ध पशमीने का
शाल ५० रुपये से कम मे नही मिलता। हमने सौगात के लिए २४ रुपये का
एक ऊनी शाल ले लिया। आज ही हमे बिजौरा हो आना था। ड्राइवर ने
बैठा लिया, लेकिन ढालपुर पहुँचकर पुर्जा टूट जाने का बहाना करके उतार
दिया। प्राइवेट बसो म मुसाफिरो की गत बन जाती है। हिमाचल प्रदेश
सरकार ने अपने यहा सरकारी बसें चला दी हैं और कुल्लू पजाब सरकार
मे है इसलिए यहा प्राइवेट बसो का राज्य है। पहाडी लाग पजाबियो से
क्यो न नाराज हो, जब वह देखते हैं, कि सारे आवागमन के साधनो का वह
अपने हथियाए हुए हैं। सडको की बडी बडी ठेकेदारियाँ पजाबी करते हैं,
बडे बडे अफसर पजाबी हैं, दुकानें और व्यवसाय भी उन्ही के हाथ मे हैं

मोटरें भी वही चलाते हैं। फिर तो पहाडी केवल कुलीगिरी के लिए बनाये गए हैं।

दो घंटे का समय बरबाद हुआ। फिर एक दूसरी बस बिजौरा के लिए मिल गई। हम साढे ३ बजे चलकर सवा ४ बजे वहा पहुच गए। सडक से विश्वेश्वर का मन्दिर दिखाई पडता है। मुस्लिम-काल म उसकी मूर्तियो को ताडा गया लेकिन गाव वालो और पुरातत्व विभाग को भी धन्यवाद देना चाहिए कि काफी मूर्तिया अब भी वहा मौजूद हैं। पास म हाट गाँव है, वस्तुत मन्दिर भी उसी से सम्बन्ध रखता है। कुमाऊँ-गढवाल के उदाहरण से म जानता था कि पहाड म हाट का मतलब राजधानी है। मालूम हुआ, पहले यहाँ कोई राजा रहता था उसी ने मन्दिर को बनवाया था। सिक्खो ने मन्दिर को नष्ट किया, यह आम धारणा है। पर उस पर विश्वास नही किया जा सकता क्योकि सिक्ख तो अभी अकाली नही बने थे और उनकी धर्मशालाओ म मूर्तियो के लिए भी स्थान था। फिर सास्कृतिक तौर से सिक्ख और हिन्दू एक है इसलिए वह मूर्ति पर क्से हाथ डाल सकते। मन्दिर के तीन तरफ अलग अलग गणेश विष्णु और दुर्गा की मूर्तियाँ हैं। कई लकुलीश लिंग बतला रहे थे कि यहा पाशुपतो का किसी समय जोर था। मन्दिर के बाहर भी कुछ मूर्तिया रखी हुई थी। उनसे हटकर ब्यास की ओर खेतो म भी कितनी ही खण्डित मूर्तियाँ पडी थी। हिमाचल प्रदेश के भिन्न भिन्न स्थानो के विशेष विवरण हिमाचल प्रदेश म मिलेंगे, इस लिए यहा उनके बारे म बहुत लिखने की जरूरत नही है।

जाने के लिए तो बिजौरा चले गए लेकिन अब लौटने की समस्या थी। मण्डी से बसें ठीक समय पर ही आती थी और पता नही उनमे कोई जगह मिले या नही। क्या जाने शाम यहा बितानी पडे लेकिन साढे ८ बजे की बस म जगह मिल गई। उसी म पता चला कि गियार गुम्बा सिद्ध लामा अपने परिवार और शिष्यो के सहित मिले। मुझे तिब्बती म बोलते हुए देखकर लामा के पुत्र ने स्वय पूछ दिया आप राहुलजी तो नहीं हैं? हम अगले ही गाँव तक साथ चलने वाले थे इसलिए जल्दी जल्दी म कुछ बातें हुई। यह पालमपुर ताफ करके आ रहे थे। सिद्ध अम्दो के रहने वाले थे और घूमते घामते यहीं के भाग्यिाभाषा इलाके म आ गए। सिद्ध होने म

महामुद्रा का रहना आवश्यक है फिर पुत्र और बहू भी आ उपस्थित हुए। सारा परिवार सुसंस्कृत था। यही अफसोस रहा कि हम देर तक साथ न रह सके। उन्होंने पांगी आने का निमंत्रण दिया। चम्बा हम जाना भी था लेकिन पांगी जाने की सम्भावना नहीं थी।

मण्डी—२३ अप्रैल को पुण्यसागर और ठाकुर मंगलचन्दजी मोटर के अड्डे तक पहुँचाने आए। जनता में जगह पाने के लिए दो आदमी अगाड़ा बाजार ही में बैठ करके आए थे। अब की हम पीछे की सीट मिली थी जिसके कारण बाहर देखने का सुभीता नहीं था। ९ बजे आट पहुँचे। डा० भगवानसिंह को मेरे आने का पता था। मुझसे मिलने ही वह कुल्लू जा रहे थे। मैं लिख चुका था मैं बजार आऊँगा। लेकिन अब बजार को दूर से ही सलाम करके निकल जाना चाहता था। यह संयोग ही था जो इसी समय डाक्टर साहब भी आ गए। उनसे भी ज्यादा मुझे बजार न जाने का अफसोस था। उनकी लड़की प्रेमलता बेचारी वहाँ बड़ी आशा लगाए बैठी थी। डा० भगवानसिंह ने बजार से आगे निमल के रास्ते पर अनी में घर और खेत बना लिया है। वह नौकरी से इसी साल दिसम्बर में अवसर प्राप्त करने वाले थे। कहने लगे अनी में रहना हमारे लिए मुश्किल है क्योंकि लड़के लड़की की पढ़ाई का भी ख्याल रखना है, जिसका सुभीता कुल्लू में ज्यादा है। वहाँ रहते वह प्रैक्टिस भी करते, और साथ ही बौद्ध धर्म के प्रति अनुराग रखने के कारण कुल्लू में एक बौद्ध विहार की स्थापना के लिए भी कुछ काम कर सकते थे। कुछ ही मिनट बातचीत कर सके इसका अफसोस रहा लेकिन मिल जाने से बहुत सन्तोष हुआ।

सवा ९ बजे बस चली। वह व्यास के साथ साथ चल रही थी। यहाँ एक जगह व्यास का विशाल पहाड़ के काटने में लाखों खर्च लगे होंगे। वहाँ नदी सकरी हो गई थी और सड़क को भी मुश्किल से बनाया गया था। एक जगह स्लेटी पत्थर की खान थी, जहाँ से उन्हें निकालकर लारियों पर लादकर ले जाया जाता था। मण्डी से जाते ही हम कह गए थे कि दोपहर की बस से आएँगे। ११ बजे जब अड्डे पर पहुँचे, तो श्री हुताशन शास्त्री, सुन्दरलाल और दूसरे मित्र वहाँ मिले। पिछली बार उन्होंने होटल से घर ले जाने के लिए बहुत कहा था लेकिन हमने लौटने समय के लिए कहकर

छुट्टी ले ली थी। अब मास्टर जयवधन के मकान पर गए। यहाँ खाना खाने का भी आग्रह था जिसे हमने नहीं माना, क्योंकि उसके बनने में देर होती, और इस समय हम होटल में बने बनाये खाने को खाकर अपने काम में लग सकते थे। अन्तानी साहब के पास सारी सामग्री तैयार मिली। नमक वाले इंजीनियर ने भी सहायता की। डाक में कमला की दो चिट्ठियाँ मिलीं। जया के दस्त नहीं बन्द हो रहे हैं वह दुबली हो गई है यह पढ़कर तुरन्त लौट जाने का मन हो रहा था किन्तु चम्बा तक तो जाना जरूरी था। कमला ने बी० ए० के प्रश्न पत्र अच्छे किए हैं यह भी चिट्ठी से मालूम हुआ।

कांगड़ा—२४ को सवेरे भोजन हुताशन शर्मा शास्त्री की ससुराल में था। नाम शायद शास्त्रीजी ने अपने हाथ से रखा था। हुताशन क्या अग्नि भी नाम आजकल सुनाई नहीं पड़ता। उन्होंने जल्दी-जल्दी में मण्डा का भोजन तैयार कराया था। साढ़े ७ बजे ही हम अड्डे पर पहुँचना था इस लिए इत्मीनान से कोई काम नहीं हो सकता था। अड्डे पर मित्र लोग पहुँचाने आए। ड्राइवर से परिचय कराया। यह २५ वर्ष का सुन्दर तरुण तबला बजाने में अद्वितीय है। रियासत रहती तो इसे मोटर का चक्का नहीं पकड़ना पड़ता। बारीक अँगुलियाँ जो कला में अपनी प्रवीणता दिखलातीं वह चक्का चलाने में लगी थीं। तरुण का सुन्दर चेहरा बहुत सौम्य था। हमारे साथ खनिज इंजीनियर साहब भी चल रहे थे नमक की खानें रास्ते में थीं। पिछले साल डेढ़ लाख का नमक निकला था। यहाँ खाने के नमक के अतिरिक्त काला नमक भी मिलता है। नमक का तो पहाड़ खड़ा है। अभी उसमें थोड़ा ही काम हो रहा है।

१२ बजे हम बैजनाथ में उतर गए। स्थान हजार फुट से कुछ ही अधिक ऊँचा होगा फिर दोपहर की गर्मी क्या न परेशान करती? बैजनाथ किसी समय किरग्राम के नाम से एक अच्छा-खासा व्यापारिक नगर था। बीच में वह उजड़-सा गया था। मोटरों ने फिर उसे आबाद कर दिया है। कितनी ही दूकानें हैं। एक भोजनालय में सामान रखकर खाना खाया फिर वहाँ के ऐतिहासिक मन्दिर देखने गए। शिखरदार मन्दिर पहाड़ में कम होते हैं, और यह हिमालय के प्राचीन तथा अति सुन्दर मन्दिरों में है। मन्दिर के जगमोहन में ११वीं शताब्दी के दो शिलालेख लगे हुए हैं, जिनसे पता लगता है कि

यहा वैद्यनाथ शकर का मदिर था। कितनी ही खण्डित मूर्तिया हैं। कितने ही सालो तक भ्रष्ट होने के बाद मदिर सूना पडा रहा। फिर एक साधु ने यहा डेरा जमाया। फिर से पूजा शुरू की, और भूकम्प के कारण ध्वस्त होते मदिर की मरम्मत भी कराई। मूर्तियो मे एक तीर्थकर की भी मूर्ति थी, जिससे जान पडा कि यहा जैन भी थे। एक बूटधारी सूर्य और सदिग्ध बुद्ध मूर्ति भी देखी। यहा सबका समागम था। कीरग्राम के लोप होने के साथ नाम भी नष्ट हो गया, और लोग शकर के नाम पर ही इस स्थान को वैद्यनाथ कहने लगे। नीचे बिनू नदी बह रही थी। उस दोपहर की तपती धूप मे भी स्थान रमणीय मालूम होता था। सुबह शाम और बरसात मे तो यह स्थली सौदर्य की खान मालूम होती होगी।

दो बजे हम मला (मलानो शहर) के लिए बस पर रवाना हुए। नाम शहर लेकिन दूकाने तीन-चार ही थीं। हमे पठियार मे हिमालय का सबसे पुराना शिलालेख देखने जाना था। सामान को दूकानदार के पास रख दिया और जनकलालजी के साथ चल पडे। यह उपत्यका बहुत चौडी है कहीं-कहीं तो दून का भ्रम हो जाता है। पठियार बहुत बडा गाव है। सात सौ घर और कई टोले हैं। सौ राठी चार सौ घिर्थ चौधरी, बीस ब्राह्मण, सौ हरिजन परिवार रहते हैं। लोगो ने पठियार की सडक तो पकडा दी लेकिन ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी का ब्राह्मी शिलालेख कहा है इसका किसी को पता नही था। हम ढाई मील तक उसी कच्ची सडक पर चले गए। कुछ दूकानें मिलीं। लोगो ने बतलाया यहा से आधा मील पर खेतो मे वह चट्टान है। भूलते भटकते खेतो और घरो को पार करते उस स्थान पर पहुँचे, जहा कभी राठी वाकुल की पुष्करिणी थी। पुष्करिणी का अब नाम निशान नहीं है। इस भूमि मे जगह-जगह शिलाएँ जमीन से ऊपर निकली मिलती हैं, उन्हीं मे से एक पर ब्राह्मी और खरोष्ठी मे लिखा था—"वाकुलस पुकरिणि"। अभिलेख का रठी शब्द अब भी यहा के सौ राठी परिवारो के नाम से जुडा हुआ है। उस समय राष्ट्रिक कोई सरकारी पद था। सामन्त वाकुल ने यहा अच्छी विशाल पुष्करिणी बनाई होगी।

वहा से लौट और साढे ५ बजे मला मे पहुँच गए। मोटरें कागडा को जा रही थीं लेकिन जान पडने लगा हमे जगह नहीं मिलेगी। निराश हो

वह यहा अपनी जीविका कमा सकेंगे। यदि ऐसा नही हुआ, तो घर आदमी को कसे बाध सकता है ?

हम ऐसे समय वज्रेश्वरी के मन्दिर मे गए जब सूय डूब चुका था। आज वहा जाकर फोटो लिए। आज ही ज्वालामुखी चलने का निश्चय हुआ।

ज्वालामुखी—भोजन करके साढे ११ बजे मोटर से चल दिए। ज्वालामुखी यहा से २४ मील है। ज्वालामुखी रोड के पास तक सडक अच्छी थी। फिर पहाडी कच्ची सडक मिली। १ बजे हम ज्वालामुखी पहुँच गए। अप्रैल के अन्तिम दिनो का मध्याह्न था उसके साथ ज्वालामुखी नाम भी मिल गया। वहाँ की धूप असह्य मालूम होती थी। सामान हम अपने साथ नही ले गए थे क्योकि लौटकर कागडा चला आना था। अड्डे से माई के स्थान की ओर चले। टेढी मेढी गली और उसके दोनो तरफ दूकानें पडी। अन्तिम सिरे पर चढाव की दूकानें ज्यादा थी। जान पडता है, यहाँ भूकम्प ने अपना जोर नही दिखाया। आखिर आपकम्प देवी जो यहाँ मौजूद थी। फाटक के भीतर गए। फिर ज्वालामाई के मन्दिर मे घुसे। पुजारी ने बतलाया सोने का छत महाराज रणजीतसिंह ने चढाया और उनकी बेटी ने चादी का द्वार बनवाया। भीतर दीवार मे तीन और कुण्ड मे दो टेम जल रही थी। इतनी क्षीण थीं कि फक देने पर बुझ जाती फिर गैस की गन्ध निकलती। मन्दिर के भीतर इतनी धूपबत्तियाँ जलाई जाती हैं कि उसमे प्राकृतिक गैस की गन्ध छिप जाती है। इसमे वही निकाल ज्वालाएं निकलती बाकू मे मैंने देखी थी। यद्यपि बर्मा की बडा ज्वालामाई की जोत पहली बार १९३८ मे मेरे वहाँ पहुँचने के दस-बारह वर्ष पहले ही बुझा दी गई थी। पर, इसमे शक नही कि वह जोत इससे कभी बडी रही होगी। मैंने अपनी रूस की दूसरी यात्रा मे रेल से वह प्रचण्ड ज्वालाएँ निकलती देखी थी जिनके सामने इन ज्वालाओ की कोई गिनती नहीं हो सकती थी। पर अब बाकू की ज्वालामाई निर्वाण प्राप्त कर चुकी हैं। हमारे लिए तो यही ज्वालामाई रह गई हैं। किसी समय ज्वालामुखी से यात्री अगाटा का बहुत बडा केन्द्र था। यह भारत के जबर्दस्त व्यापारी थे। देश मे ही नही बल्कि नेपाल मध्य

एसिया तिब्बत और चीन तक व्यापार करते थे। अब उनकी इमारतें ध्वस्त, त्यक्त और उदास थी।

लौटकर अड्डे पर पहुँचे। कुछ ही मिनट पहले अगर आये होते तो कॉगडा की मोटर हम तयार मिलती। पास म एक अच्छी धर्मशाला बनी हुई थी। वही दो घंटे से ऊपर निराशा के साथ प्रतीक्षा करनी पडी। फिर एक बस ज्वालामुखी रोड स्टेशन तक पहुँचाने के लिए तयार हुई। वहाँ जाने पर दूसरी बस पठानकोट से धर्मशाला जाने वाली मिली। कागडा म अड्डे के पास ही हमारा सामान था इसलिए उसे लेकर हम उसी दिन सवा ७ बजे धर्मशाला पहुँच गये। यह शिमला और मसूरी जैसा ठण्डा है बल्कि यहाँ उनसे भी ज्यादा बर्फ पडती है। मसूरी और शिमला की तरफ जहा एक ही हिमालय श्रेणी है वहाँ इधर तीन-तीन श्रेणियाँ है, जिनमे सबसे दक्षिण वाली धर्मशाला के पास पडती है। हम उस दिन जाकर हिन्दू होटल म ठहर गए।

धर्मशाला—२६ अप्रल का दिन धर्मशाला के लिए था। कागडा जिला के सरकारी दफ्तर यही हैं। यद्यपि काँगडा जिला पजाब म है, लेकिन है वस्तुत हिमाचल प्रदेश का ही अग। कुल्लू को लिए यह एक ही जिला जनसंख्या म सारे हिमाचल प्रदेश के बराबर है। उस दिन चाय पीकर जनकलालजी के साथ बाहर निकले। समझा डिप्टी कमिश्नर से मिलना आफिस से बेहतर बगले पर होगा। ८ बजे पहुँचे। कार्ड भिजवाया। साहब बहादुर ने हुकुम दिया, दस बजे आओ। कार्ड के पहले भी हम चिट्ठी लिख चुके थे जिसमे आने का उद्देश्य भी बतलाया था। हमने कहा, चलो इन दो घंटो म धर्मशाला के ऊपरी छोर तक देख आएँ। साढे ६ आना देकर हम ऊपर वाली बस पर चढ गए जो मेक्लोडगज तक जाती थी। यही धर्मशाला की फौजी छावनी है जिसमे गोरखा सेना रखी जाती है। इस जगह म अग्रेजो ने गोरो और गोरखो के लिए छावनियाँ बनाई थी। वहाँ से हम मील भर पर अव स्थित भाक्सूकुण्ड गए। यह धर्मशाला का तीर्थ है, और वस्तुत भाक्सूनाथ के दर्शनार्थियो के लिए ही किसी ने धर्मशाला बनवा दी थी जिसके नाम पर इस नगरी का यह नाम पड गया। भाक्सूनाथ के महन्त रामदयाल गिरि वयभूषण हैं। निश्चित होने से दुनिया-जहान की खबर रखते हैं। यह कहना

मुश्किल है कि उन्होंने राहुल की कोई पुस्तक पढ़ी थी, लेकिन व्यवहार उनका परिचित जैसा ही हुआ। यहां कुण्ड में पहाड़ से भीतर से आकर एक बड़ी धारा गिरती है। इसी पानी को नल के द्वारा धर्मशाला में सब जगह पहुंचाया गया है। भावसूनाग बड़े परोपकारी हैं, यह तो हम प्रत्यक्ष उनके जल वितरण से देख रहे थे। गिरिजी ने उनकी जो जीवनी सुनाई, उससे हम और भी प्रभावित हुए। भावसू और पहाड़सिंह दो भाई बीकानेर जोधपुर की ओर के रहने वाले थे। बड़ा भाई पहाड़सिंह राजा था और छोटा कुंवर। अपने यहां जल का कष्ट देखकर उनको बहुत दुःख हुआ और लोगों के उद्धार करने का बीड़ा उठाया। मालूम हुआ उत्तराखंड में एक पहाड़ का नाम ही जल घर है, जहां बहुत सारा जल है। दोनों भाई वहां से चले। यहीं हान आग डेढ़ मील के रास्ते पर नागडल महासरोवर का पता लगा। किसी ने बतलाया, पानी तो बहुत है, लेकिन हजारों नाग उसकी रक्षा करते हैं। बड़ा भाई इतना मोल लेने के लिए तैयार नहीं था। उसने बहाना किया—'पास के पहाड़ पर तपस्या करने की बड़ी अच्छी जगह है। मैं तो यहीं भजन करूंगा।' छोटे भाई ने अकेले ही वहां पहुंचने का निश्चय कर लिया। किसी ने कोई युक्ति बता दी और वह नागों को भुलाने में सफल हो डल का आधा पानी चुराकर भागा। कुण्ड के स्थान पर पहुंचते-पहुंचते डल का राजा नाग भी पीछा करता आया। उसने भावसू को डस लिया। भावसू ने अंत में शिवजी महाराज का नाम लिया। नाम लेते ही गौरा पार्वती सहित पहुंच गए। शिवजी महाराज भावसू के साहस से बहुत प्रसन्न हुए और कहा, दो वर में से एक वर मांग लो—पानी या प्राण। उस महासत्व ने कहा— मुझे प्राण नहीं चाहिए। लोगों को पानी मिले मैं यही चाहता हूं। शंकरजी ने एवमस्तु कहा और साथ ही उसे अपना रूप बनाकर बड़ी धदा दिया। भावसू शंकर पास के मन्दिर में विराज रहे हैं। इस स्थान के साथ दूसरी कथा भी जुड़ी हुई है। बाबा उमेरगिरि यहीं आकर तपस्या कर रहे थे। राजा धर्मचंद शिकार करने के लिए यहीं आये। विनती की—'बाबा क्या सेवा करूं?' बाबा ने कहा—"बच्चा, धुनी को लकड़ दे दे।' राजा राजधानी में लौटकर एक जंग में भूल गया। बाबा ने जंगल को जलाकर उसी का धुनी बना दिया। राजा को होश आया, तो आकर यह चमत्कार

देखा। क्षमा माँगी और मेंबर बन गया। बाबा उमदगिरि ने आने ही यहाँ समाधि ले ली। उनकी और उनके उत्तराधिकारी महन्तों की समाधियाँ यहाँ बनी हुई हैं। मन्दिर में कोई जागीर-वागीर नहीं है। कोई ताज्जुब नहीं, यदि गिरियों का अखाड़ा यहाँ अंग्रेजों के आने से पहले रहा हो। महन्तजी ने चाय पिलाए बिना वहाँ से आने नहीं दिया।

बस के अड्डे पर आने से पहले बस चली गई थी। उतराई थी इसलिए पैदल ही चल पड़े। डिप्टी-कमिश्नर के बँगले पर पहुँचे तो मालूम हुआ के० एल० कपूर साहब देहात घूमने चले गए। हम अफसोस करने की कोई जरूरत नहीं थी। आखिर हम उनसे पीछे बहुत हैरान भी नहीं हुए थे। साहब आई० सी० एस० हैं और किसी मंत्री के रिश्तेदार भी—करेला और नीम पर चढ़ा। कचहरी में जाकर मुकदमा करना चाहिए, लेकिन कितनी ही बार टेलीफोन खटक जाता है—साहब बँगले पर ही इजलास करेंगे। बँगला शहर के एक छोर पर है, और कचहरी दूसरे छोर पर। ऐसे आदमी से यही आशा हो सकती थी।

हम नीचे धर्मशाला में गए, जहाँ बहुत से सरकारी आफिस हैं। सोचा पब्लिसिटी आफिसर (सूचना-अधिकारी) से कुछ काम चलेगा, इसलिए श्री मगनराम खन्ना के पास पहुँचे। उन्होंने कुछ सूचनाएँ दीं, और बाकी के भेजने का जिम्मा लिया। ईसा-पूर्व दूसरी-तीसरी शताब्दी के एक शिलालेख को हम पठियार में देख आए थे। दूसरा शिलालेख खनियारा में था। अब हम उधर चले। श्री खन्नाजी ने रास्ता बतलाने के लिए दो फर्लांग तक अपने आदमी को भेज दिया। हमारा रास्ता अधिकतर उतराई का था, चढ़ाई नाम की थी और जाना था पगडंडी से। सड़क से आने पर बहुत चक्कर लगाना पड़ता। रास्ते का एक गाँव मिला, जहाँ [illegible] शरणार्थी बस गए थे। फिर एक-दो और गाँवों में होते धर्मशाला से खनियार जाने वाली मोटर सड़क पकड़ी। एक आदमी ने नीचे उतरती पगडण्डी को दिखला दिया और बतलाया कि नजदीक ही खेत में वे चट्टानें हैं। बहुत भटकना नहीं पड़ा। हम खेतों के बीच से उभरी उस चट्टान के पास पहुँच गए जिस पर अभिलेख है। यहीं कृष्णयश ने आराम (भिक्षु विहार) बनवाया था। वस्तुतः चट्टान दाड़ी में है, लेकिन मशहूर है खजियार के नाम से क्योंकि वह बड़ी बस्ती

है। किसी समय यहां भिक्षुओं का आवास था। पठियार में पुष्करिणी थी, और लेख से पता नहीं लगता कि उसके साथ कोई विहार था या कोई और धार्मिक आश्रम। पर यहां तो आराम साफ लिखा हुआ था। यद्यपि इसका अर्थ उद्यान भी होता है लेकिन उस काल में बौद्ध विहारों को आमतौर से आराम कहा जाता था तभी इतने महत्वपूर्ण लेख के लिखवाने की जरूरत थी। हम लोग वहां से लौटकर फिर उसी जगह सड़क पर पहुंचे और उसके साथ ऊपर की ओर बढ़ते सूर्यास्त के बाद धर्मशाला पहुंच गए। जनकलालजी को एक नेपाली साहित्यकार का पता मालूम था इसलिए वह उसी रात उनसे मिलने श्यामनगर में चले गए। वह वहां से सवा १० बजे रात को लौटे। इसी बीच 'तालिब' साहब किसी से सुनकर अपने एक मित्र के साथ आ गए थे जिनसे देर तक बातचीत होती रही। और भी कितने ही सज्जन आए। मालूम हुआ हमारे आज के यात्रानायक को ब्रिज से फुरसत नहीं रहती और एक मंत्री साहब की लड़की इनके बेटे से ब्याही जाने वाली है। *'सैयां भये कोतवाल, अब डर काहे का।'*

डलहौसी—तड़के पठानकोट जाने वाली बस ८ बजे मिलती थी। ५६ मील का रास्ता था। हमने जाकर उसी को पकड़ा। रास्ते में नूरपुर मिला। यहां के राजा ने बादशाह नूरुद्दीन जहांगीर के प्रति भक्ति दिखाने के लिए इसे धमेरी से बदलकर नूरपुर कर दिया था। तो भी धमेरी (धर्मगिरि) बहुत दिनों तक लोगों के मुंह से छूटा नहीं। १८वीं सदी के अंग्रेज यात्रियों ने भी इसी नाम का स्मरण किया है। कहते हैं पहले राजधानी पठानकोट में थी। मैदान में होने से वह नजरों से उतनी सुरक्षित नहीं थी, इस लिए उसे यहां लाया गया और एक चट्टान पर किला बनाकर यही राजधानी बस गई। धर्मगिरि का सम्बन्ध बौद्ध धर्म से हो, यह कोई निश्चय नहीं है लेकिन हो भी सकता है क्योंकि दूसरे लोग अपने देवताओं के नाम पर नगरों को रचना ज्यादा पसन्द करते जबकि बौद्ध धर्म के दास होना चाहते हैं। पठानकोट से पठानों या अफगानों का अर्थ नहीं समझना चाहिए। मुस्लिम इतिहासकारों ने भी इसका नाम पठन बतलाया है, जो प्रतिष्ठान का अपभ्रंश है। कोट या किले के कारण उसके साथ जोड़ दिया गया। यह सबसे उत्तर का प्रतिष्ठानपुर था। दूसरा प्रयाग के सामने गंगा पार झूसी

भी प्रतिष्ठान था, और तीसरा महाराष्ट्र में औरंगाबाद से दक्षिण गोदावरी के किनारे आज भी पैठन के नाम से मशहूर है जो आन्ध्र राजाओं की राजधानी रहा। आर्य-असुर या दिवोदास शम्बर के युद्ध के समय इस नसर्गिक पहाड़ी किले पर जरूर शम्बर के सौ दुर्गों में से यह एक रहा होगा। विशेषकर यहीं से पहाड़ों में घुसने का रास्ता होने से इस स्थान का महत्व ज्यादा था। हमने चाहा फोटो ले लें, लेकिन सभी ड्राइवर एक तरह के नहीं होते। एक मिनट के लिए भी फुरसत नहीं थी, सीधे जाकर अड्डे पर जरा देर के लिए ठहरे, सवा ८ बजे पठानकोट पहुँच गए।

विभाजन के बाद पठानकोट बहुत बढ़ गया है। पहले इसका महत्व चम्बा और कांगड़ा मंडी जानेवाली सड़कों के कारण था। अब यह पाकिस्तान की सीमा के नजदीक होने से भारी सैनिक छावनी है और पश्चिमी पाकिस्तान से आए लोग भर गए हैं। कश्मीर जाने का रास्ता भी यहीं से जाता है, इसलिए व्यापारिक सुभीता ज्यादा है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। जून के अन्त में पहाड़ से बिल्कुल नीचे मैदान में बसी इस बस्ती की गर्मी का क्या पूछना? पर हम आध घण्टे से ज्यादा ठहरने की जरूरत नहीं पड़ी, और कुछ नाश्ता करके हम पौने ९ बजे डलहौसी की बस से चल पड़े। मैदान पार कर पहाड़ में घुसे, फिर चक्कर काटते, ऊपर से ऊपर चढ़ते ४५ मील जाकर बनी खेत में पहुँचे। अच्छा खासा बाजार है। यहाँ से एक रास्ता चम्बा को जाता है और दूसरा पांच मील पर डलहौजी का। हम उसी गाड़ी से डलहौजी चल गए। एक झांकी करनी थी। मुझे हिमालय की पुरियों में डलहौसी सबसे अधिक सुन्दर मालूम हुई। इसका कोई कोना हरियाली से खाली नहीं। विशालकाय देवदार जगह जगह खड़े थे। दोपहर का समय था, लेकिन गर्मी का कहीं भी पता नहीं था। डलहौसी को यह लाभ है कि यहां फौजी छावनी है। सीमान्त के पास होने के कारण यह आबाद रहेगी इसकी भी पूरी आशा है। आजकल जर्नल साहब आने वाले थे इसलिए सैनिकों ने तोरण वन्दनवार लगा रखे थे। अड्डे पर जाकर हमने सामान एक भोजनालय के पास रखा, और सोचा बस के लौटने में तीन घंटे की देर है। तब तक डलहौसी को देख लें। १ बजे हम पहुँचे थे। 'गत विहाय भक्ष्य'—पहले पेट पूजा की, फिर चले नगरी को देखने।

चौरस्त पर पहुँचे। अग्रेजो ने लन्दन के अपने प्रिय चौरस्ते का नाम इस दफ्तर चेरिंग नाम बना दिया था। कुछ नीचे उतरकर मुख्य बाजार में पहुंचे। दरारीवार से हसरत बरस रही थी। ३० अप्रैल गर्मी का दिन था। विभाजन से पहले होना तो अब तक यहां हजारों सैलानी आ गए होते। आधी दुकानों में ताला बन्द था। लोगों ने बतलाया १९४७ से इनका ताला कभी नहीं खुला। एक प्रौढ़ पुरुष कह रहे थे— यहां हिंदू थे मुसलमान थे। सब आते थे। डलहौजी गुलजार थी। अब तो बाजार की अधिकांश दूकानें ताले में बन्द हैं। हमने भी देखा उनका स्लेट टूट गई थी कोई ठीक करने वाला नहीं था, बरसात का पानी घर के भीतर जाता होगा। मसूरी की दुरवस्था पर ही हम बेचैन थे लेकिन वहां बाजार में ता हमने ऐसी हालत नहीं देखी। कभी यहां धर्म के नाम पर सिरफुटौवल होती थी मस्जिद के सामने बाजा नहीं बजना चाहिए। आज आर्य, अनार्य सनाय सभी मन्दिर सूने पड़े अपने भाग्य के लिए रो रहे थे।

कितनी ही दूर और चक्कर लगाकर फिर हम मुख्य पवन की परिक्रमा में निकले। जमादार झाड़ू लिए सड़क साफ कर रहा था। इसे आश्चर्य ही कहना चाहिए, क्योंकि सड़कों पर तो अब आदमी कम ही चलते थे। कह रहा था— क्या पूछते हैं? डलहौजी की शोभा तो साहब लोगों के साथ चली गई। साहब लोगों के जाने के लिए अफसोस करनेवाले लोग विलासपुरिया में काफी मिलेंगे। एक और आदमी मिला। वह कुछ आशावान् था। कह रहा था—अगले महीने (मई) के अन्त में बहुत लोग आएँगे। बहुत क्या खाक आएँगे? परिक्रमा करते घूम फिर अड्डे पर पहुँच गए। ८ बजे के करीब बस मिल गई। लौटते वक्त मालूम हुआ, भारत के महासेनापति राजेन्द्रसिंहजी आ रहे हैं उन्हीं की स्वागत की तैयारियाँ हो रही हैं। बनीखेत में आकर चम्बा की मोटर पकड़ी। अभी बसें सिरदर्द की चीज थीं चाहे वह सरकारी बसें ही क्यों न हों। समय की कोई पाबन्दी नहीं। ड्राइवर बहुत बुरा था। वस्तुतः यहाँ से चम्बावाली सड़क मोटर के लिए उपयुक्त नहीं था। बहुत सकरी और उतराई भी तेज थी। सबसे अच्छी बात यह थी कि ड्राइवर के एक मित्र उसकी बगल में बैठ गए और निर्द्वन्द्व बात करने लगे। वह आराधना के प्रति के साथ खेल करना था। फिर

क्लीनर ने माविल आइल का खुला डब्बा हम लोगों के बीच में लाकर रख दिया। कपड़े खराब हो उसकी वजह से। सवारियों के अतिरिक्त नौ मन साग-सब्जी के बस्ते भी भरे थे। रास्ते में जब चम्बा १४ मील रह गया तो एकतरफा होने के कारण गाड़ियों को रुकना पड़ा। मुझे माविल आइल और ड्राइवर से बात करना बहुत बुरा लगा। मैंने शिकायत की किताब मांगी। ड्राइवर ने कहा— हमारे पास नहीं है। खून का घूंट पीना पड़ा, लेकिन आगे वह बहुत नरम पड़ गया। अपने आदमी को डाटकर माविल आइल का डब्बा वहां से हटवा दिया। एस बुरे रास्ते से चलकर साढ़े ८ बजे रात चम्बा पहुँचा। वहाँ जिस कौशल का उसने परिचय दिया उससे सारा गुस्सा हट गया। चम्बा में नेगी ठाकुरसेन डिप्टी कमिश्नर थे। १९४८ का उनसे काफी परिचय था। पीछे भी चिट्ठी पत्री होती रहती थी। लेकिन, डिप्टी कमिश्नर का बंगला अर्थात् पुराने अंग्रेज सर्वेसर्वा का महल न जाने कहां होता, और रात में जाकर तकलीफ देना पड़ता इसलिए हम वहां नहीं गए, और प० जयवंतराम का मकान पूछते उनके घर पर पहुँचे। घर पर उनके भाजे श्रीनिवासजी मौजूद थे। उन्होंने एक साफ सुथरे कमरे में ले जाकर ठहराया। मकान बहुत अच्छा था, लेकिन भारतीयों के स्वभाव के अनुसार पाखाने को पूरी तौर से गन्दा रखना, और दूर भी होना जरूरी था। डायबटीज के मरीज को पेशावखाने का दूर होना शामत की बात है।

चम्बा—२८ अप्रैल का सवेरा आया। आसमान साफ देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। फोटो लेने के लिए और लोगों से मिलने के वास्ते भी अच्छे मौसम की आवश्यकता होती है। डाकखाने में कमला की तीन चिट्ठियाँ मिलीं। मैं रास्ते से आधा दर्जन चिट्ठियां लिख चुका था, लेकिन उन्हें सिर्फ एक मिली। यह जानकर चिन्ता दूर हुई कि जया अब अच्छी तरह है। पहले हम डिप्टी कमिश्नर नेगी ठाकुरसेन से मिलने गए। उन्होंने कहा— 'हमारे यहाँ आइए।" यद्यपि चम्बा के बारे में अधिक सहायता उन्हीं से लेनी थी जिसमें यहाँ आने पर सुभीता होता, लेकिन हमने यह कहकर क्षमा-प्रार्थना की कि अभी तो यहीं रहने में भरमौर से लौटकर आपके यहाँ ठहरेंगे। जिले के भिन्न भिन्न विषयों सम्बन्धी आँकड़ों को जमा करने का जिम्मा उन्होंने ले लिया। नेगी ठाकुरसेन दूसरी ही तरह के अफसर हैं जो

आजकल के नौकरशाही में दुर्लभ हैं। वह चाहते हैं जनता की हालत बेहतर हो। जहाँ सारी मशीन बिगड़ी हुई है, वहाँ एक आदमी क्या कर सकता है? लेकिन, पुरुषार्थी हाथ पर ढीले करके बैठा तो नहीं रह सकता। उन्होंने कनौर के दुर्गम पहाड़ी इलाके में जन्म लिया। कृषि में बी० एस-सी० किया और ये दोनों गुण जन सेवा के लिए बहुत उपयोगी हैं। ब्याह नहीं किया, कि उससे हमारे काम में बाधा होगी। लड़ाई के दिनों में नौसेना में कुछ साल रहे इसलिए फौजी अफसरों का अनुशासन भी है। पहाड़ में पैदा होने का यह मतलब नहीं कि हरेक आदमी पक्षियों की तरह उड़ते हिमालय के दुर्गम पथों को पार करेगा। चम्बा से भरमौर होकर सीधे लाहुल जाने की एक जोत की कठिनाई के बारे में मैं पढ़ चुका था। नेगी साहब ने कहा, कृषि कालेज में पढ़ते समय मैं इस रास्ते गया था।

चम्बा बहुत पुराना नगर है। समुद्रतल से ४००० फुट से नीचे ही है, लेकिन मैदान से बहुत दूर तथा अक्षांश में भी अधिक उत्तर होने से यह मसूरी और शिमला के पहाड़ों की ऊंचाई के स्थानों जैसा नम है और यहाँ हर साल बर्फ पड़ जाया करती है। यहाँ पुराने मंदिरों की एक पाँती है, जिसमें लक्ष्मीनारायण, लालपा, हरिराय चम्पावती के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। न जाने कितनी बार मूर्तिभंजक यहाँ आए नगर को लूटा और मूर्तियाँ तोड़ीं। पुरानी खण्डित मूर्तियाँ अधिकतर रावी स्नान कर चुकी हैं। तो भी कुछ देखने में आई। मंदिर शिखरदार अपने पुराने युग के गौरव के प्रतीक हैं। १२ बजे तक घूमते फोटो लेते, लोगों से बात करते नगरी में घूमे। नगर से बाहर एक टेकरी पर चामुंडा का मेला था। देखा स्त्रियाँ झुंड की झुंड जा रही हैं। यह स्त्रियों का ही मेला है। चम्बा की स्त्रियाँ अधिक सुन्दर और अपने पेशवाज (पशवाज) में बड़ी खिलती थीं। यह पेशवाज मुगल संस्कृति का प्रतीक है। पुराने समय में यहाँ भी दोड़ू (ऊनी चादर) पहनी जाती थी। फिर रानियों ने मुगलानियों की तरह पेशवाज पहनकर दूसरों को रास्ता दिखलाया। राजस्थान में भी भद्र महिलाएं घाघरा-लुगड़ी नहीं पेशवाज पहना करती थीं। लौटकर भोजन किया। फिर निकले। डाकखाने के सामने बहुत बड़ा मैदान है। डाकखाने के पास भी एक पुराना मन्दिर है, और डाकखाने से करीब करीब सटा ही पं० जयवन्तजी का निवास।

चम्पेश्वरी का मन्दिर देखने गए। राजकन्या चम्पा के नाम पर नगर का नाम चम्पेश्वरी पड़ा। चम्पा किसी सिद्ध के सत्संग में जाया करती थी। राजा को अपनी पुत्री पर सन्देह हो गया और उसका अत्यहित कर बैठा। पीछे सच्ची बात मालूम हुई तो उसने पुत्री के नाम पर बसाई इस नगरी में अपनी राजधानी कायम की।

चम्बा भारत के उन स्थानों में है जहा सबसे अधिक पुरातात्विक सामग्री प्राप्त हुई है और जिसके राजवंश से पुराना भारत में कोई राजवंश नही। यहा का शासन अधिकतर अंग्रेजो ने किया हाँ, राजा का दीवान होकर। उन्होंने जंगलात का अच्छा प्रबन्ध किया। मोटर की तो नही लेकिन दूसरी सड़कें बनवाई, डाकबंगले तयार किए, स्कूल और अस्पताल खोले। इन्ही में यहाँ का भूरीसिंह म्युजियम भी है जिसमे बहुत-सी मूर्तिया और उनसे भी महत्वपूर्ण ताम्रपत्र सुरक्षित हैं। पुस्तकें भी काफी जमा की गई थी, लेकिन उनमें से बहुत-सी उड़ गई हैं। मुझे बतलाया गया कि पिछले साल ही एक प्रभावशाली नेता वहा पहुँचे और पुरातात्विक महत्व की एक पुस्तक देखने के लिए ले गए, आज तक वह लौट रही है।

२६ अप्रल को फिर म्यूजियम में गए। वहा चित्रो और शिलालेखो के फोटो लिये। कुछ दुर्लभ पुस्तको मे भी फोटो उतारे। शाम के वक्त फिर म्यूजियम में गए। वस्तुतः यहाँ इतनी चीजें देखने और पढ़ने की थी जिनके लिए दो हफ्ते भी पर्याप्त नही होते। शिक्षित तरुण मण्डली को हमने अपने आने का पता नही दिया था। लेकिन, हिमाचल में उर्दू की अपेक्षा हिन्दी ज्यादा प्रचलित रही है, इसलिए शायद ही ऐसा कोई शिक्षित तरुण हो, जिसने मेरी एकाध पुस्तक न पढी हो। उस दिन रात के १२ बजे तक हमारे यहा तरुण आते रहे।

भरमौर—कम से कम चम्बा की पुरानी राजधानी भरमौर को देख लेना हमने अत्यावश्यक समझा। वसे जब तक चन्द्रभागा के तीर के पंगी-लाहुल इलाके को आदमी न देख ले, तब तक यहाँ की प्राकृतिक सुषमा का अन्दाजा नही लगा सकता। पर वह हफ्तो का काम था, जिसके लिए हम तयार नही थे। नेगी साहब ने दो घोड़ो का प्रबन्ध कर दिया, और वह शाम को ही मोटर के अंतिम अड्डे राख के लिए रवाना हो गए थे। किसी ने

वहा अधेरा रहते मोटर जाती है इसलिए हम साढे ५ वजे ही अड्डे पर पहुँच गए। बस सवा ६ वजे रवाना हुई। रास्ते के बारे म क्या पूछना ? कामचलाऊ सडक थी जिस पर भी मोटरो का रामभरास चलाया जाता। शहर से कोई पाच मील गए होंगे। गाडी साधारण गति से जा रही थी। मैं ड्राइवर के पास बैठा था। देखा गाडी दाहिनी ओर जा रही है। ड्राइवर बतेरी कोशिश कर रहा था। लेकिन, इस बात के कहन के लिए मैं जितना समय लूगा उतना समय नहीं लगा। क्यो ऐसा हो रहा है अभी यह सोचने के लिए दिमाग तयार हो ही रहा था कि बस करवट बैठ गई। ड्राइवर पचडे म फँसा था लोग एक दूसरे के ऊपर थ। ड्राइवर का तो होश ही ठिकाने नही था। मैंने कहा—"निकलो भी तो।" बाएँ वाली खिडकियाँ आसमान देख रही थी। कुछ उससे बाहर आए। लोगो को भी पकड पकड-कर निकला। आज क्या किसी के बचने की उम्मीद हो सकती थी ? पहाड म सडक छोडकर बस गिर और एक भी आदमी क्षत शरीर न हो ? मैं अपने को अक्षत शरीर समझता था, लेकिन पीछे देखा पैर म एक जगह कुछ छिल गया है जिसम जरा सा खून भी निकला है। सब लोग अपन अपने देवताओ को मनाने लगे। जब सब उतर आए तो हमने समझा यहाँ इतजार करने की जरूरत नही है क्योकि घम्बा से जल्दी किसी के आने की उम्मीद नही है और हमारे लिए ६ साढे ६ मील आगे रास्ते म घोडे इतजार कर रहे हैं।

श्री विद्याधर एम० एल० ए० भी हमारे सहयात्री थे। वह भी साथ चलने के लिए तयार हो गए। भगवान् को धन्यवाद देने थक नही रहे थे। सचमुच प्राण वाल बाल बचे थे। उस समय ही रामनाम सत् हो जाना, तो मेरी कितनी ही पुस्तकें लिखने को रह जाती। जीवन और मरण की चिन्ता मे मर जाना मेरे लिए घृणा की बात थी। मैं जिस भगवान् को धन्यवाद देना जब जानता हूँ कि वह कभी न था और न है। विद्याधरजी के साथ बात करते हमे रास्ता पहुचने पता नही लगा। वहाँ साईस घोडे लिये हुए तैयार थ। सोचा यहाँ से कुछ नाश्ता-पानी करके चलें। जरा सुस्तान ही दूसरी बस म पुलिस और मोटर सर्विस का एक अफसर आ पहुँचे। इधर लाला बखमूचन्द बिना भोजन कराये जाने देने के लिए तयार नहीं थ। हमने

एक दूसरे ड्राइवर से भोजन बनाने के लिए कह दिया था, उसे मना करना पड़ा। पुलिस ने बस-दुर्घटना के लिए लोगों के बयान लिए। मैंने बतलाया—कैसे पहिये की बात न मानकर दाहिनी ओर चले और ड्राइवर सब करके हार गया। वस्तुतः ड्राइवर का कसूर नहीं था। इन पहाड़ों में स्टियरिंग और ब्रेक का दुरुस्त रहना हर बस के लिए अनिवार्य होना चाहिए, लेकिन इसकी तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। इस साल (१९५६ ई० में) इसी तरह एक बस हिमाचल प्रदेश में गिरी, जिसके सभी आदमी मर गए। हमारी बस यदि दस ही कदम ऊपर जाकर बाएँ जाती, तो शायद हममें से एक भी घटना को बतलाने के लिए नहीं रह जाता। एम० एल० ए० साहब ने भी अपना वक्तव्य लिखा। वह मकान बनवा रहे थे, जिसकी छत के लिए अच्छे किसिम का स्लेट इधर ही मिलने वाली थी, उसी का इन्तजाम करने के लिए जा रहे थे। मकान बनना बदा था, इसीलिए विद्याधरजी बच गए, किसी भगवान् ने उन्हें नहीं बचाया।

लाला बख्शूचन्द राख के बड़े दूकानदार हैं। अब हम कहते हैं कि बनिये खून चूसने वाले हैं, लेकिन सनातन से वह न अपने को ऐसा समझते थे और न दूसरे। शास्त्र कहता था ‘लक्ष्मी वसति व्यापारे।” इनमें खून चूस मक्खीचूस भी थे, और सरल श्रद्धालु दयालु लोग भी। लाला बख्शूचन्द ऐसे ही सरल श्रद्धालु पुरुष थे। हम ही नहीं, उन्होंने और भी कितनों को चाय पानी या भोजन से तृप्त किया होगा। हम भोजन करके घोड़े पर चले। कुछ मील जाने पर रावी के बाएँ किनारे से दाहिने किनारे आना पड़ा। यहाँ के सोफियाना (हल्के फुल्के) झूला को देखकर प्रसन्नता होती थी—इतने कम खर्च में पुल के बन जाने पर कहीं पर भी उसका बनना आसान है। मोटे लोहे के तार थे, उसके नीचे पट्टियाँ लटक रही थीं। लेकिन, बीच में पहुँचने पर जब ‘बाल रे चिनगिया’ होने लगता अर्थात् पैर दाहिने बाएँ नाचने के लिए तैयार होते, तो इस पर विश्वास करना मुश्किल होता कि हम उछलकर रावी में पहुँच नहीं जाएँगे। उस समय “जो भी हो” कहकर आगे चलना ही अच्छा होता है। आगे की बस्ती में श्री विद्याधरजी लाला के यहाँ बात कर रहे थे। वहाँ थोड़ी देर ठहरना पड़ा। हम फिर रवाना हुए। राख से १६ मील चलकर दुरगढ़ी में पहुँचे। डाकबंगला यहाँ पर था

इसलिए खटमल पिस्सू से बचने की उम्मीद थी, नही तो यहा न कोई दूकान थी, न और आराम। सरकारी घोडे थे दाना पास मे था, और घास चौकीदार ने मुहैया कर दी। साईसो ने खाना भी बनाया। जनकलालजी को उपवास करने की जरूरत नही पडी।

भरमौर—भरमौर अब ११ मील रह गया। पहले दिन हम अधिकतर पैदल ही आए इसलिए आत्मविश्वास बढ गया था। १ मई को साढे ५ बजे हम घोडे वालो को जल्दी आने के लिए कहकर आगे बढे। रास्ते म एक अच्छी दूकान और ठिकान देखकर खयाल आने लगा कल यही आ गए होते तो अच्छा था। और आगे हम रावी को पार कर उसके दाहिने तट पर आना पडा। रावी अब छूट रही थी। बेदा की यह परछ्णी बहुत दूर ऊपर से आ रही थी और भरमौर को नदी यहाँ से नीचे ही रावी म आ मिली थी। भरमौर की नदी छोडकर यहाँ पहाड का पार करने का यही मतलब था कि नदी ने पत्थरो से ऐसे काटा था कि जहाँ रास्ता नही बनाया जा सकता। लेकिन आज के डाइनामाइट के जमाने म पहाड बेचारे क्या कर सकते हैं ? सवाल है रुपया का। हिमाचल सरकार ने भरमौर तक मोटर रास्ता बनाने की सब नाप-जोख कर ली है। पुल पार करते ही चढाई आई। जनक कन्हिया को पार करती दो मील की सख्त चढाई है। हम ठहर गए। दखा घोडे भी आ रहे हैं। सारी चढाई भर तो उनका इस्तेमाल कर लेना चाहिए। घोडे आए फिर हम उन पर चढकर चले। चढाई पार कर ऊपर पर शहर का एक छोटा-सा गाँव मिला। मटमैले पानी के कुण्ड से हम कोई लाभ नही उठा सकते थे। उसक एक ओर लडको का स्कूल था और दूसरी तरफ एक शरणार्थी भाई ने छोटी-सी दूकान खोल रखी थी। हमने यही कुछ चाय पानी किया। मालूम नही था कि भरमौर म चीजो के मिलने की बडी दिक्कत है नही तो यही से कुछ साथ ले चलते। घोडे पर चढकर रवाना हुए। डेढ मील रह जाने पर भरमौर गाँव दिखलाई पडा। भरमौर को बरमौर भी कहते है पर वस्तुत ब्रह्मपुर का बिगडा हुआ रूप है। इस भूभाग का वह राजधानी रहा। राजधानी बनने के बाद आज से हजार ग्यारह सौ वर्ष पहले इस राज्य का नाम चम्बा पडा। पहले क्या नाम था ? शायद ब्रह्मपुर ही कहा जाता होगा। इसके पूर्वी पडोसी कुल्लू

का नाम कुलूत तो प्राचीन काल से मशहूर है। आजकल भरमौर में जाना हो रही थी। शायद बाकायदा जाने की पहली बार की जा रही थी। रास्ते में एक दो गांव मिले, घरों के दरवाजे अधिकतर बन्द थे। भरमौर के लोग गद्दी कहे जाते हैं और इलाका गदियान। गद्दी किसी एक जाति का नाम नहीं है। इनमें ब्राह्मण अब्राह्मण सभी शामिल हैं। भेड़-बकरियां पालना जीविका का एक प्रधान साधन है। भरमौर के खेत उन्हें अपने काम भर के लिए अनाज और जरूरत से ज्यादा आलू दे देते हैं। ७-८ हजार फुट की ऊँचाई पर यहां के गांव हैं। जाड़ों में यहां चारों ओर कई फुट मोटी बर्फ पड़ जाती है। उस समय लोग यहां रहना पसन्द नहीं करते। पशुओं के लिए चारे की तकलीफ होती है और प्राणियों का काम नहीं रहता। इसलिए पशु प्राणी भारी संख्या में नीचे जाते हैं। गरीब स्त्रियां भटियात (निम्न रावी उपत्यका) के गृहस्थों के घरों में चावल कूटती मेहनत मजूरी करती हैं। पुरुष भी कुछ काम करते हैं। अधिक पशु वाले उन्हें जंगलों में ले जाकर चराते हैं।

मई महीना आने पर, भरमौर उपत्यका का अधिकांश बर्फ से मुक्त हो जाता है। उस वक्त गद्दी परिवार अपने गांवों की तरफ लौटते हैं। स्त्रियां पीठ पर सामान लादे पुरुष भी मन डेढ़ मन का भार उठाए अपनी गाय या किसी दूसरे पशु को हाँकते ऊपर चलते हैं। हम वहां रास्ते में मिल रहे थे, लेकिन यह सबसे पहले का काफिला था। गद्दी बहुत सर्द जगह में रहते हैं इसलिए स्त्री पुरुषों का सारा कपड़ा ऊनी होता है। उनकी कमर में ४०-५० हाथ की काली रस्सी लिपटी रहती है। नजदीक से देखने पर उसकी कला का पता लगता है। मालूम होता है नरम काले ऊन को जमा दिया गया है जो देखने में मखमल जैसा मालूम होता है। गद्दी बच्चा भी चोगा पहनने ही रस्सी बिना नहीं रह सकता। एक गद्दी मित्र ने बतलाया, शिवजी महाराज ने वरदान दिया कि जब तक कमर में यह रस्सी बँधी रहेगी तब तक तुम्हारी भेड़ें काबू में रहेंगी। मैंने भी कहा— हजार हजार भेड़ों को एक चरवाहा कैसे संभाल सकता है?" उसने कहा—"हां, इसीलिए हम लोग रस्सी कमर में बांध करके रखते हैं नहीं तो हजार भेड़ें हजार ओर चली जाएं और हम कहीं के न रहें।" गद्दी अपने जाड़ों की कमाई को बरतन

भाडे या किसी और रूप में बदल लेते हैं। तीन युगों में उनके लिए काम का सुभीता अधिक रहा होगा, पर अब भदियात में खुद मुक्खड़ कमकर मौजूद हैं। लोग अपने घरों में लौटे नहीं थे, इसीलिए बहुतों में ताले लगे हुए थे। रास्ते में हमने वन विभाग की तत्परता भी देखी। एक जगह चार चार पांच पांच हाथ वाले देवदार थे, हजारों अमोल्य का जंगल था। जैसे मनुष्यों और पशुओं के बच्चे प्यारे लगते हैं, वैसे ही ये जमात भी लग रहे थे।

साढ़े ११ बजे हम गधेरन (गदियान) की राजधानी में पहुंच गए। यहां डाकबंगला, अस्पताल, डाकघर, मिडल स्कूल, पुलिस चौकी, नायब तहसीलदारी है। तहसीलदारी पुरानी कोठी में है। आफिस इतने हैं, लेकिन खान-पीन की चीजों की लोगों को बड़ी तकलीफ है। मुमकिन है, हम पहले आए थे। मई के अन्त तक जब सभी घरों में लोग आ जाएंगे, तो हालत बेहतर होगी। नागा बाबा ने यहां अपनी सेवाओं से अच्छा नाम कमाया है। लेकिन वह पिछले प्रयाग के कुम्भ में गए, तो अभी तक नहीं लौटे थे। हमारे पास सामान तो बस इतना ही था कि ओढ़ने के लिए एक दो कम्बल थे। मौसिम का कोई ठिकाना नहीं था, इसलिए पहले मन्दिरों के दर्शन और फोटो लेने का काम खतम कर लेना चाहते थे। भरमौर जैसे भारत में बहुत कम स्थान हैं, जहां कि इतनी पुरानी धातु की मूर्तियां सुरक्षित हों। इससे यही पता लगता है कि रास्ते की कठिनाइयों को जानकर मूर्तिभंजक यहां कभी नहीं पहुंचे। बीच में हरिहर का शिखरदार विशाल मन्दिर है, जो वस्तुतः शिव-जी का मन्दिर है। उसके सामने नरसिंह का मन्दिर उससे कुछ छोटा है। दोनों के बीच में शंकरजी की ओर मुंह किए पीतल का (करीब करीब पहाड़ी सांड के कद के बराबर का) सांड खड़ा है, जिसके ऊपर गुप्ताक्षर में लेख है। अभिलेख से मालूम होता है, इसे मेरुवर्मा ने बनवाया था—

'ओं। प्रासादमेरुसदृशं हिमवन्तमूर्ध्नि कृत्वा स्वयं प्रवरकर्मशुभैरनेकैः तच्चन्द्रशालरचितं नवनाभ नाम प्राग्ग्रीवकैर्विविधमण्डपनैकचित्रं। तस्याग्रतो वृषभपीनकपोलकाय संश्लिष्टवक्षककुदोन्नतदेवयान श्रीमेरुवर्मचतुरोदधिकीर्तिरेषा मातापितुः सततमात्मफलानुवृद्ध्यै ॥'

मेरुवर्मा सातवीं शताब्दी में मौजूद थे। लक्षणादेवी के मन्दिर में देवी की लेखयुक्त पीतल की मूर्ति है, गणेश की पीतल की मूर्ति भी बड़ी भावपूर्ण

है। पाशुपत लकुलीशों का किसी समय यहां गढ़ था, यह उनके शिवलिंग बतला रहे थे। तहसीलदार साहब ने हमारे भोजन का प्रबन्ध किया, जो इस जगह की बेसरो-सामानी को देखकर तकलीफ देना ही था। अगर हम ऐसा जानते, तो चम्बा या रास्ते से अपने साथ कुछ सामान ले आते। भरमौर गांव बहुत बड़ा नहीं है। सभी गद्दी लोग हैं, जिनमें ब्राह्मण, क्षत्री और लोहार तीनों शामिल हैं। ब्राह्मण भारद्वाज गोत्रवाले हैं। जान पड़ता है सगोत्र ब्याह इनके यहां पहले से चला आया है। शुद्ध खश चेहरा-मोहरा दिखलाई पड़ता है। खशों का स्वच्छन्द जीवन भी यहां देखने में आता है। क्यों न हो, जबकि अब भी यह लोग मेषपाल होने के कारण अर्ध घुमन्तू जीवन व्यतीत करते हैं। गद्दी अपने भेड़ों को लेकर बुग्यालों (१२०० फुट से ऊपर वाले पर्वतपृष्ठों) को ढूंढ़ने जम्मू से कुमाऊं तक का चक्कर लगाते हैं और आज से नहीं, बल्कि सैकड़ों वर्ष से। गर्मी-बरसात के दिनों में जब उनके घर आबाद होते हैं, तब भी घर के आधे लोग भेड़ों के साथ रहते हैं। भेड़ों के ऊन को बेचना उनकी जीविका का प्रधान साधन रहा है। जब से बकरियों का दाम बढ़ गया है, तब से उन्होंने उनकी ओर ज्यादा ध्यान दिया। डर लगता है, कहीं बकरियां भेड़ों को खा न जाएं। लाखों भेड़ों को पालने वाले यह गद्दी उनकी नस्ल सुधारने में बड़े सहायक हो सकते हैं। उनकी तरफ यदि ध्यान नहीं दिया गया, तो आर्थिक लाभ और संघर्ष उन्हें मेषपाल से अजपाल बना देगा।

भरमौर उपत्यका इस वक्त अपने सौंदर्य को पूरा प्रकट नहीं कर रही थी, क्योंकि अभी हिमकाल का अन्त था, और वसंत नहीं आया था। जाड़ों के पहले के बोये गेहूं के खेत मुरझा रहे थे। लोग त्राहि त्राहि कर रहे थे। इस समय कुछ बरस जाना चाहिए। सौभाग्य से उसी रात वहां कुछ वर्षा हो गई, जिससे किसानों की जान में जान आई। हमें यहां जो कुछ करना था वह १ मई को खतम हो गया। २ मई को आसमान में बादल घिरे हुए थे, इसलिए फोटो लेने का कोई काम नहीं हो सकता था। गांव तो कल ही घूम आए थे और वहां के बूढ़ों से कुछ बातें भी जमा कर ली थीं। गद्दी लोगों का विश्वास है कि शंकर हमारे हैं और हमारी तरह वह भी गद्दी हैं। एक ओर वह हिमाच्छादित शिखर भी दिखलाई पड़ता है, जिसे मणि-

महेश कहते हैं और जहां अपनी गदियानी के साथ शंकर बराबर रहते हैं। लोग सावन के महीने में वहां मेले के लिए जाते हैं। यहां के शंकर बकरे की बलि लेते हैं जबकि मदानी शंकर जबरदस्ती घासाहारी बना लिए गए हैं। शंकर पार्वती के बहुत से गीत गद्दी लोगों के पास हैं। सभ्यता और शिक्षा से दूर रहने के कारण मानवतत्वीय अनुसंधान के लिए उनके पास बहुत सामग्री है। नाच-गाने का उन्हें बहुत शौक है। पुराने युग की तरह कन्या-शुल्क बड़ी कड़ाई से वसूल किया जाता है। जो अपने भावी ससुर को पैसा नहीं दे सकते वह बचपन ही से कई वर्षों के लिए ससुर के चाकर बन जाते हैं। निश्चित समय पर लड़की से ब्याह कर वह अपने घर जाते हैं।

पुनः चम्बा—२ मई का रविवार का दिन था। अपने कृपालु मेजबानों को अनेक धन्यवाद देते हम ५ बजे ही वहां से चल पड़े। मेहरा में पहुंच कर शरणार्थी भाई के यहां साथ लाए भोजन को खाने के लिए ठहर गए। यहां तक घोड़े पर आए थे उतराई में उनकी कोई जरूरत नहीं थी। हम पौने बजे चले और सवा ४ बजे राख पहुंच गए। डर था चम्बा जाने वाली बस चली न जाय और हम रात को वहीं न रुक जाना पड़े। बस हमारे आने के बाद आई। इस भूभाग में पशुपालन जीवन प्रधान दो जातियां हैं—गद्दी मेषपाल हैं और शिवजी के अनन्य भक्त और गूजर भैंसपाल और सभी मुसलमान हैं। हाल में गूजर अब कुछ कुछ बसने लगे हैं, नहीं तो गर्मी बर-सात में ऊपर के पहाड़ी चरागाहों में वह अपनी भैंसें ले जाते और जाड़ों में नीचे के जंगलों में रहते। गढ़वाल कुल्लू सभी जगह ये फैले हुए हैं। हिन्दू मुस्लिम झगड़े में इन्हें भी कुछ नुकसान पहुंचा लेकिन ये पाकिस्तान भागने के लिए तैयार नहीं हुए। इनके पास अच्छी भैंसें होती हैं। बहुत विशाल भैंसें शायद रख भी न सकते, क्योंकि उन्हें दुर्गम पहाड़ों में जाना पड़ता है।

६ बजे चलकर ७ बजे हम चम्बा पहुंच गए। अब की नगी ठाकुरमल साहब के बंगले पर ठहरे। रात को एक बंगले के दरवाजे से गुजर रहे थे तो पहरेदार ने कहा—इधर से रास्ता बन्द है। ज्यूडिशियल कमिश्नर साहब के लिए लोग सड़क से न जाने पावें यह विचित्र शासन-नीति गान्य है।

अब तक चम्बा के साहित्य प्रेमियों का भर आने का पूरी तौर से पता लग गया था इसलिए घंटा उनकी गोष्ठी में बीते। शाम के वक्त सनातन

घम लाइब्रेरी में बोलना पड़ा। इसकी स्थापना १९२६ ई० में हुई थी। अल्पारम्भ से भी समय पाकर काम बड़ा हो जाता है यदि कार्यकर्ताओं में लगन हो। इसका उदाहरण यह पुस्तकालय था। इसमें तीन हजार से ऊपर पुस्तकें हैं। १५वीं १६वीं सदी के कुछ हस्तलिखित ग्रंथ हैं, जिनमें "तत्व-चिन्तामणि" के "व्युत्पत्तिवाद" से मालूम होता है कि इस पहाड़ में भी उच्च शिक्षा का लोगों को शौक रहा। एक घर में छन्दशास्त्र पर एक ताल-पोथी आई। ताल पोथी का मतलब है मुस्लिम-काल के पहले की पुस्तक। चम्बा में और भी पोथियाँ मिल सकती हैं। मुसनजी कवि हैं। लोक-कविताएँ भी करते हैं और पुरानी पुस्तकों के संग्रह करने का शौक रखते हैं। आज का चम्बियाली भाषा देखकर भ्रम हो सकता था कि यह अब सब भाषाओं से अलग है, परन्तु उर्दू अक्षरों में चम्बियाली पुस्तक के आधी शताब्दी पहले छपी हकीमन पादरी की चम्बियाली पुस्तक को देखने से मालूम हुआ कि यहाँ पहले, का, के लिए, दा, और गा, के लिए सा, इस्तेमाल होता था। जैसा कि चम्बा से नपाल तक अब भी होता है। पंजाबी में का के लिए दा और गा के लिए गा रहता है। यह हिन्दी की सहोदरा है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। चम्बा के निचले भटियात इलाके में भी दा-गा का प्रयोग है और कांगड़ा में भी।

नगीनी किसानों में घुल मिल जाना जानते हैं। उनको कैसे उठाया जाय, बराबर इस पर ध्यान रखते हैं। इसीलिए वह खूब जनप्रिय हैं। घूमन घामन में उन्हें आलस नहीं है इसलिए मुश्किल रास्ता वाले गाँवों में पहुँच जाते हैं। उनसे मुझे अपने काम में पूरी सहायता मिली, और श्री-निवासजी तो हर तरह से मदद देने के लिए तैयार ही थे।

अमृतसर—८ मई को ४ बजे ही अड्डे पर पहुँचे। बस ६ बजे रवाना हुई। साढ़े ८ बजे बनीखेत आया। यहाँ से पठानकोट की बस पकड़नी थी। बस दिक्कत होती लेकिन जगत साहब ने टेलीफोन कर दिया था, और उनके मिलने में दिक्कत नहीं हुई। बनीखेत से पहले बावड़ी का अच्छा खासा बाजार मिला था। बस में एक दुल्हन भी विदा होकर जा रही थी। बनिये की लड़की थी, हाथ-पैर बहुत सँभालकर बैठना था। लेकिन बेचारी कै करती करती बेसुध हो गई। बनीखेत से आगे एक जगह हम थोड़ी देर

ठहरना पड़ा। वहां दोनों ओर से मोटरें आकर रुकती है, क्योंकि एक समय एक ही ओर का रास्ता खुलता है। पौने बज रहा था जब हम पठानकोट के स्टेशन पर पहुंचे। 'मई का आज पहुँचा है महीना। बहा चोटी से एडी तक पसीना।' इसे कहने की आवश्यकता नही। जैसे ही पता लगा कि अमृतसर जानेवाली जनता ट्रेन तैयार है हम तुरन्त कूद पड़े। ट्रेन में पैर रखते रखते गाडी चल पडी। हरेक कम्पार्टमेन्ट में दो दो पखे थे जिनके कारण जान बची। रेल में कुछ तो सुधार हुआ है। रास्ते में गुरदासपुर मिला और बटाला भी। गर्मी में खाने का मन नही करता था। यदि इच्छा होती थी, तो ठण्डे पानी की। अमृतसर ६७ मील ही था इसलिए ८ बजे हम वहां पहुंच गये। रास्ते में पजाब के गांव दिखाई पडे—वे गांव जहा हजार वर्ष से हिन्दू मुसलमान एक साथ रहते आये थे। पहले भी कभी-कभी दोनो झगड जाते थे। लेकिन अंग्रेजो ने उन्हे एक दूसरे के खून का प्यासा बना दिया। मस्जिदें खडी थी। कितने ही के मीनार टूट रहे थे। पजाब भैसा और गायों की अच्छी नस्ल के लिए प्रसिद्ध है। अब भी वहां सबसे अधिक दूध घी खाया जाता है। इस वक्त गर्मी में सारी हरियाली झुलस गई थी। बडे-बडे वृक्षो को छोड़कर हरे पत्ते दिखाई नहीं पडते थे। तो भी दुपहरिया की धूप में जहां-तहाँ खेतो में ढोर चर रहे थे। अपना बचपन याद आ रहा था उस समय ऐसी ही धूप में नगे पैर मैं रानी की सराय के स्कूल में पढने जाया करता था। आज क्या वैसा कर सकता था ?

अमृतसर स्टेशन पर कुछ बुरकावाली स्त्रियो को देखकर सचमुच आश्चर्य हुआ। पजाब में अब मुसलमान का देखना सपना हो गया है। यही बात पश्चिमी पजाब में हिन्दुओ के बारे में भी है। दो रिक्शा पर सामान रखकर हम दोनो पहले पजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी गये क्योंकि कुरबीवाली गली में भैया के घर का पता लगाने में मुश्किल होती। भैया दिल्ली गये हुए थे लेकिन भाभीजी घर पर ही थी। चिट्ठी मैं पहले ही आने के लिए लिख चुका था। अब सारा समय पखे के नीचे गुजारना था। सूर्यास्त के बाद छत को पानी से धोया गया। थोड़ी देर कुछ गर्मी रही फिर हवा चली। रात बडी सुहावनी थी। मुझे बाहर जाने की हिम्मत नहीं थी, लेकिन उस दिन भी जनकलालजी अमृतसर का चक्कर लगा आये।

५ मई को १० बजे कुछ बूदा-बांदी हुई। दिन भर जमीन और आसमान आग उगलते रहे। आज भी हमने कही बाहर जाने का नाम नहीं लिया। दुपहरी तो सबने निचली कोठरी म पखे के सहारे बितायी। जनकलालजी शहर देखने फिरे। चाय पीने का भी मन नहीं करता था। साढे १० बजे भैया भी दिल्ली स आ गए, और उनके साथ भाभीजी की बहन कमला भी। एम० एस-सी० की परीक्षा पिछले साल दी थी। पास हो गई होती तो डाक्टर बनने का रास्ता खुल जाता। मिलने मिलाने के लिए ही हम यहाँ आये थ, नही तो ठडी जगहो के वासी का इस भट्ठी म आना कब पसन्द हो सकता था। ६ तारीख को भी किसी तरह बिताया। भैया और भाभीजी से कुछ बात करते रहे कुछ जनकलालजी से। तहखाने म दिन भर पखा चलता रहा। आज जल्दी करते-करते ६ बज कर २५ मिनट पर निकल पाये। मैं रेल की ट्रेन के लिए बहुत चौकस रहता हूँ, और एक घटा पहले चलना पसन्द करता हूँ। यहाँ रास्ते म सचमुच इतनी भीड लग गई थी कि रिक्शा का आगे जाना मुश्किल हो गया। रेलवे पुल पर पहुँचे तो पता लगा दोनो कैमरे छोड आये। यदि जनकलालजी लेने जाते, तो फिर ट्रेन नही मिल सकती। सोचा इस वक्त उनका कोई विशेष काम भी नही है। भाई साहब अपने साथ लेते आएगे। हवडा मेल म देहरादून का डब्बा लगा था, उसी के तीसरे दर्जे म बैठ गये। अम्बाला तक सान्ति की छूट रही, फिर हरद्वार तक भेडियाधसान। अमृतसर म एक लम्बे तिलकधारी आचारी डब्बे म चढे और "श्रीमन्नारायण नारायण" का इतना जोर का घोष किया कि सारा स्टेशन गूज उठा। मालूम होता है बूढे होकर साधु हुए थे, इसलिए तौर तरीका मालूम नही था।

७ मई को सबेरे ७ बजे अब भी बूदा बादी हो रही थी। रात को भी कही कही वर्षा हुई थी। हरद्वार पहुचने पर अधेरा हट चुका था। सवा ७ बजे हम देहरादून पहुँच गये। शुक्लजी के घर पर शुक्लाइनजी मलेरिया म पडी हुई थी। कृष्णकान्त और कमल आजकल यही थे। यद्यपि गर्मी यहा भी थी, लेकिन जिस भट्ठी से अभी अभी हम निकलकर आये थे, उससे इसकी क्या तुलना? १ बजे हम खलगा देखने गये। यही खलगा जहाँ नेपाली वीर बलभद्र ने अपनी वीरता द्वारा अपने शत्रु अग्रेजो को चकित कर दिया

था। गुरुजी के घर से यह स्थान बहुत दूर नहीं है। प्राय सन्ना सूखी रहनवाली रिस्पना के बाएँ किनार पर कुछ ऊँची-सी जगह है जिसे टीला नहीं कहा जा सकता। यहीं कुछ मोचाबन्दी सी करके बलभद्र के नतत्व में नेपाली सैनिक तैयार थ। जेनरल गिलस्पी का प्राण देना पडा और अग्रेज सेना पीछे हटाइ गई। अन्त म खलगा पर अग्रेज अधिकार कर पाय लकिन लोहे क चन चबाकर। यहाँ पर उन्होंने एक स्मारक खडा किया जिसम गिलस्पी की विरदावली थी और बलभद्र का भी। गिलेस्पीकी विरुदावली को किसी न गायब कर दिया है।

घाने पर यात्रा क फिल्म अधिकतर अच्छे आये। श्री सत्येन्द्र जी अपने साथ बद्रीपुर ले गय। उनक ८३ ८४ वष क बूढ़े ताऊ अब भी स्वस्थ हैं, और अपन हाथ से बाग म कुछ काम भी कर लेत हैं। दो पक पपीत दिय। बद्रापुर अपन बासमती क लिए पहले ही से प्रसिद्ध है। देहरादून शहर म कोइ बासमती नहीं होती। सबस अच्छा बासमती पदा करनवाल गाँवा म बद्रापुर भी है। आजकल ऊख भी यहा की प्रधान आजीविका हो गई है। ११ वप बाद हम बद्रापुर आए थे। कुछ घर बड़े मालूम हो रह थे।

८ मई का पौन १० बजे की बस पकडा। किंक्रग म उतर कर १ बजे हम दोनो हन किन्ग" पहुच गए।

११

सैलानियों का मौसिम

मई का प्रथम सप्ताह आ गया, मसूरी के लिए सैलानियों का मौसम शुरू हो गया था। घर पर डा० वाचस्पति और श्री इन्दुप्रभा भी मौजूद थे। मेरे कनिष्ठ भाई श्रीनाथ पाण्डे भी आये हुए थे, और धूपनाथ बाबू को तो मैं छोड़ ही गया था। एक महीने की डाक से पहले भुगतना था। उससे भुगतना मुश्किल नहीं था, लेकिन आर्थिक कठिनाइयाँ परेशानी पैदा कर रही थीं। वह तो तभी से शुरू हो गई थी, जब से मैं मसूरी आया था। वैसे जिस तरह समय गुजर रहा था उसमें परेशानी करने की जरूरत नहीं थी। लेकिन, जब तक बैंक में छ महीने की खर्ची न हो, मन कैसे शान्त रह सकता है? अनिश्चितता सबसे ज्यादा चुभती है। श्रीनाथ १० तारीख को गये। बहुत संकोची हैं। दिल्ली में वर्षों से रह रहे हैं, काम है यही मिठाई बनाकर बाजार-बाजार पहुँचाना। मैंने एक बार २१०० रुपये दिए भी, पर यदि ऐसे व्यवहारकुशल होते, तो इतने सालों में दिल्ली में रहकर अपना कोई स्थायी प्रबन्ध न कर लिए होते? अब मैं उनकी मदद करने की स्थिति में भी नहीं था।

यदि मई के मध्य तक दूकानदारों की, विशेषकर शौकीनी की चीजें बेचनेवालों की, बिक्री अच्छी न हो, तो यही समझना होता है कि उनके लिए सीजन खराब है। बनारस होसवाले इसके लिए थर्मामीटर थे। अच्छी से अच्छी साड़ियाँ और दूसरे कीमती कपड़ों के वह दूकानदार थे। वह कह रहे थे चीजें बिक नहीं रही हैं। बहुत दिनों बाद तड़क भड़क की वर्दी पहन

रिक्शा खींचनेवाला के साथ इन्दौर के पुराने महाराना महारानी को घूमने देख कितने ही लोग यह सोच कर सताप कर रहे थे कि अब मसूरी का भाग्य जागेगा राना रानी ने फिर कृपादृष्टि की है।

मसूरी म भी कभी कभी तेज तूफान आता है, और उसके साथ वर्षा भी। ११ मई का ऐसी आधी आई कि मालूम होता था छत उड जायगी। टिन की छता का उड जाना कोई असम्भव बात नही है। वाचस्पति जी बडे कमठ तरुण है। इन्दु यद्यपि बचपन की तरह दुबली पतला नही है किन्तु उनका स्वास्थ्य बहुत खराब रहता है। डा० वाचस्पति परमाणु गर्भ फिजिक्स के पण्डित है। शरीर और दिमाग दोनो ही उनका चलता रहता है। ऐसे आदमी यदि अवसर पाएँ तो वह भारत का मुख उज्ज्वल कर सकते हैं। इस समय (माघ १९५६ म) वह कनाडा म अनुसन्धान करने गये हैं।

१३ मई को श्री जनकलाल जी गये। उनकी वजह से हमारी हिमाचल-यात्रा बडी अच्छी हुई थी। उनम जरूरत स ज्यादा भोलापन है कुछ अव्यावहारिक भी हैं लेकिन स्वभाव बहुत मीठा है। ऐतिहासिक और पुरातात्विक वस्तुओ के ज्ञान के साथ साथ भारी जिज्ञासा भी रखते हैं। पश्चिमी नेपाल म वह इसके सम्बन्ध म अपनी यात्रा कर चुके हैं। वहां के बारे म बहुत कम अनुसन्धान हुआ है। ऐसे मित्र स बार-बार मिलने की इच्छा होती है।

हरि को आए पाँचवा महीना हो रहा था। स्कूल म उसका मन नही लगता था। रोज यहां से जाता। हम समझते थ पढने जा रहा है। लेकिन वह स्कूल न जाकर और जगह अपना समय बिताकर लौट आता। शिकायत करता था लडके चिढाते ही हैं एक मास्टर भी नेपाली दाई कहकर व्यग्य करते कहते हैं कि तुम तीन वर्ष म भी मट्रिक पास नहा हो सकते। यदि ऐसी बात थी तो यह स्कूल के लिए भी बुरी बात थी। लेकिन, बात यह नहीं थी। उसका मन ही यहाँ नही लगता था। एक दिन चलते रास्ते प्रिंसिपल मन्हाना मिल गए। पूछने पर मालूम हुआ हरि तो दो महीने स स्कूल नहीं आया। अंग्रेजी क्लास को मैं बराबर पढाता हूँ मैंने उसे नही देखा। २० मई को आखिर कलई खुल गई, जबकि वह प्रिंसि-

पल के नाम से स्वयं चिट्ठी लिखकर ले आया। उसने अपना इतना समय खराब किया। यदि पहले ही कहा होता तो उसे कलिम्पांग भेज देते। शर्मीला लड़का था, यहां उसका मन नहीं लगता था। जब स्कूल खुल गई, तो वह डर के मारे यहां से अन्तर्धान हो गया। कमला को तरह तरह की चिन्ता होने लगी, लेकिन शाम को किदवाई के बंगले के नौकरों की कोठरी से आ गया। पीछे पता लगा, उनका स्कूल इसी कोठरी में कई महीनों से लग रहा था।

जया २० मई को नौ महीने की हो गई थी। चलने में दोनों हाथों को इस्तेमाल कर रही थी, कुछ शब्दानुकरण भी करती थी। हम समझते थे कि दांतों के निकलने में कठिनाई होगी, लेकिन देखा वह अपने आप निकल आए हैं। स्वास्थ्य भी अब उसका ठीक था।

खर्च की दिक्कत से अब हाथ संकोच करने की आवश्यकता थी। सबसे अफसोस की बात हुई कि हरि और धूपनाथजी के साथ मंगल भी यहां से चले गए। हमने यहां और देहरादून में कोशिश की कि टाइप करने का काम मिल जाए। टाइप में वह बहुत दक्ष थे, और गति भी तेज थी। हमारी बहुत सी पुस्तकों का डिक्टेशन पर उन्होंने टाइप किया था। ढाई तीन घंटे में एक फार्म टाइप कर सकते थे। लेकिन सभी जगह मैट्रिक पास की आवश्यकता थी। भला हिन्दी टाइपिस्ट के लिए इस योग्यता की क्या आवश्यकता? जिस योग्यता की आवश्यकता है, उसे अपने सामने देखा जा सकता है। उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा दी थी, जिसका परिणाम पीछे निकला। सभी विषयों में पास हो गए थे, सिर्फ गणित में नौ अंकों की कमी थी, फेल हो गए। परीक्षा लोगों की जिन्दगी खराब करने के लिए है, आगे बढ़ाने का साधन नहीं है, यह इससे साफ है।

सैलानियों के मौसम में कितने ही पुराने मित्रों से मुलाकात होती है और कितने ही नए मित्र बनते हैं। श्री रुद्रनारायण शुक्ल २३ मई को आए। वह अंग्रेज प्रकाशक मेकमिलन कम्पनी के उत्तर प्रदेश के कारबार के एजेंट हैं। यह तो मुझे मालूम था कि सवरिया की तरह कनौजिया में भी सांकृत्य गोत्रवाले हैं। यह भी मालूम था कि कनौजिया परम्परा के अनुसार वह सवरिया से ही आए हैं। लेकिन, सवरिया सांकृत्य पांडे होते हैं और कनौ

जिए शुक्ल। खैर सगाग बधुत्व तो हमारा याही। उसी दिन मडलेश्वर स्वामी सवदानदजी भी आए और महात्माओ के साथ आए। उनके साथ साधुओ के भविष्य और सस्कृत के सबधन के वारे म बातें होती रही। मैंने अपने विचारो को रखते हुए कहा, साधुओ की सख्या कम होगी, यह तो निश्चय है पर उनका उच्छेद नही हो सकता। सस्कृत का भाग्य भी अब उनके भाग्य स बँधा हुआ है। आजीवन सस्कृत के विद्यार्थी रहनेवाले अब उन्ही म से मिलेंगे।

अगले दिन स्वामी सत्यस्वरूपजी आए। तत्वचिन्तामणि की नया कहा तक गई इसकी जिज्ञासा होनी ही थी। इसम लगे हुए थे और अब उतने निराश नही मालूम होते थे। उसी दिन वनीपुरी भी आधी पानी की तरह आए। मसूरी म चार घटा के लिए आए थे, जिसम एक घटा यहाँ भी दिया। यह सुनकर बडी प्रसन्नता हुई कि "वनीपुरी ग्रन्थमाला" का स्वागत हुआ है। साहित्यिक यदि अपनी आयु के अन्तिम दिनो म आर्थिक तौर स निश्चिन्त हो तो हमारे देश के लिए यह एक बडी बात है। वनीपुरी अब साढेसाती सनीचर के फेर से बाहर आ चुके थे। आगे के सकल्पो के बारे म बतला रहे थे। गाँव म महल बनवा लिया है यह सुन अच्छा नही लगा क्योकि गाँव म पक्का मकान जरूरत पडने पर एक पैसा भी नही देता। यह निश्चित ही है कि वनीपुरी स जितना स्नेह रामवृक्ष का है उतना उनके लडके का नही होगा। गाँव तो शायद मुश्किल ही स कभी उन्हें खीच पाएगा। निजी तौर स प्रयत्न करके कोई गाँवो की सस्कृति और शिक्षा का केन्द्र नही बना सकता। यह तो देश के उद्योगीकरण और कृषि के सामूहीकरण पर निर्भर है जो भारत के लिए अभी दूर की बात मालूम होती है।

मौसम के समय मध्य वित्त सैलानी मसूरी म काफी इकट्ठा होते हैं इसलिए सभा सम्मेलन भी हो जाया करते है। अब की श्री मानवेन्द्र राय के अनुयायियो—रेडिकल ह्यूमनिस्टो—का ग्रीष्म विद्यालय चला जो यहाँ स नजदीक ही देवदार काठी म था। वहाँ आए कुछ साथी हमारे पास भी आए। सबसे बडा सम्मेलन ८ ९ जून को देहरादून म हुआ। केन्द्रीय साहित्य सम्मेलन की गाडी तो स्वार्थों की टक्कर के कारण दलदल म पडी

हुई थी। प्रान्तीय सम्मेलन को जगाए रखना इस वक्त आवश्यक समझा गया था। उद्घाटन भाषण के लिए मंत्री डा० उन्यनारायण तिवारी ने हमें लिखा। उधर स्वागतकारिणी ने डा० काटजू से उद्घाटन कराना चाहा। स्वागतकारिणी को स्वागत के लिए पैसा की जरूरत थी जिसमें डा० काटजू के आने में सुभीता था। बलीदाह ऐसे गैर नत्थू खैरे के लिए अपनी बला थोड़े ही टाल सकता है। मुझे यदि पता लग गया होता तो उद्घाटन करने के फन्दे से बच जाता। मुझे उसकी कोई इच्छा नहीं थी। पर जान पड़ा दोनों ही उद्घाटक यहाँ पहुँचेंगे। ऐन मौके पर डा० काटजू नहीं आए और मुझे वह काम करना पड़ा। उनके लिए जो अभिनन्दन पत्र तयार किया गया था उस पर चिप्पी लगाकर मुझे दे दिया गया। सरकार की हिन्दी सम्बन्धी बेरुखी की मैं कड़ी आलोचना करता इसलिए हमारे हिन्दी प्रेमी मित्र चाहते थे कि मैं ही उद्घाटन करूँ।

पूर्वी पाकिस्तान (पूर्वी बंगाल) में मुस्लिम लीग की घोर पराजय हुई थी। हक ने मंत्रिमण्डल बनाया लेकिन वहाँ तो गवर्नर जनरल की तानाशाही थी। जब नीचे से सहायता नहीं मिली तो ऊपर से हुकुम निकला और मंत्रिमण्डल को तोड़ दिया गया। लेकिन बंगाली मुसलमानों को—जो कि पाकिस्तान में भी बहुमत रखते हैं—डंडे के जोर पर थोड़े ही दबाया जा सकता है? अपने थूक को फिर पाकिस्तान सरकार को चाटना पड़ा लेकिन काफी बाद जबकि नवाबजादा मुहम्मद अली को प्रधान मंत्री पद से हटाया गया। पाकिस्तान के संविधान में हक का सहयोग मुस्लिम लीग के लिए नहीं बल्कि उनके लिए मँहगा पड़ा। लेकिन इसका दोष हक का ही नहीं दिया जा सकता। उनके प्रतिद्वन्द्वी सुहरावर्दी ने पहले मुस्लिम लीग से सहयोग करना शुरू किया जिससे हक और उनका दल जंगल में भटकता फिरे। बुड्ढे ने भी ऐसा धोबिया पाट मारा कि सुहरावर्दी न तीन में रहे न तेरह में। इसका फल मुस्लिम लीग विरोधक पश्चिमी पाकिस्तान के प्रमुखों को बहुत अच्छा हुआ। हक का दल अपने निर्वाचन में जिन बातों का वादा करके चुना था उससे मुकर गया। पाकिस्तान के संविधान में न संयुक्त निर्वाचन को माना गया और न गणराज्य के साथ इस्लामिक विशेषण को ही हटाया गया। अपने भविष्य को अनिश्चित तथा वहाँ की व्यक्ति-

नाइयों को अधिक देखकर भारी संख्या में पूर्वी बंगाल से हिंदू भारत चले आ रहे हैं। यदि सारे हिंदू वहां से निकल आए, तो फिर पूर्वी पाकिस्तान का बहुमत नहीं रह जाएगा।

३१ मई को घूमते समय रास्ते में सेठ सीताराम मिले। हर साल ही उनके दर्शन होते हैं। इस साल पिछले सालों के बहुत कम परिचित चेहरे दिखाई पड़ रहे थे। उनका अभाव खटकता था। नगरपालिकावाले बतला रहे थे कि इस साल लोग बहुत आए हैं। पर दूकानदार शिकायत कर रहे थे कि बिक्री नहीं होती।

२ जून को चिनी (कनौर) के हेडमास्टर श्री समुवालजी आए। कनौर हिमालय के उन कोनों में है जिसके साथ मेरा विशेष स्नेह है। मिडल स्कूल अब हाई स्कूल हो गया है यह सुनकर प्रसन्नता हुई। समुवालजी जैसा कर्मठ और योग्य तरुण वहां गया यह जानकर भी खुशी हुई पर वह वहां से अपनी बदली करवाना चाहते थे। गढ़वाल के होने से पहाड़ उनके लिए अरुचिकर नहीं हो सकता था, पर कह रहे थे कि खान-पीन की चीजों की बड़ी दिक्कत रहती है। यदि डाक की व्यवस्था होती तो कलकत्ता-बम्बई से चीनी का जितना महसूल है उतना ही रामपुर से लगता है इस प्रकार डाक के द्वारा खाने की भी बहुत-सी चीजें मंगाई जा सकती। लेकिन जान पड़ता है उसकी भी अव्यवस्था थी। अबके साल प्रमनाथ और बीणा राय दो सिनेमा तारक मसूरी को सौभाग्यशाली बनाने आए। जिधर निकलते उधर लोगों की आँखें बिछ जाती। मैं एक दिन जा रहा था किसी ने उनके बारे में बतलाया। साल में एकाध ही बार मैं कभी कोई फिल्म देखता हूँ इसलिए सिनेमा जगत के नक्षत्रों से परिचित न होना मेरे लिए स्वाभाविक था।

देहरादून—४ जून को सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए देहरादून गया। देखा, बहुत से मसूरी नीचे भाग जा रहे हैं। कल रात वर्षा ना हो गई थी। उन्होंने समझा अब अपने यहाँ भी वर्षा हो गई होगा, इसलिए गर्मी का डर नहीं है। वर्षा यद्यपि धोखे का था और अबके साल असली वर्षा प्राय सारे जून भर नहीं हुई और ८ जुलाई को हो उसका मौसम

आरम्भ हुआ। पर इस वक्त तो लोगों को भड़काकर इन छोटों ने मसूरी को बरबाद कर दिया।

शुक्लजी के यहां मध्याह्न भोजन के समय पहुँच गए। ५ बजे सम्मेलन के समय वहां गए। अब भी धूप थी और बाग के वृक्षों की छाया काफी नहीं थी। तो भी रात की वर्षा से तापमान कुछ नीचे जरूर रहा। सम्मेलन का उद्घाटन भाषण मैंने किया। सभापति हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा थे। उनका भाषण हुआ। टंडनजी भी बोले। लोगों की उपस्थिति काफी थी यद्यपि शहर की जनसंख्या के अनुरूप नहीं थी। ऐसा होने का कारण भी है—निश्चित मध्यवित्त लोगों में काफी संख्या शरणार्थियों की है जो हिन्दी से परिचित नहीं हैं। उनकी अगली पीढ़ी हिन्दी पढ़ रही है लेकिन उसको समाज में स्थान पाने में अभी दस पन्द्रह साल की देर होगी। शिक्षित होने पर भी सांस्कृतिक तल ऊँचा नहीं है इसलिए वह उत्साह से ऐसे समारोहों में भाग नहीं ले सकते। उद्घाटन न भी करना होता तो भी मैं यहाँ आता जरूर क्योंकि यहां सारे प्रान्त से आए हुए कितने ही साहित्यकारों से मुलाकात होती। डा० उदयनारायण वाचस्पति पाठक शान्तिप्रिय द्विवेदी गुरुभक्तसिंह 'भक्त' कमलेश श्री कमलादेवी चौधरी आदि आदि के दर्शन हुए। सम्मेलनवालों ने कला और साहित्य-प्रदर्शनी का भी आयोजन किया था। कोशिश की थी कि देहरादून जिले के सभी साहित्यकारों की अधिक से अधिक कृतियाँ उसमें रखी जाएँ। मेरी भी उपलब्ध पुस्तकें वहाँ मौजूद थीं। देहरादून के चित्रकार श्री सक्सेना ने चित्रों की प्रदर्शनी का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था।

६ जून को टाउन हाल में श्री विश्वम्भरनाथ प्रेमी की अध्यक्षता में कौरवी भाषा सम्मेलन हुआ। हिन्दी की मूल वाली के इस नाम का प्रचार मैंने किया था। कोई आविष्कार करने के ख्याल से नहीं बल्कि मूल भाषा को कोई एक नाम देना जरूरी था। मैंने भी उसके लिए कई प्रयोग किये। कभी "आदि हिन्दी" कहा कभी 'मेरठी" और कभी कुछ। अन्त में उसका सबसे उपयुक्त नाम कौरवी ही मालूम हुआ क्योंकि यह भाषा कुरु और कुरु जांगल (हरियाना) में बोली जाती है। हमारे सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास में कुरु का स्थान बहुत ऊँचा है। मैं पिछले पच्चीस वर्षों से बहुत

व्यग्र था कि कौरवी लोक साहित्य का बड़ा संग्रह किया जाए। कितने ही सालों तक यह अरण्य रोदन रहा, लेकिन अब तरुण कुरुपुत्र उधर काफी ध्यान दे रहे हैं, यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

७ जून को साहित्य गोष्ठी हुई। साहित्य गोष्ठी की तरफ सम्मेलनों में अधिक ध्यान देने की जरूरत है। वृहद् अधिवेशन द्वारा जनसाधारण के पास तक हिन्दी का सन्देश जरूर पहुँचता है, और यह उपेक्षा की चीज नहीं है। सम्मेलन द्वारा सरकार को भी बतलाया जा सकता है कि तुम अधिक दिनों तक हिन्दी की उपेक्षा नहीं कर सकते। लेकिन, हिन्दी साहित्य निर्माता तो साहित्यकार हैं, वही उसके माथे को ऊँचा कर सकते हैं। जब किसी सम्मेलन के कारण उन्हें इकट्ठा होने का मौका मिलता है, तो उनके समागम से वह परस्पर बहुत लाभ उठा सकते हैं। गोष्ठी में डा० देवराज, शान्तिप्रियजी और कमलेशजी भी बोले। कुछ तरुणों ने अपनी कहानी, कविता और एकांकी सुनाए। मध्याह्न का भोजन काग्रेस नेता श्री लक्ष्मणदेव के यहाँ हुआ, जिसमें टण्डनजी, तिवारीजी और मैं भी शामिल हुए। इससे पहले दिन का मध्याह्न भोजन स्वागतकारिणी ने बड़े भव्य रूप में किया था। देहरादून की महिलाओं ने सारा काम अपने हाथ में लिया था। जान पड़ता है दूसरों की अपेक्षा कुरु पुत्रियाँ ज्यादा दक्ष हैं। वहीं देहरादून के बड़े भूमिपति सेठ रामकिशोर की पत्नी भी उस लड़की के साथ आई थी, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने अपने पूर्वजन्म की माता को पहचान लिया था और कोठी के घर पर जाकर बहुत सी चीजों को भी बतलाया था। जिस पुत्री का अवतार उस माता जाने लगा था, उसको मैंने भी १९४३ में देखा था। हिन्दू युनिवर्सिटी में शायद एम० ए० में पढ़ रही थी। क्या-क्या आकांक्षाएं और उमगें उसकी थी? देहरादून को उसके रूप में महिलाओं की अच्छी सेविका मिलती, पर बेचारी तरुणाई में ही मर गई। उसका दुख माता पिता का होना ही चाहिए था। फिर यदि अवतार की कहानी मिल जाए तो यह डूबते को तिनके का सहारा क्या न हो? भारतवर्ष में ऐसे प्रत्यक्ष पुनर्जन्म की कथाएं अखबारों में बहुत निकलती रहती हैं। इनमें कितना ही में तो केवल धोखा पड़ी होती है, और यदि किसी में कुछ सत्यता का लेश है तो यही कहा जा सकता है कि विचारों का आदान-प्रदान कभी-कभी बिना

भाषा में भी हो जाता है। बड़ों के विचार छोटी आयु के बच्चों के मन में चढ़ जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं।

७ जून ही को डा० तिवारी, श्री वाचस्पति पाठक, श्री देवनारायण द्विवेदी तथा बन्धुद्वय श्री जयगोपाल शिवगोपाल मिश्र भी मसूरी आए। दो दिनों के लिए इन विद्वानों ने अपने लिए अहोभाग्य समझा। हमने भी शिष्टागमन अनध्याय रखा और मसूरी दिखलाने में समय बिताया। वाचस्पतिजी पाठक बड़े विनोदी जीव हैं। कलम कमजोर नहीं है, लेकिन दूसरे कामों के कारण अब उन्होंने उसे विश्राम दे रखा है। एक कला प्रेमी की बात कह रहे थे। पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के पास कुछ पुराने सुन्दर चित्र थे। जब उन्हें पता लगा तो वह देखने के लिए आठ अपने साथ ले गए। देखकर बड़े विश्वास के साथ चतुर्वेदीजी के पास लौटाने गए। गिनती तो पूरी थी, लेकिन चतुर्वेदीजी ने देखा कि एक बदल लिया गया है। कला प्रेमी ने भूल स्वीकार की और लौटा देने के लिए वहाँ से जो निकले तो प्रयाग में भी किसी स्टेशन पर नहीं, गंगा पार झूसी में जा गाड़ी पकड़ी।

मित्र समागम का यह आनन्द ८ जून ही तक रहा। ९ जून को सब लोग चले गए। हमारे देहरादून में अनुपस्थित रहने के समय शास्त्री वैद्य वाचस्पति श्री ईश्वरदत्त वर्मा आए थे। पंजाब के हैं, लेकिन उनकी इच्छा सबसे पिछड़े पहाड़ी लोगों की सेवा करने की थी, इसलिए अपनी पत्नी के साथ जौनसार चले गए। वैद्य भी हैं, और कम्पाउंडर भी। वहाँ दूकान और बाजार से दूर एक गाँव में उनकी नियुक्ति हुई। एक-दो वर्ष तक उनके आत्मबल ने सहायता दी। लोगों में घुल मिल गए। लेकिन सुशिक्षित सुसंस्कृत आदमी कितने दिनों तक वनवास सेवन कर सकता है, फिर उन्होंने अपनी बदली मैदान में करवा ली।

मौसम के समय डा० सत्यकेतु के यहाँ भी सम्बन्धी और मेहमान आते रहते हैं। अबकी बार उनका कलकत्ते वाली बहन अपने लड़के और लड़की के साथ आई। वह साठ पीढ़ी की अग्रवालिन घासाहारी और यहाँ माई का दर मर मास में आनन्द लेने वाला। उनके आगमन के कारण घर में शान्त रहना मुश्किल था। बुआ की यह हालत और भाजी उषा हड्डी चिचोड़ रही

थी। अगली पीढ़ियां कैसे पुरानी पीढ़ी के आचार विचार पर पुचारा फेरती हैं, यह उसका उदाहरण था। ऐसी बहिन के सामने घर में शान्ति कैसे बनता लेकिन तरुण कम्युनिस्ट बरेली के श्रीवास्तवजी ठहरे हुए थे उन्होंने आज विशेष तौर से मांसपाक का कौशल दिखलाया था। श्री शान्तिप्रसाद वेद कुमारी, सत्यकेतु परिवार और हम भी श्रीवास्तवजी के भाग में शामिल हुए। वेदकुमारी गणित की एम० ए० हैं बीकानेर में लड़कियों के स्कूल में पढ़ाती है। उनको लोक गीतों का भी शौक है। उन्होंने पंजाबी और राजस्थानी के कुछ लोक गीत सुनाए। गला अच्छा और गाने के ढंग में भी स्वाभाविकता थी।

नवें महीने में पहुँचकर जया ने ताली बजाना भी शुरू कर दिया। "छाम नानी छाम-छाम" कहने पर मजे से ताली बजाती खाँसने का भी अनुकरण करने लगी। लात बहुत दिनों तक उसकी शान्त रही कि दाहिने कान पर हाथ रखकर खाए। बिस्कुट कहाँ रहता है, यह भी जानती थी। मनुष्य का बच्चा दुनिया में आकर किस तरह धीरे धीरे अपने भीतर की शक्तियों का प्रयोग करने लगता है इस बच्चों को देखने से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

१३ जून को इतवार का दिन था। आज कई मेहमान आए। आन्ध्र के चित्रकार तरुण कुमारिल स्वामी अपने कई मित्रों के साथ आए। हमारे पड़ोसी डा० राम भी परिवार सहित उपस्थित हुए। उनका छोटा लड़का विज्जू पिछले साल बहुत अस्वस्थ था अब अच्छा हो गया था। मध्याह्न भोजन के पहले हो भैयाजी और भाभीजी भी आ गए। सुखरामा भाभाजी का हीरा नौकर मिला था, जो उनकी लात मार सबको चुपचाप बर्दाश्त करने के लिए तैयार था और मशीन की तरह काम करता था। अब कल से उसका सरोकार नहीं था, जो गुसल मालकिन के लिए अच्छा ही था। बड़े तड़के उठकर रात के १२ बजे तक वह काम में लगा ही रहता। जिस काम का अभ्यस्त था, उसे अपने मन से करता नये काम को बतलाना पड़ता। उस दिन सुखरामा ने बड़ी मदद की नहीं तो एक नौकर के मान की बात नहीं था। मसूरी में खूब चहल पहल है, इसे देखने का तो हम कम ही मौका मिलता था लेकिन जब उसके द्वार पर अवस्थित हमारे घर में भी

मेहमान आ जाते तो हमें मालूम होता कि मसूरी इस वक्त फूली नहीं समा रही है। आज इटावा के जिला कांग्रेस के भूतपूर्व सभापति ठाकुर साहब भी आए। जमुना के किनारे औरैया के पास कुछ ही पीढ़ी पहले इनका एक राज्य था। सन् ५७ में अंग्रेजों के खिलाफ तलवार उठाई और राज्य छिन गया। उन्हीं के वंश में जगम्मनपुर आदि के पांच राजा हुए। राजधानी पहले चम्बल और जमुना के संगम पर अवस्थित थी। उनके लड़के यहीं युरोपियन स्कूल में पढ़ते हैं, इसलिए पत्नी बराबर यहीं रहती है, और जाड़ा बरसात में ठाकुर साहब भी आ जाते हैं।

१५ जून को आगरा से डा० गुप्ता का तार आया, जिससे मालूम हुआ, कमला बी० ए० की परीक्षा में पास हो गई। धीरे धीरे वह अब अन्तिम सीढ़ी पर पहुँच रही है। इसका अफसोस तो जरूर था कि पूरा विषय नहीं लिया, पर अब एम० ए० का रास्ता खुला हुआ था।

मसूरी का यह मौसम परिवारों और सम्बन्धियों से मिलने का भी है। आनेवालों को इसका भी आकर्षण होता है। लेकिन रंगीला जीवन तो है ही, इसलिए वही यहाँ आ सकते हैं जिनके पास पैसा है। एक मारवाड़ी धनवान सेठ बतला रहे थे कि नई पीढ़ी में शिक्षा तो बढ़ी है लेकिन वह विलासी होती जा रही है। नई पीढ़ी से इस तरह की शिकायत बेजा है। लेकिन, नई पीढ़ी को अब परलोक के सुख पर भरोसा नहीं है, इसलिए स्वर्ग के प्रलोभनों के ऊपर वह इस जीवन के भोग को कैसे छोड़ सकती है?

१८ जून को कुमाऊँ के श्री चन्द्रशेखर शास्त्री आए। वह बनारस में साइंस पढ़ाते हैं, लेकिन इधर कई सालों से नेपाल और तिब्बत पर एक ऐतिहासिक उपन्यास लिख रहे थे, जिसके बारे में श्री बालकृष्ण शर्मा ने मुझे बतलाया था। नेपाल के राजा अंशुवर्मा की कन्या "भृकुटी" तिब्बत के प्रतापी सम्राट स्रोङ-चन-गम्बो को ब्याही गई थी। इस ब्याह ने तिब्बत और भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध को स्थापित करने में बड़ा काम किया था। "भृकुटि" उनके उपन्यास की नायिका थी। उन्होंने उपन्यास के कई स्थलों को सुनाया। वैसे उपन्यास का यों भी कठिन रास्ता है, पर ऐतिहासिक उपन्यास में तो बड़े धैर्य और अनुसन्धान की आवश्यकता है। वर्तमान समाज हमारे सामने है, उसके अंग प्रत्यंग को हम जानते हैं, इसलिए आजकल के

सम्बन्ध में उपन्यास लिखने में हमें बहुत सुभीते प्राप्त हैं। बीते समाज का उल्लेख हमें बहुत कम मिलता है, उसकी उपयुक्त सामग्री भी दुर्लभ होती है। इन सबको चुन-चुन करके जमा करना होता है। बड़ी सावधानी से कलम उठानी पड़ती है, कि कहीं कोई ऐसी बात न लिख जाएँ, जो उस समय के देश-काल-पात्र के प्रतिकूल हो।

१९ जून को श्री जगदीशचन्द्र माथुर अपनी पत्नी के साथ आए। माथुरजी हिन्दी के नाटककारों में अपना विशेष स्थान रखते हैं, साथ ही हिन्दी-साहित्य और लोक-कला में उनका असाधारण प्रेम है। बिहार के शिक्षा सचिव रहकर उन्होंने लोक रंगमंच के लिए बहुत काम किया और हिन्दी सृजन के लिए बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् जैसी एक साधन सम्पन्न संस्था खड़ी कर दी। भोजपुरी के जननाटककार भिखारी को हमारे साहित्यकार गँवार समझकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। मैं पहले ही से भिखारी ठाकुर का लोहा मानता था। माथुर साहब से यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने भिखारी के सभी नाटकों को जमा कर लिया है और नाटककार ने अपनी पद्यबद्ध जीवनी भी लिखकर दे दी है। जन्मभूमि खुरजा के नजदीक होने से उनके लिए दिल्ली अनुकूल थी, पर बिहार वाले उन्हें छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। पर अंत में दिल्ली ने उन्हें खींच ही लिया और वह यहाँ रेडियो के महासंचालक होकर आ गए। रेडियो को भारी लाभ हुआ, लेकिन बिहार को भारी घाटा।

२० जून को हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार श्री विष्णु प्रभाकर कुमारी स्वामी के साथ आए। मैंने विष्णुजी से शिकायत की—आप कुरु-पुत्र होकर कौरवी भाषा से अपनी कहानियों में क्यों नहीं सहायता लेते? उपन्यास और कहानी ऐसे माध्यम हैं, जिनके जरिये हम हिन्दी की मूल भाषा कौरवी से पाठकों का परिचय करा सकते हैं। प्रेमचन्दजी ने सैकड़ों भोजपुरी शब्दों को बड़े सुन्दर ढंग से अपनी कथाओं में डाल दिया है। विष्णु प्रभाकरजी जैसे कथाकार अपने क्षेत्र के जीवन को चित्रित करते वक्त बड़ी आसानी से कौरवी मुहावरों और शब्दों को ला सकते हैं। इससे हिन्दी का अपने मूल स्रोत से जीवित सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा, जो उसके लिए बहुत कल्याणकारी होगा।

श्रीनगर गढ़वाल से २१ को डा० उदयनारायण तिवारी की चिट्ठी आई। मसूरी आने पर मालूम होता है हिमालय ने उनके दिल में आकर्षण पैदा किया। पत्नी से कहा होगा। उन्होंने उलाहना दिया। मैंने भी बतला दिया था कि केदार बदरी जाना अब बहुत आसान है, बहुत दूर तक तो मोटर चली गई है। दोनों उसी यात्रा पर निकले थे।

२३ जून को श्री मुकुन्दीलालजी बैरिस्टर भी आए। दो घंटे तक मिलने-मुलाकात से बीच के समय और दूसरे विषयों पर बातचीत होती रही। यह खुशी की बात थी कि ऐसे विद्याव्यसनी पुरुष से साल में दो-तीन बार मुलाकात हो जाती।

अगले दिन एक अमेरिकन मिशनरी के साथ एक तरुण आए। मिशनरी जौनपुर इलाके में धर्म प्रचार करते थे। छः साल से भारत में थे। हिन्दी बोलते थे। पहले अल्मोड़ा जिले के जोहार इलाके में रहते थे। तिब्बत की सीमा के पास रहना अमेरिकन मिशनरियों की रहस्यपूर्ण बात नहीं है। अमेरिका से किसी उदार विचारों के व्यक्ति को भारत में आकर काम करने की कभी इजाजत नहीं मिल सकती। वहां से ऐसे ही आदमी भेजे जाते हैं, जो अमेरिकन थैलीशाहों के समर्थक हों। भारत ने तिब्बती सीमा के ५० मील तक विदेशी मिशनरियों को जाने से रोक दिया। विदेशी मिशनरी प्रायः सभी अमेरिकन हैं, इसे कहने की जरूरत नहीं। वह उलाहना दे रहे थे कि जोहार में हमें रहने नहीं दिया गया।

हमारे रसोई घर में पहले सात-आठ आना वाला एक ऊँचा चूल्हा बना हुआ था। न जाने बनाने वाले ने कैसे बनाया कि धुएं की चिमनी रहते हुए भी घर से धुआँ नहीं निकलता था। हमने एक अधिक बार तोड़कर धुआँ निकलने के रास्ते वाले चूल्हे को बनवाया, लेकिन सफल नहीं हुए। ६० रुपये लगाकर इस साल भी बनवाया, पर धुआँ जैसा का तैसा रहा।

आर्थिक चिन्ता के दूर होने का एक ही रास्ता था कि आय निश्चित हो। एक प्रकाशक से बातचीत हुई। वह अग्रिम देने के लिए तैयार हुए, और कुछ दिया भी। और जान पड़ा कि अब बात ठीक हो जाएगी, लेकिन अन्त में सब टाँय-टाँय फिस हो गई। और भी प्रकाशकों से इसी तरह हुआ। हिन्दी साहित्यकारों की कठिनाइयों को मैं भली प्रकार जान सकता था।

मेरी पुस्तकों का अच्छा स्वागत होता है तब भी जब यह हालत है तो नये साहित्यकारों के बारे में क्या कहना? तीन पुस्तकों को अपने यहाँ से हम प्रकाशित कर चुके थे। छपवाने के साथ ही दो दो ढाई ढाई हजार एक एक पुस्तक के देने पड़े। लेकिन बिक्री का कोई प्रबन्ध नहीं कर सके। एक सज्जन को एजेन्ट होने के लिए ८० ६० रुपया हमने दिया। सबसे बुरी बात यह हुई कि डा० सत्यकेतु ने भी पचासेक रुपये दिलवा दिये। हमारे विश्वास पर उन्होंने किया था, और उक्त सज्जन को पीकर बैठ गए।

आजकल भारत में चीन के प्रधान मन्त्री चाउ एन लाई आये हुए थे। भारतीय जनता हर जगह दिल खोलकर उनका स्वागत कर रही थी। चीन के सम्बन्ध में भारतीय सरकार भी अपने सद्भाव को दिखलाने के लिए किसी से पीछे नहीं रही। वह जहाँ गए, लोगों ने उन्हें सिर आँखों पर बठाया। भारत और चीन का दो हजार वर्ष का सम्बन्ध दोनों देशों के लिए अविस्मरणीय है इसलिए चीन के महामन्त्री का ऐसा स्वागत होना ही चाहिए। २६ जून को वह भारत की यात्रा समाप्त करके बर्मा के लिए रवाना हो गए।

एसिया के बहुत बड़े भाग में सुख और समृद्धि नव विहान की किरण फूट रही है। उधर दुनिया का ठाकुर अमरिका अपनी चालों से बाज आने के लिए तैयार नहीं। ग्वातमाला में जरा-सी उदार सरकार आ गई जो अमरिकन डंडे को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं थी। फिर क्या था, डालरों की वर्षा करके सरकार के खिलाफ अपने पिट्ठू भाड़े हथियार लिये। इन सारे काम को अमरिका निर्लज्जतापूर्वक करने को मन कर रहा था। आखिरकार अमरिकन पिट्ठुओं ने वहाँ सरकार की बागडोर सँभाली। अगर सारे यहाँ बात अन्तर्राष्ट्रीय में अमरिका ने की और साथ में जघन्य प्रतिगामी तानाशाही पापक लोगों का शासन की बागडोर सम्भालने में मदद की। जितने दिनों तक अमरिकन थैलीशाही दुनिया में उत्पात मचाती रहेगी, मानवता का अभिशाप बनी रहेगी?

२ जुलाई को लखनऊ के चित्रकार श्री रामचन्द्र साथी कुमारिल्जा के साथ आए। साथी उन्नीयमान चित्रकार हैं। उस्तादों के नाम पर जिस तरह मैं संगीत की दुर्गति का वर्णन नहीं कर सकता, वैसे ही नाना कारणों से

नाम पर प्रकृति से कोई सम्बन्ध न रखने वाला, उससे बिल्कुल उल्टी चित्र-कला को भी पसन्द नहीं करता, और अपने इन विचारों को प्रकट करने में बाज नहीं आता। नये पुराने कई ऐसे उस्ताद हमारे देश में हैं, और जब से चित्रों में ऐसों को लम्बी नाक वालों ने सिर पर उठाना शुरू किया, तब से हमारे यहाँ वालों की भी हिम्मत बढ़ गई। साथी के चित्रों को देखकर यह प्रसन्नता हुई कि उनके पैर ठोस पृथिवी पर हैं। ठोस पृथिवी पर पैर रखे भी आदमी कल्पना की उड़ान में सातवें आसमान पर पहुँच सकता है यह हम अजन्ता की चित्रकला में मालूम है। साथी के कुछ कल्पनामय चित्र ऐसे सुन्दर थे।

३ जुलाई को किताब महल की रायल्टी का हिसाब आया। मालूम हुआ, पिछले साल १७०० रुपये की आमदनी हुई, अर्थात् उसके बल पर हम मासिक डेढ़ सौ रुपया भी खर्च नहीं कर सकते। कभी-कभी सोचता था, समय ऐसा भी देखा, जबकि पचास रुपये में भी मेरा काम चल जाता, पर उस समय मैं घुमक्कड़ था, निर्द्वन्द्व था, अपनी चादर के अनुसार पैर फैला सकता था। अब तो वह बात नहीं। जया सामने था। वह [illegible] की थी। समस्त, तोता और सू (सून) भी कह लेती थी। दूसरों की मुसकुराहट को देखकर वह उसका भाव भी समझ जाती। आम तौर से रोती नहीं, हँसती और हँसाती रहती। जया को इस लोक में लाने की जिम्मेवारी हमारे ऊपर था, यह ख्याल करके मन और भी भारी हो जाता। उसे कुछ जुकाम हो गया था। अगले दिन कुछ बुखार भी रहा। भैया ने पेनिसिलिन का इन्जेक्शन देना चाहा, लेकिन सूई घुस नहीं पाई। बेचारी को मुफ्त की तकलीफ हुई।

जरा भी गुस्सा आने पर सुखरामा के ऊपर हाथ छोड़ देना भाभीजी के लिए मामूली बात थी। वह समझती थी, यह निरा बुद्धू है, इससे अक्कल छू नहीं गई है। वह मारना बर्दाश्त करता आया था, इससे भी पशु धारणा पक्की हुई था। ५ तारीख को वह भाग गया। तब आटे-दाल का भाव मालूम हुआ। कड़े मिजाज की मालकिन के लिए ऐसा नौकर आसानी से नहीं मिल सकता। भैया भी नहीं पसन्द करते थे कि उसे निरा पशु माना जाय।

आज की खबरों से मालूम हुआ कि पूर्वी पाकिस्तान की तानाशाही ने वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी को गैर कानूनी घोषित कर दिया। कम्युनिज्म कहाँ कानून की छाया में पला ? इन्दो चीन में वियतनामियों से फ्रांस बुरी तरह पिट रहा था। अमरिका की सहायता कोई काम नहीं आ रही थी।

६ जुलाई को मेरे अनुज श्यामलाल के द्वितीय पुत्र रामविलास की चिट्ठी आई जो ५ को उन्होंने लिखी थी जिसके कुछ अंश थे—"पिताजी की इस समय वही हालत है जो मरने से कुछ समय पूर्व बाबा की हुई थी। वह केवल नरकंकाल के रूप में वर्तमान हैं। जिस जमीन और इज्जत को उन्होंने अपने खून से बनाया था, वह उनके सामने जलकर राख हो रही है। ऐसी परिस्थिति में उनका बाबा की तरह पागल हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है। घर प्रायः भूमिसात् हो चला है। इस वर्षा में शायद नहीं हो बचेगा। बैलों की तादाद दो है वह भी स्वस्थ नहीं। वर्तमान हालत में इस साल धान इत्यादि की खेती करना सम्भव नहीं दीखता है। इस प्रकार हो सकता है उस सारी जमीन से हाथ धोना पड़े। ऐसी हालत में वंशलोप से नाता पूर्ण तया समाप्त हो जाएगा।" चाहे परिस्थिति में अतिशयोक्ति से काम लिया गया हो, लेकिन वह दुःखद थी, इसमें क्या शक ? पर उपाय क्या ? हमारी आर्थिक स्थिति किसी प्रकार से सहायता देने लायक नहीं थी। देश की भीषण स्थिति हमारे सामने साकार थी। भारत में ऐसे लाखों घर उजड़ रहे हैं। कल का अच्छा खाता पीता परिवार आज असहाय हो रहा है। ध्वंस चारों ओर होता दीखता है, पर सृजन कहीं नहीं।

अपराह्न में श्रीमती रजना पणिक्कर अपने पति कप्तान पणिक्कर के साथ आई। पंजाबी नगर लोगों ने अपने को नायर बनाकर मलयालियों का भ्रम पैदा किया। हिन्दी की कथा लेखिका रजनीजी ने मलयाली से ब्याह करके अपने को सचमुच मलयाली सिद्ध कर लिया। छः वर्ष पहले जब शिमला में देखा था तब वह पतली छरहरी थी। अब जरूरत से ज्यादा भारी हो गई थीं। इधर उन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं। मालूम हुआ श्री प्रभाकर माचवे रेडियो छोड़कर अब साहित्य अकादमी में आ गए। उनके लिए यह अधिक उपयुक्त स्थान था। अगले दिन शाम को घूमने गए तो २२ वर्ष बाद मदाम मार्री का दर्शन हुआ। १९३२ में पेरिस में उनसे

मुलाकात हुई थी। अब दिल्ली म ही रहती ह और वहा आल इंडिया रेडियो म काम करती हैं। चलते चलत कुछ दर तक बात हुई। ४ जुलाई की रात स ही वर्षा शुरु हो गई थी। ८ की रात से शुरू हुई, तो अगले दिन दोपहर तक बराबर जारी रही। फिर तो कभी जोर की और कभी बूदा बांदी रहती। आसमान कभी ही निरभ्र होता था। वर्षा अब अपनी कसर निकालना चाहती थी। साधारण सलानी जा चुके थे और उनकी जगह अब पजाब क सलानी ल रह थ।

मसूरी के हितमित्रा म वद्य रामभूलायजी भी हैं। वह डी० ए० वी० फार्मेसी क सचालक है। गर्मी बरसात म यहाँ रहत है जाडा म देहरादून और दिल्ली म अपना काम दस्तत प्रक्टिस करते हैं। उनकी दो लड़किया है। ९ तारीख को मालूम हुआ उन्होंने एक लडका गोद लिया। आजकल क जमाने म लडकिया क रहते कोइ शिक्षित लडके को गोद ले, यह सोचन की भी बात नही। नाम क लिये ? नाम तो अपने परदादा का भी बिरल ही जानते है। ११ जुलाइ इतवार को श्रीमती सुधा अपने पति श्री प्रतापसिंह क साथ आई। डा० मगलदेव की पुत्री का मैं उसक सभी भाइया और बहनो क साथ बचपन स ही जानता था। बराबर देखता रहे तो आदमी का आश्चय नही होता लेकिन दस बारह वप की लडकी का जब बारह वप बाद देखने का मौका मिल, तो आश्चय क्या न हो ? मालूम हुआ उनक एक भाई डाक्टर ह और आजकल आसाम म है। डा० मगलदेवजी अब भारमुक्त थ। लडका ने काम पकड लिया है और लडकियाँ विवाहित होकर अपन पतिकुला म चली गइ।

१४ तारीख को किसी पत्रिका म डा० रामविलास शर्मा के लख पर नजर गई। मतभेद होना कोइ बुरी बात नही और उसकी नुक्ताचीनी की जाए इसका भी मैं स्वागत करता हू। उन्होंने मर्यादा तोडकर यह काम किया था, मुझे उकसाया भी था लेकिन मैंने उसका जवाब देना पसन्द नही किया, दूसरा न ही जवाब दिया। अब देखा उन्होंने लिखा था—सरकार राहुलजी और डा० रघुवीर का लाखो रुपय देकर परिभाषाएँ बनवा रही है। इस सफेद झूठ का भी कोई अत है ? ऐसा आदमी कम्युनिस्ट का भक्त भी हो सकता है ? मुझ एक प्रतिभाशाली आदमी क इस पतन पर बहुत

अपमान हुआ। परिभाषा के काम को अगर सरकार मन से करवाती, तो मैं उसमें सहयोग देने के लिए तैयार था। संविधान की परिभाषाओं के निर्माण में मैंने वैसा किया भी। पर जब देखा कि शिक्षा मंत्रालय उसमें रोड़ा अटकाना चाहता है, तो मैं उससे अलग हो गया। डा० रघुवीर और हमारी परिभाषा निर्माण-सम्बन्धी नीति में जमीन आसमान का अन्तर है। उनके साथ मेरे नाम को जोड़ना यही बतलाता है कि शर्माजी बहुत निचले तल पर उतर आए हैं।

१५ जुलाई को बच्चा रखने के रेक को पकड़कर जया खड़ी हुई रेक उसके ऊपर गिर गया। चोट लगी बहुत बुरी तरह से रोने लगी। बच्चा को कितना ही सँभालकर रखा जाए किन्तु कोई-न-कोई ऐसी घटना हो ही जाती है, खासकर जब वह अपने हाथ पैर को इस्तेमाल करने का बहुत आग्रह करने लगते हैं। दस महीने की होकर जया जमीन पर अच्छी तरह हाथ पैर के बल से चलती थी। हर समय चारपाई से नीचे गिरने का डर रहता था। चार दाँत निकल आए थे। कुछ शब्दों का अनुकरण भी करती थी।

यद्यपि भाषा समिति ने स्वीकार किया है कि हिन्दी की मूल भाषा कौरवी है अर्थात् वह भाषा जो कि गंगा जमुना के बीच के सहारनपुर मुजफ्फरनगर मेरठ के पूरे बुलन्दशहर के आधे जिले गंगा के पूर्व बिजनौर जिले और जमुना के पश्चिम पंजाबी मारवाड़ी ब्रज की सीमाओं तक के फैले प्रदेश में बोली जाती है श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने अपने एक लेख में इस धारणा को बिल्कुल गलत बतलाया। 'कौरवी हो हिन्दी की मूल बोली है' इस पर मैंने एक बड़ा लेख "सम्मेलन पत्रिका" के लिए लिख डाला।

इन्दो चीन में फ्रांस अमेरिका की शह पर लड़ रहा था और चाहता था कि अब भी वहाँ पुराना उपनिवेश बरकरार रहे। लेकिन द्वितीय युद्ध के बाद एसिया के लोग यूरोप के जूए को उठाने के लिए तैयार नहीं थे। कोरिया में सिंगमनरी को चौकड़ी को अमेरिका ने शह दिया और अपने लग्गू भग्गुओं में भी मन्द पाने की इच्छा की लेकिन परिणाम यह हुआ कि अमेरिकन नौजवानों को जाकर भारी संख्या में कटवाना पड़ा। इन्दो चीन में कोरिया की तरह वह सीधे जाना नहीं चाहता था, दूध का जला था। फ्रांस वहाँ तक अपने

जवानो क खून स होली खेलता ? अमरिका जोर देता ही रहा लेकिन फ्रास ने स्थायी सधि कर ली। सारी दुनिया म उस दिन हप प्रकट किया जा रहा था और अमरिकन थलीशाहा क घर मे मौत की उदासी छाई हुई थी।

कुछ चीनी व्यजना म मैं और कमला एकसी रुचि रखते हैं। कलिम्पोग मे कमला के पडोस म चीनी भोजनाल्य था जहाँ की कितनी ही चीज वह बचपन मे ही खाकर परिचित है। मुझे मोमो स परिचय तिब्बत म हुआ और अण्डे वाली सवयाँ तथा कीमा मिला ग्य थुक (चीनी सूप) भी बहुत पसन्द आता। मसूरी म कुल्हडी म 'क्वालिटी' का भोजनाल्य सभी तरह के भोजनो क लिए विशेष प्रसिद्धि रखता है। २२ जुलाई को भया क यहाँ जाते वक्त हम वहाँ चले गए। भाभीजी न खाना बनाकर तयार रखा होगा लेकिन 'क्वालिटी' ने हम अपन भीतर खीच लिया। चीज महगी थी। चाउचाउ मुझे पसन्द नही आया लेकिन ग्य थुक बहुत स्वादिष्ट लगा। भाभीजी के यहाँ भी कुछ खाना जरूरी था नही तो उनका बनाया पक्वान बेकार जाता।

श्री सदानन्द महता मरे सुझाव पर पी एच० डी० के लिए भारतीय भौगोलिक अनुसधान कर्ताओ क ऊपर थिसिस लिखने के लिए राजी हुए थे। पहले मैंने चाहा देहरादून डी० ए० वी० कालज के किसी प्रोफेसर के निरीक्षण म काम करें क्योकि मेहताजी अब वही सर्वे विभाग म काम करते थे। दो तीन के साथ लिखा पढी हुई, कभी कोइ अडचन उठी, कभी कोइ। २४ जुलाइ को शाम का मेहताजी क आने पर मालूम हुआ, आगरा विश्व विद्याल्य न मुझ सुपर्वाइजर बनाया है।

भतीजे के पत्र से चिन्ता बहुत हुई थी, यद्यपि वसा करके मैं कोई सहायता नही पहुँचा सकता था। २६ जुलाई को श्यामलाल का पत्र आया। वह घर का रोना कभी मरे सामने नही रोता। घर की जमीदारी म कुछक काश्तकार अब भूमिधर बन गए थ। उसक मुआवजे मरे नाम ८२ रुपये आए थ जिसके लेन के लिए लिखने क वास्ते उन्होंने कोइ कागज भेजा था। अब भी ३५ ४० एकड खेत उनके पास थ। पुरान जमाने की तरह दूसरा क भरोसे अब काम नही हो सकता था। बडा लडका एम० ए० करक अब बाहर स्कूल मास्टरी कर रहा था। दूसरा लडका दिल्ली म क्लर्की म

जुटा हुआ था। घर म दो और लडके रह गए थ, जो डीहा हाइ स्कूल म मट्रिक म पढ रह थे। मरे बचपन म यहाँ प्राइमरी स्कूल था और हमारे गाँव के पढन वाले लडके थाडे ही थे जो तीन मील चलकर वहाँ पहुचा करते। श्रीनाथ के दो लडके दिल्ली म उनके साथ थे। अगली पीढी म कोई खेती सँभालने के लिए तयार नही, क्योंकि सभी पढ लिख गए हैं और दोनो अपने भुजबल पर ही होन वाली है।

२७ तारीख को भाई पृथिवीसिहजी आए। सरदार पृथिवीसिह से मेरी बहुत घनिष्ठता रही है, यह जीवन यात्रा के दूसरे भाग से मालूम होगा। अब उनक स्वास्थ्य पर आयु का असर दीख रहा था। स्वास्थ्य क लिए ही वह कश्मीर जाते हुए यहाँ आए थ। उनकी जीवनी के दूसरे सस्करण म कुछ और बातें भी मैं जोडना चाहता था क्योकि उसे लिखे दस ग्यारह वष हो गए थ। पाँच छ दिन अच्छे कटे और जीवनी के लिए कितनी ही सामग्री भी मिल गई। यह दूसरा सस्करण वाराणसी के ज्ञानमण्डल न प्रकाशित किया। सरदार पृथिवीसिह का सारा जीवन देश की स्वतन्त्रता क सघर्षों म गुजरा। बीस वष के ही थे जब अमेरिका क सुखमय जीवन को लात मार कर क्रान्ति करने भारत आए। उनकी कम आयु को देखकर ही फासी की सजा की जगह आजन्म कालापानी मिला नही तो उन्हे तरुण करतारसिह की तरह फासी के तख्ते पर झूलना पडा होता।

भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) का हर सप्ताह दो तीन बार समागम होता रहा। हमारी आर्थिक कठिनाइयो का उन्हे किसी तरह पता लगा और जब यह भी सुना कि मैं शायद देश स बाहर जान की इच्छा रखता हूँ तो एक दिन (३ अगस्त) गम्भीर किन्तु सहज भाव स कहा "बाहर जान की जरूरत नही है। हमारे पास काफी है।" उनकी सहृदयता और उदारता को मैं स्वीकार करता था और यह भी जानता था कि हमारा सम्पर्क बहुत घनिष्ठ हो गया है। पर मैं तो अपने बल पर ही खडा होना चाहता हूँ इसे छोडकर दूसरा रास्ता पकडना मेरे लिए प्रिय नही।

आजकल पोर्तुगीज और फ्रेंच अधिकार म पडे भारतीय क्षेत्रो की स्वतन्त्रता का आन्दोलन चल रहा था। फ्रेंच भवितव्यता के बारे म कुछ सोच सकते थ। सालाजार का पोर्तुगीज तानाशाह अमरिका और इगलण्ड के

बन पर कूद रहा था। लेकिन पंच बस्तियों को भी बिना कुर्बानी के खाली नहीं कराया जा सकता यह निश्चित था।

अब की क्वार्टरिया न यहाँ से जो पुस्तकें खरीदकर लाए थे उनमें से एक में एक जगह दार्जिलिंग के एक मारवाड़ी सेठ के दक्ष कारपरदाज प० नगनारायण तिवारी के बारे में पढ़ा। पुरानी स्मृति जाग उठी। नगनारायण तिवारा याग्य थे। कमाकर घर की हालत बेहतर बनाना शुरू ही किया था कि उनका दाना आँख जाती रही। कुछ अंग्रेजी पढ़े हुए थे। अंग्रेजी शासन के खिलाफ थे। असहयोग आन्दोलन छिड़ते ही वह उसमें कूद पड़े। और फिर जब तब जीए तब तक राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेते रहे। हर बार जेल जाते रहे। १९२१ में मैंने एकमा (छपरा) में काग्रेस का काम शुरू किया उसी दिन वह मेरे साथी हुए। हम बराबर गाँव-गाँव घूमते थे। तिवारीजी अपनी बोली (भोजपुरी) में अच्छा व्याख्यान देते और गीत बना-कर गाते थे। शायद "भला आवल" के लेखक रेणुजी के जिले पूर्णिया में भी वह स्वराज्य के प्रचार में घूमे थे क्योंकि उनके इस श्रेष्ठ उपन्यास में एक जगह तिवारीजी के नाम से उनके पद की एक पाँती उद्धृत थी। नाम याद आते ही मन ने कहा कि जो आदमी आँखो से मजबूर होने पर भी स्वराज्य की रट लगाए उसके लिए दुःख झेलते चला गया। उसकी स्मृति फिर एक बार नई पीढ़ी को दिलानी चाहिए और मैंने एक लेख लिख दिया।

सभी जगह की तरह लक्ष्मीपात्र अंग्रेजों के समय देश की आजादी की नहीं बल्कि राजभक्ति की परवाह किया करते थे। अब तो काग्रेस में आने खतरे की बात नहीं, और अपने पक्ष के ज्यादा मेम्बर बनवाना भी बाएँ हाथ का खेल है। मसूरी काग्रेस सभापति और मन्त्री ऐसे ही थे। पुराने समय से काग्रेस की सेवा करने वाले उनसे जलते थे। एक दिन सुना बहुत से हस्ताक्षर कराके लोग प्रान्तीय काग्रेस के सभापति के पास आवेदन पत्र भेज रहे हैं कि उन्हें हटा दिया जाए। कितने भोले हैं ये लोग? इनकी अक्ल पर तरस आता। नहीं समझते काग्रेस में गुणात्मक परिवर्तन आ गया है उसकी कायापलट हो गई है। उसके बड़े-बड़े नेता अब भुखड़ों की जमात के नहीं हैं न उनका स्वार्थ उनके साथ सम्बद्ध है। अब तो उच्च वर्ग के धनी मानी उनके हितमित्र हैं जवानी या शिष्टाचार के नाते ही नहीं, बल्कि विवाह

सम्बन्ध भी अब उनके लखपतियों करोड़पतियों से नीचे के साथ नही होते। वह मसूरी के काग्रेसियो के चिल्लपो को क्यो सुनने लगे ?

नेहरू ने नारा दिया ' काम काम काम और फिर आराम हराम है।' निहित स्वार्थवाला और उनके पक्षपातियो के नारे खोखले होते हैं। उनका काम जनता के ध्यान को बँटाना है। दो पैसे भर अक्कलवाला आदमी भी जान सकता है कि भारत मे शिक्षित हो या अशिक्षित गाव के हो या शहर के सभी काम चाहिए काम चाहिए ' चिल्ला रहे हैं। भोर से उठते हैं और आधी रात तक उनकी यही रटन रहती है। पढे लिखे लोग दफ्तरो मे घूमते हैं अफसरो और सेठो की खुशामद करते है कि हाड चाम इकट्ठा करने के लिए कोई काम मिल जाए। भूखे रहते रहते गाव के गरीब तग आ जाते हैं तो घर छोड चार चार पाच-पाच सौ मील दूर काम की तलाश मे जाते है। कितने ही खोज करते करते वही मर जाते हैं कितने ही धक्का खाने फिर अपने घरो की ओर लौटते हैं। भला इन लोगो के सामने आराम हराम है कहना निरी वचना नही है। उनको आज की व्यवस्था मे काम कैसे दिया जा सकता है ? जब पूजीवाद के गिरामणि देश अमरिका मे भी लाखो आदमी हर वक्त बेकार रहते हैं तो हिंदुस्तान उस समस्या को हल कैसे कर सकता है ? बेकारी का उच्छेद केवल समाजवादी देशो मे हुआ। चीन मे चुटकी बजाते बजाते यह काम किया गया। ऐसा क्यो हुआ? उन देशो मे आदमी के बौद्धिक और शारीरिक श्रम को अनन्त मूल्यवान पूजी माना जाता है उसको बेकार न रखकर काम मे लगाना राष्ट्र अपना कर्तव्य समझता है। इसीलिए बडी बडी योजनाए बनाकर लोगो को काम पर भिडा दिया गया। वहा जलनिधियाँ बन रही हैं नहरें खुद रही हैं गाँव गाँव कम्यून स्थापित हो रहे हैं नये-नये कारखाने बन रहे हैं। इस तरह सबको काम मिल रहा है। भारत मे मुह से चाहे कुछ भी करें लेकिन काम से कतराने वालो का खुश रखना उनके स्वार्थ पर कम-से-कम आँच आने देना सरकार का कर्तव्य है। आँखो के सामने भ्रष्टाचार हो रहा है। ६६ प्रतिशत मन्त्री स्वय गले तक उस कीचड मे दबे हुए हैं। कभी दूसरो को भ्रष्टाचार से अलग रहने का उपदेश देते हैं उसके उन्मूलन के लिए कमेटियाँ और अफसर नियुक्त करते हैं। अगर सचमुच हो दुनिया मे कोई भगवान होता, तो ऐसे

बच्चों की जीभ निकाल लेता उन्हें जलाकर खाक कर देता। अंग्रेज जब थे उस वक्त भी लोगों की हालत बुरी थी उस वक्त भी रिश्वत और भ्रष्टाचार था, लेकिन उतना नहीं था जितना आज सात वर्ष बाद दिखाई दे रहा है। एक दिन डा० सत्यकेतु से चर्चा चल रही थी। उन्होंने कहा ५० फीसदी लोग रोटी के लिए त्राहि त्राहि कर रहे हैं। मैं उनसे सहमत नहीं था। हो सकता है फसल कटते वक्त त्राहि त्राहि करनेवालों की संख्या आधी हो पर साल के अधिक दिनों में उनकी संख्या तीन चौथाई से कम नहीं। अब इनमें वे लोग भी शामिल हो गए हैं जो सात ही आठ वर्ष पहले खुशहाल समझे जाते थे।

सरकार के कर्णधारों के ढोंग और वंचना क्या एक दो हैं कि उसे गिनाया जाए? हमारे देश के एक बहुत अमेरिकापरस्त साहेब ने वन महोत्सव आरम्भ किया। अब हर साल बरसात के शुरू में सेठों के अखबारों में वन महोत्सव के बारे में प्रचार किया जाता है करोड़ों वृक्षों के लगाए जाने के आंकड़े दिए जाते हैं लाखों रुपये इसमें बरबाद किए जाते हैं। लेकिन यह महोत्सव कैसा सफल हो रहा है इसका उदाहरण मसूरी में ही मिला। अखबारों में छपा कि मसूरी में १० हजार वृक्ष लगाये गए। मैं समझता हूँ संख्या में बहुत अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया गया किन्तु क्या वे वृक्ष हैं? एक दो अंगुल मोटी ज्यादा से ज्यादा एक हाथ लम्बी एक वनस्पति यहाँ पहाड़ में होती है। ऐसी बेहया है कि यदि कहीं भूल से भी पड़ जाए, तो वहाँ से हटने का नाम नहीं लेती। उसमें फूल भी होते हैं लेकिन सुन्दर नहीं। बस उसी को सड़क के किनारे दो दो हाथ पर लगवा दिया गया। दूसरी जगहों से यहाँ के वन महोत्सव मनाने वाले ईमानदार कहे जाएँगे, क्योंकि और जगह लगाने भर के लोग जिम्मेवार होते हैं। उनके वहाँ से खिसकते ही हफ्ते भर में किसी पौधे का नामोनिशान नहीं रहता। लेकिन इस बेहया वनस्पति में से बहुत सी दो साल बाद आज भी आपको दिखाई पड़ेंगी।

१८ अगस्त को अग्रवालों की विवाह पद्धति पर डा० किरणकुमारी गुप्ता का पुस्तक छपी मिला। मैंने आधी दर्जन महिलाओं को इसके लिए प्रेरित किया था और उन्होंने स्वीकार भी किया था। लेकिन उस किरणजी

ही पूरा करने म सफल हुईं। पुस्तक बहुत अच्छी तरह लिखी गई। उन्होंन सारे अग्रवालो को नही बल्कि कदीमी अग्रवालो तक ही अपने को सीमित रखा और उनमें भी उन्ही को लिया, जिनकी मातृभाषा ब्रजभाषा है। इस पुस्तक के द्वारा वृद्धाओ के कण्ठ और स्मृति म ही सुरक्षित सारे विवाह के रीति रिवाज और दो सौ के करीब गान जमा हो गए। हरेक भाषा-क्षेत्र की दो-दो तीन तीन जातियो के बारे म इसी तरह की विस्तृत अनुसंधानपूर्ण पुस्तकें यदि तैयार हो जाएँ तो नृतत्वीय तुलनात्मक अध्ययन का काम कितना आगे बढ सकता है? हमारी शिक्षिता तरुणियो का इधर ध्यान नहीं है। जब ध्यान जाएगा तब वृद्धाएँ अपने साथ बहुत-सी विधि विधानो और गीतो के लिए मर चुकी रहेगी।

१९३७ म रूस जाते समय ईरान की राजधानी तेहरान म कुछ समय ठहरा था। उसी समय सरदार रामसिंह से मुलाकात हुई थी। वह किसी सैनिक ठेकेदार के कारपर्दाज थे। क्वेटा से रेल म जाते हमारा परिचय हो गया था। महीने डेढ महीने से ज्यादा हम दोनो एक दूसरे के सम्पर्क म नहीं रह होगे पर सम्पर्क ऐसा जरूर था कि हम एक-दूसरे को भूल नहीं सकते थे। एक सैनिक अफसर मित्र से उनके बारे म पता लगा। चिट्ठी भी भेज चुका था। उस दिन १६ अगस्त को एकाएक आ गए। घर पश्चिमी पाकिस्तान म था लेकिन शरणार्थी होने म पहले ही वह कारबार के सिलसिले म यहाँ आ गये थे। १७ वर्ष म बाल दाढी सफेद हो गई थी। दाढी चोटी से उनको कोई काम नहीं था, लेकिन बाप दादे सिक्ख होने से दाढी रखते चले आये थे, इसलिए वह उस दान के लिए तैयार थे। मैं कभी-कभी सोचता हू कि पंजाब म दाढी-चोटियो ने कैसा बदनमोजी का तूफान खड़ा कर रखा है? पहले ऋषि मुनि नहीं सभी लोग जन्म से ही अपने बालो की रानी को मृत्यु तक बचाकर ले जाते थे। फिर वृद्धो को यह काम सौंपा गया, और जवानो ने दाढी से छुट्टी ले ली। कम आज से सात आठ सौ वर्ष तक अगुण्ण चले आये थे। लम्बे केशो को सजाकर रखना पुरुष भी आवश्यक समझते थे। जयचन्द्र के दरबारी कवि द्विपालवद्धा चिकुरा (दो फाँक करके बाँधे केशो) की प्रशंसा करते नहीं थकते थे। फिर मनचले तरुण निकले जिन्होंने तीन चौथाई सिर को लम्बे केशो से

खाली कर दिया। पूजा के समय शिखर वाला म गाठ ल्गा ली जाती थी, जो सकडा वष बाद धार्मिक अनुष्ठान बन गया। यदि सारे केश का साफ कर दिया जाता तो पूजा के समय गाँठ कम बधता ? इसलिए बीच म काफी बाल चुटिया के लिए छोड दिये जाते। नियम बनाया गया कि चुटिया गौ के खुर क बराबर हो। मालूम नहीं गुजराती गाय क खुर के बराबर या एक दिन की बछिया के बराबर। मद्रास क ब्राह्मणा म अभी हाल तक इस वचन का पालन का आग्रह था। पीछ से देखने पर किसी किसी की चुटिया तो महिलाओ क कच की तरह मालूम होती। चुटिया स छुट्टी लेने वाले सबस पहले बगाली रह। धीरे धीरे यह रोग सारे हिन्दुस्तान म फल गया। अब नवशिक्षित हिन्दू-तरुणो म चुटिया सपना हो गई। केशो का हमारे यहाँ यह इतिहास है। सिक्खा म केश दाढी को धम का अग माना जाता है, लेकिन नई रोशनी मे वर्तिन बवाल भी दाढा मुडा देना मामूली बात समझने। अब तो छुरे से नही क्या स बडी चतुराई के साथ दाढी छाटी की जाती है। कितने ही लोग केशो को भी बीच बीच स निकाल लेते हैं। बहुत से शिक्षित नौजवान तो अब उससे बिल्कुल मुक्त हो गय है। इस्लाम मे भी दाढी पर बहुत जोर था। तेहरान म मैंने एक ईरानी का हमारे भाइयो को देखकर कहते सुना—

"हमा मदुमा आदम शवन्द व रीशिया ताहनोज आदम न मीशवन्द।" (सभी मर्द आदमी हो गये, पर दाढी वाले अभी भी आदमी नही हुए।) दुनिया म केशो के ऊपर सभी जगह आफत आई है।

अब की १५ अगस्त के समारोह म मैं शामिल नही हुआ था। गाधी चौक पर समारोह देखने कमला गई थी, और वहा वहाँ होकर खडी खडी गिर पडी। समाज स पास म परिचित लोग भी थ, उन्होंने मदद की। टाउन हाल म सभा हुई, तो वहाँ कांग्रेसियों और गैर कांग्रेसिया म झगडा उठ खडा हुआ। कांग्रेस वाला म भी जहाँ नेतृत्व क लिए झगडा नहीं है, वहाँ धनियो क नये नेतृत्व के प्रति घृणा तो है ही, इसलिए वह भी गैर-कांग्रेसिया क साथ सहानुभूति रखते है। कहते थ डेढ घटा तक सभा म हल्ला गुल्ला रहा बहुत से लोग उठके चले गए। इस दिवस को तो हम राष्ट्रीय पर्व के तौर पर मनाना चाहिये क्योंकि इस दिन दो सौ वर्ष स स्थापित विदेशी स्वेच्छा-

चार का अंत हुआ था। दिल के गुबार का निकालने के लिए और अवसर मिल सकते हैं। पर, यह समझे कौन?

मसूरी और देहरादून पर मैं लिखने का ख्याल आते यहाँ के पुराने एंग्लो इंडियन परिवारों की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। हमारे पास के बड़े होटल चार्लविल के बारे में किसी ने यों ही कहा विल्सन नाम के अंग्रेज ने अपने पुत्र चार्ल्विल के नाम से इसे स्थापित किया था। यह भी बतलाया गया कि यह वही विल्सन था जिसने गंगा में पहले पहल लकड़ियाँ बहाई और जो टेहरी रियासत का बड़ा ठेकेदार था तो मुझे ११ साल पहले देखा हर्सिल का बंगला याद आने लगा। मैं उसके पीछे पड़ा। सूचनाएं इकट्ठा नहीं मिली। जरा जरा सा जमा करने पर पता लगा कि उसका नाम फ्रेडरिक विल्सन था। १८४० ई० में वह स्थायी तौर से भारत चला आया था और वर्षों शिकार ही उसकी जीविका का साधन रहा। गंगोत्री के आसपास की भूमि को उसने अपना निवास स्थान बनाया। वहीं मुखवा की एक लड़की से ब्याह किया। फिर हर्सिल में वह बंगला बनवाया जो सौ साल बाद भी अभी सुदृढ़ खड़ा है। उसके दो लड़के थे। चार्ली बड़ा था। विल्सन पीछे जंगल का ठेका लेकर लाखों का स्वामी हो गया। उसने जगह-जगह मकान बन गये। उसके पास छः-छः, सात सात हाथी रहते। अंग्रेज और देशी कितने ही अफसर थे। पिछली शताब्दी के चतुर्थ पाद के आरम्भ में ही उसका देहान्त हो गया। चार्ली ने जायदाद का खून बरबाद किया। उसकी ७० साल से ऊपर की बीवी अब भी देहरादून में रहती हैं। उनसे भी मैंने पूछ ताछ की। विल्सन ने एकान्त शिकारी जीवन का आनन्द लिया और जब तक घर में बल रहा पश्चिमी तथा मध्य हिमालय में घूमता रहा। वह एक जबर्दस्त घुमक्कड़ था इसलिए शिकारी विल्सन की तरफ मेरा आकृष्ट होना स्वाभाविक था। मैंने उसकी एक छोटी सी जीवनी लिखी।

दूर से देखने पर पालतू जानवरों का रखना केवल खुशी-खुशी की बात मालूम होती है लेकिन यह वैसी बात नहीं है। कुत्ते चूंकि कमरे में साथ सोते-बैठते हैं। वह बाहर से बीमारियों को ला सकते हैं। उन्हें बराबर धा-धाकर रखने की जरूरत पड़ती है। भूत अल्सेशियन है इसलिए उसके बाल घने हैं। बालों के जंगल में कितने ही जन्तु पलते हैं। पिस्सुओं से पिण्ड

छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। हफ्ते दो हफ्ते में दवाई से धोने पर भी पिस्सुओं का कुछ नहीं बिगड़ता था। डी० डी० टी० सूखे पौडर को भूत डालने नहीं देता था। इधर न जाने कहाँ से किलनियाँ बटोर लाया था। आसपास दूसरे कुत्ते हैं ही उनसे या मौसम के वक्त जगह जगह बंगलों के बाहर भेड़ें और गायें रहती हैं उनसे लाया होगा। कुछ किलनियाँ घर में भी रेंगती, और कुछ खून पीकर गोलमटोल मटर जैसी हो कानों के पास लटकती जिन्हें निकालने देना भूत अपनी शोभा की हानि समझता।

लखनऊ के कप्तान गुप्त मनमौजी जीव हैं। घूमने का शौक है, चौथे पन में पैर रख चुके हैं और शरीर हलका नहीं है तो भी समझते हैं कि हमें दुर्गम पर्वतों पर चढ़ना चाहिए। हर साल गर्मियों में यहीं आ जाते और हमें भी दर्शन दे जाते हैं। लेकिन अक्सर बरसात के आखिरी महीनों में आते हैं। इससे पहले हिमालय में कहीं सैर कर चुके रहते हैं। २३ अगस्त को आए। अबकी दो-तीन महीने हर्सिल रहे थे। विल्सन के बंगले ने उन्हें भी आकृष्ट किया था। उन्होंने भी विल्सन के बारे में जानने की कोशिश की थी। बतला रहे थे लोग कहते हैं—विल्सन ने पहले मुखवा के एक ब्राह्मण लड़की से ब्याह करना चाहा। वह वहाँ के लोगों में घुल मिल गया था। लोग उसकी उदारता से बहुत खुश थे। लेकिन, जब लड़की देने का सवाल आया, तो पण्डा लोग बिगड़ उठे। फिर उसने धराली की एक धनी की लड़की को ब्याहना चाहा। उसमें भी सफल न होकर मुखवा के ढोली (हरिजन) की परम सुन्दर लड़की से ब्याह किया और और माँ-बाप को निहाल कर दिया। पीछे जंगल का ठेका लेकर लखपती हुआ। श्री मुकुन्दीलाल बैरिस्टर कई वर्षों तक टेहरी के चीफ जज रह चुके थे, उनसे भी कितनी ही बातें मालूम हुई। विल्सन ने अपने लड़कों को अच्छी शिक्षा देनी चाही, लेकिन वह बिगड़ गये। जब तक शिकारी विल्सन जिन्दा रहा तब तक सब लोग उसका लिहाज करते थे। फिर चार्ली और हेनरी ने अपने स्वेच्छाचार से ऊधम मचाया। कोई खून भी हो गया। राजा ने इसकी शिकायत अंग्रेज रेजीडेंट से की। वह इन अचगारे जवानों को क्या बचाता रह सकता? उन्हें टेहरी से बाहर निकाल दिया गया। कप्तान गुप्त कह रहे थे, विल्सन के बंगले को अब सरकार ने ले लिया है।

हमार हैपीवेली मुहल्ले के सबसे वृद्ध हैं शादीलाल, जिनकी उमर ७० के करीब होगी। दस-बारह वष क थे तभी वह देश से मसूरी चले आए। कई बेटे है। बेटा से अलग ही रहते हैं। पुरानी मसूरी खासकर हैपीवेली की बहुत-सी पुरानी बात उन्हें याद हैं। उन्होंने बतलाया कि चालविल का पहला नाम हाग्सन था। हाग्सन चार्ली और विलो दो लडक थे जिसके नाम पर उसने इस बँगले का नाम रखा, और बेचते वक्त यह शत की कि इसका नाम बदला न जाए। हेर्सी परिवार भी मसूरी का सौ वष पुराना एंग्लो इंडियन परिवार है। उस परिवार की पुत्री वृद्धा मिसेस वाइट ने बतलाया कि शिकारी विल्सन या उसके लडके चार्ली विल्सन से चालविल होटल का कोई सम्बन्ध नही है। लाला शादीलाल १८९२ ई० म अपने चचा की दूकान मे टेवारी-कोठी के नीचे काम करते थ। बतला रहे थे टेवारी-कोठी की जगह पहले भसवाडा था। सवा सौ वष स पहले आस पास क गाँववाले गर्मी बरसात म मसूरी के जगलो को अपन पशुओ की गोचरभूमि के तौर पर इस्तेमाल करत थे। जहाँ-तहाँ भसवाडे या गायो के झोपडे होते थे।

हेर्सी परिवार के लोग बार्लोगंज मे रहते हैं यह जानकर २४ अगस्त को हम वहाँ पहुच। लाइब्रेरी म हेर्सी 'पर एक पुस्तक देख चुके थे जिससे मालूम हुआ कि अग्रेज हेर्सी टीपू सुल्तान से लडने वाले अग्रज अफसरो म एक था। उसने टीपू के हरम की किसी बेगम को उडाया। उसी परिवार का एक हेर्सी टेहरी के राजा का परिचित हो गया और उस राजा न काफी जागीर देकर यहाँ रखा। उसने ही बार्लोगंज म इस बगले का वाजिदअली शाह की लडकी के रहन के लिए बनवाया। शाहजादी और तरुण हेर्सी की आँखें लड गई और वह उसे निकाल भागने म सफल हुआ। मिसेस वाइट बडे गव स कह रही थी— मेरी रगो म शाही खून है।' उनका भाई हेर्सी अब भी वहीं एक झोपडा बनाकर रहता था। अकेला दम था, कुछ जमीन थी उसी पर गुजारा करता था। मिसेस वाइट क पास बहुत जमीन थी। सौ वष पहल का बँगला अब गिरने ही वाला था, लेकिन अभी भी बुढिया को शरण देन क लिए तयार था। बुढ़िया के लडके-लडकियो म से कुछ इगलैण्ड चले गए, और सबसे छोटा यहीं था, जो दमन म शत प्रतिशत अग्रज मालूम होता था, इसलिए आस्ट्रेलिया या न्यूजीलैण्ड म आसानी स उसको

खपत हो सकती थी। लखीमपुर में हमीं परिवार तालुकदार के रूप में अभी तक रह रहा था। अब जमींदारी उठ जाने से उसकी क्या हालत हुई होगी, नहीं कहा जा सकता। हमीं और विल्सन परिवार के इतिहास पर नजर दौड़ाने पर एक पुराना युग आँखों के सामने नाचने लगता है। अंग्रेज हिंदुस्तान में वणिक के रूप में आए। उस वक्त उन्हें ख्याल भी नहीं था कि हम दिव्य जाति के हैं। वह हिंदुस्तानियों के साथ वैसे ही मिलते जुलते थे जैसे हिंदुस्तानी आपस में। कोई सिपाही बनकर हिंदुस्तान के राजाओं और नवाबों की पल्टन में काम करता, कोई मुसाहिब बनता। कोई शिकारी बनकर ही किसी जगह रह जाता। हिंदुस्तानी खाना उनके लिए प्रिय होता, पोशाक भी आधा तीतर आधा बटेर रहती। लेकिन जब राज हाथ में आया तो उन्होंने धीरे धीरे अपना रूप पहचाना। पर पूरी तौर से दिव्य पुरुष बनने में उन्हें शताब्दियों का समय हुई।

भैया ने दिल्ली (फज बाजार) में अपने मकान की दो मंजिलें तैयार कर ली थीं, तीसरी बनने को रह गई थी। कह रहे थे उसे अगले साल बन जाएँगे। जितना चाहते थे उतना पैसा कमा लिया था। आर्थिक तौर से निश्चिन्त थे। वह पैसों के दास कभी नहीं हुए, यद्यपि पैसे के मूल्य को समझते थे। अब दिमाग में कल्पना उठ रही थी कि आयुर्वेद के अनुसन्धान और प्रचार के लिए इसी मकान में आयुर्वेदिक संगम स्थापित किया जाए। एक प्रसिद्ध वैद्यराज को भी लिखा पढ़ी करके ठीक कर लिया था। वह वृद्धावस्था में इस पुण्य के काम में समय देने के लिए तैयार थे। प्रेस भी अमृतसर से यहीं लाकर चलाना चाहते थे। दो सौ रुपये मासिक पर किसी तजर्बेकार मैनेजर की तलाश में थे। मैंने कहा प्रेस और मैनेजर की कोई बात नहीं, लेकिन कृपया संगम के बारे में जल्दी न कीजिये। मेरी समझ में यह 'आ बैल मुझे मार' की बात होगी। संगम हजार दो हजार महीने का खर्च माँगेगा। एक बार फँस गये, तो फिर निकलना मुश्किल होगा। कोई अपने सुनहले स्वप्न को देख रहा हो और दूसरा बिना किसी भूमिका के उस सोने के महल पर निष्ठुर प्रहार करने लगे, तो कैसा लगेगा? मैंने ऐसा ही किया था लेकिन भैया ने बुरा नहीं माना। पीछे धीरे धीरे वह ख्याल अपने आप हट गया।

अगस्त के अन्त मे जया के साल पूरे होने म तीन ही हफ्ते की देर थी। अब वह काफी चेतन हो गई थी। अपनी तस्वीर को पहचानती थी। मुह खोलना कहने पर मुह खोलती, दाँत दिखलाती। अभी वह पा, वा मां तीन ही अक्षर बोल सकती थी। एक वस्तु को हाथ पर अपने बल पर वह खडी हो सकती थी पर चल नही सकती थी। नमस्ते सलाम-टाटा हाथ से करती। भूत के भूकने की भी नकल करती। न दिये खाने को भी आँख बचाकर मुह म डालना चाहती। नाचती भी थी। उसके जन्मदिन के लिए कमला ने छोटी-सी पार्टी की जिसमे घोलाजी सत्यकेतुजी बच्चे महताजी और कुछ और मित्र शामिल हुए।

३ सितम्बर की रात को किसी काम से बाथरूम के बाहर वाले दरवाजे को खोलना पडा। भूत निकल गया। पास ही म हमारा एक नासपाती का पेड है। वह वहाँ जाकर भूकने लगा फिर चुप हो गया। भीतर चले आए। मालूम सा होता था कि नासपाती पर खर-खर हो रही है। बन्दूक लेकर जाने की इच्छा हुई पर शिकारी बरिस्टर साहब ने कह रखा था आपकी राइफल की गोली मार नहीं घायल कर सकती है और जानवर फिर वार कर सकता है। इसलिए बाहर नहा गये। सोचा कोई रीछ आया होगा, नासपातियो को खा रहा होगा। बीच म कभी-कभी फलो के गिरने की धम-धमाहट भी उसी बात का समर्थन कर रही थी। सवेरे उठकर देखा तो नासपाती के ऊपर एक भी फल नहीं है। एक छोटी डाल टूटी हुई है। मन ने लालबुझक्कड होकर कहा जरूर भालू आया। लेकिन, फिर सोचा यदि भालू आया था तो भूत क्या दो-एक बार भूककर चुप हो रहा। यह समर्थन म देर लगी और इसमे जान लडली की राय ने भी सहायता दी कि नास-पाती तोडने वाला भालू नहीं बल्कि मुहल्ले का ही कोई आदमी था, जिसे भूत पहचानता है। भला रात को चोरी करने की क्या जरूरत थी? नास-पातियाँ हमारे काम नही आती थीं। खट्टी-खट्टी बस्वाद थी। माँगने पर हम ऐसे ही देकर पिण्ड छुडाते। कहीं जो उस रात राइफल दागी होती, यह सोचकर रोंगटा खडा हो जाता था।

शिकारी विल्सन के पीछे मैं पडा हुआ था। अब मालूम हुआ विल्सन का पहला पुत्र चार्ली १८४६ ई० म पैदा हुआ और १८३? म मरा।

ि कारी का स्वय देहान्त १८८६ म हुआ।

६ सितम्बर को कम्पनी बाग म वन भोज था। हम लोग इधर से भया और भाभीजी कुल्हडी स और साथ ही आचाय यादवजी त्रीकमजी भी अपनी पत्नी तथा तीन पुत्रियो के साथ आए। हम लोगो का यही भोजन करना था लकिन यादवजी भोजन करक आए थे। थोडा-सा पक्वान भर उन्होने लिया। महिलाएँ सब वल्लभ कुल की शिष्याएँ थी इसलिए वह पक्वान भी नही खा सकती थी। पिछल साल की तरह इस साल भी वन भोज म वर्षा न विघ्न करना चाहा और हम चाय के रस्तोराँ क लिए बनी कोठरी म पडे रह। आचाय त्रीकमजी एक सफल वद्य हैं। चाहते तो धन कुबर बन जाते पर वह लक्ष्मी की मर्यादित पूजा करना ही जानत थ। चिकित्सा करन के अतिरिक्त आयुर्वेद क ग्रन्थो का उद्धार करना भी वह अपना कतव्य समझत थ। वर्षा बन्द होने पर हम चाय पीकर ५ बजे घर लौटे।

७ सितम्बर को कमला के एम० ए० (प्रथम) का फाम भरवाने क लिए रमादेवी उच्चतर विद्यालय क प्रिंसिपल मल्होत्राजी क पास गय। मल्होत्रा जी इधर नगरपालिका की राजनीति म भी भाग लेने लग थ जिसे मैं पसन्द नही करता था। लकिन अपनी-अपनी रुचि है। वह यहाँ क सबस योग्य प्रिंसिपल हैं। उनक स्कूल की परीक्षा का परिणाम हमशा सबस अच्छा निकलता है। लोगो का भी उनके ऊपर विश्वास है। धनानन्द इटर कालज से असन्तुष्ट होकर इस स्कूल की स्थापना की गई थी जिस मल्होत्राजी जसा प्रिंसिपल मिल गया। लडको की सख्या बराबर बढती गई और उसी क अनुसार मकानो की भी। उन्होने स्कूल की इमारतें निकलाईं। नई इमारत म साइन्स की प्रयोगशाला भी बनी है। लडको क शारीरिक व्यायाम क लिए भी एक छोटे स मदान की आवश्यकता महसूस कर रहे थ जिस उन्होने आखिर म बनवाया। पहाड म समतल भूमि मिलना मुश्किल है, इसलिए स्कूल को विस्तत करना आसान नही। इसी साल कमला की वर्किंग गर्ल भी मटिक की परीक्षा दे रही थी। कन्या स्कूल तीन मील पर पडता था इस लिए गंगा को वहाँ स हटा लिया गया। उस घर पर ही कमला पढाती थी। मसूरी कन्या विद्यालय की प्रिंसिपल महोदया न फाम भरने म सहायता की।

दफ्तरशाही दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। फार्म भरने के लिए क्या दो पृष्ठ काफी नहीं थे? पर अब उसमें एक दर्जन पृष्ठ होते हैं। उत्तर प्रदेश में बोर्ड की परीक्षाओं में पौने दो लाख परीक्षार्थी बैठते हैं। कागज का कितना अपव्यय है? जिस तरफ देखो उस तरफ दफ्तरशाही का बोलबाला है। कागजों को काला करने के लिए ही बेकार के लाखों आदमी लगा दिए गए हैं। मन्त्री लोग या दिल्ली के महादेव लाल फौलादशाही पर बरस कर केवल विडम्बना मात्र करते हैं। ६ सितम्बर को भैया और भाभीजी में कुछ खट पट हो गई थी। भाभीजी को तो महिलाओं के विद्रोही दल का नेता बनना चाहिए। वह मर्दों के खिलाफ जहर उगल रही थीं। मैं दार्शनिक बन गया था। सोचने लगा—१ वृद्ध को तरुणी से ब्याह नहीं करना चाहिए २ जिसने गृहस्थी की जिम्मेवारियों को पचास साल की उमर तक नहीं जाना उसे तो 'नव च नव च।' ३ इतने समय तक गृहस्थी के बन्धन में न बंधने का मतलब है उसके सामने कोई आदर्श था। ऐसे पुरुष को तो और भी यह फँदा गले में नहीं डालना चाहिए ४ जिसने घुमक्कड़ी में दीर्घ जीवन बिताया उसे तो विवाह के बिल्कुल पास नहीं फटकना चाहिए ५ यदि साथ ही विद्या का व्यसन है तो तोबा-तोबा।

१३ सितम्बर को श्री मुकुन्दलालजी आए। अब की वह पटना भी गए थे। वहाँ उन्होंने मेरे चित्रों के संग्रह को देखा था। कह रहे थे तिब्बत के बाहर इतना सुन्दर चित्रपटों का संग्रह कहीं नहीं है। पटना म्यूजियम में अब भी मेरे सभी चित्रों को प्रदर्शित नहीं किया गया है। मैं भी तिब्बत से लाते समय उनके महत्व को नहीं समझता था। उस समय शायद कुछ इधर उधर भी हो जाते, लेकिन १९३२-३३ में लन्दन और पेरिस में प्रदर्शनी होने पर उनका जब मूल्य मालूम हुआ, तो मैंने उन्हें सुरक्षित रखने का निश्चय कर लिया और यह समझने में देर नहीं लगी कि इनकी रक्षा किसी सरकारी म्यूजियम में ही हो सकती है। डा० जायसवाल से अभी वैयक्तिक परिचय नहीं था, वहीं से मैंने चित्रों को संग्रहालय को देने के लिए चिट्ठी भेजी। वह यूरोप से सीधे पटना आ गए।

१४ सितम्बर को मध्याह्न भोजन ओरछा के ठाकुर साहब के यहाँ हुआ। अंग्रेजों से विद्रोह करने के कारण उनके दादा परदादा ने राज्य को

खोया, पर जनता उन्हें 'राजा साहब' ही कहती। कमला और हम गए। कप्तान शुक्ल और डा० गरोला भी थे। मेहमान भी समय पर नहीं पहुँचे। और भोजन में इतनी देर होती देख पेट में चूहे चुलबुलाने लगे। रानी साहिबा ने स्वयं पक्वान बनाने की जिम्मेवारी ली थी। कमला उनसे बहुत प्रभावित हुई। मांस भी राजपूत के घर का था। भोजन तो स्वादिष्ट था ही, साथ ही हम लोगों को बात के लिए भी बहुत अवसर मिला। कप्तान शुक्ला पर बुढ़ापे का कुछ असर है कुछ रहस्यवाद और नये आविष्कार की धुन भी सिर पर सवार रहती है। वह गंगोत्री के पास कहीं सुमेरु शिखर को देख आए थे, और उस पर जोर देकर कह रहे थे। मैं भी अपनी भूल स्वीकार करता हूँ क्योंकि हिमालय के परिचयात्मक ग्रंथों को लिखने में न लगा होता और उसके द्वारा हिमालय के हरेक भाग से घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने का मौका न मिला होता तो मेरे लिए भी उसकी बहुत सी चोटियाँ और स्थान रहस्यमय मालूम होते हैं। देवताओं के निवास नहीं, दूर के अद्भुत भूखण्ड।

१५ सितम्बर को श्री बलभद्र ठाकुर की चिट्ठी मिली। शिव शर्मा और ठाकुर एक बार मानसरोवर जाने के लिए निकले थे। शिव शर्मा जान पर खेलकर निकल गए, ठाकुर उसके लिए तैयार नहीं हुए। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह घुमक्कड़ी की योग्यता में पीछे रहे। शिव शर्मा का स्वभाव उबल पड़ने का है और ठाकुर महाशय गम्भीर हैं। वह घुमक्कड़ भी हैं, संस्कृत के अच्छे पंडित हैं और साथ ही कलम के धनी भी। अब की वह मानसरोवर भी हो आए और मनीपुर भी। मानसरोवर के न जाने का सन्ताप तो मैं अपनी ल्हासा की ओर की यात्राओं से कर सकता था लेकिन पूर्वोत्तर भारत और मनीपुर के पहाड़ों की यात्रा की लालसा तो मन की मन में ही रह गई। ठाकुर महाशय ने लिखा था, मैंने तीन उपन्यास लिखे हैं।

२२

सरहपा के चरणों मे

१९३४ म दूसरी वार मैं तिब्बत गया था। तालपोथियो को ढूढते अपन प्रिय मित्र गेशे धर्मवर्द्धन के साथ सा-क्या पहुँचा। सा-क्या के महन्त राज के सबसे प्रभावशाली अफसर चागावा क्षोनी छेनूवो के घर पर ठहरा। महन्तराज से लेकर उनके अफसर तक सभी हमारी सहायता के लिए तैयार थे। बहुत सी तालपोथियो का पता मा तीसरी यात्रा म लगा। उस समय भी कुछ अमूल्य पुस्तकें देखने म आइ। इसके बारे म मैं 'यात्रा" की दूसरी पोथी म लिख चुका था। पुजारी के यहाँ तालपोथियो के पत्तो के बडल काट-काटकर भक्तो म प्रसाद बाँटन के लिए रखे हुए थ उन्ही म आदि सिद्ध सरहपा के दोहाकोश के पत्त भी थे। दोहाकोश पहल महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री और फिर उससे अच्छा डा० प्रबोधचन्द्र बागची द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका था। सा क्या से लाय हुए य पत्त बीस वर्ष स मेरे पास पडे थे। पहला पत्रा लुप्त था। पर उसमे एक ही पृष्ठ की क्षति हुई थी क्योंकि आदिम पत्र के पहले पृष्ठ को खाली रखा जाता है। दूसरे पत्र के पहले पृष्ठ के अक्षर घिसकर बहुत म अपाठय हो गए थ। एक दिन इन पत्रो को यो ही देखा। ख्याल आया इन्हे मिलाना चाहिए। हर-प्रसाद शास्त्री की प्रति मेरे पास थी। पता लगा कि उसम ४० से अधिक दोहे नही हैं जबकि इस तालपोथी म १६० स अधिक हैं। डा० बागची की प्रति का मिलान पर मालूम हुआ, कि हमारी प्रति विशेष महत्व रखती है। बागची के दोहाकोश म ११२ तिब्बती अनुवाद म १३४ और इसम

१६३ 'दाह है। मैंने तालपत्र स उस उतारना शुरू किया और महसूस किया कि इसे सम्पादित करना चाहिए। उस वक्त ता यही खयाल आया था कि एक सक्षिप्त भूमिका क साथ इसे प्रकाशित कर दिया जाए। लेकिन, जब उसम लगा, ता काम अपने ही दूर तक खीच ले गया। अपभ्रश भाषा सरह की कविता तथा दार्शनिक विचारा पर छोटी भूमिका नही लिखी जा सकती। वह काफी बढ गई। फिर ख्याल आया कि सरह के १४ १५ अपभ्रश ग्रथ तिब्बती म अनुवादित हैं। क्या न सरह की सभी अपभ्रश कविताआ को हिन्दी म कर दिया जाए। फिर उसको भी हाथ म ले लिया। प्रकाशन क लिए विश्वभारती, जायसवाल इन्स्टीटयूट और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद तीनो जगहा से माँग आई। इन्स्टीटयूट और परिषद म प्रतिद्वद्विता लग गई। मैंने श्री जगदीशचन्द्र माथुर क ऊपर छोड दिया और अन्त म परिषद की ओर स ही प्रकाशित होने का निश्चय हुआ। इन पक्तिया क लिखते समय स पहले ही उसे छप जाना चाहिए था किन्तु यह ऐसे प्रेस क दलदल म फँसा जिसम नेपाल कई साला स पडकर उबर नही रहा है।

सितम्बर क अन्त म 'नया समाज' म कमला की कहानी 'डायन' छपकर आई। कमला की कहानिया म कुछ विशेष गुण हैं। उनको शब्दा की परख और घटनाआ को ठीक स चुनने की बात मालूम है। लेकिन, सबसे दोष है कलम चलाने म उन्ह बहुत आलस आता है। आरम्भिक कहानिया म भी मुझे भाषा म थोडा ही सुधार करने की आवश्यकता पडी थी और अब ता उसकी और भी कम पड रही है। मैं कितनी ही बार कहता कि १६ कहानियाँ लिख डाला ता पुस्तकाकार निकल जाएँगी। लेकिन वह अभी नौ पर रुकी हुई है। जया अब मज स अपने परा पर घूम सकती थी। ऊपर क कितने ही दाँत निकल आये थे। बहुत चचल थी, गिरने पडने और चोट खाने की पर्वाह नही करती थी।

८ अक्तूबर का बिहार के साथी कार्यानन्द शर्मा आए। शर्माजी स मेरा परिचय १९२१ के असहयोग के जमाने स है। "नये भारत क नये नेता" म मैं उनकी एक छोटी जीवनी लिख चुका हूँ। जवानी स कटकाकीर्ण माग पर उन्होने पैर रखा और आज भी उसी पर अविचल चले जा रहे हैं। बहुजन

का हित उनके लिए हमेशा आदर्श रहा। जब उन्हें मालूम हुआ कि यह साम्यवाद ही से हो सकता है तो १९३८ में बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के साथ ही उसके मेम्बर बन गये। किसानों की बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ीं। यदि उन्होंने कंटकाकीर्ण रास्ता छोड़कर सुख का रास्ता पकड़ा होता तो आज बिहार के दूसरे कांग्रेसी नेताओं से कहीं आराम में रहते। घर-बार छोड़कर अकेला जीवन बिताना उतना तपस्या का नहीं है जितना कि शर्माजी जैसे लोगों का जिन्होंने सब-कुछ को अपने और अपने परिवार वालों को भी सुख से वंचित कर दिया। उनका स्वास्थ्य इधर खराब रहता था। दिल्ली आये थे, वहीं से कुछ समय के लिए चले आए थे।

अक्तूबर में मसूरी का शरद सीजन था। मन्त्रियों को बुलाकर और दूसरे तरीके से मसूरी के भाग्य का सुधार करने की कोशिश की जा रही थी। राष्ट्रपति के घोड़ों ने पोलो मैदान में अपने करतब दिखलाए। केन्द्रीय सरकार के मन्त्रियों में किदवाई जैन महावीर त्यागी और केसकर आए। प्रदेश के मुख्य मन्त्री पन्तजी भी पहुँचे। मन्त्रियों का पधारना सिर आँखों पर लेकिन मसूरी का उससे क्या बनना है? उसको तो पाँच सात हजार क्लर्कों वाले एक दो आफिसों की जरूरत है। दिल्ली में उनके लिए घर बनाने में करोड़ों रुपया खर्च होगा मकान मिलना मुश्किल है। यहाँ अच्छे अच्छे मकान रहनेवालों के बिना गिर रहे हैं। मन्त्री नौकरशाहों के कठपुतले हैं—सबै नचावैं रामगुसाईं। आफिस भेजने की बात कह करके जाते हैं। लेकिन नौकरशाह उसका विरोध करते हैं। सभी टाँय टाँय फिस हो जाती हैं। दिल्ली दरबार में रहने से नौकरशाहों का इहलोक-परलोक बनता है इसलिए वह वहाँ से क्या हटेंगे?—परलोक से मतलब उनके बेटे पाते हैं, बल्कि बेटियाँ और बहुएँ भी कह सकते हैं, क्योंकि कानून को ताक पर रख कर भी बेटियों बहुओं को बड़ी-बड़ी तनख्वाहों पर रखा गया है।

१४ अक्तूबर को लण्ढौर गये। अबके साल मानसरोवर के रास्ते में तिब्बत वालों का कुम्भ लगा था जिसमें हमारे कुछ खम्पा मित्र भी गए थे। कह रहे थे लूट पाट अब नहीं है चाहे जहाँ फिरते रहो लेकिन चीजें बहुत महँगी हैं। दो रुपये में एक शाम भी पेट नहीं भरता। सचमुच यहाँ का रुपया वहाँ की दौड़ में पीछे था। तिब्बत में अब मजदूर कितना एक रोज

में कमाना है उतना हमारे रुपयों में मूल्य नौ-दस है। इसलिए वहाँ के मजूर के लिए न चाय मँहगी नहीं मालूम होगा यह हमारे आदमी को जरूर मालूम होगी क्योंकि यहाँ पाँच रुपया कमाने में ६ घंटा नहीं बल्कि तीन चार दिन लगाने होंगे और उसके साथ काम का अनिश्चित होना भी शामिल है।

प्रयाग—एकान्त निवास रहने में एक यह भी घाटा था कि कहीं जाना आना मुश्किल था। गर्मियाँ आ गए थे मैंने सोचा दो हफ्ते कहीं चक्कर लगा आऊँ। पुस्तकों के प्रकाशन का भी कुछ काम था और मित्रों से मिलना भी। १६ अक्तूबर को देहरादून पहुँचा। चार्ली विल्सन की बीबी से मिला। बुढ़िया के पास पुरानी सामग्री नहीं थी। बाप के खिरीदे मकान में चिर-रागिणी बहिन के साथ अपने अंतिम दिन बिता रही थी। पति ने बहुत पहले अपने बाप के बारे में "स्टेट्समैन" में एक लेख लिखा था जिसकी कटिंग उन्होंने दी। उसी दिन रात को इलाहाबाद तक जानेवाले डब्बे में बैठ गया। सवेरा होते समय हमारा ट्रेन मुरादाबाद में पहुँची। हमारे डब्बे में ही पूर्णिया जिले के मनिहारी के महन्तजी थे। महन्तजी हाथरस वाले तुलसी साहब के सम्प्रदाय के थे। साधुओं का पंथ कितना जल्दी दूर दूर तक फैल जाता है? कहाँ हाथरस और कहाँ मनिहारी। तुलसीसाहब के भक्त बहुत जगहों पर हैं, और मनिहारी के महन्त उनके सम्मानित गुरु हैं। हाथरस जाकर वह मुरादाबाद के भक्तों के पास आए। उन्हें बहुत से भक्त रेल पर पहुँचाने आए थे। आदमी डब्बे में कुछ ज्यादा थे, लेकिन बैठने में उनको कोई दिक्कत नहीं थी। तो भी एक भक्त कह रहे थे—बहुत बड़े महात्मा हैं, अहोभाग्य समझिये इनके साथ चलने को। सचमुच ही मैंने अपने को अहो-भाग्य समझा क्योंकि तुलसीसाहब के वचनों को तो कुछ पढ़ा था पर उनके किसी अनुयायी या महन्त से परिचय नहीं हुआ था। महन्तजी शिक्षित और मेरी कुछ पुस्तकों को पढ़े हुए थे, इसलिए हम दोनों ही ने अहोभाग्य समझा। 'मध्य एशिया का इतिहास' का बहुत सा प्रूफ मेरे पास था, जिसे देखकर लखनऊ के स्टेशन में डालना था, इसलिए अपने सारे समय को सत्संग में नहीं लगा सकता था। लखनऊ में वह दूसरे डब्बे में चले गए

और मेरा डब्बा प्रयागवाली ट्रेन में कटकर लग गया, जहाँ ७ बजे रात को पहुँचा।

मैंने श्रीनिवासजी को चिट्ठी लिखी थी, लेकिन बहुत देर से। मैं सनीचर को पहुँचा। अगले दिन रविवार को चिट्ठी मिल नहीं सकता, सोमवार को मिली, तो मिश्र को सूचना नहीं हो सकी। आजकल दशहरे की छुट्टियाँ भी थी। पत्रों में अगर खबर निकली होती, तो दरस परस का सुभीता होता। सोमवार को मैं प्रयाग में ही रहा और खुद ही घूम घूमकर मित्रों से मिल लिया। सम्मेलन के कर्णधार लखनऊ गये हुए थे। डा० उदयनारायण पत्नी के आग्रह के कारण अलोपी बाग के अपनी पुरानी कोठरियों को छोड़कर एक बगले में रह रहे थे। पर, कोठरियाँ उन्हें इतनी जल्दी छोड़नेवाली नहीं थीं। अन्त में उन्हीं को सुधारकर वहाँ रहना पड़ा। सोमवार को श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय से बात होती रही। मैंने इधर अपने अगले ऐतिहासिक उपन्यास के लिए ऋग्वेद का दाशराज्ञ युद्ध चुना था। उसके बारे में कुछ अध्ययन भी किया था। चट्टोपाध्यायजी का तो सारा जीवन ही एक तरह वेद के अध्ययन में लगा था। वह अपने धार्मिक विचारों से तो परम रूढ़िवादी हैं, किन्तु अनुसन्धान में परम नास्तिक। उनके शिष्य डा० रामनारायण राय ने ऋग्वैदिक ऋषियों पर अपना डी० लिट्० का निबन्ध लिखा था, उसे भी चट्टोपाध्यायजी ने दिखलाया। मैंने निश्चय किया कि उस काल के समाज के बारे में लिखने पर रूढ़िवादी आपत्ति उठाएँगे, इसलिए पहले ऋग्वेदिक समाज के भिन्न भिन्न अंगों पर अलग अलग सप्रमाण लेख लिखूँ। मैंने चाहा था उन्हें चट्टोपाध्यायजी देखकर कुछ सुझाव देते। लेकिन लिखकर सुझाव देने में वह एक नम्बर के दीर्घसूत्री हैं, बैठकर चाहे घंटा आप उनसे सुनिये जान पड़ता है, ज्ञान का अपार समुद्र आपके सामने लहरें मार रहा है। इस ज्ञान के समुद्र को मताग भी कागज पर न उतरे सामकर ऐसे विषयों पर, जिस पर अभी यत्न कम लिखा गया है तो चट्टोपाध्यायजी को अगले जन्म में ब्रह्मराक्षस जरूर बनना पड़ेगा, क्योंकि वह ऋषि ऋण से पूरी तौर से उऋण नहीं हुए।

अगले दिन निरालाजी के दर्शन के लिए दारागंज गया। असंबद्ध बातें करना तो उनका स्वभाव है। कोई आदमी असंबद्ध बात करने लगेगा,

यदि उनका जागने और स्वप्न की मेड़ें टूट गई हो। आज उनके मुँह से पहले पहल एकाध अश्लील शब्द सुने लेकिन यह तकिया कलामवाले थे जिसे कुछ गुस्सा आने पर कितने ही प्रकृतस्थ लोग भी मुँह से निकाल देते हैं। वह अंग्रेजी में बोलते कभी उर्दू में भी—मैं निराला नहीं हूँ मैं डा० मुहम्मद हुसैन हूँ। निराला को देखकर सरहपा याद आ गये। जिनका अभी अभी मैं अध्ययन कर रहा था। सरहपा अब से १२०० वर्ष पहले पैदा हुए थे। वह भी महान् कवि थे, वह भी असंबद्ध प्रलापी थे साथ ही जब संबद्ध बातें करते तो उनके मुँह से मोती झरते। निराला ने सिद्धों का पथ नहीं पकड़ा यद्यपि सिद्धों के सभी गुण उनमें थे। यदि पकड़ा होता तो कौन कह सकता है कि वह पांडीचेरी और तिरुवन्नामलै के सिद्धों से आगे न बढ़ जाते। पुराणों ने ऐसे निरंकुश परन्तु महान् पुरुषों को अधिक मयत बनाने के लिए एक उपाय निकाला था। बल्कि कहना चाहिये सिद्धों ने अपने-आप उपाय निकाल लिया था। सरह नालन्दा में पढ़कर महापण्डित हुए वहीं खाली अध्यापक भिक्षु रहे। जब अपने समय के पाखण्ड झूठे मालूम हुए तो एक क्षण के लिए भी नहीं रुके। भिक्षुओं का भेस और आडम्बर तोड़ फेंका। पंडिताई के सम्मान को सलाम किया। लोग उनके प्रति अधिकाधिक घृणा करें इसके लिए कटिबद्ध हो गए। शराब पीने लगे। फिर एक बाण का फल बनानेवाली (मिरजापुर की) तरुण कन्या को साथ में ले लिया। खुद भी बाण का फल तयार करने लगे। शर बनाने के कारण लोगों ने उनका नाम सरहा रख दिया था। वह अपनी तरुण संगिनी—जिसे सिद्धों की भाषा में महामुद्रा कहते हैं—को लिए एक जगह से दूसरी जगह घूमने लगे। सयानों ने कहा, कोई असंबद्ध प्रलापी पागल है। कोई कहता—दुराचारी शराबी, लुगाई लिए फिर रहा है। चारों ओर से पहले थू थू के शब्द सुनाई देने लगे। सरह यही चाहते थे। वह खुश होते थे। लेकिन बहुत दिनों तक दुनिया उनकी उपेक्षा नहीं कर सकी। साधारण जन उन्हें महात्मा कहने लगे। सरह अपनी पंडिताई का कोई उपयोग नहीं कर रहे थे। संस्कृत को छोड़ चुके थे। कभी कभी लोगों की भाषा में बोले पढ़ते जो दोहों का रूप लेते। उनकी भाषा इतनी सरल थी कि उस समय का साधारण आदमी भी समझ सकता था लेकिन उसका अर्थ इतना गम्भीर भी होता कि

पण्डित भी गाता खाने लगते। बहुत बड़ी नहीं बात कि सरह को सब लोगों ने सिर माथा पर चढ़ाया। बड़े-बड़े पण्डित उनकी चरणधूलि लेने के लिए दौड़ते। बड़े बड़े मुकुटधारी उनके पैरों में अपना मुकुट रखते। सरह को वैभव की जरूरत नहीं थी सम्मान की जरूरत नहीं थी। वह अपनी अपभ्रंश की कविताओं द्वारा अमर होने की इच्छा भी नहीं रखते थे। भारत में कई शताब्दियों के लिए वह मर भी गए। तिब्बत ने उनकी रक्षा की और वहाँ अब भी जीवित और परम सम्मानित बने रहे। अन्त में हमारा देश भी उनके भुलाने के लिए पश्चात्ताप करने लगा।

सरह समाज के ढोंग और पाखण्ड से तंग थे। चाहते थे कि लोग उन्हें छोड़कर सहज जीवन बिताएं। धर्म के नाम पर जितनी अलाय बलाय घुस आई थी उसके ऊपर उन्होंने जबर्दस्त प्रहार किया। गोरख कबीर और दूसरे फक्कड़ सन्त उन्हीं के रास्ते पर चल कर पाखण्ड खण्डन करते रहे। निराला ने कवितादेवी की आराधना की। कभी कभी मैं ख्याल करता हूँ यदि वह सिद्धों के मार्ग को अपना कर महामुद्रायुक्त हुए होते तो अधिक उपकारक होते। महामुद्रा जैसी-तैसी तरुणी नहीं हो सकती। सिद्धों के सम्प्रदाय में उसके लक्षणों का जो वर्णन है उस पर उतरनेवाली कुछ पद्मिनियाँ ही हो सकती हैं। यदि किसी पद्मिनी ने निरालाजी के लिए आत्मत्याग किया होता, तो वह भी धन्य धन्य होती।

सम्मेलन की ओर से अंग्रेजी हिन्दी कोश बन रहा था। उसके दफ्तर में इकट्ठा हो डा० बाबूराम सक्सेना डा० धीरेन्द्र वर्मा डा० वाहरी श्री रामचन्द्र टंडन आदि से मुलाकात हो गई। वहीं पं० रामनरेश त्रिपाठी भी मिले। अगले दिन श्रद्धेय टंडनजी के दर्शन किए। उनका आग्रह हुआ कि मैं प्रयाग में रहूँ। पर प्रयाग की गर्मियां बरसाना को मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता था और काम के लिए वह स्थान बना नहीं सकता था। उस दिन अमृत पत्रिका के दफ्तर में एक छोटी-सी चाय पार्टी हुई जिसमें मरम्मत के दाहारोग के ऊपर मैं बोला। पत्रिका ने ताल्पत्र के फोटो के साथ मेरी बड़ी बातें भी छापीं। अब की एक युग के मित्र से मुलाकात हुई। १९१५ १६ में मैं आगरा में अरबी पढ़ता था। उस समय वहाँ के बपतिस्मा हाई स्कूल के प्रिंसिपल श्री समुअल आइजक से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला

था और उनके सौहार्द से मैं इतना प्रभावित हुआ था कि मैंने जीवन-यात्रा के पहले खण्ड में उसका उल्लेख किया था। उनके पुत्र श्री जगदीशकुमार संस्कृत और हिन्दी के पण्डित हो प्रयाग के क्रिश्चियन कालेज में दोनों भाषाओं के विभाग के अध्यक्ष थे। उन्होंने मेरी पुस्तकें पढ़ते वक्त उन पंक्तियों को भी देखा जिनमें मैंने उनके पिता का स्मरण किया था। जगदीशकुमार जी ने मेरे पास चिट्ठी लिखी और अपना परिचय दिया था। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह पुराने मित्र के योग्य पुत्र थे। इसका तो हृष होना ही था। साथ ही यह जानकर कि जगदीश कुमार ने वह आदर्श उपस्थित किया जो कि नये भारत के ईसाई तरुणों का होना चाहिए। धर्म में बाइबल, ईसा मसीह के मानने में कोई हर्ज नहीं पर संस्कृति में सभी भारतीय एक हैं चाहे आस्तिक हों या नास्तिक चाहे हिन्दू हों ईसाई या मुसलमान। ईसाई तरुणों को जगदीश कुमार ने रास्ता दिखला दिया। जब उन्होंने बतलाया कि पिताजी भी यहीं आये हुए हैं, तो मैं उनके मिलने के लिए लालायित हो गया। शाम को वहाँ कुछ मित्रों की चाय पार्टी हुई। समुअल—श्यामलाल में बदला हुआ नाम—साहब की बड़ी घनी मूछें सफेद थीं, देखा शुभ्र वस्त्र में थे। शायद धोती पहने हुए थे। छाती लगा कर मिले। उसी दिन मेरी पहली उड़ान के कलकत्ता के साथी श्री महादेव प्रसाद मिले। यह ४७ वर्ष पहले की बात है। लेकिन महादेव प्रसाद जी से इलाहाबाद में जब-तब मुलाकात हो जाती थी। बढ़े मालूम ही होना चाहिए। हमारी उमर के वह भी थे।

प्रयाग से अब श्री जयगोपाल मिश्र के साथ बनारस जाना था। यद्यपि मसूरी से यही निश्चय हुआ था श्री कृष्ण वर्मा के यहाँ हम ठहरेंगे पर प्रयाग में श्री देवनारायण द्विवेदी का पत्र आ गया था जिसमें बाबू शिव प्रसाद गुप्त और मेरे सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए जोर देकर लिखा था कि सेवा उपवन में श्री सत्येन्द्र जी के यहाँ हो ठहरें। सचमुच ही बाबू शिव प्रसाद जी के स्नेह और सम्मान को भूलना मेरे लिए सम्भव नहीं है। जब मैं सारनाथ में ठहरता तो वह वहाँ मिलने आते थे। भारतीय स्वतन्त्रता और संस्कृति के वह अनन्य आराधक थे। चूँकि मैं वृहत्तर भारत के पुरानी सम्पदा को जागृत करने में लगा हुआ था इसलिए उनका मेरे प्रति विशेष

पक्षपात था। ऐसे कामों में वह हमेशा सहायता देने के लिए तैयार रहते थे। छावनी में स्टेशन से उतरे तो द्विवेदी जी और बेरीजी दोनों मौजूद थे। इतनी जल्दी में पत्र मिला था कि हम बेरीजी को सूचित भी नहीं कर सके। बड़े दुविधा में पड़े। बेरीजी को समझाया और सेवा उपवन चले गये। इसके लिए बेरी जी को नाराजगी हुई हो यह स्वाभाविक था। लेकिन करता क्या? दोपहर का स्नान भोजन करने से पहले स्टेशन से आते हुए रास्ते में अपने विद्यार्थी जीवन से घनिष्ठतया सम्बद्ध मोतीराम के बगीचे को देखने गया। बनारस आने पर इसको देखना मैं नहीं भूलता। बगीचा खतम है। जहाँ कोयरी खेती करता था, वहाँ गोयनका संस्कृत छात्रावास है। भीतर अभी जमीन खाली पड़ी हुई थी। ब्रह्मचारी चक्रपाणि की कुटिया अब भी खड़ी थी। पुराने निवासियों में से अब कोई रह नहीं गया था।

सेवा उपवन में जाकर स्नान भोजन और थोड़ा विश्राम किया। इसके बाद फिर मित्रों से मिलने के लिए निकला। हिन्दू विश्वविद्यालय में पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी घर पर ही मिले। बच्चों ने उलाहना दिया यहाँ क्यों नहीं ठहरे। वासुदेवशरणजी के घर पर गये। वह इस वक्त कलकत्ता गये हुए थे। लौट कर उपवन में थोड़ा ठहरा। पं० रामचन्द्र शुक्ल के पोते ने पहले ही वचन ले लिया था कि हमारे घर पर शुक्लजी के फोटो का उद्घाटन करें। जिन खेतों में शुक्लजी ने अपना घर बनाया था वह मेरे परिचित थे और परिचित थे रानी बड़हर के मकान और मन्दिर। वहाँ जाकर चित्र उद्घाटन किया। यदि देशी समय के मुताबिक काम होता तो कहीं न कहीं प्रोग्राम टूटता, इसलिए आग्रह को न मान कर समय पर ही उद्घाटन और भाषण किया। शुक्लजी ने अपने क्षेत्र में हिन्दी के लिए कितना बड़ा काम किया यह इसी से मालूम हुआ कि अब भी उनके हिन्दी के इतिहास को परास्त करनेवाला कोई पैदा नहीं हुआ। वहाँ से ५ बजे भदैनी में तुलसी पुस्तकालय में स्वागत होनेवाला था। असी संगम, गूदरदास का अखाड़ा, मोतीराम का बगीचा काशी के ये वह स्थान थे, जहाँ मैंने संस्कृत ही नहीं पढ़ी, बल्कि जहाँ नागरिक और साहित्यिक जीवन का परिचय प्राप्त करने का मौका पाया। तुलसी घाट यहीं है। लेकिन मेरे समय

म अभी तुलसी के नाम से कोई पुस्तकालय नही बना था। पण्डितो म अब मेरे परिचितो म से कोई नहीं रह गये थे। बहुत कम ही पण्डित बुढ़ापे तक काशीवास के लिए रह जाते। विशेषकर यदि उनका घर बनारस में नहीं हो। वहाँ कृतज्ञता प्रकट करने थोडी देर 'आज' कार्यालय म हो बरीजी के हिन्दी प्रचार पुस्तकालय म और उनके विद्या मन्दिर प्रेस म गये जो मान मन्दिर के पास था। समय के साथ हमारे प्रेस आगे बढ रहे हैं, और छपाई के आधुनिक साधनो से सम्पन्न हो रहे हैं यह बरीजी से इस प्रेस से मालूम हुआ। यही थी परमेश्वरीलाल गुप्त त्रिभुवननाथ श्री ठाकुर प्रसाद सिंह और दूसरे स्पष्ट मित्र भी आ मिले। वहा से कचौरीगली हाते आदि विश्वेश्वर के पास प० शिवपाल मालवीय के यहाँ थोडी देर के लिए ठहरे। इतने बन्धुओ से मिल कर बडा आत्म-सतोष मिला और ६ बजे हम उपवन लौटे।

२२ के साढे सात बजे ही जयगोपालजी और श्री द्विवेदीजी का साथ लिये सारनाथ पहुँचा। काशी-यात्रा म यहाँ आना अनिवार्य होता है। महाबोधि स्कूल की इमारत काफी बढ गई थी। लद्दाख का एक वृद्ध कई तरुण साधुओ को लिए ल्हासा जा रहा था। उसने अपने यहाँ की हालचाल बताई। मन्दिर और पुराने ध्वसावशेषो को देखते बर्मी धर्मशाला म महास्थविर कित्तिमा से मिले। चौवन म यदि शरीर सूखना है तो वह फिर कैसे हरा हो सकता है। कित्तिमाजी ने अपना सारा जीवन भारत म और वह भी भारत और बर्मा के सास्कृतिक सम्बन्ध को पुनरुज्जीवित करने म लगाया। मेरे भतीजे उदयनारायण पाण्डे अब यहीं महाबोधि स्कूल म अध्यापक थे और रहने के कित्तिमाजी के पास। उनके दो लडके और दो लडकियाँ थी। गृहपत्नी भी यहीं रहती हैं। शिक्षित और सस्कृत जीवन के लिए आज के गाँवो म कहाँ स्थान है? पहले के जो जीविका के साधन थे वह भी अब खतम हो रहे हैं इसलिए इस वश को तो अब या कभी तो गाँवो से नाता तोडना होगा, या दूसरे लोगो के तले पर रहना होगा।

उदयप्रताप कालेज म बोलने का आग्रह था लेकिन उधर १० बजे काशी विद्यापीठ म भी समय दे दिया था, इसलिए कालेज म सात मिनट से अधिक बोल नहीं सका। विद्यापीठ म भाषण देने के बाद डा० मगलदेव

जो मैं यहां गया। सभी जगह जल्दी जल्दी थी। मध्याह्न भोजन बेरीजी के यहाँ करना था। कितनी ही जल्दी करें, लेकिन समय से डेढ़ घंटा बाद पहुँचे। उनका घर बनारस की टेढ़ी मेढ़ी गलियों में था, जहाँ स्वयं पथ प्रदर्शक बनना पड़ा था।

वहाँ से फिर साथी रुस्तम सटिन और मनोरमाजी के यहाँ चाय पीने गये। फिर ४ बजे नागरी प्रचारिणी सभा में स्वागत के लिए उपस्थित हुए। यहाँ बहुत से परिचित बन्धुओं के दर्शन हुए। पं० चन्द्रबली पांडे भी थे, पं० हजारीप्रसादजी भी। फिर कार में दौड़े विश्वविद्यालय की साहित्य सहकार समिति में। स्वागत गोष्ठी के लिए उपस्थित होना पड़ा। गोष्ठी पं० मन्नन द्विवेदी के अनुज अवध द्विवेदी के निवास पर थी। श्री मन्नन द्विवेदी का नाम सुनकर हृदय में टीस पैदा होती है। यह हिन्दी का प्रतिभाशाली लेखक और कवि जवानी में ही अपनी सारी क्षमताओं से हिन्दी माता को वंचित कर चल बसा। उनकी भोजपुरी की वसन्त-सम्बन्धी कविता की पंक्तियाँ अब भी मेरे कानों में गुनगुनाती हैं। सरकारी नौकरी होने से छद्म नाम से उनके लेख "प्रताप" में निकलते थे, और हमारे जैसे तरुण उसके एक एक अक्षर को घोट कर पीते थे। ऐसे पुरुषों को इतना जल्दी क्या चला जाना चाहिए? उनको बहुत दीर्घजीवी होना चाहिए था। उनके अनुज भी साहित्य के एक बहुत ममज्ञ हैं। अँग्रेजी के अध्यापक हैं, पर हिन्दी का स्नेह अपने अग्रज से पाया है। कहना चाहिए रोटी अंग्रेजी की खाते हैं और काम हिन्दी का करते हैं। कई वर्षों से आँखों की ज्योति जाती रही, लेकिन उन्हें सदा प्रसन्न देखा जाता है। विश्वविद्यालय से अब फिर अन्तिम प्रोग्राम पूरा करने के लिए ओगोल्या में सरस्वती प्रेस में पहुँचे। यद्यपि श्रीपतिजी और अमृतजी ने अब अपना स्थान प्रयाग में बदल दिया है लेकिन इस मकान को अभी भी अपने पास रखा है। यहाँ मार्क्सीय कवच में बोलना पड़ा, और साढ़े ६ बजे रात को लौटकर अपने निवासस्थान पर पहुँचे।

बनारस के पत्रों में आने और रहने के स्थान की सूचना निकल गई थी, इसलिए मित्रों को पता हो गया था। २३ को आधे दिन तक हम यहाँ रहना था। सबेरे ७ बजे से ही इष्ट मित्रों ने दर्शन देना शुरू किया। अधिकतर

ऐसे ही विद्वान आए जिनसे मिलकर कई काम की बात करनी थी। प्रिंसिपल राजवली पाडे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी श्री परमेश्वरी लाल गुप्त, श्री महेन्द्र शास्त्री न्यायाचार्य श्री दलसुखभाई मालवणिया, स्वामी सत्यस्वरूपजी और स्वामी योगीन्द्रानन्द से ६ बजे के बाद तक बातें होती रही। सभी अपने-अपने कामो में तन्मय हैं यह जान कर प्रसन्नता हुई।

इस यात्रा का एक निजी प्रयोजन भी था वह था अपनी पुस्तका के प्रकाशन का प्रबंध करना। एक प्रकाशक ने पहले चिट्ठी द्वारा आशा दिलाई थी कि हम बहुत सी पुस्तकें छाप देंगे और कुछ अग्रिम भी देंगे। उन्होंने यदि आने के दिन ही कह दिया होता तो हम पुस्तको के प्रकाशन के प्रबंध करने में सुभीता होता। जब प्रस्थान करने में दो तीन घंटे रह तब असमर्थता प्रकट की। कुछ पुस्तकें थी सत्येन्द्रजी ने प्रकाशित करनी चाही यह जानकर हमें संतोष हुआ।

१० बजे भारत कला भवन गये। इसका आरम्भ रायकृष्णदास ने नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में किया था। अब वह अपने समुचित स्थान पर विश्वविद्यालय में आ गया था। श्री परमेश्वरीलालजी उसके क्यूरेटर थे। मुझे संग्रहालय की मूर्तियां, चित्र और मुद्राओ के देखने की उत्सुकता थी,। म्युजियम का अपना मकान बन रहा था, अभी वह अस्थाई तौर से एक बंगले में था। परमेश्वरीलालजी स्कूल से पढ़ाई छोड़कर स्वतन्त्रता आन्दोलन में लग गये। एक बार पढ़ाई छूट जाने पर फिर मुश्किल से ही आदमी ढर्रे पर लगता है। लेकिन जिसमें लगन हो वह फिर अपने रास्ते को पकड़ लेता है। परमेश्वरीलालजी का ध्यान पहले पत्रकारिता की तरफ गया। फिर पुरातत्व और प्राचीन मुद्राओ ने अपनी ओर इतना अधिक खींचा कि वह उसी के हो गये। आजमगढ़ में रहते उनके एक मन के करीब कृपाण और पुराने सिक्कों को मैं देख चुका था। उच्च शिक्षण संस्थाएँ उनका दुत्कारती थी क्योंकि उनके पास उनमें प्रवेश करने के प्रमाण पत्र नहीं थे। लेकिन क्षमता रखने वाले आदमी को कब तक दूर रखा जा सकता है? उन्होंने अपने लेखो द्वारा अपनी विद्या का परिचय दिया। वह सीधे एम० ए० में भरती होकर सम्मान-सहित उत्तीर्ण हुए। आजकल के जमाने में जब डाक्टर की उपाधि टके सेर बना दी गई है, तो

उसका आकर्षण भी नहीं हो सकता। लेकिन, परमेश्वरीलालजी के लिए वह कोई दुर्लभ चीज नहीं है। काशी से वह फिर बम्बई के म्यूजियम में बुला लिए गये, जहाँ डा० मोतीचन्द के साथ अब काम करते हैं।

काशी का अबका निवास कितना व्यस्त रहा, यह ऊपर के वर्णन से मालूम होगा। लौट कर भोजन किया। श्री सत्येन्द्रजी के साथ छावनी स्टेशन पहुँचे। बाबू शिवप्रसादजी अपने दोनों नातियों को शेर और भालू कहते थे, जो उनके शरीर को देख कर उल्टा हो गया। सत्येन्द्रजी अपने नाना से अधिक मिलते हैं और उनके अनुज दुबले पतले हैं।

पटना—गाड़ी चलनेवाली थी जब कि हम डब्बे में पहुँचे। १ बजने वाला था। हमने मसूरी में समझा था कि अक्तूबर के अन्त में अब नीचे गर्मी का डर नहीं रहेगा, लेकिन अधिकतर हम पंखे की मदद से ही रहे। ट्रेन सीधे पटना जाती थी। बक्सर में कुछ तरुण मिलने आये, उन्हें पत्रों से मालूम हो गया था कि हम इसी ट्रेन में जा रहे हैं। आरा में भी कुछ पूछ-ताछ हुई थी। ६ बजकर २५ मिनट पर हम पटना जंक्शन पहुँच गये। जयगोपालजी बनारस में ही लौट गये और हम अकेले थे। स्टेशन पर श्री देवेन्द्रजी, कुसुम, धीरेन्द्रजी और अद्भुतजी आए, जिनके साथ हम देवेन्द्र जी के निवासस्थान पर पहुँचे। देवेन्द्रजी इधर कभी लन्दन के लिए दो साल लन्दन गये हुए थे। संस्कृत के साहित्याचार्य और मेधावी पुरुष हैं। क्या भाषा लन्दन में उनका मन भी लगा और साल आठ महीने और रहने दिया गया होता, तो वहाँ से के बी० ए० की जगह डाक्टर बन कर आते। उन्होंने चाहा एक साल बिना वेतन की छुट्टी मिले, लेकिन आजकल नौकरियों में नियम बहुत कड़ाई है। लन्दन की डाक्टर दूसरा से आगे बढ़ जाता इसका भी ख्याल था। उन्होंने कुसुम अपने ज्येष्ठ दीपक और छोटी दीप्ति को भी बुला लिया था। कुसुम अपने दोनों बच्चों को लेकर अकेले लन्दन चली गई, यह कम साहस की बात नहीं थी। पिता (प० गोरखनाथ त्रिवेदी) अपने समय के शास्त्र के बहुत मेधावी छात्र थे। यह यदि साहस की उच्च शिक्षा के लिए जर्मनी गये होते, तो एक पीढ़ी पहले ही यह ख्याल उठ गया होता कि समुद्र पार जाने से धर्म नष्ट हो जाता है। लेकिन, वह प्रथम विश्व युद्ध का समय था। तब से अब जमीन आसमान का अन्तर

हो गया है। अब तो ब्राह्मण हो या कोई भी जाति, विलायत से लौट आये का सम्मान करता या जाति से निकालने का किसको साहस हो सकता था? देवव्रत के पिता संस्कृत के दिग्गज विद्वान् यदि आज जीवित होते तो न जाने अपनी बहू के इस काम को कैसे लेते? दस महीने रहकर बच्चों में सबसे ज्यादा परिवर्तन देखने में आता था। वह जहाँ शुद्ध अँग्रेजी वाले रहे थे, वहीं साथ ही अंग्रेज बच्चों की सफाई और व्यवस्था को भी स्वाभाविक ढंग से सीख आये थे।

२४ अक्तूबर को इतवार था। शिवपूजन बाबू सम्मेलन भवन में ही रहते हैं, यह सुनकर उनके पास मिलने गये। ऐसा सरल और मधुर स्वभाव साहित्यकार मुश्किल से मिलेगा। वह टी० बी० सेनिटोरियम में गये तो सभी हिन्दी प्रेमियों को बहुत दुःख हुआ। अब वहाँ से तो चले आये, लेकिन शरीर बहुत कमजोर था। उन्होंने जीवन भर साहित्य आराधना को सबसे बड़ी चीज नहीं समझा। जब गिन गिन कर पैसे मिलते थे, तब भी वह उसी तन्मयता के साथ सेवा करते थे। इस समय वह स्वास्थ्य के ख्याल से भी मेहनत करने से बाज कैसे आ सकते थे? सभी लोग कहते थे—कम मेहनत किया करें, दूसरों से काम लें। लेकिन शिवजी महाराज जो ठहरे। जीवन के एक एक क्षण का मोल चुका लेना चाहते हैं। बहुत लोगों ने उन्हें लेक्चर दिया होगा। मैंने भी दिया, तो क्या बुरा किया? अगले दिन पता लगा, बीमार हो गये थे।

भोजनोपरान्त नागार्जुनजी के साथ म्यूजियम गए। जायसवाल प्रतिष्ठान से तन्जुर के उन भागों को लेना था, जिनमें सरह की कविताओं के अनुवाद थे। वहीं फ्रेजर रोड पर पार्टी का आफिस था। यद्यपि मैं इस पार्टी का मेम्बर नहीं था, लेकिन मैं पार्टी का था, उसके कर्मियों के साथ असाधारण घनिष्ठता होनी भी स्वाभाविक थी। पुराने साथियों से मुलाकात हुई—इन्द्रदीप, चन्द्रशेखर, योगेन्द्र, रामावतार। कुछ देर तक उनसे बातचीत हुई। घर लौटने पर देखा, शिवजी वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रसन्नता और चिन्ता दोनों ही होनी थी। उन्होंने चिन्ता प्रकट करने पर कहा—"नहीं, मैं रिक्शे पर आ गया था।" सरह ग्रन्थावलि और 'मध्य एसिया के इतिहास' के बारे में कुछ बातचीत करनी थी। उस दिन शाम

का घूपनाथजी भी आ गए। बिहार में प्रगतिशील शक्तियाँ विभक्त थी यह दुःख की बात थी। सोशलिस्ट कम्युनिस्टों की परछांई भी लाँघना नहीं चाहते थे और जब तक यह मनोवृत्ति दूर नहीं होती, तब तक जल्दी किसी बड़े काम की आशा नहीं हो सकता।

२५ अक्तूबर को जायसवालजी के परिवार से मिलने गया। उनकी पुत्री धर्मशीला ने अपना बंगला बना लिया था। जायसवालजी की सन्तानों में ज्येष्ठ पुत्र चेतसिंह हीरा निकले। मुझे पहले ही से उनसे यह आशा थी। कितना उदार वह पुरुष था। बरिस्टरी पास करते समय वहीं से अंग्रेज तरुणी को पत्नी बना के लाया। पिता पहले ही पुत्र का ब्याह कर चुके थे इसलिए यह उन्हें पसन्द नहीं आया। नया बरिस्टर अपने पैरों पर इतना जल्दी खड़ा कैसे हो सकता था? चेतसिंह उलटे पैरों लौट अपनी प्रेमिका को लन्दन ले गए और वहाँ अपनी विवशता को दिखलाते उससे छुट्टी ली। कुछ वर्षों भारत में रहने के बाद चेतसिंह मलाया में बरिस्टरी करने चले गए। १६३५ में जापान जाते समय उनसे आखिरी बार मुलाकात हुई थी। तभी उनकी बरिस्टरी जम गई थी। महायुद्ध के जमाने में पता न लगने से तरह-तरह की आशंका हो रही थी। अब चेतसिंह जायसवाल मलाया के निवासी हो गए हैं। वहीं परिवार है घरबार है। ऐसी अवस्था में उन्हें क्या जरूरत थी कि बीस हजार रुपया देकर भाइयों का उद्धार करते। जायसवालजी के बंगले के लिए भाइयों और बहनों में मुकदमा चल रहा था। भाई कहते थे, यह हमारी सम्पत्ति है। बहिन कहती थी हमारा भी हिस्सा होता है। जायसवालजी ने कोई विल किया था पर मुझे उसका पता नहीं था। यद्यपि मैं उनके घर का एक व्यक्ति-सा था पर घरू बातों में न मुझे रुचि थी और न वह उसके बारे में बतलाते थे। हमारे पास दूसरे विषय बात करने के लिए बहुत थे। जायसवालजी के दूसरे लड़के बिट्टू कृषि विभाग में अच्छे पद पर थे। नारायण भी डाक्टर थे लेकिन चतुर्भुज और दीप उसी बंगले में पिलानो होटल चलाकर अपना जीविका चलाते थे। बंगला स्टेशन से नजदीक है यह अनुकूलता थी। पिछली मतर्बा मिलने पर यही चिन्ता हो रही थी कि कहीं बहन जीत गई और उन्होंने बंगले को बाँटना चाहा तो जीविका छिन जाएगा। अब वह अपने बड़े भाई को रोम-

रोम से दुआ द रहे थे। नइ पीढी किस तरह समाज के पुराने बन्धनो को तोडकर आगे बढती है, यह यहाँ दिखाई दे रहा था। वरिस्टर धर्मशीला का अब उनके पति के साथ कोई सम्बन्ध नही है। सबस छोटी वहिन नानशीला का ब्याह एक प्रोफेसर से हुआ। सोच समझकर शादी की थी पर पुरानी कहावत को चरिताथ किया "मन मिले का मला, नही तो भला अकेला।" वह यहा से डाक्टर होकर लन्दन ऊँची डिग्री लेने के लिए गई थी। बहिन वनला रही थी, वहा उनका मन नही लग रहा है।

शाम को ६ बजे सम्मेलन भवन म गोष्ठी हुई। सौ के करीब साहित्यकार आए थे। सभा से साहित्यकारो की गोष्ठी अच्छी होती है क्योकि इसम हिल मिलकर लोग बठते, अपने विचारो को प्रकट करते हैं। लेकिन, गोष्ठी की सख्या सीमित होनी भी जरूरी है। मैं भाषा और लिपि पर बोला। सारे देश की सम्मिलित भाषा होने और हमारे साहित्य और सस्कृति के वाहन बनने के कारण हिन्दी हमारी प्रेमास्पद है। लेकिन मैं यह मानने के लिए तैयार नही हूँ कि हमारी मातृभाषाएँ—भोजपुरी, मगही मथिली आदि—उपेक्षित कर दी जाएँ। वहा उपस्थित साहित्यकार बन्धुओ म किसी की भी मातृभाषा हिन्दी नही थी, और कुछ तो ठेठ भोजपुरिया थे, जिनका प्राय सारा क्या सलाप अपनी मातृभाषा मे होता है। कुछ बन्धुओ ने बडे जोरदार शब्दो मे मेरे मत का खण्डन किया। कुछ के कहने का यह भाव था कि गडे मुर्दे का क्या उखाडते है? मैं कस मान लू कि भोजपुरी गडा मुर्दा है। मेरी अपनी मातृभाषा के लिए यह शब्द मैं सहन नही कर सकता था। मैंने अपने ऊपर बहुत सयम किया लेकिन प्रतिवाद म अपनी टोन को कोमल नही रख सका, इसका मुझे तुरन्त खेद हुआ। हमारे जो भी विचार हो उसे तक और युक्ति-सहित दूसरो के सामने रखो। दूसरे चाहे जिस तरह से भी उसका उत्तर दें, उसे ठडे दिल से सुनना चाहिए। यही मेरी सामान्य नीति है। इसका यदि स्वय उल्लघन करूँ तो क्या न दुख हो।

नालन्दा—२६ अक्तूबर को दीवाली का दिन था। और यही दिन मेरे पास बच रहा था। उस दिन दोपहर को श्री जगदीशचन्द्र माथुर के यहा भोजन का निमन्त्रण स्वीकार कर अच्छा नही किया था। क्योकि तब

तब हम नालन्दा से लौट आना था। सवेरे साढे ५ बजे ही देवेन्द्रजी, दीपक, दीप्ति योगेन्द्रजी के पुत्र मुन्ना के साथ योगेन्द्रजी की मोटर पर चले। उस वक्त अंधेरा था। आकाश में बादल घिरे हुए थे। कभी कभी बूंद बूदी भी हो जाती थी। फतुहा बख्तियारपुर बिहारशरीफ होते डेढ घटे म नालन्दा पहुँचे। प्राय ४० मील प्रतिघटा का चाल रही। नालन्दा के पुनरुज्जीवन के साकार प्रयत्न को देखने मैं पहली बार कई साल बाद आया था। बडे पोखरे के सामने पालि प्रतिष्ठान की एकमंजिला इमारत करीब करीब बनकर तैयार हो गई थी। काश्यपजी ने सभी चीजें दिखलाइ। गाव के एक पक्के दोमंजिले मकान को किराए पर लेकर उसे पुस्तकालय का रूप दिया गया था। नालन्दा को कभी विस्मृत किया जा सकता? क्या पुरानी इमारतों के ढेरो का खुदवा कर तरनी लगा देने भर स सतोष किया जा सकता है? इसने धर्मकीर्ति जसे दिमागो का पदा किया। आजकल सकडो वर्षों तक भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध को दूसरे देशो स हट करने का महान काम किया। यहाँ कितने ही देशो के भिक्षु और विद्यार्थी मौजूद थे। नालन्दा सरकार को मकान बनवाने और दूसरे साधनो के जुटाने के लिए बाध्य कर रहा है। बिजली के नलकूप की तयारी हो रही है। परिदर्शन करके भिक्षु जगदीश काश्यपजी की कुटिया म मध्याह्न भोजन किया। काश्यपजी इन्स्टीट्यूट के आनरेरी डायरेक्टर हैं। कह रहे थे मैं डायरेक्टर पद स इस्तीफा देना चाहता हूँ ताकि काम करने म मुझे ज्यादा आजादी रहे। मैंने कहा जल्दी करने की आवश्यकता नहीं। नालन्दा स राजगह जाने के लिए अब समय नही रह गया था इसलिए सिलाव जाकर वहाँ के प्रसिद्ध चूरा और खाजा को खरीदा। फिर गाडी पीछे मुडकर दौडी। १ बजे देवेन्द्रजी के यहाँ लौटा था छाइवर मैं सीधे माथुर साहब के बगले पर गया। भोजन के साथ बातचीत हुई। फिर चाय पीने के लिए कल्लकर साहब के यहाँ।

रात को सारे शहर म दीपमाला हुई। मसूरी म भी दीपमाला होती है लेकिन मैं उसे देखने कभी नहीं गया। रात को ही डा० बाँकेबिहारी मिश्र मिले। हमारे देश म गाधीजी ने 'लौटो गुहा-मानव की ओर' का नारा लगाया। उन्होंने इसे सदिच्छा स लगाया था, लेकिन अब हमारे

भाग्यविधाता उनके द्वारा जनता की आशा म धूल झोकने का काम करते हैं। देहाती विश्वविद्यालय खोले जा रहे हैं, जनता कालेज बनाए जा रहे हैं। कालेज और विश्वविद्यालय से अभिप्राय है उच्च शिक्षण संस्थाएँ। उच्च शिक्षण संस्थाएं गावो म कैसे फल फूल सकती हैं? वहा एक नए नगर बसाने के लिए पैसा खच करने की सामर्थ्य कहा है। बिना नगर के छात्रो और अध्यापको का सास्कृतिक जीवन का सुभीता नही रहेगा जिसके बिना वह वहाँ टिक नहीं सकेंगे। फिर इन संस्थाओ के लिए बड़े पुस्तकालय संग्रहालय तथा छात्रो की भारी सख्या की आवश्यकता है। मैं तो नालन्दा के पालि इंस्टीट्यूट को भी आजकल अनुपयुक्त स्थान म पाता हूं लेकिन नालन्दा का अपना एक इतिहास है, जिसे विस्मृति के गभ म स्वेच्छा से जाने नही दिया जा सकता। वह धीरे धीरे बडी सस्था होगी, वहा नगर का वातावरण भी हो जाएगा।

बिहार सरकार न देहाती विश्वविद्यालय के सगठन के काम म डा० बाकेबिहारी मिश्र को नियुक्त किया था। मैंने कहा, यदि देहात मे रखना ही है तो ऐसे विश्वविद्यालय को नालन्दा मे रखें। वहाँ एक इंस्टीट्यूट है ही, यह भी हो जाए और साथ म एक कृषि कालेज रहे तो कई सस्थाएँ मिलकर अपने दूसरे अभावो की पूर्ति कर लेंगी। लेकिन अत म उसे मुजफ्फरपुर जिले के गाँव तुरकी म बैठाया गया। १६५६ की यात्रा म डा० मिश्र मिले, तो वह बहुत सतुष्ट नही थे। वह बहुत विद्याव्यसनी जीव हैं। जो आदमी एक अच्छे हाई स्कूल की हेडमास्टरी छोडकर किसान सत्याग्रह म मरी जगह जाने के लिए तयार हो जाए उसके साहस के बारे म क्या कहूं? लेकिन डा० मिश्र भारत म अग्रेजी राज्य के इतिहास के गभीर विद्वान् हैं। उसकी रग रग को जानते हैं। लन्दन म रहकर उन्होंने इसी पर पी० एच० डी० और डी० लिट० ही नही किया, बल्कि ब्रिटिश म्यूजियम की उस विशाल सामग्री का भी अवगाहन किया, जहाँ अंग्रेजी शासन के इतिहास के मूल रेकाड भारी परिमाण म जमा है। उनके लिए भारत के ऐतिहासिक रेकार्डों की देख रख का काम होना चाहिए था।

रात को ही दिनकरजी, नागार्जुनजी श्री रामखेलावन पाडे और दूसरे साहित्यकार मित्र आए, जिनसे साहित्य के सम्बन्ध म बातें होती रहीं।

दिनकर के भावों में अब भी परिवर्तन नहीं हुआ था। वह एक तरफ देश की परतन्त्रता के खिलाफ अग्निवीणा बजा रहे थे, और दूसरी तरफ अंग्रेजों की नौकरी कर रहे थे। अब नए प्रभुओं से मेल रखने के उनके प्रयत्न के बारे में लोग बुरा भला कहते हैं। मैं तो दिनकर की कविता को देखता हूँ। उस कविता में निर्भीकता है। वह अब भी दहकते अंगारों जैसे शब्दों में लिखी जाती है। मैं दिनकर का प्रशंसक हूँ।

लखनऊ—पटना से पश्चिम आते वक्त कुसमय की ही गाड़ी पकड़नी पड़ती थी। भला रात के तीन बजे कोई उठने का समय है? अपने उठने का मतलब घर भर को उठाना है। ४ बजे धूपनाथ और वीरेन्द्रजी स्टेशन पहुँचाने के लिए आए। पंजाब मेल पकड़ा क्योंकि वही सीधे लखनऊ पहुँचा सकता था। कम्पार्टमेंट में मसूरी जाने वाले दो तरुण-तरुणियाँ भी थीं। आजकल मसूरी में वही जाते हैं जो वहाँ पढ़ते हों। ये वहाँ के छात्र छात्राएँ थीं। रास्ते में और पटना में भी बूँदा-बाँदी थी, लेकिन बनारस की ओर इसका कोई पता नहीं। रेल के सफर में इस्तुलिन लेने का नियम स्थगित रहता है, उसके बिना ही भोजन किया। ढाई बजे गाड़ी लखनऊ पहुँची। साथी शिव वर्मा और यशपालजी की पुत्री मटा अपने भाई के साथ मिले। भिक्षु प्रज्ञानन्द भी आए थे। उनको बहुत संताप होता यदि मैं रिसालदार बाग बौद्ध विहार में ठहरता। लेकिन, मित्रों को मिलने जुलने में सुभीता यशपालजी के यहाँ रहता है इसलिए उनके और प्रकाशवतीजी के अनुपस्थित रहने पर भी उनके ही घर पर ठहरे। श्रीमती मोहिनी जुत्शी और जुत्शी साहब भी आए। दूसरे बौद्ध विहार में मेरे भिक्षु मंगलहृदय भी मिले। दुर्गा भाभी के घर जाने पर उनके पुत्र सतीश को पहली बार देखा। सतीश कई साल बाद अमेरिका से पढ़कर लौटे थे और अब किसी सर्विस में लग हुए थे।

यद्यपि पिता माता नहीं थे लेकिन मटा और नन्दू ने आतिथ्य सत्कार में किसी तरह की कमी नहीं होने दी। दाना ने नाटक भी दिखलाए। अगले दिन नेशनल हेरल्ड प्रेस गए। 'मध्य एसिया का इतिहास' की दूसरी जिल्द यहाँ सटाई में पड़ी हुई थी लेकिन अब प्रबन्धक होकर श्री सीताराम गुड़ आन वाले थे इसलिए उनकी तत्परता पर पूरा विश्वास था। हम पहली

जिल्द को भी वहा पर दे आए। नागानद ट्रेररड देने का एक बहुत बड़ा प्रेम है लेकिन उसकी व्यवस्था औद्योगिक युग के अनुरूप नही सामन्ती युग-सी मालूम होती है। वह अपना खर्च भी नही निकाल सकता और कर्ज के बोझ मे दबता जा रहा है। उसका सस्थापक रफी अहमद किदवई जैसा कमठ आदमी है जो नहीं चाहता कि हाथ का लगा बिरवा मुरझा जाए किसी पूजीपति के हाथ म चला जाए। बहुत से कामो के कारण रफी साहब का समय भी निकालना मुश्किल है लेकिन जब गरज की पुकार हुई तो भगवान् नग पर दौड़ने के लिए भी तयार हो गए। प्रेस का ठीक ठाक करने के लिए वह गुठेजी को लाए। लेकिन गुठेजी के आने का सब बात तय होने से एक हफ्ता भी नही बीता कि रफी साहब लोला को बुलाकर चल बसे। गुठेजी से तब भी कुछ होने की आशा थी लेकिन जहा सारा मानव यत टी० बी० का मरीज हो, वहा एक आदमी क्या करता? मैंने उसी समय गुठेजी का कह दिया था कि सम्मेलन प्रेस को न छोड़ना। सम्मेलन वाले भी उन्हे छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। गुठेजी का क्या जब यहा कुछ होते नहीं देखा, तो प्रयाग लौट गए। वहाँ काम भी था और अपना घर भी।

शाम को ४ बजे बौद्ध विहार म बुद्ध के जीवन और काय पर कुछ बोला। ६ बजे साथी प्रेस (निवास-स्थान) म साहित्यकारो की गोष्ठी हुई। यहा पर भी हिन्दी अग्रेजी तथा हिन्दी-भिन्न की मातृभाषाओ की समस्या पर बोलते हुए मातृभाषाओ का मैंने बडे जोर के साथ समथन किया। लेकिन लखनऊ के दोस्तो ने पटना वालो के कितने ही मित्रो की तरह कोई असतोष नही प्रकट किया। कोई यदि सन्देह प्रकट करता तो मैं पटना की तरह अपने नक्शे म गर्मी लाने के लिए तैयार नहीं था। श्रीमती रज़िया बेगम भी आइ। साथी सज्जाद ज़हीर की पत्नी होने के कारण उनका विशेष सद्भाव होना स्वभाविक था। मुझे उनका वह रूप भी याद है जब नई-नई ब्याहकर आई थी और सुन-सुना कर समझ लिया था कि मैं उर्दू विरोधी हूँ इसलिए बडे गुस्से म मेरे सामने अपने भावो को प्रकट कर रही थी। लेकिन मैं उर्दू का विरोधी तो कभी नहीं था। उर्दू-साहित्य हिन्दी अक्षरो म भी छपे, इसे विरोध नहीं कहा जा सकता। उनसे उन्होंने कह कहा कि अपने भतीजे भतीजियो को भी

देने के लिए तशरीफ लाए। कोशिश करने पर भी जब मैं उनके लिए समय नहीं निकाल सका, तो इसका अफसोस बहुत समय तक रहा। वहाँ आधा घंटा भी निकालने की फुरसत नहीं थी और मसूरी आने पर जान पड़ता था, मैं समय निकाल सकता था और मुझे जरूर जाना चाहिए था। साथी सज्जाद जहीर वर्षों से पाकिस्तान की जेल में पड़े हैं और यह वीर महिला अपने पति पर अपने बच्चों को संभाले हुए यहाँ है। रजिया कहानी लिखती है। हिन्दी में भी लिखने लगी हैं। अगर मन की भटक है नहीं तो हिन्दी वाले को उर्दू में और उर्दू वाले को हिन्दी में लिखने के लिए भारी तैयारी की आवश्यकता नहीं होती। यदि दोनों लिपियों की पुस्तकें नागरी में छपने लगें तब तो और भी सुभीता हो सकता है।

२६ अक्तूबर को साथी शिव वर्मा के साथ 'जनयुग' कार्यालय में गए। साथी रमन और दूसरे भी मिले। सबसे सामाजी के साथ देश और जनता की सेवा करने वाली संस्थाओं और व्यक्तियों को कितना कष्ट उठाना पड़ता है और कितनी प्रतिकूल समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इसे उस समय से जानता हूँ जबकि मैं छपरा जिले में कांग्रेस का काम करता था, काम की सबसे बड़ी जिम्मेवारी मेरे ऊपर थी। आन्दोलन कभी गरम होता तो सभी साधन जल्दी जुट जाते। जब ठंडा पड़ जाता, लोगों में निराशा फैल जाती, तो चिट्ठियों के लिए टिकट का जुटाना भी मुश्किल हो जाता। महीनों मकान का किराया नहीं चुकाया जा सकता था। लेकिन जिस काम की आवश्यकता होती है, यदि उसके करने वाले हों, तो वह रुक नहीं सकता। जनयुग की आवश्यकता थी, उसके काम करने वाले साथी भी मौजूद थे। अपना प्रेस नहीं था। सस्ता छापने के लिए कम्पोज भर अपने यहाँ करा लेते थे, फिर दूसरे प्रेस में छपवा लेते थे।

मध्याह्न भोजन श्रीमती मोहिनी जुत्शी के यहाँ हुआ। अपना मकान किरायेदार से छूट नहीं रहा था, इसलिए उन्हें होटल में रहना पड़ता था।

मसूरी—२६ की रात को कानपुर से आने वाले देहरादून के डब्बे पर बैठा और अगले दिन साढ़े ८ बजे सवेरे देहरादून पहुँच गया। स्टेशन से सीधे मसूरी आने में सुभीता रहता है, क्योंकि वहीं बस या टैक्सी मिल जाती है। लेकिन, यहाँ भाषण देना स्वीकार कर लिया था, इसलिए शुक्लजी के यहाँ

पहुँचा। उसी दिन ११ बजे साथी नार्यानन्द और मेहताजी भी मसूरी से आ गए। हालचाल मालूम हुआ। ४ बजे दयानन्द कालेज के हिन्दी विभाग और साढे ५ बजे इतिहास समिति की ओर से भाषण दिये। यहाँ के अध्यापकों में प्रो० मुकर्जी अपनी खास विशेषता रखते हैं। प्रतिभा के साथ अपने विषय—इतिहास—में उनकी असाधारण रुचि है। उन्होंने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गदर पर डाक्ट्रेट के लिए अनुसंधान मेरी देख रेख में करना चाहा। मैंने स्वीकृति दे दी और यह भी बतलाया कि ब्रिटिश म्यूजियम में इस सम्बन्ध में जो सामग्री है उसकी प्राप्ति का उपाय डा० बाँकेबिहारी मिश्र बतला सकते हैं। चिटठी लिखने पर डा० मिश्र ने बतलाया भी। सभी संस्थाओं में अब योग्यता को नहीं बल्कि जात पात और सम्बन्ध को देखा जाता है। यहां के इतिहास विभाग के अध्यक्ष थर्ड डिवीजन के एम० ए० थे। यदि उनकी देख रेख में एक दो डाक्टर हो जाएँ, तो महिमा बढ जाती, इसलिए पीछे प्रो० मुकर्जी को इसके लिए बाध्य किया गया। उन्हें बहुत सकोच हुआ मेरे पास आने में भी। जब मुझे यह मालूम हुआ तो मैंने कहा—मुझको इसके लिए जरा भी अफसोस का ख्याल नहीं हो सकता, क्योंकि मैंने तो आपके ख्याल से स्वीकृति दी थी। मुझसे जो सहायता हो सकती है उसे निस्संकोच आप मुझसे लीजिए। प्रो० मुकर्जी के विद्यार्थी उनकी हमेशा प्रशंसा करते नहीं थकते। कालेज के पालिटिक्स से उनको कोई मतलब नहीं अपने काम से काम है। यही डर लगता है कि ऐसे योग्य आदमी की सेवा से कहीं कालेज वंचित न हो जाये। कालेज के धनी बोरिया को इसके लिए क्या अफसोस होगा ? वह अपने दूसरे किसी आदमी को ला बैठाएँगे। शिक्षण संस्थाओं में इस तिकडम को देखकर सचमुच ही दम घुटता है। लेकिन इस देश में किस जगह दम नहीं घुटता ? सभी कूडा करकट, सभी दमघोटू स्थितियों के हटाने का एक ही मार्ग है वह है लाल भवानी साम्यवादी क्रांति।

३१ अक्तूबर का मध्याह्न भोजन प्रो० मुकर्जी के यहां हुआ। बंगला भोजन था। मछली कई तरह की बनी थी। १ बजे टैक्सी नहीं मिला, फिर बस भी चली गई और ३ बजे की बस पकडकर हम किऊग पहुँचे और पौने ६ बजे घर पर थे। जाते वक्त अभी भी मसूरी की सडकों पर बहुत से

आदमी दिखलाई देते थे, लेकिन अब वह सूना थी। जया तो बिल्कुल भूल गई थी लेकिन जल्दी-जल्दी स्मृति फिर से जागृत हो गई। दो हा हफ्ता बाहर रह लेकिन इसी म बडी और मोटी मालूम होती थी। इसका कारण मनोवैज्ञानिक था। कलिम्पांग का एक और तरुण आ गया था जिससे नेपाल म हमारी मुलाकात हुई थी। भारत सरकार के शिक्षा विभाग का निमत्रण मिला, यहाँ से बर्मा की संगीति म तीन चार बौद्ध विद्वान भेजे जाने वाले हैं उनमे मैं भी जाऊँ। मैंने स्वीकृति दे दी। इस तरह पासपोर्ट भी आसानी से मिल जाता यह भी ख्याल था। लेकिन पीछे प्रतिनिधि मण्डल के जाने की जरूरत नहीं पडी।

इधर हैपीवैली म एक दुर्घटना की खबर मिली। १९ अक्तूबर को एक गुण्डा शराबी इधर गुजरा। मसूरी के बाहर के पहाडी गाँवों म शराब बनाने की छूट है यह सस्ता मिलती है। पियक्कड वहाँ जाकर पी आते हैं। गुण्डा पीकर आया। पहले उसने कल्याणसिंह के बच्चे को धमकाया। चिल्लाने पर चौधरी ने ललकारा वहाँ से भागा। फिर रतिलाल के यहाँ उलझ पडा। वहाँ से चालविल पाटर के आगे प्लेजांस के सामने पहुचा तो शर्मा स्यालकोटी और डा० रघुनन्दनलाल मिल गये। उसने छुरा दिखलाया। शर्माजी के पास एक रुपया और कुछ पसे थे। उसे छीनकर वहाँ से रफूचक्कर हुआ। शर्माजी प्रभावशाली व्यक्ति है। स्यालकोट से अपने लाखों के कार बार को छोडकर यहाँ आये और अब भी उनका बड़ा कारबार है। डा० रघुनन्दन लाल मेडिकल कालेज के बड़े पद से पेन्शन पाकर अधिकतर यहीं रहते हैं। उनके साथ यह घटना हुई और पुलिस कुछ नहीं कर सकी। हालाँकि यह पता लग गया था कि वह यहाँ के एक हिन्दू रईस का सम्बन्धी है। आखिर पुलिस किस मर्ज की दवा है और क्या पहले से तिगुना चौगुना उस पर खर्च किया जाता है? जान तो पडता है कि अब वह केवल शासक दल की आत्मरक्षा का सशस्त्र साधन मात्र है नागरिक स्वतन्त्रता की एक एक बात को कुचलना उसका काम है।

इधर डा० सत्यकेतु एक महीने के लिए चीन गए थे। १० नवम्बर को उनके स्वागत के लिए चाय पार्टी दी गई। सभापति का आसन मुझे स्वीकार करना था। ८० से ऊपर मसूरी के सभी गण्यमान्य लोग वहाँ मौजूद थे।

डा० सत्यकेतु चीन की प्रगति से बहुत प्रभावित हुए। अभी कुल पाँच ही साल तो कम्युनिस्टो को वहा शासन सँभाले हुए थे। चीन मे बेकारी नहीं है, वहाँ भ्रष्टाचार बिल्कुल नही है। ये दो चीजें भारत से गये हुए किसी भी समझदार को सबसे ज्यादा अपनी ओर आकृष्ट कर सकती हैं। बतला रहे थे, उच्च शिक्षा कितनी गुना है। जिस कालेज मे छात्रो की सख्या कुछ सौ थी, वहा अब उनकी सख्या हजारो हो गई है। चिकित्सा भी कितनी गुना है। अन शान का लोह कारखाना १६४६ म पाच लाख टन लोहा पैदा करता था अब वह बीस लाख टन कर रहा है। डा० सत्यकेतु राजनीति और अर्थशास्त्र के विद्वान् हैं इसलिए वह हरेक चीज के आँकडे अपने साथ लाये थे। उन्होंने पत्रों मे अपनी यात्रा पर कई लेख लिखे। योजनाओ म जिनकी आस्था कठि नाई भी नही है, उनके मुह म भी डा० सत्यकेतु की बातो को सुनकर पानी आ रहा था।

हम सरहपा की कविताओ के ऊपर लिखे जिनका मूल नष्ट हो गया है, उन्हे तिब्बती से हिन्दी म कर रहे थे। काफी परिश्रम का काम था। इस समय याद आता था कि यदि हम मसूरी की जगह कलिम्पाग म रहते, तो बहुत अच्छा होता। वहाँ कोई न कोई तिब्बती विद्वान् सहायता देने के लिए मिल जाता।

१४ नवम्बर को श्री डा० रुद्रधर शास्त्री आए। १७ १८ साल लन्दन म रहे। सस्कृत के विद्वान् थे, वहाँ जाकर डाक्टर हुए। कभी कभी आर्थिक कठिनाइयो म भी पडना पडा। तो भी वहाँ से बहुत अच्छी हालत म रहे। निश्चिन्त जीवन बिता रहे थे। कानून के अनुवाद के लिए स्पेशल अफसर की नौकरी के लिए भारत सरकार ने विज्ञापन दिया। यह कानून के भी विद्यार्थी थे, सस्कृत के पण्डित थे। अग्रेजी म बने कानूनो का हिन्दी म अनुवाद करने की उनम पूरी क्षमता थी। लेकिन विज्ञापन मात्र से नौकरी थोडे ही मिल सकती था। वहाँ से लिखकर साफ करा लेना चाहा, लेकिन सन्देह ही म रखा गया। उनको नही लेना चाहिये था, लेकिन अपने स्वतन्त्र देश का आकर्षण बहुत था। हवाई जहाज का कई हजार का खर्च उठाकर यहाँ आए। पब्लिक सर्विस कमीशन म गये। कह रहे थे—यहाँ तो पहले ही से सब ठीक ठाक था, इण्टरव्यू के लिए यो ही बुलाया गया था। "अपनी खुदा

पर छोड़ के लगर का ताड़ क आय थे अब पछता रहे थे। लौटकर जाने के लिए खर्चा नहीं था वहाँ जो नौकरी थी उसस स्तीफा लेकर आय थे और यहाँ दिल्ली म कोई पूछने वाला नहीं था। डा० पाडे के साथ मानव भारती म ठहर हुए थे। विपद अकेली नहीं आती। बेचारे गिर गये बड़ी चोट आई और महीने स ऊपर चारपाई पर पड़े रहे।

२० नवम्बर का हमारे मुहल्ले म रतिलाल की लड़की रुक्मणी की शादी हुई। बारात गाजियाबाद से आई। वर ग्रेजुएट और हट्टा कट्टा था। मुहल्ले वाले देखकर बड़ी प्रशसा कर रहे थ। लाला कह रहे थे पाँच हजार गिनवा तो लिया, लेकिन वर को देखकर हम सतुष्ट हैं। कन्या भी स्वस्थ और अच्छी मट्रिक पास थी। हमारे यहाँ शादी के साथ जिस तरह बरबादी होती है इसका एक उदाहरण हमारे सामने था। जितने रुपये वहाँ दिए उससे कम की चीज यहाँ नहीं दी होगी। ऊपर स सौ के करीब घराती बराती मेहमानो को तीनो दिन तक भोज रहा। आजकल मसूरी के सभी बनिये अपने भाग्य के लिए रो रहे है। रतिलाल बूढ़े लाला शादीलाल क पुत्र का एक दजन स ऊपर का परिवार है। उस बोझ के साथ साथ इतना खच। बिदाई के दिन भोज म हम भी शामिल हुए। तरह-तरह क पक्वान थे। अभी सब भाइयो को मिलाकर आधे दजन लड़कियाँ ब्याहने को हैं। यह सबसे बड़ी लड़की थी। दूसरे के ब्याह के लिए दस दस हजार रुपय कहा स आएँगे ?

दिल्ली—दिल्ली म सोवियत भारत मत्री सघ का सम्मेलन हो रहा था। मैं उसम शामिल होने के लिए २४ नवम्बर को मसूरी से चला। मेरे मित्र श्रीहरनारायण मिश्र के पुत्र प्रो० रूपनारायण मिश्र आगरा यूनिवर्सिटी म पी एच० डी० के लिए मेरे निर्देशन म अनुसन्धान करना चाहते थे। मैंने स्वीकृति दे दी। मैंने सोचा दिल्ली से देहरादून की यात्रा रेल स तो बहुत कर चुका हूँ ज़रा मोटर स कुरुभूमि की सैर करता चलू। कुछ हफ्ते अगर कुरुभूमि म विचरता तो बहुत सन्तोष होता यदि वह सम्भव नहीं है तो यही सही। २५ तारीख को देहरादून से सीधे दिल्ली जाने वाली बस पकड़ी। वह सवा १० बजे रवाना हुई। बस से एक बार पहले भी सिवालिक को पार कर चुका था। यह दूसरी बार जा रहा था। यहा रास्ते पर पड़नेवाला

सिवालिक सूखा नहीं है। इसकी, मुजफ्फरनगर और [illegible] में बहु [illegible] थोड़ी दूर के लिए नहीं। कुरु का इस तरह भूमि वहाँ प्यासा [illegible] थी। जान पड़ता है लोगों ने एक सब अनुर उपनि [illegible] हैं। [illegible] हुए गंगा की नहर निकले। उससे कुरुभूमि का [illegible] [illegible] से [illegible] ज्यादा सहायता की। हमारी बस [illegible] ४ बजे [illegible] पर पहुँची। हमारे सहयात्रियों में एक सिक्ख दम्पती [illegible] बच्चों के साथ जा रहे थे। उन्होंने अंग्रेजी में बात की [illegible] थी। यदि [illegible] जस [illegible] [illegible] तो मालूम [illegible] कि [illegible] अंग्रेज दम्पती बोल रहे हैं। शायद बच्चे मसूरी के किसी [illegible] में [illegible] थे। वहाँ की सीखी अंग्रेजी कहीं भूल न जाय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पड़ी थी। उन्हीं के पास अपने तीन बच्चों के साथ एक और पंजाबी [illegible] थे। पिता का रंग बिल्कुल [illegible] जैसा था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और शिक्षित मालूम होते थे लेकिन उन्होंने अपने बच्चों से अंग्रेजी में [illegible] की एक बार भी कोशिश नहीं की। क्या इसके लिए सिक्ख दम्पती को दोष दिया जाए? यह हमारी राष्ट्रीयता का भारी अपमान [illegible], [illegible] [illegible] नहीं। लेकिन उसके अपराधी वह हैं जो इस अपमान को [illegible] [illegible]। [illegible] मालूम है कि उच्च नौकरियाँ अंग्रेजी की योग्यता के बिना नहीं [illegible] [illegible] सकती, [illegible] अंग्रेजों की घुट्टी पीकर महान् हुए। उनके अचकन और पायजामे में [illegible] की जरूरत नहीं उनका राम राम अंग्रेजियत से भीगा हुआ है। [illegible] स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी और भी [illegible] रही है जब तक उनका [illegible] मौजूद है, तब तक ऊँची नौकरियों का दरवाजा [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] अंग्रेजों की पूरी तौर से नकल कर सकें।

सिवालिक पार [illegible] की घाटी [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] हो रहा था हम किसी पूर्वी जिले में हैं। [illegible] में [illegible] के [illegible] [illegible] लगी हुई। [illegible] का अच्छा बाजार है। यह नाम हमारे पूर्वजों को कितना प्यारा था? पश्चिमी पाकिस्तान के [illegible] [illegible] में [illegible] है, [illegible] [illegible] में मंगलौर है और दक्षिण कनारा में भी। [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] माँग थी। [illegible] पर [illegible] [illegible] है। मुजफ्फरनगर [illegible] में [illegible] बढ़ गया है। [illegible] के बारे में तो कहना ही क्या? कुरुभूमि में [illegible] [illegible]।

खेती बहुत हो रही है और चीनी की मिलें भी काफी हैं। नहर ने इसके लिए सुभीता पैदा कर दिया। बस के अड्डे पर ताँगा नहीं मिला। कुछ आगे जाकर कुली से सामान उठवाया और फिर भयाजी के घर पर, २२ फज बाजार पहुँच गया।

२८ को १० बजे सवेरे नई दिल्ली में कांस्टिट्यूशन क्लब में पहुँचे। आज यहाँ सेम्पोजियम था। हमारी भाषा में जबर्दस्ती कुछ शब्द को लादा जा रहा है। सेमिनार, सेम्पोजियम, रिपोर्ताज ऐसे ही शब्द हैं। अभी तो लादना ही मालूम हो रहा है। लेना न लेना यह अगली पीढ़ी का काम है। सेम्पोजियम का अर्थ है लिखित गोष्ठी जिसमें लोग अपने-अपने लेख पढ़ें और उन पर दूसरे अपने विचार प्रकट करें। मुझे ही उसका अध्यक्ष बनना पड़ा। हिंदी और पंजाबी साहित्य के सम्बन्ध में कुछ लेख पढ़ गये। वरानिकोफ के "रामचरितमानस" के रूसी अनुवाद पर डा० रामविलास शर्मा ने अपना निबन्ध पढ़ा। विज्ञान के सम्बन्ध में दो अधिकारी प्रोफेसरों ने जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में रूसी साइन्सवेत्ताओं के काम पर प्रकाश डाला। मैं भी वरान्निकोफ के अनुवाद के सम्बन्ध में कुछ बोला। १ बजे तक गोष्ठी रही।

दिल्ली शहर लम्बाई में बीस मील और चौड़ाई में भी बीस मील तक चला गया है। यदि आधुनिक यातायात के सुभीते न होते तो सचमुच ही जाने आने में बहुत मुश्किल होता। घोड़े के ताँगे बहुत महँगे है, बहुतों को मोटर के ताँगे—जिन्हें लोग फटफटिया कहते हैं—खा गये हैं। साइकल रिक्शा कुछ ही जगहों पर चल सकते हैं। कनाट सर्कस से चार आने में हम मोटर रिक्शा पर बैठे और आकर घर पर उतर गए। यदि घोड़े का ताँगा होता, तो दो-तीन रुपये से कम क्या लेता? मध्याह्न भोजन आज भैयाजी के साथ मोतीमहल में हुआ। पेशावर के भाइयों ने बड़ी बेसरो सामानी में यहाँ अपना भोजनालय खोला था। शुरू से ही पठानों का पुष्ट और स्वादिष्ट भोजन उचित दाम पर उन्होंने देने का व्रत लिया था। अब तो मोतीमहल सारी दिल्ली में मशहूर हो गया है। सैकड़ों आदमी मासिक हिसाब पर यहाँ से भोजन मँगवाकर खाते हैं और उनसे कहीं अधिक यहाँ बैठकर खाते है। भोजनालय के दो भाग हैं। एक में घासाहारी और दूसरे में मांसाहारी

बैठते हैं। तन्दूर की रोटियां तो गरमागरम स्वादिष्ट होती ही हैं लेकिन खास चीज यहां का तन्दूर म भुना मुगमुसल्लम है। हमने डटकर भोजन किया। लौटे तो घर पर श्री प्रभाकर माचवे शरदजी के साथ मिले। उनसे बातें होती रहीं। शाम को भी अधिवेशन था लेकिन हम उसमें नहीं गए। आज सारा परिवार सर्कस देखने गया। मामीजी कितने ही सालों से सिनेमा नहीं देखती थीं लेकिन सर्कस म डर नहीं था। हम सात आदमी थे। तमाशा शुरू होने से दो घंटे पहले ६ बजे पहुंचे, लेकिन टिकटघर पर दूर तक कई पांतियों का क्यू था। टिकट पाना आसान नहीं था। डेढ़ घंटे म किसी तरह टिकट आया। सवा तीन घंटा सर्कस देखते रहे। जानवरों के कई खेल थे। शेर कटघरों के छड़ों के भीतर आकर अपना तमाशा दिखला रहे थे।

२६ नवम्बर को कुछ और कबीर पंथी महात्माओं के साथ बाबा नरसिंह दास आये। 'महात्मा कबीर' फिल्म बना था। फिल्मवाले भला सौंदर्य और शृंगार को पूरी मात्रा म लाये बिना सफल कैसे हो सकते थे? कबीरपंथी साधुओं म इससे बहुत असन्तोष था और वह चाहते थे कि इस फिल्म को बन्द किया जाय, अथवा इसमें से उन बातों को निकाल दिया जाए जिससे कबीर के अनुयायियों के भावों को ठेस लगती है। बाबा नरसिंहदास से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। असहयोग के जमाने के जेल के साथी थे। वह सरकार को एक आवेदन पत्र देना चाहते थे। जिस समय हमारी महात्माओं से बात हो रही थी उसी समय सूचना विभाग के सेक्रेटरी श्री लाड आ गये। फिल्म की शिकायत भी इन्हीं के पास जानवाली थी, इसलिए हमें सिफारिश करने के लिए दूर जाने की जरूरत नहीं थी। महात्माओं के सामने लाड साहब से भी बातचीत हुई। वह कह रहे थे कि यदि सरकार पर कहीं आक्षेप होता, तो उस चीज को निकालने के लिए हम कह सकते हैं। कबीर साहब की जीवनियों के बारे में जहां दो मत हैं वहां एक मत को निकालने का आग्रह नहीं माना जा सकता।

मसूरी—२६ नवम्बर को ही हम गाड़ी म यद्यपि दूसरे दर्जे म बैठे थे, लेकिन स्थान पान या सोने म कोई दिक्कत नहीं हुई। देहरादून के पास पहुंचते वक्त मसूरी म बादल दिखाई पड रहे थे। स्टेशन पर मेहताजी मिले। स्टेशन वैगन में दो रुपये म सीट मिल गई। ड्राइवर परिचित और भलेमानुस

था। पौने ६ बजे चलकर आध घंटे में हम किताब घर पहुँच गये, और पौने ११ बजे हान विलफ । ज्वर चार दिन पहले भी आ सकता था और उस वक्त यात्रा में विघ्न होता। उसने बड़ी मेहरबानी की जो मसूरी पहुँच जाने के बाद २ दिसम्बर को फेरा दिया। मैं दो दिन के लिए चारपाई पर आराम करने लगा और निश्चय कर लिया कि जब तक पूरी तरह से भूख न लगे तब तक खाना नहीं खाऊंगा। ३ तारीख को पानी भी नहीं पिया। ऐसे समय हलकी पुस्तकों के पढ़ने का अच्छा मौका रहता है। चाणक्य पर एक उपन्यास सम्मत्यर्थ आया था। सम्मति यही दी—उपन्यास दिलचस्प है। लेखक ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ अनौचित्य बरतनेवाला अकेला नहीं है। पग-पग पर ऐतिहासिकता और भौगोलिक स्थिति में विरोध है। पटना के पास पहाड़ उठा दिया गया है। चाणक्य का एकाध नाटकों में जो कुछ वर्णन आया है उसी को लेकर अपनी कल्पना और स्याही-कलम के भरोसे यह पोथी लिख डाली गई। कहीं कहीं तो बहुत असह्य ढिठाई दिखाई गई है।

कल्याणसिंह का बच्चा बीमार पड़ा। दवाई दपन भी करा लेते हैं लेकिन अभी उनके जैसे लोगों का विश्वास सयानों पर ज्यादा है। सयाना बुलाया गया वह भी अपना मन्तर-तन्तर कर रहा था और सत्यनारायण की कथा की भी व्यवस्था थी।

८ तारीख को एक बड़ी खुशखबरी मिली किल्डेर' २२ हजार में बिक गया। यद्यपि मिस पूसन और उनकी बहिन का मसूरी से जाना हमें पसन्द नहीं था। बहुत अच्छे सहृदय पड़ोसी थे। लेकिन बुढ़िया के लिए मसूरी का जाड़ा बहुत खतरनाक था। उनके लिए यह बहुत अच्छा हुआ। पाँच सात वर्ष पहले उन्हें इसके ६० हजार मिल जाते लेकिन अब तिहाई पर भी बहुत खुश थे। कितना ही सामान साथ ले जाना था जिसके लिए रेल का डब्बा ठीक किया गया था। उस वक्त अभी हमें ख्याल नहीं था कि हम भी एक दिन इसी तरह मसूरी से बोरिया बिस्तर बाँध कर जाना होगा।

अब मैं ६२वें वर्ष के अन्त में था। तीन साल पहले भी शरीर में जितनी शक्ति का अनुभव करते थे अब उतनी नहीं थी। जरा भी चलने फिरने में थकावट मालूम होती छाती भीतर से दुखने लगती।

१२ दिसम्बर को श्री सेमुवाल्जी आये। अभी भी वह किनी हाई स्कूल

म हेडमास्टर थे। बदली कराने म सफल नही हुए। कहते थ, अब खान की चीजो की उतनी दिक्कत नही है। डाक का प्रबन्ध पहले स अच्छा है और राजाना डाक जाने का प्रबन्ध हो रहा है। तिब्बत की सीमा का ख्याल करके यहाँ सी सामन्त पुलिस रखने का निश्चय किया गया है। चिनी को इसके लिए अनुकूल स्थान न समझकर अब स्कूल और दूसरे सभी दफ्तर कोठी म ले जा रहे हैं। कोठी किसी समय पहले भी राजधानी रही है। यह वहाँ की सुन्दर पत्थर की मूर्तियाँ बतला रही थी। ७००० फुट पर होने स यह शिमला जसी है। यह भी बतला रहे थ कि रोगी के नीचे स होकर कोठी तक मोटर की सडक बनने जा रही है। मोटर सडक पर जगह-जगह काम भी लगा हुआ है। चिनी म अब कई दूकानें हो गई हैं, चाय और भोजनका होटल भी है। १९४८ की यात्रा के बाद अब कितना परिवतन हो गया?

भूत हमारे घर की रखवाली करन म बडा सहायक था, लेकिन सरसपटे से बाज नही आता था। हाँ, चौधरी के टाइगर की तरह वह लण्डौर तक की दौड नही मारता यही पास-पडोस और कुछ जगलो के भीतर तक जाता। शाम के वक्त बघेरा का नवाला बनने से बचाने के लिए उसको घर के भीतर रखना आवश्यक है। १५ दिसम्बर को अधेरा हो रहा था उसे बुलाकर ले आये। फाटक के भीतर आया, तो न जाने क्या चीज देखी, वह दूसरी ओर धाबिन के घर की तरफ दौडा और जरा देर म गायब हो गया। कमला ने भूत के लाने के दिन बहुत क्षोभ प्रकट किया था। कहा था—क्या लाये।' और अब जब कुछ देर तक उसका पता नही लगा तो वह अधीर हो गई और पागल की तरह इधर उधर ढूढने लगी। अँधेरे म जिस तरह वह गायब हुआ था उसस अनिष्ट का भारी डर था। कमला तो निराश हो गई थी, समझा उसे बघेरा जरूर ले गया। फिर फूट फूट कर रोने लगी। हम भी भूत का अफसोस था, लेकिन इतनी अधीरता नही दिखलाते। खैर, कुछ और देर तक जगह जगह 'भूत, भूत' कह कर बुलाया गया और वह सही-सलामत घर म लौट आया।

२२ दिसम्बर की रात का कलेजे म दद होने लगा। गरम पानी की बोतल रखी, लेकिन उसस बहुत कम लाभ हुआ। मन कहने लगा अगले साल स दिसम्बर स माच तक के महीनो के लिए मसूरी को छोडना पडेगा।

सोचने लगा यमले को न लिया होता, तो अच्छा था। अब किसी तरह विर जाय, तो आठ महीने के लिए यहाँ किराय पर मकान लेकर रहेंगे और चार महीना देहरादून में। अगले दिन शहर गये। डा० ज्वाला प्रसाद ने खून का दबाव देखा। वह १८५ था होना चाहिए था १६२। तो भी बहुत ज्यादा नहीं था।

गर दाँत को भरवाना था। मुल्हडी में एक दाँत के डाक्टर को देखा। लीलाजी ने अपने परिचय की बात कही तो समझा अच्छा है भरवा चलें। पहले दाम-भाम भी नहीं किया। उसने भर कर कहा १५ रुपये। यह सरासर अनुचित था लेकिन अब तो गल्ती कर बैठे थे और झगड़ने की आन्त नहीं थी। खैर उसका भी कोई अफसोस नहीं होता लेकिन वह तो पूरा ठग था। उसने ऐसी दवा दाँत में भर दी कि वह हमेशा के लिए काला हो गया। अब कोई देखता है तो पूछता है आपका एक दाँत टूट गया? उस समय अपनी बेवकूफी और उस ठग की सूरत याद आती है।

बम्बई से एक भाषण का निमंत्रण आया था। वहाँ बड़े बड़े हृदय रोग के विशेषज्ञ रहते हैं, यह मालूम था इसलिए एक पंथ दो काज था। हमने मंजूर कर लिया। पहले दिल्ली गये और वहाँ से ३१ दिसम्बर को बम्बई के लिए रवाना हुए।

१३

गीता का जन्म

बम्बई यात्रा—हमारी ट्रेन १ जनवरी का साढे ६ बजे बम्बई सेंट्रल स्टेशन पर पहुँची। अभी अँधेरा ही था। स्टेशन पर राष्ट्रभाषा के श्री जोगी जी व्याख्यान के प्रबन्ध करनेवाले श्री अरविंद देशपाण्डे और श्री पोद्दारजी के ज्येष्ठ पुत्र उपस्थित थे। वहाँ से सीधे पोद्दारजी के घर पर मलाबार हिल पहुँचे। अभी भी अँधेरा ही था। मसूरी में गर्मियों में कभी हफ्ते में दो मरतबे मैं स्नान करता हूँ नहीं तो हफ्ते में एक मरतबे साबुन से शरीर धोना पर्याप्त समझता हूँ। लेकिन बम्बई में तो सर्दी कभी होती ही नहीं। यहाँ दिसम्बर जनवरी में भी पंखे की जरूरत पड़ती है, इसलिए दिन में दो बार स्नान करने की इच्छा हो तो कोई अचरज नहीं। स्नान और चायपान के बाद साढे १० बजे कार से निकला। बड़े शहरों में कार की उपयोगिता आराम और समय की बचत दोनों के ख्याल से बहुत है। लेकिन मैं तो छोटे पेट के डर से इसकी बड़ी आवश्यकता समझता था। फोर्ट में जाकर डायरी खरीदी। मालूम हुआ देशी कम्पनी ने विल्सन नाम की एक फौंटेनपेन बनाई है जिसका प्रायः सारा भाग देशी है। लालच हो आई। स्वदेशी का प्रेम तो है ही। सवा आठ रुपये में उसे खरीद लिया। वह दिल्ली का लड्डू साबित हुई—खाये सो भी पछताए न खाये सो भी पछताये। "यदि न खरीदे होता तो मन कहता, स्वदेशी चीज को तुमने लिया नहीं और कितनी सस्ती थी? अब खरीदा तो मालूम हुआ, वह लिखने के लिए नहीं बनाई गई है सिर्फ भक्ति प्रदर्शन के लिए है। कभी लिखने के लिए जब मजबूर

होना पड़ता है तो निब को उल्टकर लिखता हूँ और फिर बड़ी सावधानी करने पर भी धन स्याही का एक बड़ा बुन्द कागज पर गिरा ही देता है। फिर याद आता है सस्ता रोवे बार-बार, महँगा रोवे एक बार। पर यह सब तजर्बा उस दिन नहीं हुआ। म्यूजियम गए, तो आज नव वर्ष की छुट्टी थी। आदमी से पता लगा मालूम म डा० मोतीचन्दजी के पास पहुँचे। हम तो तब ही के दर्शन से अपने को कृतार्थ समझते लेकिन वहीं डा० वासुदेवशरण और रायकृष्णदास भी मिल गये। डा० वासुदेवशरण तो कविमनीषी परिभू स्वयम्भू हैं। सारा समय अध्ययन में लगाते हैं, और हमारे लिए नई नई खोज करते रहते हैं। डेढ़ घंटा बड़ी सत्संग में बीता। आजकल बम्बई प्रदेश की सरकार ने हिन्दी के सम्बन्ध में एक नया गुल खिलाया है। पहले हिन्दुस्तानी के नाम से हिन्दी के मुकाबिले में उर्दू को खड़ा किया जाता था। उसमें सफलता नहीं हुई तो अब हिन्दुस्तानी को दरवाजे से नहीं तो खिड़की से लाना चाहते हैं। यहाँ के कुछ लोगों की खोपड़ी में समाया था कि सब की भाषा के तौर पर जो हिन्दी स्वीकृत की गई है वह वह हिन्दी नहीं है, जिसका व्यवहार हिन्दी प्रान्तवाले करते है। अर्थात् इस प्रकार नई हिन्दी गढ़ने का मौका मिल जाय और हिन्दुस्तानी को लाकर सिंहासन पर बैठा दिया जाए। हिन्दी का रास्ता अब भी साफ नहीं है यह तो इन लोगों की चालों से मालूम हो ही रहा है लेकिन दुनिया में कहीं भी फरमाइश पर भाषा नहीं गढ़ी गई बल्कि जो सिद्ध समाम्नाय (प्रयोग में आता व्यवहार) है उसी को लोग मानते हैं।

२ जनवरी को अंधेरी गये। सरदार भावनगर में थे। प्रभावती बहेन अजित और प्रभा मिली। वहाँ से फिर डा० जगदीशचन्द्र जैन के पास पहुँचे। वह दो एक दिन में आने वाले थे। उनकी पत्नी, पुत्री चक्रेश मिले। फिर अपनी पुस्तकों के मराठी अनुवादक और प्रकाशक मोडक साहब के पास पहुँचे। प्रकाशन से काम नहीं चलता था इसलिए अब वह निर्णय सागर प्रेस में काम करते हैं। भोजनोपरान्त सवा ४ बजे प्रार्थना समाज में विजय मण्डल द्वारा संचालित हिन्दीविद्यालय में गये। श्री एम० के० पाटिल ने प्रमाण वितरण किया, मुझे भी बोलना पड़ा। पाटिल बम्बई के कांग्रेसी बाघ हैं। सभी निहित स्वार्थों के समर्थक होने से उन्हें सेठों का विश्वास

प्राप्त है। यद्यपि आज वक्त वह बाटजू की तरह दाढ निकालने म भी जरा नही हिचकने, पर वह कूटनीतिक भाषा पर भी अधिकार रखते हैं। बम्बई म हिन्दी का प्रचार पहले ही स रहा है क्योकि भारत म जहाँ पर भी कई भाषाए इकट्ठी होती रहीं वहाँ किसी एक को सम्मिलित भाषा अपनाने की जरूरत पडती, और शताब्दियो के तजर्बे ने बतला दिया था कि वह मध्यदेश की भाषा ही हो सकती है। कलकत्ता म भी यही हुआ और वही बात बम्बई म भी हुई। मद्रास म बहुत कम हुई क्योकि वहाँ उत्तरी भाषाओ स सम्बन्ध रखनेवाली भाषाओ क बोलनेवाले काफी नही गए।

जिस भाषण क लिए मैं विशेष तौर से निमन्त्रित हुआ था वह राष्ट्र भाषा समिति म मानसत्र की ओर से होनेवाला था। सरहपा पर मुझ दो दिन भाषण देना था, जो सरह के दोहाकोशो की भूमिका क रूप म पीछे प्रकाशित होनेवाला था। यहा पर बहुत स हिन्दी साहित्यिक मित्र भी आय, और महाराष्ट्र महिलाओ और पुरुषो की तो यह सभा ही था। उस दिन डेढ घटा भाषण दिया और साढे ६ बजे बाद निवासस्थान पर लौटा।

३ जनवरी को मध्याह्न भोजन क बाद पहले श्री नाथूराम प्रेमीजी स मिलने गया। अब उन्होने गृह सन्यास ले रखा है। चौमंजिले पर रहते है। वहाँ स चढना उतरना हृदय के रोगी क लिए खतरनाक है। भानुचन्द्रजी स मिलकर उनक घर पर गय। भानुचन्द्रजी न प्रकाशन का काम जोर शोर से निकाला था पाद्दारजी क ज्येष्ठ पुत्र कह रहे थे बहुत-सा रुपया फसा दिया और किताबें बिक नही रही हैं। भानुचन्द्रजी कुछ समय तक बम्बई स अनुपस्थित रहकर अब फिर उन्होने अपनी बुकसलरी की दुकान सभाल ली है। प्रेमीजी क यहाँ पहुँचने पर यहाँ इकट्ठा ही कई महोत्सव प्राप्त हुए। अपभ्रश क दिग्गज विद्वान् डा० हीरालाल जन और प्रा० उपाध्ये (कोल्हापुर)भी वही उपस्थित थे। त्रिमूर्ति स दरस-परस और बात करने का मौका मिला। डा० जन अब नागपुर विश्वविद्यालय स अवसर प्राप्त कर चुके हैं। जन धर्म के अद्भुत ग्रथ 'जय धवला' के प्रकाशन म लग हुए थे। प्रेमीजी का स्वास्थ्य पहले स कुछ गिरा था, पर बाकी बातो म अभी जरा पर विजय प्राप्त किये हुए थ। सीढिया पर कुछ उतर तो जनेन्द्रजी मिल गय। फिर लौटे, और थोडी देर बातचीत होती रही।

गिरीनजी पाद्दारजी के यहाँ अध्यापक और दूसरा काम करते हैं। उन्हें लेकर कुछ खरीदने का काम किया। कुछ साड़ियाँ लेना थी और कुछ अस्लानलोह (स्टेनलेस स्टील) के बरतन। हृदय की परीक्षा के बारे में पाद्दारजी से सलाह हो चुकी थी। बम्बई अस्पताल में पाद्दारजी के परिवार का काफी दान है। मारवाड़ी मेंटा ने इस विशाल अस्पताल को खोला है जिसके मैनेजर श्री जयन्त सिंहानिया थे। उनको भी लेकर पाद्दारजी के साथ बम्बई के प्रसिद्ध हार्ट स्पेशलिस्ट डा० दाते के पास पहुँचे। उन्होंने एक्सरे किया कार्डियाग्राम लिया। रक्त का दबाव १०५ २१० बतलाया यह बहुत अधिक था। फिर उन्होंने कहा रक्त मूत्रादि की भी परीक्षा होनी चाहिए। श्री सिंहानियाँजी ने अगले दिन ८ बजे उसका इन्तजाम कर दिया।

४ जनवरी को उपवास रखा बिना चाय भी पीये ८ बजे अस्पताल पहुँचे। आध आध घण्टे पर पाँच बार चीनी का शरबत पिला नस से खून और पेशाब की भी जांच की गई। परीक्षा की रिपोर्ट अगले दिन मिलने वाली थी। भारतीय विद्या भवन में डा० भयाणी से मुलाकात नहीं हो सकी। शाम को ६ बजे हिन्दी विद्यार्थी मण्डल के तत्वावधान में एक छोटी सी बैठक चर्च गेट में हुई। यहीं मुदर्शनजी और प्रदीपजी भी मिले—फिल्म जगत् में हिन्दी के यही दो लेखक और कवि रह पाए हैं। दूसरे हिन्दी लेखनी के धनी क्या नहीं जमे, इसके बारे में प्रदीपजी की राय से मैं सहमत हूँ। वह पन्त और प्रसाद की भाषा फिल्म में ले आना चाहते थे जिसके समझनेवाले इने गिने मिलते। उन्हें पुरानी कहावत याद नहीं आई जो नहिं चाह देन विदाई। पूछ केशव की कविताई। केशवदास चुन चुनकर कठिन शब्दों को अपनी कविता में भरते थे। बहुतों के सामने उसका पढ़ना भैंस के सामने बीन बजाना था। इसलिए कविता में रस न आने पर किसी के खोसे पर हाथ कैसे रखा जा सकता? यहाँ फिल्म में भी एक के नहीं बल्कि लाखों के खीसा पर हाथ रखना है। गीत की भाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे समझने में लोगों को अधिक कठिनाई न हो। मैं पन्त प्रसाद की भाषा और उनकी कविता का प्रशंसक हूँ खासकर प्रसादजी को तो भारत के सर्वोच्च कवियों में मानता हूँ। पर, जनसाधारण के लिए बच्चन की ही भाषा सबसे अच्छी है और वही इस विषय में सबसे बड़े कवि माने जा

सकते हैं। बच्चन सिनेमा में नहीं गये तो बुरा नहीं किया। उर्दू कविताओं में भी बहुत से शब्द सुननेवालों के पल्ले नहीं पड़ते पर चलती भाषा चलते उर्दू के छन्द और उसके साथ सिनेमा के घनी धारियों की धीगामुश्ती से मिलकर काम बन जाता है।

रेल में गुजरात पहुँचने पर ३१ दिसम्बर से कलेजे का दर्द शुरू हो गया था। मैंने समझा सर्दी ही उसका कारण हो सकती है। डा० दास ने बतलाया न इसका सर्दी कारण है और न छ सात हजार फुट की ऊँचाई ही कलेजे पर कोई बुरा असर करती है। यह बात ५ को सत्य मालूम हुई जब दर्द फिर शुरू हो गया। मुझे कलाकार स्वेतस्लाव रोयरिक की बात प्रामाणिक मालूम हुई। उन्होंने कहा था हृदय में कभी कभी ऐसा हो ही जाता है फिर वह अपने आप प्रकृतिस्थ भी बन जाता है। १९५५-५६ के जाड़े के काफी समय को मैंने मसूरी में बिताया। सन्देह रहा था कलेजे का दर्द फिर लौट आएगा लेकिन वह नहीं लौटा। यही बात १९५६-५७ में भी हुई।

५ जनवरी को सवेरे ६ बजे बिहारी एसासियेशन में गया। वैसे भोजपुरियों की संख्या बम्बई में लाखों होगी लेकिन वह अधिकतर मजूर हैं। उन्हें सभा एसासियेशन से कोई मतलब नहीं। ऐसे ही हाली मौवाली को मिल मिला लेते हैं लेकिन उनमें कुछ बुद्धिजीवी तथा नाममात्र के व्यापारी भी हैं। उन्होंने अपना एसोसिएशन कायम किया है। बिहारी एसासियेशन राजनीतिक सीमा के अनुसार केवल बिहार भर का नहीं हो सकता क्योंकि आरा छपरा और गाजीपुर बलिया गोरखपुर के भीतर भाषा और संस्कृति सम्बन्धी सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। मुझे अपने भाइयों में मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हें भी।

मध्याह्न में सरदार पृथिवीसिंह आये। उनका स्वास्थ्य वैसा ही था जैसा कि पिछली बार देखा था। भावनगर में काफी जमीन लेकर एक कृषि फार्म खोला था। लेकिन आज के जमाने में जब तक खुद आदमी किसान न बन तब तक खेती चल नहीं सकती। ऊपर से इधर दो-तीन साल से सौराष्ट्र में वर्षा ठीक से नहीं हुई जिसका भी असर पड़ा। सोच रहे थे कैसे इससे पिण्ड छुड़ाया जाय? आखिर सरदार को अपने राजनीतिक जीवन से अवकाश लेने का तो अवसर नहीं मिल सकता और वह उनसे

सारा समय मांगता है। पार्टी आफिस म गये। म डल्मट राज के उसी राज भवन म जहां पहले भारत की केन्द्रीय पार्टी का कार्यालय था, अब महाराष्ट्र पार्टी है। केन्द्रीय पार्टी दिल्ली म चली गई है। दिल्ली राजधानी होने से वहां सम्पर्क में आने जाने का सुभीता है और कितने ही बड़े-बड़े नेता पार्लियामेंट के सदस्य भी हैं, इसलिए दिल्ली छोड़कर एक कोने म पार्टी केन्द्र का रखना सभव नही था। साथी अयोध्याप्रसाद जोशी के बहुत पुराने क्रांतिकारी और पार्टी मेम्बर हैं। अब वह यहीं मजूरा म काम करते हैं। वह क्लाबा ले गये जहां शिक्षा के माध्यम पर बोलते हुए मैंने कहा प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम तो मातृभाषाओं को ही होना चाहिए। वहां से मारवाड़ी पुस्तकालय म भाषण दिया। यही बम्बई म हिन्दी का सबसे बड़ा पुस्तकालय है।

हमारे मेजबान श्री घनश्यामदास पोद्दार के सरल और मधुर स्वभाव के बारे म पहले भी कह चुका हूँ। उनकी पीढ़ी बहुत बातों म मारवाड़ी न रह भारतीय हो गई है। सेठानी भी हिन्दी पुस्तकों के पढ़न म रुचि रखती हैं। और बड़ा लड़का तो पिता से आगे है। अपने मद्रास की ओर के सर सपाटे की बात बड़े रोचक ढग से बतला रहे थे। किसी अपने मित्र के कम चारी नौजवान को साथ ले गये थे। वह इनकी क्या सहायता करता होटल म ठहरता और शराब पीकर अचेतित हो जाता। शराब और गोश्त अब आजकल की पीढ़ी के लिए घृणा की चीज नहीं है। लेकिन पीढ़ियों से मास के प्रति जो घृणा दिमाग म बैठाई गई है वह अब भी बहुत से सेठ पुत्रों म देखी जाती है। अधिकतर उनम अडे तक हो जा पाते हैं। जाने को तो तरुण पोद्दार कई शहरों म गये लेकिन उन्ह मजा नहीं आया। हाँ साथी कदम कदम पर खिझाता और साथ ही हँसाता रहा। घनश्यामदासजी वैसे देखने मे अस्वस्थ नही मालूम होते, लेकिन डाक्टर तो करोड़पति सेठो के ऊपर हो पलते हैं। यदि देखने सुनने म आदमी का स्वास्थ्य अच्छा मालूम होता है तो वह देते हैं हार्ट की बीमारी खून का दबाव है। ऊँचाई की कापी फीस मिल जाती है। हमारे भारत सोवियत सस्कृति सघ के प्रधान डा० बालिगा की भूरि भूरि प्रशसा कर रहे थे। वे इस वक्त बम्बई के सबसे बड़े सर्जन हैं। दिल्ली म अबकी उनसे परिचय हो गया था, लेकिन वह हृदय के

विशेषज्ञ नहीं थे इसलिये मैं उनके पास नहीं गया। पोद्दारजी का तो उन्होंने बहुत सफल आपरेशन किया था। कह रहे थे, महीना भर में फीस देने के लिए व्यग्र था और वह बिल नहीं भेज रहे थे। पोद्दारजी का एक मकान दिल्ली में भी है, जिसका बहुत सा भाग उन्होंने किराए पर दे रखा है लेकिन दो तीन अच्छे कमरे अपने लिए रखे हैं। उनसे कहा कि दिल्ली में आएँ तो वहीं ठहरें। उन्होंने अपने आदमी को चिट्ठी भी लिख दी। उनके ज्येष्ठ पुत्र ने चिट्ठी में यह भी लिख दिया कि अगर राहुलजी को रुपए की जरूरत हो तो दे देना। पर उधार रुपया लेना मेरी आदत के विरुद्ध है।

६ जनवरी की रात को तरुण पोद्दार और गिरीशजी स्टेशन पर पहुँचाने आए। सीट ऊपर की मिली थी, जो कुछ कष्टप्रद तो जरूर हुई, पर सोने में कोई दिक्कत नहीं थी। ७ के सबेरे हमारी ट्रेन रतलाम में थी। श्री माचवजी भी इसी ट्रेन से जा रहे थे। हमारे नीचे वाली सीट पर जो सज्जन थे, वह रतलाम में ही उतर गए। एक तरुण दक्षिणी सैनिक अफसर दिल्ली तक के लिए साथी रहा। कोटा से आगे कम्पार्टमेंट में हम ही दोनों रह गये। फ्रंटियर मेल था, इसलिए दूर दूर के स्टेशनों पर खड़ा होता था। साढ़े सात बजे शाम को दिल्ली पहुँचे, और रिक्शा ले भैयाजी के घर पहुँचे।

८ तारीख को दिन भर दिल्ली में रहे। पार्टी के साथियों से मुलाकात हुई। साथी घाटे बीसियों वर्ष से हृदय के मरीज हैं। कहते थे इससे छुटकारा नहीं होना और न इससे डरना चाहिए। न टरना चाहिए इसके सबूत वह स्वयं सामने मौजूद थे। देवली में हम एक साल साथ रहे। उस साल भी वह हड्डी चमड़े के पनी मुट्ठी भर के शरीर में हृदय के रोग को पाले हुए थे और अब भी वह बिल्कुल वैसे ही थे न घटे न बढ़े। उन्होंने बतलाया, "खाने पीने में थोड़ा संयम चाहिए दो चार दवाइयाँ करनी चाहिए और प्रसिद्ध डाक्टरों के पीछे नहीं पड़ना चाहिए। सभी नये व्यक्ति पर तजर्बा करते हैं।" मुझे भी मुक्तभोगी की चिकित्सा अधिक पसन्द है, डायग्नोज के तजर्बे ने यही सिखलाया है। भैया ने सपरा को गालियाँ दीं, और द्राक्षासव पीने के लिए कहा। मैं बहुत दिनों तक वही करता रहा।

शाम को १० बजे देहरादून की गाड़ी पकड़ी, और ९ को सबेरे देहरा-

दून पहुँच गया। जरा सी सावधानी न करने से टक्सी नहीं मिली और वस भी चली गई इसलिए अब दोपहर की बस पकड़नी थी। मुकन्दी भी यहाँ गए। पति पत्नी किसी उत्सव में गए थे। भोजन प० हरनारायण मिश्र के यहाँ हुआ। फिर आकर ? बजे वाली बस पकड़ी, ? बजे किंक्रेग पहुँच। भाई रिक्शा नहीं मिला, इसलिए लाइब्रेरी तक पैदल चलना पड़ा। चढ़ाई भी थी, बहुत धीरे धीरे चले, तो भी बहुत बुरा हाल था। मन में यही बात काम कर ही रही थी कि हृदय की बीमारी वाले को चढ़ाई चढ़ना बुरा है। लाइब्रेरी से रिक्शा लेकर घर के पास तक चले आए। पूसन बहिनें स्टिवर में ही यहाँ से चली गई। कितनी सहृदय थी। जया के दर्शन सबसे पहले हुए। अब वो वह पहचान गई। लाल सलाम नमस्ते, प्रणाम आदाब अर्ज चार चार तरह से नमस्कार करना जानता है।

ईगर की चिट्ठी आई थी जिसे मैं निवान ही के लिए ले आया था। कमला ने पहले ही देख लिया। फिर वही आग्रह। ईगर को कभी पत्र न लिखें। यद्यपि मैं समझता था कमला के भावों का सबसे ज्यादा ख्याल करना होगा। सिर्फ उनके लिए ही नहीं बल्कि बच्चों के लिए भी। पर यह समझ में नहीं आता था, कि ईगर की चिट्ठियों से उसमें क्या बाधा पड़ सकती है? मैं जानता हूँ कि जया और उसके बाद आने वाले अनुज को ही मुझे अपना बाकी जीवन देना है क्योंकि वह एक देश में पैदा हुए हैं जहाँ बच्चे राष्ट्र के अवलम्ब की कोई आशा नहीं रख सकते। माता पिता ही उनके सर्वस्व हैं। पर ईगर भी मेरा प्रिय पुत्र है पिता से सलाह मशीरे की तो आशा रखता है। वह साम्यवादी देश में पैदा हुआ है यहाँ समय बीतने की जरूरत है, वह अपने आप अपनी क्षमता के अनुसार निरबाध पढ़ लिख लेगा और काम भी पकड़ लेगा। यदि मैं पत्रों का भी जवाब न दूँ तो यह मेरे ऊपर भारी लाछन होगा। क्या करूँ। आग्रह हो या दुराग्रह कमला की ही बात माननी पड़ेगी' यही दिखाई पड़ता था।

१० जनवरी को पूर्वाह्न में दो बार कलेजे में पीड़ा हुई। डा० दान की बतलाई दवाई नियमपूर्वक खाने लगा और ट्राम्भासर भी। ऐसा मालूम हो रहा था, अब जाना में मसूरी से हटना ही पड़ेगा। कुछ दिनों तो यही ख्याल दिमाग में चक्कर काटता रहा, कि मसूरी का मकान यदि बिक जाए, तो

दूसरा आठ-दस हजार मे देहरादून मे ले लें। देहरादून से २५ २६ हजार शरणार्थी जबसे चले गये, तब से वहा मकानो का दाम गिर गया था। लेकिन मैं निश्चय कर चुका था आगे मकान लेन देने का जो भी काम होगा, वह कमला के ऊपर छोडना है।

११ जनवरी को राजेन्द्र बाबू की चिट्ठी आई, जिसमे हमारे "प्रत्यक्ष-शरीर कोश" के शब्दो को उद्धृत करके डा० सुन्दरलाल ने जो आक्षेप किये थे, उसे भी भेजा था। मैंने जवाब मे लिख दिया, और बातो मे चाहे जैसे शब्द इस्तेमाल करें, लेकिन जहा तक परिभाषाओ का सम्बन्ध है, उसमे भारत की सभी भाषायें—असमिया, बगला उडिया, तलुगू तामिल, मलयालम, कन्नड मराठी नेपाली, गुजराती आदि—बराबर के हिस्सेदार हैं। पिछले दो हजार वर्षों से भारत और बृहत्तर भारत मे एक ही तरह की परिभाषाएँ इस्तेमाल होती आई हैं। जब तक इस परम्परा को तोडने के लिए तैयार न हो तब तक परिभाषाएँ सरल तत्सम शब्दो मे बनें, यह छोड दूसरा कोई रास्ता नही है। यदि सुन्दरलालजी के अनुसार खोली (मन्त्रि-मडल) और विचविन्दी (केन्द्र) की तरह के शब्दो को बनाया जाने लगा, तो वह हिन्दी क्षेत्र से बाहर बिल्कुल स्वीकार नही किए जाएगे। दो ही रास्ता है। या तो उर्दू की परम्परा को अपनाकर अरबी से शब्दो को ला या बाकी भारतीय भाषाओ की परम्परा को लेकर तत्सम शब्दो को।

हमने वोल्गा' (अग्रेजी) "राजस्थानी रनिवास' और 'बहुरगी मधुपुरी" तीन पुस्तकें छपवाकर प्रकाशन का तजर्बा कर लिया। यद्यपि उनमे लगे रुपया के निकल आने की आशा थी, इसलिए इस तजर्बे को बहुत कडवा नही कह सकते तो भी असफल रहा यह तो निश्चित है। प्रकाशन वही कर सकता है, जिसके पास काफी पूजी है, और सारा समय उसके लिए दे सकता है। हमारे पास दोनो नही थे। कई लेखको ने अपने प्रकाशन खोले हैं और उनमे यशपाल और अश्कजी जैसे असफल भी नही रहे हैं। पर लेखको के लिए अच्छा यही होगा कि यदि वह कलम रखने के लिए तैयार नही हैं, तो प्रकाशन मे हाथ न लगायें।

दिल्ली—कमला अन्तर्वत्नी थीं। सलानी सीजन का समय होता तो मसूरी मे सेंट मेरी अस्पताल प्रसव के लिए सबसे अच्छा था। वैसा प्रबन्ध

तो दिल्ली में भी नहीं था। पर, इस वक्त जाड़ा में वह कम था, इसलिए दिल्ली जाना ही अच्छा समझा गया। १५ जनवरी को जया और कमला को लिये हम टैक्सी से सीधे स्टेशन पहुँचे। नाश्ते का भोजन कमला ने वहीं किया। एक रुपये में मांस और देहरादून की बासमती का बढ़िया भात दस-बरस मालूम हुआ, सतयुग लौटना चाहता है। कमला का आग्रह था कि मैं गुरुजी के यहां तक चला जाऊं, किन्तु परिपूर्ण गर्भा को इस तरह छोड़ना मैंने पसन्द नहीं किया। सीट पहले से रिजर्व नहीं की गई थी, पर रिजर्व करने वाला तरुण मेरे नाम से परिचित था। उन्होंने एक बहुत अच्छे कम्पार्टमेंट में सीधे की सीटें रिजर्व कर दी। जया ने पहले-पहल रेल और रेल का प्लेटफार्म देखा था। वह तो प्लेटफार्म पर कितनी देर तक टहलती रही। बहुत से लोग आसपास चल रहे थे, लेकिन उनकी उसे पर्वाह नहीं थी। हरेक चीज को गौर से देखती और कुत्ते को देखकर "भून भून" कहने लगती। चलने से पहले महताजी और उनकी पत्नी भी आ गये।

१६ जनवरी को पौने ६ बजे हम दिल्ली पहुँचे। वर्षा थोड़ी हो गई थी। भैया स्टेशन पर आए थे। तांगा लेकर हम उनके घर पर पहुंचे। जाड़ा की रात बड़ी होती है, इसलिए अभी भी अंधेरा था। ऊपर रहने की जगह पर गए। जया ने जल्दी इसे अपना घर बना लिया, और भाभीजी, उनकी माताजी तथा भैया सबसे हिल मिल गई। मुन्ना (भाभीजी की बहिन का पुत्र) से मिलना तो चाहती थी, लेकिन उसने एकाध बार धक्का देकर गिरा दिया, फिर दूर-दूर रहने लगी। "हित अनहित पशु पछिउ जाना" बाबा ने ठीक ही कहा है। बम्बई से डाक्टर की रिपोर्ट भी पाहारजी ने भेज दी थी, जिसमें दवाइयों का नाम था। विशेषता वही समस्या थी, जिसे बहुत महँगा अंग्रेजी नाम देकर बेचा जाता था। भाई साहब ने अपनी फार्मेसी में उसकी गोलियां बना रखी थी।

कमला के लिए कौन सा अच्छा अस्पताल होगा, इसकी खोज करनी थी। हाजरा बेगम से मिले। वह महिलाओं में काम करती थी। उन्होंने डा० सुशीला दुग्गल का नाम लिया, जिनका अपना निजी अस्पताल था। अगले दिन (१८ जनवरी को) डा० सुशीला के यहाँ खान मार्केट (नई दिल्ली) में गए। उन्होंने कहा प्रसव समय २५ के आसपास है, और यह भी कि लड़की

होगी। मैंने कहा—मेरी भविष्यवाणी तो अभी तक झूठी नहीं हुई है। मैंने पिछली सन्तान के लिए कमला से नाते लगाई थी और पहले ही से नाम जया रख दिया था। वही बात हुई और अबकी मैंने लड़के का नाम जेता पहले ही से रख छोड़ा है। खैर, यह मालूम हुआ कि इस महीने के अन्त तक प्रसव हो जायगा। वहा से पास में ही श्रीनाथ के पुराने रहने के स्थान में गए, पर वह वहां से चले गए थे। निव नमाजी सवेरे ही आ गए थे। वह नेपाल आरपार करना चाहते थे लेकिन एक तिहाई रास्ता नापने पर मलेरिया ने आ घेरा और उन्हें लौट आना पड़ा। अपूर्ण यात्रा को पूर्ण करने का अब भी ख्याल रखते थे।

डाक्टर ने बहुत-सी चीजों की लिस्ट बनाकर दी थी जिनमें से अधिकांश को चांदनी चौक से खरीद लाये। जामा मस्जिद के पास कुछ पुरानी उर्दू की पुस्तकें मिलीं। उर्दू के खरीदार अब कम ही हैं। बहुत-से तो ५० फी सदी कमीशन पर भी देने के लिए तैयार थे। बुक्सेलर अपना रोना रो रहे थे।

एक दिन मोटर रिक्शे पर कहीं जा रहे थे। साथ बैठे दो सज्जन कह रहे थे—'देखा, सन १६५७ आ रहा है। भयंकर घटना घटने वाली है।' हमारा देश आधुनिक युग में तब तक नहीं आ सकता, जब तक ज्योतिषियों और इस तरह की बातों पर विश्वास है। १८५७ में गदर हुआ १७५७ में पलासी के युद्ध में अंग्रेजों ने विजय प्राप्त की इसलिए इन औंधी खोपड़ियों को सभी ५७ वाले कोई न कोई भयंकर घटना लाने वाले हैं। १६५७, १५५७, १४५७, १३५७ सभी दुर्घटना लाने वाले थे, क्या? जिन स्वार्थों को अभी हानि उठानी पड़ी है और जो अपने गुरुघंटालों की तानाशाही कायम करने का स्वप्न देख रहे हैं वस्तुतः वह सन् ५७ की घटनाओं के जबर्दस्त प्रचारक हैं।

२० को शाम को श्रीनाथ आये। कनैला का समाचार पूरी तौर से बतलाया, जिससे मालूम हुआ कि घर की हालत उतनी बुरी नहीं है जितनी रामविलास ने अपनी चिट्ठी में लिखी थी। हां चोरियां होती हैं। पुराने मजूर अब अपने बाप-दादों जैसे नहीं रहे। सहस्राब्दियों तक आदमी को कैसे गुलाम रखा जा सकता है? जिनका उनकी गुलामी में ही हित था उन्हें अब सबक सीखना होगा।

२१ जनवरी को भया भाभी और हम डा० सत्यकेतु और नीलाजी के यहाँ गए। वह भी जाना के कारण मसूरी से यहाँ चले आए थे। जब तक पार्लियामेंट की बैठकें शुरू नहीं होतीं तब तक के लिए ससद सदस्यों के मकान खाली ही पड़े रहते हैं। ऐसे ही एक मकान में वह रह रहे थे। पार्लियामेंट के सदस्यों की संख्या बहुत बढ़ गई तो उनके रहने के स्थानों को बढ़ाना पड़ा। यह भवन वैसा ही था। उसमें आराम का और स्थान की पूरी तौर से उपयोग का ख्याल रखा गया था। डा० सत्यकेतु के आचार्य चाणक्य ऐतिहासिक उपन्यास पर कलकत्ता की एक संस्था ने हजार रुपये का पारितोषिक दिया था, उसके लिए वह कलकत्ता जानेवाले थे। ऐतिहासिक उपन्यास के साथ न्याय वही कर सकता है, जो उस समय के इतिहास की सारी उपलब्ध सामग्री के संग्रह और मालोडन के लिए तैयार हो, और अपनी जिम्मेवारी को भी समझता हो। डा० सत्यकेतु इसके योग्य थे, इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

२२ जनवरी को कुछ हिन्दी पुस्तकें और स्याही पेन्सिल के लिए हम फजबाजार की किताब की दूकानों में गए। एक सज्जन ने कहा— वी डोंट कीप स्टेशनरी" (हमारे पास कलम कागज नहीं हैं)। फिर साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के बारे में पूछने पर कहा— वी डोंट हैव हिन्दी पेपर (हमारे पास हिन्दी पत्र नहीं है)। वह केवल अंग्रेजी बोलने की कसम खा चुके थे। उनको यदि इतना कुछ भी पता नहीं था कि हमारे देश में अंग्रेज का राज्य नहीं है इसलिए अंग्रेजी का राज्य नहीं रह सकता तो इसमें उनका क्या कसूर ? वह तो देख रहे थे कि अभी भी हमारे महाप्रभुओं के कारण दिल्ली में अंग्रेजी का ही बोलबाला है।

२३ जनवरी को श्रीनाथ और उनके परिवार से मिलने १० नम्बर किंग्सवे में गए। १० नम्बर की कोठी तो केन्द्रीय मंत्री की है। वहाँ भला श्रीनाथ के लिए क्या स्थान हो सकता था ? उसके पीछे नौकरों के क्वार्टर थे। कोठीवालों के पास उतने नौकर नहीं थे। बहुत-सी कोठरियाँ खाली पड़ी थीं। शरणार्थियों के हल्ले के समय उनमें बहुत से आकर रहने लगे। उस हल्ले में श्रीनाथ जैसे अशरणार्थियों ने भी लाभ उठाया। छोटी छोटी कोठरियों में नर नारी कच्चे बच्चे भरे हुए थे। उन्हीं में से एक में श्रीनाथ,

उनकी बीबी और दो बच्चे रहते थे। बड़ा लड़का १८ वर्ष का कहीं स्कूल में पढ़ रहा था। छोटा (जयप्रकाश) ६ वर्ष का था। मैं जाकर चारपाई पर बैठ गया। अपने बड़े भाई का अभिमान तो होना ही चाहिए था, उन कोठरियों में रहने वाले कुछ और भी जानते थे, इसलिए वह भी नमस्ते करने के लिए आये। आजकल कोठी में श्री के० सी० नियोगी रहते थे। श्रीमती नियोगी को मालूम हुआ, तो उन्होंने श्रीनाथजी से मिलाने का आग्रह किया था। पर मैं समय नहीं निकाल सका। श्रीनाथ की जीविका का साधन मिठाइयां बना फेरी करके बेचना है। खर्च बहुत कम कर लिया होगा लेकिन दिल्ली में चार प्राणियों का जीवन निर्वाह तो करना ही था। उस परिवार को देखकर मैं जान सकता था कि हमारे देश की भारी संख्या किस अवस्था में रहती है।

२६ जनवरी को स्वतन्त्रता और गणराज्य दिवस था। दिल्ली में उसकी बड़ी तैयारी थी, लेकिन वह अधिकतर सरकार की ओर से ही था। फज-बाजार की सड़क बहुत बड़ी सड़क है, यह बाजार भी अब विशेष महत्व रखने लगा है। जितनी बसें इस रास्ते जाती हैं उतनी दिल्ली की किसी सड़क से नहीं जाती होंगी। उस दिन ९ बजे से ही यातायात बन्द कर दिया गया। राष्ट्रपति को सलामी देकर सारा सैनिक जलूस यहीं से लाल किले की ओर जाने वाला था। हमारे घर के बराण्डे के नीचे पर परली ओर से उसे गुजरना था। साढ़े ११ बजे जलूस आया और डेढ़ घंटे में यहीं से पार हुआ। सैना, कला, हस्त शिल्प उद्योग धंधे आदि का प्रदर्शन था। पर, हमारे देश की असह्य दरिद्रता को छिपा रखा गया था। उसके लिए जबानी जमाखर्च करना भर कांग्रेस के नेताओं का काम था। कभी गांधीजी के नाम पर लोगों की आंखों में धूल झोंकते, अब के आवडी-कांग्रेस में समाजवाद का नाम लिया गया और मौके बेमौके उसकी दुहाई दी जाती है।

उस दिन शाम को माधवजी और शरदजी आये। उनके साथ हम उनके घर गए। डा० सुशीला के यहां जाने पर उन्होंने बतलाया कि चार ही पांच दिन और हैं। दर्द शुरू होते ही आ जाएं। लौटते वक्त बड़ी मुसीबत में फंसे। तमाशा देखने वाले लोग अपना घर-बार छोड़कर मुख्य मुख्य सड़कों पर आ गए थे। टैक्सी एक जगह जाकर रुक गई। फिर टैक्सीवाला शान से

इन्कार करने लगा। क्या करते ? साढ़े चार की जगह नौ रुपया देना स्वीकार किया और बहुत चक्कर लगाकर ६ बजे वह हमारे घर पर पहुँचा गई। ट्राफिक का प्रबन्ध क्या हमारी पुलिस कभी नहीं कर सकेगी ? जहाँ रोकना चाहिए, वहाँ रोकने के लिए कोई तयार नहीं और जहाँ चारों ओर से सवारियाँ पहुँच जाएं वहाँ रोकने के कारण सवारियों की लम्बी पाँतियाँ खड़ी हो जाएँ।

श्री च्यविजी से पहले ही से पत्र-व्यवहार था। वह रूसी हिन्दी कोश में लगे हुए थे। रूस में दो साल भारतीय दूतावास में रह चुके थे इसलिए भाषा का अभ्यास किया था। हिन्दी उनकी बहुत मजबूत नहीं थी और संस्कृत का परिचय भी नहीं था, लेकिन अभी नौजवान थे, अध्यापन से अपनी योग्यता बढ़ा सकते थे। बहुत परिश्रमी थे इस कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने महाकवि पुश्किन की प्रसिद्ध कविता सिगान (रामनी) का रूसी से हिन्दी में अनुवाद किया और उसमें काफी सफल रहे। पूछने पर मैंने कहा था—रूसी से हिन्दी करने के काम का लो और उसके अंशों को प्रकाशित करते जाओ। पत्र वाले छापने या नहीं इसमें हिचकिचाहट कर रहे थे। लेकिन हिन्दी के पत्रों ने जब छापना शुरू किया तो उनकी हिम्मत खुल गई। कोश बहुत बड़ा काम था। चाहते थे यह अच्छे से अच्छे रूप में छपे। मुझसे भी सहायता लेना चाहते थे। मैंने कहा—यही समय है शाम को आ जाया करो।

२८ जनवरी को उर्दू बाजार में बुकसेलरों की दूकानों की खाक छानता रहा। एक जगह तारीख तिबरी (फारसी) देखी। मैंने तुरन्त उस पर हाथ मारा। बतला रहे थे यहाँ तो इसे कोई पूछता नहीं, हम पाकिस्तान भेजने ही वाले थे। यह बहुत पुराने इतिहास ग्रन्थों में है जिसमें ईरान और मध्य एसिया पर अरबों के विजय के बारे में बहुत लिखा हुआ है।

आज नेशनल स्टेडियम (राष्ट्रीय अखाड़े) में लोक नृत्य होने वाले थे। हम भी वहाँ गए और सवा ६ बजे से ९ बजे तक रहे। अखाड़े में जितने आदमी बैठ सकते थे उसके चौथाई ही मुश्किल से थे। पांगी (हिमाचल चम्बा), कश्मीर पंजाब, पेप्सू बुन्देलखण्ड भरतपुर, मारवाड़, सौराष्ट्र बम्बई, गोवा मद्रास पांडीचेरी उड़ीसा, मध्य भारत मध्य प्रदेश, सिक्किम

नागा मनीपुर आदि के जन-नृत्य दिखलाए गए। कुछ नृत्य नकली कला-कारो और कलाकारिनियो ने दिखलाए यह खटकने वाली बात थी। दर्शको की आँख म धूल झोकना अच्छा नही है। सबसे अच्छा नृत्य मनीपुर पागी, नागा, ब्रज और राजस्थान के थे। बम्बई का सिंह नृत्य भी अच्छा रहा। राष्ट्रपति भी आये थे।

साथी यज्ञदत्त शर्मा ने आग्रह किया कि मैं किसी प्रतिनिधि मण्डल म विदेश जाऊँ। मैंने कहा मैं चीन ही जा सकता हूँ, और उसम भी तिब्बत जान का मुझे लालच है।

अब की अपनी किताबो के बदले म बुकसेलरो स डेढ-दो सौ पुस्तकें ली। प्रकाशन का यह तो लाभ होना ही चाहिए। समय मिलने पर उनमे स कुछ पढता भी रहा। नागार्जुन क बल्चनमा को समाप्त किया। ग्रामीण जीवन का बडा ही सजीव चित्र है। शिकायत यही है कि पाठक प्यासा ही रह जाता है।

जेता का जन्म—रात का डेढ बजे ही से कमला को दद होने लगा था। पहले १५ २० मिनट के अतर से फिर जल्दी जल्दी। ३१ जनवरी को साढे ४ बजे तक किसी तरह बिताया। उस समय टैक्सी मिलने म भी दिक्कत थी और डाक्टर की भी परेशानी थी। जाना बहुत दूर था। फिर भैया और हम कमला का लेकर डा० सुशीला के पास गए। उन्होंने तुरत सँभाल लिया। पौने ६ बजे कहा अभी पीडा का आरम्भ ही है। शाम तक शायद प्रसव होगा।

सवा १० बजे फोन किया, तो डा० गिल न बतलाया कि १० बजने मे १० मिनट था, जब पुत्र पैदा हुआ। रमन भाई ने अपनी कहानी म कहा, कई बहनो के बाद मेरी पीठ पर जब भया पैदा हुआ तो मेरी पीठ पर भेली फोडकर प्रसाद बाटा गया था। भाभीजी और अम्मा ने भी अनु-मोदन करते हुए तुरत भेली मँगवाइ और जया की पीठ पर फोडी। सब लोग ढोलक लेकर भाभीजी उनकी माँ, भाजा भाजी हम और जया सभी डा० सुशीला के अस्पताल म पहुँचे। अब की बहुत कष्ट उठाना नही पडा। कमला लेडी डाक्टर की तारीफ कर रही थी। यहा मेंट मेरी जस सब साधन मौजूद नही थ, तो भी नस बहुत अच्छी थी। अगले दिन जाने पर दवा,

जेता न आँखें गोड़ दी हैं। पैन्ना हान वक्त जया से भी अधिक वजन जेता का था अर्थात् साढ़े ८ पौंड। डाक्टर की फीस १५० रुपये, आठ दिन रहने का खर्च ६४ रुपये और नौकर चाकरों के लिए कुछ सब मिलाकर २५० रुपये देना था। ७ फरवरी को कमला अस्पताल से चली जाएगी यह डाक्टर ने बतला दिया।

उस दिन 'आजकल' कार्यालय में गया। चन्द्रगुप्तजी सत्यार्थीजी मन्मथजी और दूसरे साहित्यकार मिले। डायरेक्टर सिन्हा सारे विभाग के अध्यक्ष हैं। वह अंग्रेजी में ही बात करते हैं और उसी के कारण तो इस पद पर है। उन्होंने बुद्ध जयन्ती के सम्बन्ध में प्रकाशित होनेवाली पुस्तक के लिए एक लेख माँगा था। मैंने दीपंकर श्रीज्ञान पर एक लेख लिख कर भेज दिया उसे आजकल' ने छाप दिया। अब दूसरा भाग रह थे। कह दिया शान्ति रक्षित पर भेजेंगे। वहाँ से कुमारिलजी के साथ हरिजन निवास गये। वियोगी हरिजी वहाँ नहीं थे। कुछ देर वहाँ घूमकर चले आये।

अम्मा को छोड़े तीन दिन हो गये और इतने ही में जया भूल गई। अच्छा ही था नहीं तो रो रो कर तंग करती। बच्चों का प्रेम बढ़ा रहे तो अच्छा है। ३ फरवरी को जया को साथ ले गये। उसने जेता को बड़े गौर से देखा। नमस्ते, सलाम चुम्बन और प्यार भी किया। जेता दिन में अधिकतर सोता रहता। अभी जन्म के बाद की डायरियाँ नहीं हुई थीं। पेट साफ करने के लिए प्रकृति ने इसका नियम बना रखा है। इसी दिन राजेन्द्र बाबू की चिट्ठी मसूरी से लौटकर आई। उन्होंने लिखा था मेरी चिट्ठी को सुन्दर-लालजी के पास भेज दिया है। पं० सुन्दरलाल का मेरा भाषा के सम्बन्ध में मतभेद बहुत पुराना है। लेकिन, उसके कारण हमारे सम्बन्ध पर कभी कोई असर नहीं पड़ा। अगले दिन दोपहर बाद जैनेन्द्रजी भी आए। फैज बाजार इसी पाँती में ८ नम्बर के घर में रहते हैं। मैं भी वहाँ गया देर तक बात होती रही।

४ फरवरी को पार्टी आफिस में साथी अजय से बातचीत हुई। मैंने फिर से पार्टी मेम्बर होने की बात कहा तो उन्होंने कहा—बहुत अच्छा स्वागत है। इसी समय मैंने आवेदन पत्र दे दिया। यह तो सभी जानते थे कि मेम्बर न रहने के समय भी मैं पार्टी का ही था, और अपनी लेखनी से

उसका काम भी करता था। अब भी लेखनी द्वारा ही काम कर सकता हूँ
यह मैंन कह लिया। स्वास्थ्य की इस अवस्था म चलन फिरने का काम हो
नहा सकता। मुझ उस दिन बडी प्रसन्नता हुइ। मैं डरता था, पार्टी मम्बर
न रहत कहीं महाप्रयाण न करना पड। चिरकाल स पोपित मेरे आदर्शों का
प्रतीक है पार्टी। अपने पुरान साथिया स मैं बराबर मिल जालकर मिलता
था लकिन एक तरह का बिलगाव देख कर तबीयत असन्तुष्ट होती थी।
मैंने कहा, जब जीवन भर के लिए पार्टी का मम्बर हुआ।

श्री लाड काकड ब्राह्मण है जो मराठ ब्राह्मणा म शिक्षा और सामा
जिक सुधार म बहुत आगे बढे होते हैं। श्री धर्मानन्द कोसाम्बी स उन्होने
बौद्ध धम का अध्ययन किया था। संस्कृत क बहुत प्रेमी ही नहीं है बल्कि
उसक अध्ययन म उनकी बडी रुचि है। अब भी प्रौढावस्था म पहुँच कर
भी दशन ग्रथा क अध्ययन क लिए गुरु के पास जात ह। साथ ही वह मराठी
क कवि है। धम्मपद और भत हरि शतक का उन्होन मराठी म पद्यबद्ध
अनुवाद किया है। सत तुकाराम की कृतियो पर एक अनुसधानपूर्ण ग्रथ
लिखा है। इसस मालूम होगा कि वह केवल पुरान ढर्रे के आइ० सी० एस०
नहीं हैं। वसकरन मत्रालय के दक्ष सचिव हैं। ऐस आदमी स साहित्य के
बारे म बातचीत करने म आनन्द आता है। उन्ह बौद्ध दशन क अध्ययन
की रुचि है। माचवेजी ने उनकी तरफ स कहा—दिल्ली म उनक यहाँ
ठहरा करें। लकिन जब भयाजी का मकान बन गया तो उनका घर छोड
कर दूसरी जगह ठहरना मुझे पसन्द नहीं। लाड साहब म एक खब भी
है—सारी भाषाओं क छोट छोटे घरौंदा को मिटा कर हिन्दी ही एकमात्र
भारत भाषा होनी चाहिए। यह अव्यावहारिक है यह तो इसीसे मालूम होगा
कि उन्होंन मराठी साहित्य की सेवा की है और अब भी कर रहे हैं। उन्होंन
अपन इन विचारो को अपने ड्राइंग रूम म किसी स नहा कहा, बल्कि मराठी
साहित्यकारों क सामन भी इस पर बोल थ। उन्ह यह कितना अरुचिकर
मालूम हुआ होगा इसे कहन की जरूरत नहीं। इसकी जरूरत क्या कि
मराठी गुजराती या भारतवष की और भाषाएँ नामशेष हो जायें, और
उनकी चिताओं पर हिन्दी फूले फूले।

७ फरवरी को श्री भरत मिश्र राष्ट्रपति क निजी सचिव श्री वाल्मीकि

चौधरी के साथ आए। भरत मिश्र को छपरा में लोग सोह स्वामी कहने लगे हैं। पं० रामावतार शर्मा के शिष्य और अनुयायी अर्थात् नास्तिक लेकिन हिन्दू नास्तिकता-आस्तिकता का समन्वय करना जानता है, विशेषकर ब्राह्मण। वाल्मीकि बाबू से पत्र द्वारा परिचय था क्योंकि चक्रधर बाबू के विकृत मस्तिष्क होने के बाद अब वही राष्ट्रपति के निजी पत्र-व्यवहार और दूसरे कामों को जिम्मा लिए हुए थे। मैंने पिछले पत्र में राजेन्द्र बाबू को लिखा था—मैं दिल्ली में आऊँगा लेकिन आपका समय बेकार लेना नहीं चाहता। राजेन्द्र बाबू से मिलने जुलने में मुझे कभी संकोच नहीं हो सकता था। पर, राष्ट्रपति होने के बाद उनके दर्शनार्थियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है इसलिए मैं उसमें एक की संख्या और बढ़ाना नहीं चाहता था। जब वाल्मीकि बाबू ने कहा ११ फरवरी को साढ़े ५ बजे आप मिलने आवें, तो मुझे अपने पत्र के लिए पछतावा होने लगा। मैंने यह क्यों लिख दिया कि आपका समय नहीं लेना चाहता। अब तो जाना ही पड़ेगा।

इसी समय फजबाजार के डाकखाने में एक घटना घटी। आजकल अक्सर नोट देने पर चीज लेकर बाकी पैसे लेना मैं भूल जाता हूँ। उस दिन टिकट लिए और १ रुपया १० आना वहीं टिकटवाले क्लर्क श्री चेतराम के पास भूल आया। अगले दिन गया तो उन्होंने पैसे वापस कर दिये। अभी भी, और दिल्ली शहर में ईमानदार लोग हैं इसका यह उदाहरण था।

सरहपाद दोहाकोश की जो (१०वीं—११वीं शताब्दी की) ताल पोथी मुझे तिब्बत में मिली थी, और जिसे मैं अब सम्पादित कर रहा था प्रकाशकों की इच्छा हुई, कि उस सारी ताल पोथी का ब्लाक पुस्तक में दे दिया जाए। दिल्ली में ब्लाक मेकर ढेरों पड़े हैं। कई जगह देख दाखकर मैंने चावड़ी बाजार के एक्सप्रेस ब्लाकवाला को पसन्द किया। दस साल पहले एक तरुण ने इस कारबार को शुरू किया और यह कोशिश की कि काम में कोई कसर न हो, ग्राहक खुश रहें। इतने दिनों में उसका काम जम गया था। मेरी पोथी के कई ब्लाक लेने थे। मैं भी चाहता था, और मुझसे भी अधिक तरुण मालिक को इस बात की फिकर थी कि कोई प्लेट अस्पष्ट न रह पाए। किसी किसी के दो दो तीन तीन प्लेट उसने रद्दी में डाल दिए, जितना अच्छा हो सकता था, उतना अच्छा ब्लाक बनाया। काम

उसका काफी बढ चुका है, और, और भी वजन की बात कर रहा था। मुन्शी कृष्णप्रसाद दर की बात याद आती थी। अगर काम बढाने के पीछे इतने पागल न होते तो अपन रोपे विरवे—ला जनल प्रेस—से दूध की मक्खी की तरह न निकाल जाते। मैंने सावधान किया काम बढाने के ख्याल से सेठा के पास मत जाना।

राजकमल के यहाँ जान पर देवराजजी ने एक किताब उठाकर कहा यह एक नए लेखक का बहुत अच्छा उपन्यास है। मेरे पास समय भी था और मैं सैकडा पुस्तकें इस वक्त जमा कर रहा था। मैंन मैला आचल भी ले लिया। उस लिए जैनेन्द्रजी के यहाँ जाना पडा। जनेन्द्रजी दार्शनिक न बनते तो अच्छा होता, लेकिन किसी के दिल को कसे रोका जा सकता है ? उन्होने 'मैला आचल' को देखकर कहा मैं इसे फिनिस्ट (श्रेष्ठ) तो नहीं कहता, पर दि गुड (अच्छा) कह सकता हू। जनेन्द्रजी का इतना सर्टिफिकेट भी नये लखक के लिए काफी था। दार्शनिक अपने हरेक शब्द को तौलकर बालना तो जानते हैं। मैं उस पुस्तक को आद्योपान्त पढ गया। सचमुच ही उसके पढन म प्रेमचन्द की कोई महान् कृति याद आती थी। मैं फणीश्वरनाथ रेणु की लखनी का कायल हो गया। मैं तो समझता हूँ वडे उपन्यासो म प्रेमचन्द के बाद ऐसा सुन्दर उपन्यास कोई नहीं लिखा गया। मैंने उसके बारे म नोट भी लिया था— अच्छा लिखा है। भविष्य सौंदय पूर्ण यथार्थ चित्रण है।" लखनी म बडी सम्भावना है।

११ फरवरी को सवेरे शिव शर्मा के साथ उनके कला भवन म लाजपत नगर गया। कला भवन का मतलब है हिंदी साहित्य विद्यालय। वह दिल्ली के एक छोर पर है। वहाँ तरुण तरुणियाँ पढकर पजाब युनिवर्सिटी के प्रभाकर, रत्न और मैट्रिक की परीक्षाएं देती थीं। पजाब म इस तरह के निजी विद्यालयो की स्थापना का बहुत रवाज है। कुछ लोग इन पर नाक भौं सिकोडते हैं और कहते हैं ये शिक्षण सस्थाए नहीं शिक्षण दूकानें हैं। मैं नहीं समझता वहाँ भी शिक्षण-सस्थाओ के लोग हवा पीकर रहते हैं सभी तनखाह लेते हैं। यहाँ भी यदि शुल्क लेकर पढाते हैं तो क्या बुरा ? यदि यहाँ पढ हुए लडके लडकियाँ परीक्षाओ म पास नहीं होते, तो पढने क्या आते ? और जब बाकायदा स्थापित कालेजो और स्कूलों के लडकों के साथ

बैठकर यह परीक्षा म पास हो जाते हैं तो इनकी निकायन क्या ? निर दामी का जाना सभी कभी उन्हें बहुत जोर से उठा ले जाता। उस समय उनकी व्यावहारिकता पर स न्देह होने लगता है। लेकिन यहाँ दिल्ली म वही इस भवन के सस्थापक और प्रधानाचार्य थे। वह साहित्यरत्न अच्छी तरह पास हुए थे हिन्दी साहित्य की उनकी योग्यता बहुत अच्छी है। थोड़ी सस्कृत भी पढ़ी थी। अग्रेजी पढ़ने की इच्छा तो होती पर न च म प्रवत्ति ' (उधर मन चलना ही नही था)। उनके सहायक अध्यापको म अग्रेजी के ग्रेजुएट भी थे। इस सस्था को चलाकर उन्होंने अपनी व्यावहारिकता का प्रमाण दे दिया था। इन सबके होते भी वे हैं घुमक्कड़ इसलिए बीच-बीच म महीनो के लिए निमक जाते है। उनके माता पिता भी साथ थे। वे समझते थे, मेरी ही प्रेरणा से उनके पुत्र ने अपने माता पिता का स्वागत किया।

दो दिन पहले मैं प० भगवद्दत्तजी को कह चुका था कि ११ तारीख को मैं आपके यहा आऊँगा। मैं समझता था पटेलनगर और लाजपतनगर पास ही पास हैं। अब मालूम हुआ दोनो म २० मील का अन्तर है, दोनो दिल्ली के दो छोरो पर हैं इसलिए जाने का विचार छोड देना पडा। लाजपतनगर म शरणार्थियो के लिए सरकार ने मकान बनवाये थे। पहले ६ हजार म जो मकान बिका था अब नीलाम मे सरकार ने उसके दस पन्द्रह हजार पाए थे। सरकार यदि इस तरह से मकानो को देने लगी तो सभी मकान बडे बडे धनिको के हाथ म पहुँच जाएगे और साधारण वित्त वाले बेघर के ही रह जाएँगे। यह अन्धेर है लेकिन समझाए कौन ?

आज ही पार्टी के मुखपत्र " यू एज " म निकला कि मैं फिर कम्युनिस्ट पार्टी म सम्मिलित हो गया। जब पार्टी से अलग था तब भी खुफिया पुलिस परछाई की तरह पीछे पडी रहती थी, इसलिए उसके काम म कोई अन्तर नही था। सयोग देखिये, उसी दिन साढ़े ५ बजे राष्ट्रपति भवन म राजेन्द्र बाबू से मिलने जाना था। टैक्सी ने वहाँ तक पहुँचा दिया। दिल्ली के अकबर जैसे दूसरे बादशाह भी इतने बडे राज्य के प्रमुख नही थे। शायद इतिहास म भारत म ऐसा कोई राज्य अधिष्ठाता नही हुआ। इसलिए यदि वहाँ के नौकरो की तडक भडक देखकर आख चौंधिया जाय तो कोई अचरज नहीं।

फिर राष्ट्रपति भवन वही मकान था जिसे पहले वायसराय भवन कहा जाता था और जिसके बनाने में अंग्रेजों ने बरसों से प्रजा की गाढ़ी कमाई का स्वाहा किया था। मैं समय पर पहुँचा था इसलिए जरा ही देर में राष्ट्रपति के पास पहुँचाया गया। राजेन्द्र बाबू बस हा सीधे-सादे बैठे हुए थे। मैं भी बैठ गया। स्वास्थ्य साहित्य और तिब्बत के बारे में बातचीत हुई। सरस्वती की ताम्रपाथी को उन्होंने बड़ी दिलचस्पी से देखा। पूछा—कोई सहायता की जरूरत है? मैंने कहा—यद्यपि मेरा स्वास्थ्य पहले जैसा नहीं है पर आजकल तिब्बत में पुराने मठों और पुस्तकालयों के खोजे जा रहे हैं उनके कारण मैं तिब्बत जाना चाहता हूँ। उसके लिए पासपोर्ट के बारे में आपको सहायता करनी पड़ेगी। उस वक्त मुझे मालूम नहीं था कि उत्तर प्रदेश सरकार ने पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया है। राजेन्द्र बाबू ने पासपोर्ट के लिए सिफारिश की। आखिर उन्हीं के नाम पर तो पासपोर्ट मिलते हैं इसलिए केन्द्रीय सरकार क्या इन्कार करने लगी।

राजेन्द्र बाबू हमेशा से सकोची रहे। इसका यह मतलब नहीं कि वह प्रतिभा में पीछे रहे। आत्मी आत्मी का स्वभाव होता है। इतना सकोच उन्होंने कहाँ से सीखा? बड़े भाई महेन्द्र बाबू का अपने अनुज के ऊपर ऐसा घनिष्ठ प्रेम था जैसा बहुत कम देखा जाता है। राजेन्द्र बाबू उनके सामने हमेशा अपने को छोटा-सा बालक समझते थे वैसे ही सम्मान और स्नेह रखते थे। शायद सकोच का आरम्भ वहीं हुआ हो। कुछ भी हो। बाज वक्त अपने भावों को प्रकट करने में उनका सकोच करना अच्छा नहीं होता। वह भारत के प्रथम राष्ट्रपति हैं। शताब्दियों बाद भारत में पहले-पहल गणराज्य स्थापित हुआ और इसके गणपति बनने का उन्हें मौका मिला। वह जो रास्ता दिखलायेंगे उसका अनुसरण बहुत पीछे तक किया जाएगा। नेहरू लिकाडिया परिवार में पैदा हुए जिन्होंने अर लिकाडिया रहे। न उन्होंने अपने पैसों को खर्च करने में कभी सकोच हुआ, और न मुसी-नंगी जनता में जमा किए हुए धन में आग लगाने में कोई सकोच। इसका उदाहरण उनका वर्तमान विभाग है। उनके राजदूत इस तरह की हृदयहीनता के लिए मशहूर हैं। विजयलक्ष्मी पण्डित तो शाहजादी हैं। मास्को के दूतावास के

राजा ने पर्नीचर का मशीन वह यदि हवाई जहाज से स्वीडन गई तो कोई अचरज की बात नही थी। उनका दम बरकरार रहना चाहिए जिस दूतावास म भी पधारेंगी उस मुगल दीवानेखास बनाके छोडेंगी। मास्को म ऐसा ही किया वाशिंगटन म ऐसा ही किया लन्दन म ऐसा ही कर रही हैं। जब तक बडे भया हैं तब तक वह राजदूता बनकर इसी तरह अपने गरीब देश की असली अवस्था पर पर्दा डालकर दूतावासा को नौक बनायेंगी। मनन साहब से आशा थी वह सकोच करेंगे लेकिन वह भी लन्दन म राजदूत होते ही रोलसरायस जसी अत्यन्त खर्चीली मोटर खरीदने के लोभ को रोक न सके। इन लोगो के बारे में क्या शिकायत हो सकती है? लेकिन राजेन्द्र बाबू का तो उनकी बात म नहीं पडना चाहिए था।

यह ठीक है वह बहुत नही बदले। अब भी उन्हें खादी के उसी पुराने धोती कुर्ते म देखा जा सकता है अधिकतर वह अपनी इसी पोशाक म रहते हैं। पर, नेहरू ने सिखला दिया है कि मर्यादा रखने के लिए अचकन और चूडीदार पायजामे की बडी जरूरत है, इसलिए राष्ट्रपति उस पोशाक म भी देखे जा सकते हैं। इस बात म उन्हें डा० राधाकृष्णन का अनुकरण करना चाहिए, जिन्होने कभी अपनी धोती नही छोडी। पर जसा मैंने कहा, उनका सकोच बाज वक्त बुरा होना है। नहरू भोजपुरी कहावत के अनुसार—'बाड-बाड गइल बित्ता भर पगहा ले गइल' सीधे सादे राजेन्द्र बाबू को भी कितनी ही जगहा म पथभ्रष्ट करने म समर्थ हुए। राजेन्द्र बाबू हमेशा जनता के आदमी थे। जनता म घुल मिल जाने म ही वह सन्तुष्ट होते थे और दिखावे के लिए नही, बल्कि उनका कुछ ऐसे ही स्वभाव बन गया था। अब वह बिना शरीर रक्षको की पलटन के कही जा नही सकते। यह ठीक है कि उनके समय म हिस्सेदार हजारा आदमी और हजारो काम हैं लेकिन उसमे भी कभी कभी घटा दो घटा निकाल सकते है। उस समय यदि वह मोटर का दूर ही छोड अकेले अपना पुरानी पोशाक मे दिल्ली की गलियो म घूमते तो क्या बुरा हो जाता? वह तो गणपति हैं पुराने राजाओ म भी कितनो ने ऐसा किया था। इसका क्या लाभ होगा? उनके लिए तो नकद होगा, और गरीब जनता का भी सताष होगा। वह अपने दिल की बातें कहने का कभी कभी मौका पाएगी। सबसे बडी बात होगी कि आगे के राष्ट्रपतियो के

लिए रास्ता निकल आएगा और नेहरू का रौब जाता रहेगा।

मुझे घड़ी की ओर देखते हुए राजेन्द्र बाबू ने कहा—उसकी पर्वाह न कीजिए। लेकिन काम की बात तो कर चुका था। कुछ मिनट ही और बैठा। आध घंटे बाद वहाँ से चला आया।

१२ फर्वरी को डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी डा० राजबली पाण्डे आए। कहने लगे नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी विश्वकोश प्रकाशित करने की एक योजना केन्द्रीय शिक्षा विभाग के पास दी है। छ लाख रुपये के खर्च से पाँच साल में इस काम को पूरा करना है। भारत सरकार ने इसे मंजूर किया और पाँच हजार मासिक और भी देना निश्चय किया है। प्रधान सम्पादक और चार सहायक सम्पादक होंगे। हमारे काम की बड़ी अड़चन दूर हो जाएगी यदि आप प्रधान सम्पादक होना स्वीकार करें। मैं सरकारी नौकरी करने के लिए कैसे तैयार हो जाता? उस वक्त तो कुछ नहीं कह सका, लेकिन पीछे अपने विचारों को लिख भेजा। उन्होंने फिर अपनी कठिनाइयाँ रक्खीं और कहा दूसरे को प्रधान सम्पादक बनाने में कई उम्मीदवार हो जाएँगे और विवाद होने का डर है। फिर शिक्षा मन्त्रालय उसे मानने में गड़बड़ी करेगा। मित्रों ने भी ऊँचा-नीचा सुझाया, यह भी बतलाया कि यह काम तो सभा करा रही है, सरकार तो केवल अनुदान देती है। कई महीने पीछे अन्त में मैंने अपनी स्वीकृति भेज दी।

१३ फर्वरी को जेता के जन्म पर चाय पार्टी हुई। इसी बहाने दिल्ली के साहित्यकारों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ, मेरी भी उसमें सहमति थी। डा० सत्यकेतु, चन्द्रगुप्तजी, मन्मथनाथजी, सत्यार्थीजी, वाचस्पति पाठकजी, देवनारायण द्विवेदीजी, भगवतीप्रसाद वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, जैनेन्द्रजी, माचवेजी, नवलपुरी, सच्चिदानन्द आदि घर बाहर के ३६ पुरुष और महिलाएँ उपस्थित थीं। ऊपरी बराण्डे की जगह काफी साबित हुई। चाय पान के साथ साहित्य चर्चा भी हुई। इतवार का दिन था, इसलिए प्रायः सभी काम से विरत थे। शीलाजी, मामीजी, कमला आदि ने प्रबन्ध अपने हाथ में लिया था। श्रीनाथ और उनके परिवार ने भी भतीजे के उत्सव में भाग लिया था।

१४ फर्वरी को मैं चावड़ी बाजार में ब्लाकों को कापी देने गया था।

चांदनी चौक और चावडी बाजार म भीड अक्सर रहती है। एक जगह भीड हुई। मालूम हुआ एक आदमी जान बूझकर रास्ता रोक हुए है। मैं उस पर गुस्सा होने जा रहा था लेकिन उस समय दूसरी ओर ख्याल नही गया। आगे जाकर कोई चीज खरीदकर जब पैसा देने लगा तो देखा चमडे का गाल मनी बग गायब है। सयोग से मैंने सभी अण्डे एक टोकरी मे नहीं रक्खे थे दस रुपये का नोट अलग भी था, इसलिए दूकानदार को पैसा दे दिया। बटुये म चार पाँच रुपये तो जरूर होंगे। उससे भी ज्यादा बटुए का मोह था। १९४६ म शान्तिनिकेतन म इसे लिया था। वह वहाँ के निवास का चिह्न था। पुराने विचारवालो के शब्दो म कहता तो वह बडा भगमाना था। कभी ऐसा नहीं हुआ कि वह पैसे से खाली हो। मैं हैरान हो रहा था कितनी सफाई से पाकेटमार जाकेट के ऊपरी जब से उसे उडा ले गया। लेकिन, यहाँ सफाई की भी कोई ऐसी बात नही थी। जेब उडानवाले कई मिलकर यह काम करते हैं। जिसने भीड के बहाने रास्ता रोका था वह उन्ही म से था। दूसरा बगल से थैला निकालने की ताक म रहा। ११ १२ वर्ष पहले बगलौर म ऐसा ही हुआ था। कई ने मिलकर योजना बनाई थी। एक ने मेरी सफर फौटेनपेन उडाई। उसने किसी और के हाथ म थमाई उनका एक साथी जोर से भागने लगा। मेरा भोलापन कहिये मैं उसके पीछे दौडा और आगे जाकर पकड भी लिया। वह कसम खान और नगाझारी देने लगा—' मैंने कलम नही चुराई। मैं तो अपने काम से भागा जा रहा था।' सचमुच ही वह कलम लिए होता तो पकडने के लिए ऐसे क्या दौडता ? दिल्ली के पाकेटमार उससे भी ज्यादा होशियार थे। खैर जिन्दगी म दो चार बार ऐसे अनुभव हुये नहीं हैं हालांकि इसम सन्देह है कि आदमी उससे कोई लाभ उठा सकता है।

उसी दिन ५ बजे श्री रामलाल पुरी ने मेरे उपलक्ष्य म साहित्यकारो के लिए एक चाय पार्टी दी जिसम डा० नगेन्द्र श्री बाकेबिहारी भटनागर माचवेजी आदि तीस के करीब साहित्यकार मित्र आए।

उसी (१४ फरवरी) रात को हम देहरादून की ट्रेन पकडनी थी। नाम को भया भाभीजी शिवकुमारजी श्रीनाथ आदि स्टेशन पहुँचाने आए। ट्रेन १० बजे चली और अगले दिन ८ बजे के करीब देहरादून पहुँच गई।

१४

मसूरी से मन भर गया

१५ फरवरी को हम देहरादून में रह गए। गुरुआइनजी नये बाल-गोपाल को देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। हमें अब कमला की परीक्षा की चिन्ता थी। वह अब के साल बहुत कम पढ़ सकी थी, मुश्किल से एक महीना मिला था। जो भी समय था, उसे पढ़ने में लगाना था।

अगले दिन (१६ फरवरी) को हमने टैक्सी की, और अपने फाटक के नीचे तक उसे लाए। बीस रुपया किराया और पाँच रुपया नगरपालिका के आज्ञा-पत्र का देना पड़ा। साढ़े ६ बजे हम अपने घर पर थे। ठण्डी जगहों पर अब भी बर्फ मौजूद थी। अब के साल बर्फ अच्छी पड़ी थी, लेकिन हमें उसे देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। पहले कलेजे के दर्द से भागते फिरे, इधर महीने भर के लिए दिल्ली चले गए। आजकल सवाय होटल में विश्व कार्टोग्राफी (भूचित्र निर्माण) सम्मेलन हो रहा था। उसमें भारतीय प्रतिनिधियों ने चीन गणराज्य को सदस्य बनाने का प्रस्ताव किया, पर अमरिका और उसके पिट्ठू उसे क्या पसन्द करने लगे? सभी जगह उसी का बहुमत भी है। तुर्की का कोई प्रतिनिधि न होने पर भी उसका उपाध्यक्ष चुन लिया गया। भारतीय प्रतिनिधि अपने प्रस्ताव में सफलता नहीं हुए, लेकिन उन्होंने खूब खरी-खोटी सुनाई। अमेरिका समय-समय पर अपने को नंगा करके दिखला देता है। उसे दुनिया की जनमत की कोई पर्वाह नहीं है। वह अपने डालरों और आततायीपन पर फूला नहीं समाता, लेकिन एक दिन यह नशा उतरेगा जरूर।

१८ फरवरी को विषय सरकार की ओर से देव पुरस्कार के लिए आई पुस्तकों को देखकर अपनी राय दी। यद्यपि पहले सूचना मिली थी कि यदि कोई दूसरी पुस्तक भी नजर में आए, तो उसके लिए हम लिखें। उस समय तक 'मैला आँचल' को मैंने देखा नहीं था नहीं तो इसमें शक नहीं मैं उसी को पहला नम्बर देता।

कमला को परीक्षा की तैयारी में अब सारा समय देना चाहिए था। मैंने यहां कम से कम देहरादून जाने तक दो हफ्ते के लिए कोई नौकरानी रख दी जाए लेकिन उन्हें यह पसन्द नहीं था—खर्च बढ़ेगा। हाँ खर्च तो बढ़ेगा दस पन्द्रह रुपया, किन्तु वह बच्चे का कपड़ा धोयगी उसे खिलाएगी। मेरी एक न मानी।

जया फरवरी के अन्त में डेढ़ वर्ष की होने जा रही थी। अब वह क च त प ब अक्षरों को बोल सकती थी। टवर्ग और महाप्राण अक्षरों को बोलने में असमर्थ थी। इन्हें बच्चे बहुत दिना बाद सीखते हैं। मैं अपने उपन्यास 'सप्तसिन्धु' के लिए सामग्री जमा करने में लगा। पढ़ने के बाद कितने ही स्थानों से अन्धकार हटता गया। ऋग्वेद में बिखरी सामग्री भारत में आने के तीन शताब्दियों बाद सप्तसिन्धु के आर्यों की कितनी ही बातों को साफ करती जा रही थी। उपन्यास के अभी जल्दी लिखने की सम्भावना नहीं थी। पर लेख लिख डालना चाहता था।

देहरादून—परीक्षा देने से एक हफ्ता पहले ही जया जैना को लिये कमला और हम ६ मार्च को देहरादून गये। पहले आना चाहते थे लेकिन होली के हुड़दंग का डर था, इसलिए उसे मसूरी में ही भुगताकर आए। अब हम जया की देखभाल करती थी और कमला को पाठय पुस्तकें पढ़नी। बीच बीच में प्रो॰ वृहस्पति शास्त्री, प॰ हरनारायण मिश्र से सत्संग होता। १६ को प॰ किशोरीदास वाजपेयी भी आ गए। आजकल हिन्दी व्याकरण के लिखने में लगे हुए थे जिसे नागरी प्रचारिणी सभा अपनी ओर से लिखवा रही थी। उसका बहुत सा भाग वाजपेयीजी ने लिख भी लिया था जिसकी टाइप कापियां विशेषज्ञों के पास भेजी गई थीं। मैं भी देखकर सुझाव दे रहा था।

१८ मार्च तक मौसम गर्मी का मालूम होने लगा। सबसे तरद्दुद था

मक्खियों म। गर्मी बढ़ने ही वह आ धमकती। मक्खियों और मच्छरों का सवनाश तभी हो सकता है, जब सारे शहर म गन्दगी न हो। और यह थली-शाही राज्य म होने की बात नहीं।

ठीक डेढ वर्ष के होने पर जया ने कितनी ही चीजो के नाम रख लिए थ, जसे गाय-चा खाना-जया बकरी-माँ बिल्ली-मा, मोटर पापा। अक्षरों म का, चा, जा, ता, ना पा बा मा बोल सकती थी। उस घूमन का बहुत शौक था। झट स हमारी अँगुली पकड सडक पर चलने के लिए तैयार हो जाती थी।

मसूरी—२१ मार्च को कमला की परीक्षा (एम० ए० प्रीवियस) समाप्त हुई और अगले दिन हम मसूरी लौट आए। इस समय महादेव भाई कलकत्ता स आ गए थे। उन्होंने गगा की पढाई म भी सहायता दी।

दिल्ली—२३ मार्च को फिर दिल्ली के लिए रवाना होना पडा, जहाँ अगले दिन सवेरे पहुँचा। सैनिक विभाग क विदेशी भाषा स्कूल म तिब्बती की परीक्षा लेनी थी। सूचना स कुछ ऐसा मालूम हुआ शायद कलिम्पाग स डा० जाज रोयरिक भी आने वाले हैं। इसी लोभ से वहाँ गया था। २५ मार्च को धौलपुर हौस म पब्लिक सर्विस कमीशन क आफिस म गया। डा० जाज रायरिक तो नहीं, पर उनक अनुज स्वेतस्लाव रायरिक आय। वह शिवायफ मैं तथा विदेशी भाषा स्कूल के सचालक मुकर्जी साहब वहाँ थे। सनिक विदशी भाषा स्कूल के लिए रूसी अध्यापकी क उम्मीदवारो का देखना था। तातियाना बास ही सबसे योग्य साबित हुई। उनकी मातृभाषा ही रूसी नहीं थी, बल्कि रूसी की कवि और लेखिका भी थी। दूसरी तरुणी बोलने चालने म बहुत अच्छी थी पर उसका भाषा का ज्ञान उतना गम्भीर नहीं था। सबने तातियाना हा को स्वीकार किया।

२६ मार्च का हम फिर लौटकर मसूरी आ गए। महादेवजी उसी दिन गए। आनन्दजी अपने दो साथियो के साथ कल आए थ। सयोग था जो मैं आज आ गया, क्योंकि अगले दिन वह लौटने वाले थे। सुनकर बडी प्रसन्नता हुई कि 'जातक' का हिन्दी अनुवाद भी समाप्त हो गया और आखिरी जिल्द छप रही है। अब ५० के हो गए हैं। मैंने पहले पहल १९२६ म मेरठ म उन्हें देखा था। तब से २६ वर्ष हुए। बुढ़ापे का असर दिखलाई पड रहा

था। पूछ रहे थे—दूसरे किस काम में हाथ लगाऊं ? मैंने एक-दो सुझाव दिये। उसी दिन मंचू भिक्षु टची ल्हि-पो (मंगल हृदय) भी मिले। उनसे मसूरी और शिमला में मुलाकात हो चुकी थी। वह वस्तुतः मंचू थे, लेकिन आजकल शुद्ध मंचू बहुत कम रह गए हैं। उनमें से अधिकांश भाषा, भेस में चीनी बन गए हैं। वैसे जातितः और भाषातः मंचू मंगोलों के बहुत नजदीक हैं, और उन्हीं की तरह कितने ही तिब्बत में आकर पढ़ते हैं। मंगल हृदय हमारे पास आना चाहते थे। रसोईघर के ऊपर का ही कमरा रह गया था। हमने कहा, वह हाजिर है। कितने ही दिनों तक वह वहां रहे। फिर उन्हें 'आर्डेन' में अनुकूल स्थान मिल गया, इसलिए वह वहां चले गए। उन्होंने संस्कृत पढ़ने की इच्छा प्रकट की। हमने कहा, अच्छी बात है। लेकिन, जान पड़ता है, एक उमर के बाद कम से कम भाषाओं का पढ़ना आदमी के लिए मुश्किल हो जाता: मन उसमें नहीं लगता और मेहनत नहीं होती।

आनन्दजी जब से अपने जन्मस्थान से निकले तब से फिर नहीं गये थे। गाँव तो उनका अम्बाला जिले के खरड़ तहसील में था पर, उनके पिता अम्बाला के स्कूल में अध्यापक थे और आनन्दजी (पूर्व नाम हरिदास) का अधिक समय वहीं बीता। वहीं मैट्रिक पास किया और कालेज में जाने की जगह वह असहयोग में चले गये। फिर कुछ समय बाद अपनी पढ़ाई लाहौर के कौमी विद्यालय में पूरी की। वह प० बलदेव चौबे—बाद में स्वामी सत्यानन्द—के सहपाठी थे। सहपाठी के निवास पर ही मेरठ में मेरी उनसे पहले-पहल मुलाकात हुई। उस समय क्या मालूम था हमारी इतनी घनिष्ठता हो जायगी। अब वह अपनी जन्मभूमि देखना चाहते थे। मैंने अनुमोदन किया। एक ही छोटा भाई था, जो पटियाला में कहीं पटवारीगिरी करता था। कुछ कमाया तो साबुन बनाने का कारबार शुरू किया, पूंजी गँवा बैठे और अब फिर पटवारी के पटवारी।

मंगल हृदय से मैंने सरहपा के दोहाकोश के अपने हिन्दी अनुवाद करने में सहायता लेनी चाही। लेकिन, तिब्बती अनुवाद में भी सिद्धों की भाषा अपनी विशेषता रखती है। मंगलहृदय उससे परिचित नहीं थे, इसलिए बहुत सहायता नहीं कर सके। ५ अप्रैल को अपराह्न में चंडीगढ़ के सरकारी कालेज के तीन प्रोफेसर आए। वहां की बातें बतला रहे थे। मालूम हुआ

चण्डीगढ़ स्टेशन हिंदी भाषा क्षेत्र में है। एक छोटा-सा सूखा नाला है वहीं पंजाबी और हिंदी भाषा की सीमा है। हमारे प्रभुओं को भाषा से लेना देना क्या है? उनकी चले तो बंगाल की राजधानी आसाम में बनाई जा सकती है। एक इतिहास और संस्कृत के पण्डित थे। उनसे मालूम हुआ, रोपड़ में हाल में जो खुदाई हुई है उसमें मटमैले रंग के बरतन मिले हैं जिनको वैदिक-कालीन कहा जाता है। पर, इस तरह के बरतन तो हस्तिनापुर में भी निकले हैं जो ऋग्वेद के काल के हर्गिज नहीं हैं। मैं उत्सुक था ऋग्वेदकालीन बरतनों और दूसरी चीजों को देखने के लिए। जो चीजें उस समय से लेकर पीछे तक चली आती थीं उनसे सप्तसिंधु के आर्यों के ऊपर पूरा प्रकाश नहीं पड़ सकता।

कमला ने मेरे जन्मदिन को याद दिलाने का निश्चय कर लिया था। ६ अप्रैल १९५५ को मेरा ६२वां जन्मदिन था। उस दिन कर्नल हरिश्चन्द्र, क्रैडक दम्पती, महतानी आए। नीलाजी और डा० सत्यकेतु गुरुकुल कांगड़ी चले गए थे, इसलिए वह अब के नहीं आए। चार पांच दिनों के लिए साथी रांडिलकर भी आ गए थे, आज चाय के बाद वह चले गये। चाय पान हुआ। डा० हरिश्चन्द्र पेन्शन प्राप्त सिविल सर्जन हैं, उन्होंने ही मिस एमरसे 'फिल्डेर' खरीदा है। मकान के बारे में क्या शिकायत हो सकती थी? लेकिन, यहां का एकान्त जीवन उन्हें पसन्द नहीं आ रहा था। सीजन से पहले आ गए थे, इसलिए एकान्त और भी अधिक था। कहने लगे, कोई खरीदार हो तो ढूंढ लीजिये। उस समय जान पड़ता था, ७२ हजार की चीज को कुछ घाटा सहकर भी बेच देंगे। लेकिन जब साल भर बिता चुके तो घाटा सहकर बेचने का खयाल छोड़ दिया। अकेले आदमी हैं अंग्रेज पत्नी मर चुकी है। एक पुत्र है, जो भारतीय फौज में तोपखाने का मेजर है। एक लड़की अंग्रेज से ब्याह कर विलायत में रहती है। इतने बड़े बंगले में अकेले कैसे मन लगे? ७० वर्ष के ऊपर के हैं लेकिन अभी भी स्वस्थ हैं, घूम फिर लेते हैं। हम तो ऐसे पड़ोसी से विशेष लाभ है। कभी अपने ही टहलते हुए पूछने के लिए आ जाते हैं, और कोई भी बात होती है तो हम उनके यहाँ पहुँच जाते हैं।

१३ अप्रैल को नेपाल से श्री कल्लानाथ अधिकारी अपने एक दूसरे जन

गायक जोशी के साथ आए। कलानाथ अच्छी नौकरी को लात मारकर स्वतंत्र नेपाल में लौट गए थे। एक दर्जन के करीब का परिवार कैसी आर्थिक कठिनाई में पड़ा हुआ था देखकर भी दुःख होता था। अधिकारी-जी लोक गीतों के अच्छे गायक हैं। संगीत में उनके सारे परिवार की रुचि है। लेकिन, शुद्ध जनगीतों की जगह वह अपने बनाए लोक गीतों को गाना ज्यादा पसन्द करते हैं शुद्ध लोक धुनों की जगह उसमें अपना भी प्रवेश कराना चाहते हैं और इसको वह दोष नहीं समझते। वस्तुतः यदि यह दोष नहीं होता, तो उनका गला बहुत ही मीठा है। वह बहुत सुन्दर गा सकते हैं। तरुण हैं घूमने फिरने में आलस्य नहीं है यदि वह दो चार हजार नेपाली लोक गीतों को जमा कर डालते तो अमर काम होता। पर उसके महत्त्व को जब खुद समझें तब न। बतला रहे थे, नेपाल की स्थिति पहले से भी बदतर होती जा रही है। यहाँ कुछ दिनों रहकर मसूरी देख दोनों तरुण चले गए।

यहाँ रहते मेरी भारतीय भाषाओं में पुस्तकों के कई अनुवाद हुए। मद्रासीजी ने चार पाँच पुस्तकें—अधिकतर उपन्यास और कहानियाँ—गुजराती में अनुवादित और प्रकाशित कीं। केरल छोटा प्रदेश है लेकिन वहाँ सबसे अधिक साक्षरता है इसलिए पुस्तकें भी अधिक निकलती हैं। वहाँ तो कई विद्वानों ने अनुवाद करने की होड़ लगा रखी है। वोल्गा से गंगा का अनुवाद करने की ओर रुचि स्वाभाविक है। अब तो वह भारत की कोई साहित्यिक भाषा नहीं है जिसमें उसका अनुवाद न हुआ हो। असमिया और कन्नड़ में पुस्तकाकार नहीं छपी लेकिन बहुत से पत्रों में उसकी कहानियाँ निकली हैं। मलयालम वालों ने विश्व की रूपरेखा को सारे चित्रों के साथ छापने की हिम्मत की इससे मुझे मालूम हो गया कि उसमें पुस्तकों की खपत ज्यादा है। इधर तो दो विद्वानों ने 'दर्शन दिग्दर्शन' का अनुवाद करके छापना शुरू कर दिया। मेरा इसमें दोष नहीं था मैंने कहा था तीन महीने के भीतर उसके कुछ फार्मों को छपा मेरे पास भेज दें। जब एक ने ऐसा नहीं किया और दूसरे ने अनुमति माँगी, तो मैंने उसे अनुमति दे दी। उसके बरस सवा बरस बाद कितने फर्मों को छापकर शिकायत करते हैं, कि ऐसा क्यों?

२८ अप्रैल को भी रह रहकर फेफड़े में सुइयाँ सी चुभ रही थीं। अगले

दिन कर्नल चांद ने देखा। उन्होंने कहा, यह भीतर का दर्द नहीं है, ऊपर मसल्स का दर्द है, जो मालिश करने से ठीक हो जाएगा।

१ मई को हरद्वार से सरदार जसवन्तसिंह आए। वह शरणार्थी साहित्यकार हैं। एक छोटा-सा प्रेस चलाते हैं। पर्याय-कोश बनाने की ओर उनका ख्याल गया। पहले शायद पंजाबी में बनाना चाहते थे, फिर ख्याल आया, हिन्दी में इसके लिए ज्यादा क्षेत्र है। ऐसे कोश के बनाने के लिए हिन्दी और अंग्रेजी का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि संस्कृत का भी कुछ ज्ञान होना चाहिए। यह कमी जरूर है, लेकिन उसकी पूर्ति सरदार अपनी धुन और संग्रह के परिश्रम से कर लेते हैं। आखिर ऋषिजी में भी ऐसी हिन्दी कोश बनाने के लिए यह कमी थी। पर मैं समझता हूं, उनका काम अच्छा होगा। वह अपनी कमियों को दूसरों की सहायता से पूरा कर रहे हैं। सरदार के इस काम में भी मेरी दिलचस्पी थी और जब कभी भी वह मेरी सहायता चाहते, मैं उसे देने के लिए तैयार रहता।

हन हिलफ बेचने का हमने निश्चय कर लिया था और मई के महीने में 'स्टेट्स मन' में एक विज्ञापन भी निकाल दिया। ८-१० ग्राहकों के पत्र आये, लेकिन मकान बिकने की नौबत नहीं आई। आधे दाम पर भी फेंकने के लिए तैयार थे, देखें कौन आगे बढ़ता है? उस समय मेरा ख्याल यही था कि मसूरी में आठ महीना किराये पर रहेंगे और चार महीने के लिए देहरादून चले जाएंगे। पीछे कमला की सलाह हुई, अच्छा होगा कलिम्पोंग जाना। वहां ४००० फुट की ऊंचाई होने से जाड़े-गर्मी में अलग जगह ढूंढने की जरूरत नहीं होगी। कमला के पीहर का ही प्रेस इसमें कारण नहीं है, बल्कि वहां वह काम कर सकती हैं। फिर लम्बे अर्से तक तो उन्हें ही बच्चों को संभालना है।

९ मई को डा० सत्यनारायणसिंह का सामान ऊपर 'हन हिल' में जाते देखा। न उन्हें पता था, मैं पास के बंगले में रहता हूं, और न मुझे मालूम था कि वह ऊपर के बंगले में अपनी पत्नी और पुत्री के साथ आ रहे हैं। उनके विवाह की बात भी मुझे मालूम नहीं थी। डा० सत्यनारायण से मेरा परिचय बहुत पुराना है, बल्कि थोड़ी-सी अतिशयोक्ति करते कहा जा सकता है कि उस समय से जबकि उनके दूध के दांत टूटे नहीं थे। उनके

रामविनोद सिंह तो असहयोग के जमाने में छपरा में हमारे सहकारी थे। पहले पहल मैंने तभी देखा था जबकि बारात सूत कातने में उन्होंने किसी होड़ में विजय प्राप्त की थी। उस समय किसको मालूम था यह बालक भारी घुमक्कड़ बनेगा एक के बाद एक भाषाओं को फड़फड़ सीखता जाएगा। मैंने भी भाषाएं सीखी हैं, पर मैं अपने को भाषा सीखने में बहुत चतुर नहीं मानता। मैं भाषा भाषा के लिए नहीं सीखता बल्कि उससे काम लेने के लिए। फिर वह काम भर की ही रह जाती है। सत्यनारायणजी यूरोप की कई भाषाएँ—जिनमें रूसी भी है—फर फर बोलते हैं। जब उनको मुक्त होकर विचरण करने का मौका मिलता है तो वह अपने रूप में दिखाई पड़ते हैं। आवारा' ने यह क्या किया ? यह पत्नी और परिवार कैसा ? पर अब समय से ही सही उनके बाल बहुत सफेद थे। यद्यपि इसका मतलब यह नहीं कि वह बुढ़ापे में दाखिल हो गये थे। इधर उन्होंने पार्लियामेंट में कम्युनिस्टों के ऊपर जबर्दस्त प्रहार किये। मैं उसकी याद भी दिलाना नहीं चाहता था लेकिन वह स्वयं समझते थे और कुछ व्याख्या भी करना चाहते थे। लेकिन, उससे क्या होता है। किसी विषय में हमारे मतभेद घोर हो सकते हैं लेकिन उसके कारण हम अपने पुराने सम्बन्धों को थोड़े ही छोड़ सकते हैं। जब उन्हें सोवियत जाने का उसी साल वीजा मिल गया, तो बड़ी खुशी से कह रहे थे— बाबा मुझे सोवियत सरकार ने वीजा दे दिया। मैं वहाँ कहीं जाकर घूम सकता हूँ और उसके बारे में लिख सकता हूँ। वह गए और हाल ही में उनके कई लेख पत्रों में निकले जो अच्छे थे।

मसूरी में नौकरों की हमेशा दिक्कत रही। कुछ तो अच्छे नहीं मिले इसलिए हटाना पड़ा। दो ने चोरी की। कुछ अच्छे मिले तो हमारी गलती से रह न सके। १० मई को हमने महेश को नौकर रखा। शायद यह आखिर तक मसूरी में हमारे साथ रहे। कुछ दोष है प्याले गिलास बहुत तोड़ता है काम करते ऊंघता रहता है। रसोइया भी उतना अच्छा नहीं है पर अब हम जानते हैं कि सर्वतोभद्र नौकर नहीं मिल सकता इसलिए अपने ऊपर अंकुश रखने की जरूरत है।

जेता भी आँखें खुली होने पर भी दो महीने तक किसी चीज को देख

नहीं सकता था फिर वह देखने लगा। चौथे महीने में पहुँचने पर वह अपने आस पास की चीजों को बहुत ध्यान से देखता। जया से १६ दिन बड़ी सत्यनारायणजी की पुत्री मंजू थी। दोनों आपस में अक्सर मिला करती थी। पत्नी लखनऊ में पैदा हुई बंगाली तरुणी थी। बर्लिन में भारतीय दूतावास में काम कर रही थी, वहीं 'आवारे' से भेंट हुई, और दोनों बंधन में बँध गये। सत्यनारायणजी बराबर आते जाते रहते थे। उनकी पत्नी सिर्फ एक बार आई। मंजू रोज आती। कुछ बातों में जया उससे आगे बढ़ी थी और कुछ बातों में मंजू। मंजू के सिर पर बड़े बड़े बाल थे जिन्हें माँ ने बाँटकर रखा था। जया के छोटे-छोटे बाल थे। जेता के पैदा होने वाले का नाम नहीं था और १४ महीने बाद भी अभी जरा ही जरा दिखाई पड़ता था।

मई में सलानियों का सीजन शुरू हो गया था। बहुत से मित्र और परिचित आने लगे थे। १५ मई को डा० भगवतशरण उपाध्याय अपने कनिष्ठ पुत्र के साथ आये। देर तक बातें होती रहीं। जिस आयु में मैं उनके पुत्र को देख रहा था, किसी समय में उस आयु में पिता को देखा था। भगवतशरण का ऐतिहासिक अध्ययन बहुत गम्भीर है, सबसे बड़ी बात यह है कि वह अपने किसी बात को लिखते वक्त शब्दों का मूल्य जानते हुए इस्तेमाल करते हैं। उनके लिखने की शैली बड़ी रोचक होती है। आम इतिहासकारों की तरह उसमें रूखापन नहीं होता। आखिर वह कथाकार और सफल निबंधकार भी तो हैं।

अब रविवार के दिन घर मेहमानों से भर जाता। अपराह्न की चाय में तो जरूर दस बारह मित्र आये रहते। अच्छी चहल-पहल हो जाती।

पहली यात्रा (१९२३ ३७) में जब मैं सिंहल में था तो वहाँ के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए मैंने पाँच संस्कृत पुस्तकें लिखी थीं जिनमें चार भाषा और पाँचवीं छन्द-अलंकार सिखलाने के लिए थी। वे वहीं सिंहली भाषा के साथ सिंहली अक्षरों में छपी थीं। ख्याल आया कि उन्हें हिन्दी के साथ नई तरह से लिख कर प्रकाशित किया जाये तो अच्छा हो। इधर जब कभी कोई मुझसे संस्कृत पढ़ने की कोशिश करता, तब और भी इस ओर ख्याल जाता। मंगलहृदयजी को पढ़ाते वक्त यह ख्याल आया और मैंने निश्चय किया कि उसे संशोधित संवर्धित करके संस्कृत पाठमाला के रूप

रामविनोद सिंह तो असहयोग के जमाने में छपरा में हमारे सहकारी थे। पहले पहल मैंने तभी देखा था जबकि बारीक सूत कातने में उन्होंने किसी होड़ में विजय प्राप्त की थी। उस समय किसको मालूम था यह बालक भारी घुमक्कड़ बनेगा एक के बाद एक भाषाओं को फड़फड़ सीखता जायगा। मैंने भी भाषाएं सीखी है, पर मैं अपने को भाषा सीखने में बहुत चतुर नहीं मानता। मैं भाषा भाषा के लिए नहीं सीखता बल्कि उससे काम लेने के लिए। फिर वह काम भर की हो रह जाती है। सत्यनारायणजी यूरोप की कई भाषाएँ—जिनमें रूसी भी है—फर फर बोलते हैं। जब उनको मुक्त होकर विचरण करने का मौका मिलता है तो यह अपने रूप में दिखाई पड़ते है। आवारा ने यह क्या किया? यह पत्नी और परिवार कैसा? पर अब समय से ही सही उनके बाल बहुत सफेद थे। यद्यपि इसका मतलब यह नहीं कि यह बुढ़ापे में दाखिल हो गये थे। इधर उन्होंने पार्लियामेंट में कम्युनिस्टों के ऊपर जबर्दस्त प्रहार किये। मैं उसकी याद भी दिलाना नहीं चाहता था लेकिन वह स्वयं समझते थे और कुछ ज्यादा भी करना चाहते थे। लेकिन, उससे क्या होना है। किसी विषय में हमारे मतभेद घोर हो सकते है लेकिन उसके कारण हम अपने पुराने सम्बन्धों को थोड़े ही छोड़ सकते हैं। जब उन्हें सोवियत जाने का उसी साल वीजा मिल गया, तो बड़ी खुशी से कह रहे थे— बाबा, मुझे सोवियत सरकार ने वीजा दे दिया। मैं वहां कहीं जाकर घूम सकता हू और उसके बारे में लिख सकता हूँ। वह गए और हाल ही में उनके कई लेख पत्रों में निकले जो अच्छे थे।

मसूरी में नौकरों की हमेशा दिक्कत रही। कुछ तो अच्छे नहीं मिले इसलिए हटाना पड़ा। दो ने चोरी की। कुछ अच्छे मिले तो हमारी गलती से रह न सके। १० मई को हमने महेश को नौकर रखा। शायद यह आखिर तक मसूरी में हमारे साथ रहे। कुछ दोष है प्याले गिलास बहुत तोड़ता है काम करते ऊंघता रहता है। रमादेया भी उतना अच्छा नहीं है पर अब हम जानते हैं कि सर्वतोभद्र नौकर नहीं मिल सकता इसलिए अपने ऊपर अंकुश रखने की जरूरत है।

जेता भी आँख खुली होने पर भी दो महीने तक किसी चीज को देख

नही सकता था, फिर वह देखने लगा। चौथे महाने म पहुँचने पर वह अपन
आस-पास की चीजा को बहुत ध्यान म देखना। जया म १६ दिन बडी
सत्यनारायणजी की पुत्री मजू थी। दोना आपस म अक्सर मिला करती
थी। पत्नी लखनऊ म पदा हुई बगाली तरुणी थी। बर्लिन म भारतीय
दूतावास म काम कर रही थी, मनी आवारे' म भेंट हुई, और दोना बधन
म बँध गय। सत्यनारायणजी बराबर आते जाते रहते थे। उनकी पत्नी
सिर्फ एक बार आइ। मजू रोज आती। कुछ बाता म जया उसस आग बढी
थी और कुछ बाता म मजू। मजू क सिर पर बडे बडे बाल थ जिन्ह माँ न
बाँधकर रखा था। जया क छोटे-छोटे बाल थ। जेना क पदा होन वाले का
नाम नहा था, और १४ महीन बाद भी अभी जरा ही जरा दिखाई पडता था।
मई म सैलानिया का सीजन शुरू हो गया था। बहुत स मित्र और
परिचित आने लग थ। १५ मई को डा० भगवतशरण उपाध्याय अपन
कनिष्ठ पुत्र के साथ आय। देर तक बातें होती रहीं। जिस आयु म मैं
उनक पुत्र को देख रहा था किसी समय म उस आयु म पिता को देखा था।
भगवतशरण का ऐतिहासिक अध्ययन बहुत गम्भीर है, सबस बडी बात यह
है कि वह अपने किसी बात का लिखन वक्त शब्दो का मूल्य जानते हुए
इस्तेमाल करते हैं। उनक लिखन की शली बडी रोचक होती है। आम
इतिहासकारा की तरह उसम रूखापन नही होता। आखिर वह कथाकार
और सफल निबधकार भी तो हैं।
अब रविवार क दिन घर महमाना स भर जाता। अपराह्न की चाय
म तो जरूर दस-बारह मित्र आय रहते। अच्छी चहल-पहल हो जाती।
पहली यात्रा (१७२२ ३७) म जब मैं सिहल म था, तो वहाँ क विद्या-
थिया का पढान क लिए मैंन पाँच सस्कृत पुस्तकें लिखी थीं, जिनम चार
भाषा और पाँचवी छन्द-अलकार सिखलान के लिए थी। व वही सिहली
भाषा क साथ सिहली अक्षरा म छपी थी। ख्याल आया कि उन्ह हिन्दी क
साथ नइ तरह स लिख कर प्रकाशित किया जाय, तो अच्छा हो। इधर जब
कभी बाद मुझस सस्कृत पढ़न की कोशिश करता, तब और भी इस ओर
ख्याल जाता। मगलदत्यजी को पढ़ान वक्त यह ख्याल आया और मैंने
निश्चय किया कि उस सशोधित-सवर्धित करक सस्कृत पाठमाला क रूप

रामविनाद सिंह ता असहयोग के जमाने म छपरा म हमारे सहकारी थे। पहले पहल मैंने तभी देखा था जबकि बारीक सूत कातने म उन्होने किसी होड म विजय प्राप्त की थी। उस समय किसको मालूम था यह बालक भारी घुमक्कड बनेगा एक के बाद एक भाषाआ को फडफड सीखता जाएगा। मैंने भी भाषाएँ सीखी है, पर मैं अपने को भाषा सीखने म बहुत चतुर नहीं मानता। मैं भाषा भाषा के लिए नही सीखता बल्कि उससे काम लेने के लिए। फिर वह काम भर की ही रह जाती है। सत्यनारायणजी यूरोप की कई भाषाए—जिनम रूसी भी है—फर फर बोलते है। जब उनको मुक्त होकर विचरण करने का मौका मिलता है तो वह अपने रूप म दिखाई पडते है। आवारा ने यह क्या किया ? यह पत्नी और परिवार कमा ? पर अब समय से ही सही उनके बाल बहुत सफेद थ। यद्यपि इसका मतलब यह नही कि वह बुढापे म दाखिल हो गए थे। इधर उन्होने पार्लियामेंट म कम्युनिस्टो के ऊपर जबदस्त प्रहार किये। मैं उसकी याद भी दिलाना नही चाहता था लेकिन वह स्वय समझते थे और कुछ व्याख्या भी करना चाहते थे। लेकिन, उससे क्या होता है। किसी विषय म हमारे मतभेद घोर हो सकते है लेकिन उसके कारण हम अपने पुराने सम्बन्धो को थोडे ही छोड सकते हैं। जब उन्हे सावियत जाने का उसी साल वीजा मिल गया, तो बडी खुशी से कह रहे थे— बाबा मुझे सोवियत सरकारने वीजा दे दिया। मैं वहाँ कही जाकर घूम सकता हूँ और उसके बारे म लिख सकता हूँ।' वह गए और हाल ही म उनके कई लेख पत्रो मे निकले जो अच्छे थ।

मसूरी मे नौकरो की हमेशा दिक्कत रही। कुछ तो अच्छे नही मिले इसलिए हटाना पडा। दो ने चोरी की। कुछ अच्छे मिले तो हमारी गलती से रह न सके। १० मई को हमने महेश को नौकर रखा। शायद यह आखिर तक मसूरी म हमारे साथ रहे। कुछ दोष है प्याले गिलास बहुत तोडता है काम करते ऊँघता रहता है। रसोइया भी उतना अच्छा नही है पर अब हम जानते है कि सवतोभद्र नौकर नही मिल सकता इसलिए अपने ऊपर अकुश रखने की जरूरत है।

जेता भी आँख खुली होने पर भी दो महीने तक किसी चीज को देख

नहीं सकता था, फिर वह देखने लगा। चौथे महीने में पहुँचने पर वह अपने आस पास की चीजों को बहुत ध्यान से देखता। जया से १६ दिन बड़ी सत्यनारायणजी की पुत्री मजू थी। दोनों आपस में अक्सर मिला करती थीं। पत्नी लखनऊ में पैदा हुई बंगाली तरुणी थी। बर्लिन में भारतीय दूतावास में काम कर रहा थी, वहीं 'आवारे' में भेंट हुई, और दोनों बंधन में बँध गये। सत्यनारायणजी बराबर आते जाते रहते थे। उनकी पत्नी सिर्फ एक बार आई। मजू रोज आती। कुछ बातों में जया उससे आगे बढ़ी थी और कुछ बातों में मजू। मजू के सिर पर बड़े बड़े बाल थे, जिन्हें माँ ने बाल कर रखा था। जया के छोटे छोटे बाल थे। जेता के पैदा होने वाले का नाम नहीं था, और १४ महीने बाद भी अभी जरा ही जरा दिखाई पड़ता था।

मई में सैलानियों का सीजन शुरू हो गया था। बहुत से मित्र और परिचित आने लगे थे। १५ मई को डा० भगवतशरण उपाध्याय अपने कनिष्ठ पुत्र के साथ आये। देर तक बात होती रही। जिस आयु में मैं उनके पुत्र को देख रहा था, किसी समय में उस आयु में पिता को देखा था। भगवतशरण का ऐतिहासिक अध्ययन बहुत गम्भीर है, सबसे बड़ी बात यह है कि वह अपने किसी बात को लिखते वक्त शब्दों का मूल्य जानते हुए इस्तेमाल करते हैं। उनके लिखने की शैली बड़ी रोचक होती है। आम इतिहासकारों की तरह उसमें रूखापन नहीं होता। आखिर वह कथाकार और सफल निबन्धकार भी तो हैं।

अब रविवार के दिन घर मेहमानों से भर जाता। अपराह्न की चाय में तो जरूर दस बारह मित्र आये रहते। अच्छी चहल-पहल हो जाता।

पहली यात्रा (१९२३-३७) में जब मैं सिंहल में था तो वहाँ के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए मैंने पाँच संस्कृत पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें चार भाषा और पाँचवीं छन्द अलंकार सिखलाने के लिए थी। वे वहीं सिंहली भाषा के साथ सिंहल अक्षरों में छपी थीं। ख्याल आया कि उन्हें हिन्दी के साथ नई तरह से लिख कर प्रकाशित किया जाय, तो अच्छा हो। इधर जब कभी कोई मुझसे संस्कृत पढ़ने की कोशिश करता, तब और भी इस ओर ख्याल जाता। कमलहृदयजी को पढ़ाते वक्त यह ख्याल आया, और मैंने निश्चय किया कि उसे संशोधित सवर्धित करके 'संस्कृत पाठमाला' के रूप

म तयार करूँगा। २६ मई को मैंने स्वय उसे टाइपराइटर पर लिखना शुरू किया। पाँचो पुस्तकें कई हफ्ता बाद तैयार हुइ। इसम पाठो का सरल रीति स देन का उपक्रम था। जिसम भाषा की कठिनाइयाँ धीरे धीरे सामने आइ, इसकी ओर ध्यान रखा। साथ ही पाठो के रूप म सस्कृत साहित्य क कितने ही ग्रथो म उद्धरण भी दिये। इसी दौरान म ख्याल आया 'सस्कृत काव्यधारा को किसी न हाथ म नही लिया क्या न मैं ही' उस लिख डालू। फिर उसमे भी हाथ लगा कर पूरा किया। १९५५ क आरम्भ म भी मुझ ख्याल नही आया था कि मैं सस्कृत के सम्बन्ध म इन पुस्तकों को लिखूगा।

२८ मई का मेरे चाचा बसी पाडे क पुन चन्दर आए। बरस डेढ बरस की उमर म मैंने उन्ह कितनो ही बार खिलाया था। अब उनके बाल सफेद हो गए थे। मेरे दादा जानकी पाडे घर के सरदार थ। उन्होने अपने तीनो चचेरे भाइयो को अपने साथ मिलाकर रखा और उनके मरन के बाद बल्कि मरे जन्म क भी बाद ही अलगा बिलगी हुई। बसी काका उन्ही तीन घरा म से एक के सरदार थे। उनके छाटे भाई किना (कृष्ण) मेरे लगोटिया यार थे। चन्दर से मालूम हुआ कि किना का पता नही कहा चल गए। बसी काका मर चुके है। चन्दर घर की हालत बतला रहे थे। कनैला म जाती हुई जमीन से भी अधिक परती जमीन थी जिसे आबाद करक अब गाव के ब्राह्मण लोग अच्छी हालत मे हो गए थे। समझ रहे थे इसी तरह कम से कम दा तीन पीढी तक तो निद्वन्द्व हाकर चैन की बनी बजती रहेगी। लेकिन, जमाना उनके इन मसूबा पर हँस रहा है, इसका उन्हे क्या पता था? कनेला म बडी जाति से छोटी जाति की सख्या कुछ अधिक है। पहले जमाने मे छोटी जाति मे छूत अछूत का भेद बहुत बाधक होता था। लेकिन छोटी जाति वालो न देखा गरीबी और अधिकार वचित हाने म हम सभी एक साथ है। गाव के मालिक ब्राह्मण है, खेत उनके हाथ म हैं। हम उनके हरवाह चरवाहे होकर ही अब तक जीते आए हैं। अब समय हमारे पक्ष म है। उनमे से जितना को थोडी-बहुत जमीन भी मिल गई वह भूमिदार बन गए हैं, लेकिन अधिकाश अब भी बेखेत के मजूर हैं। छोटी जाति मे अहीर, भर, चमार, दर्जी, चूडीहार मेडिहार तथा कहार हैं। पचायत के चुनाव मे

सरपंच एक भरा तरुण चुना गया। मेरे बचपन में उनमें कभी कोई पढ़े लिखेगा इसकी सम्भावना भी नहीं थी, पर अब कई पढ़ रहे हैं। चन्दर का अपना खेत लेखपाल ने किसी छोटी जात के आदमी के नाम लिख दिया था। हो सकता है, चन्दर ने उसे जोतने को दे रखा हो लेकिन नहीं चाहते थे कि खेत पर उसका हक हो। मुकदमे में सफल नहीं हुए। कह रहे थे, आप सिफारिश कर दें कि लेखपाल वहाँ से बदल दिया जाए। मैं भला कैसे सिफारिश कर सकता था? उन्होंने हलवाह को अपने अच्छे खेत में से चार-पाँच बिसवा दे रखा था। ब्राह्मण ठहरे अभी हल जोतने में परहेज करते थे, इसलिए हलवाह बिना खेती नहीं हो सकती थी। इस साल अपने खेत में ऊख बो रहे थे। हलवाह के टुकड़े को भी साथ में पानी से सींच दिया। खाने के लिए ऊख को भी काटकर रात को पानी में डाल दिया। मगर ऊख बोने के समय हलवाह ने आने से इन्कार कर दिया। गाँव भर के जितने भी हल जोतने वाली जातियाँ थीं सबके हाथ-पैर पड़े चिरौरी विनती की लेकिन कोई अपने वर्ग के साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार नहीं हुआ। यदि आज खेत नहीं बोया जाता, तो उसमें दिया पानी बेकार हो जाता, और खाने के लिए भिगोई ऊख भी खराब हो जाती है। गाँव भर के ब्राह्मणों ने समझा आज तो यह बला चन्दर के माथे है कल हमारे माथे भी आएगी। अपने तात्कालिक बैर और मनमुटाव को भूलकर सब लोग चन्दर के खेत पर पहुँचे। सब ने हल चलाने की कोशिश की। लेकिन एक दिन में हल चलाना थोड़े हो आता है। सभी असफल हुए पर एक नौजवान ने किसी हल चलाने में सफलता पाई। खेत बोया गया। चन्दर हम से पूछ रहे थे—"क्या करना चाहिए?" मैंने कहा— संसार का चक्का उल्टा नहीं घुमाया जा सकता। पुराने दिनों को भूल जाओ। क्या सब पुरानी बातें तुम्हारे यहाँ चल रही हैं? उन्होंने कहा— हल जोतने के लिए नियम को तो हमारे सारे गाँव ने तोड़ दिया। पुराना समय होता, तो इसी पर सारा गाँव रोटी-बेटी नहीं कर सकता था। लेकिन अब सबने घर में बसन्दर देखना आए हैं, इसलिए कोई किसी के ऊपर अँगुली नहीं उठा सकता।

पीछे उसी इलाके के एम० एल० ए० बाबू कामेश्वरप्रसाद सिंह भी कह रहे थे कि हमारे पूर्वी जिलों में बड़ी छोटी जातियों में जबर्दस्त अपोजिन

युद्ध—शीत युद्ध कह लीजिए—छिड़ा हुआ है, मालूम नहीं कब वह घोषित युद्ध में परिणत हो जाए। दूसरा समय होता तो बड़ी जातवाले डण्डे का हाथ दिखलाते, लेकिन अब तो प्रतिद्वंद्वियों के पास अधिक डण्डे और अधिक हिम्मत है। इस युद्ध का कहाँ अन्त होगा? अन्त वहीं होगा जबकि अधिकारवंचित भी अपने अधिकारों को पा जाएँगे। भारत में यह भेद नहीं रह सकता। चन्दर ने यह भी बतलाया कि अब जाति की दूसरी मर्यादाएँ भी टूट रही हैं। उनके एक चचा ने विधवा विवाह कर लिया है। उनके पुत्र अच्छे कमा खा रहे हैं। एक दूर के चचा की बात बतला रहे थे उसने चमार की लड़की अपने घर में डाल ली है। ऐसी और भी बातें यही बतला रही हैं कि सब एक वर्ण होने जा रहा है। बस एक-दो पीढ़ियों की देर है।

तो क्या किया जाए?—चन्दर ने पूछा।

—सारे गाँव के सुख से ही अब एक घर को भी सुख मिल सकता है। उस दिन ऊख बोने के वक्त तुमने देख ही लिया कि सबका सहयोग न होता, तो काम बरबाद हो जाता। सारा गाँव सहयोगी खेती करे, तभी सिरदर्द हट सकता है।

—यह तो सम्भव नहीं मालूम होता। किसी के पास ज्यादा खेत है किसी के पास कम। पुराने जमाने से यही प्रथा चली आई है कि एक घर का दो और दो का चार घर बने।

—पहले एक खेत का दो और दो का चार हुआ करता था। अब उसे उल्टे तौर से करना होगा।

—शायद हम अपने चारों घरों नहीं तो तीन घर को इकट्ठा करने में सफल हों।

मैंने कहा—चार घर को इकट्ठा करके तुम अपने सिरदर्द को तत्काल के लिए कम कर सकते हो। और मुसीबत देखेंगे, तो तुम्हारी पट्टी के सभी घर इकट्ठे हो जाएँगे। यह भी हो सकता है गाँव के तीनों पट्टी वाले इस बात पर इकट्ठा खेती करने के लिए राजी हो जाएँगे कि अपने खेत के रकबे पर भी उन्हें दो तीन मन प्रति बीघा अनाज अलग से दिया जाय। पर यदि गाँव के सभी ब्राह्मण ऐसा करने में सफल हुए तो इसका फल अब्राह्मणों के ऊपर क्या होगा? क्या वह काम और भूमि से वंचित होकर चुप रहेंगे? पेट

आदमी से क्या-क्या नहीं करवाता ? अभी जो युद्ध की आग भीतर ही भीतर सुलग रही है वह भभक उठेगी। तुम्हारे लिए एक ही रास्ता है कि देर या सबेर सारे गाँव के खेतों को इकट्ठा कर दो। छोटी बड़ी जाति सबको उसमें शामिल करो। हाँ, जिसका जितना खेत है उस पर भी थोड़ा-सा अनाज दे दो, बाकी को हरेक परिवार के काम के अनुसार बाँट दो। मैं जानता था, यह अभी दूर की बात है। पर, आदमी को समय स्वयं दूर की जगहों पर पहुँचा देता है। उस समय वह असम्भव नहीं रह जाता।

९ जून को चन्द्र गए। चन्द्र ने थोड़ी संस्कृत पढ़ी है। बहुत वर्षों पहले बनारस में मिले थे। मैंने उनके लिए एक पाठशाला में सिफारिश कर दी थी। ज्योतिष काम लायक पढ़े हैं, लेकिन हमारे गाँव के ब्राह्मणों को जजमानों का कोई काम नहीं है।

आचार्य गोवर्धन की बात मालूम होने पाव रत्ती सच है। दाम्पत्य जीवन में अकारण खटपट हो ही जाती है। हमारे घर में कभी कभी हो जाती और दोनों और दिमाग का पारा बहुत ऊँचा चढ़ जाता। इस समय अपत्य का मूल्य मालूम होता। सचमुच ही यदि सन्तान न हो तो दाम्पत्य सम्बन्ध *हिमबिन्दु ही नहीं, कभी-कभी उबाल बिन्दु पर पहुँचकर महान्* विस्फोट पैदा कर दे।

हम घर के भीतर ही दबना नहीं था। बन्धु मित्र आते रहते थे। कुछ दिनों के लिए गायत्री देवी अपने पति के साथ आईं। पति सिंहल भिक्षु से अब गृहस्थ बने थे। अगले दिन प० जगन्नाथ उपाध्याय श्री श्यामनारायण पांडे के साथ आए। उपाध्यायजी बनारस संस्कृत कालेज के दर्शन के अध्यापक हैं, और श्यामनारायणजी कनैला के पास गाजीपुर जिले में मुहम्मदाबाद के इण्टर कालेज में अध्यापक। वह भी शास्त्री तक संस्कृत पढ़े थे। दोनों एक महीने यहाँ रहे। रसोईघर के ऊपर का कमरा ही बाकी था और उसमें वे बहुत आराम से रहे। उपाध्यायजी तरुण हैं, बौद्ध दर्शन उनके आचार्य परीक्षा का विषय रहा, और अब भी अध्ययन में तत्पर रहते हैं। अभी उनका समय था यदि तिब्बती भाषा पढ़ लेते तो बहुत काम कर सकते थे। अन्त में जब उनकी इच्छा हुई, तो मैंने एक-दो हफ्ते इतना पढ़ा दिया कि जिससे वे आगे बढ़ सकते थे। मेरी यह हर्गिज इच्छा नहीं थी कि जब-

दस्ती किसी का धकेला जाए। हाँ, इतना जरूर ख्याल था कि कान में डाल देना चाहिए शायद कोई आगे बढ चले।

कौरवी लोक गीतो के संग्रह के लिए मैंने दजनो तरुणो से कहा। कोई कुछ नही कर सका। सत्या गुप्ता को भी यो ही कह दिया था आशा नही रखता था कि यह दूसरी साबित होगी। पर, कुछ महीने बाद आकर उन्होने अपने काम को दिखलाया तो बहुत प्रसन्नता हुई।

११ जून को डा० सत्यकेतु के यहाँ एक अच्छी-खासी साहित्य गोष्ठी हुई जिसमे हमारे यहाँ से मैं प० जगन्नाथ उपाध्याय श्री श्यामनारायण पाडे गए। मसूरी मे उपस्थित उस समय के और भी कितने ही साहित्यकार—श्री जगदीशचन्द्र माथुर श्री मान्नसिह सेंगर प० किशोरीदास वाजपेयी तथा दूसरे पुरुष और महिलाए उपस्थित थी। श्री भागवतशरणजी वाजपेयी, माथुर साहब और सेंगरजी ने गोष्ठी मे भाग लिया। ऐसे अवसर से लाभ उठाना बहुत अच्छा है। अबकी हमारे मेहमानो मे कलकत्ता के साथी धरणी गोस्वामी भी कितने ही दिनो रहे। वह मेरठ कम्युनिस्ट षडयत्र केस मे पकडे गए थे, और भारत के प्रथम पीढी के कम्युनिस्टो मे थे। एक बार कम्युनिस्ट होने पर फिर आदमी कम्युनिस्ट ही रहता है यदि स्वार्थ या प्रलोभन भ्रष्ट करने मे सफल न हो।

१८ जून को जया पौने दो वर्ष मे तीन चार दिन कम थी। उसने साहस यात्रा का परिचय देने मे पिता को मात कर दिया। पिता के पहले पहल १२ १३ वर्ष की उमर मे पख निकले थे। मौसी गगा बाजार गई। उसका भी जाने का आग्रह था पर रोक लिया गया। सब लोग समझ रहे थे रसोईघर मे जाकर महेश के साथ खेल रही होगी लेकिन कुछ देर बाद धावन सँभाले ले आई। धोवन के पूछने पर कहा— पाचा' अर्थात् बाजार जा रही थी। गोदी चढे रास्ते देख ही लिया था। यहाँ से सिल्वर के फाटक की ओर गई, फिर नगरपालिका की सडक पकड एक मोड पर मुडी दूसरे मोड को भी छोड टाल के सामने पहुँची फिर रतिलाल की दूकान के बाहर बाहर सडक से ऊपर जा रही थी। लोगो ने देखा लेकिन ख्याल किया कोई आगे आगे जा रहा होगा। बिडला निवास के पास पहुचने वाली थी। उसी समय सामने से धोबिन आते मिली। धोबिन से जया का परिचय था।

पूछने पर उसने बतलाया—चाचा। उसे उठाकर लाई। अगर धार्मिक न मिली होती तो मालूम नहीं यह आत्म-यात्रा कहाँ खतम होती?

१८ जून को अलीगढ़ युनिवर्सिटी के अरबी के अध्यापक युरोपियन जैसे गोरे अल्मामून साहब आए। ६५ वर्ष के वृद्ध हैं। सिरिया जन्मस्थान है। ३१ वर्ष से वह भारत में हैं और अब भारत के नागरिक हो गये हैं। रूसी, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी, तुर्की और अरबी जानते हैं। अरबी तो खैर उनकी मातृभाषा ही है। उदार विचार के और सूफी मत के मानने वाले हैं। कितनी देर तक उनसे बातचीत हुई। उसके बाद एक दिन वह आये।

१९ जून को श्री जयगोपाल और श्री शिवगोपाल मिश्र आये। जयगोपालजी निरालाजी के घनिष्ट शिष्य और कवि हैं। कवि होने के लिए आवश्यक भावनाओं की उनमें कमी नहीं है। उनके अनुज रसायन शास्त्र के एक अच्छे छात्र हैं। डा० फिल० किया है। उनसे बहुत आशा है। पर, वह भी अपने अग्रज की तरह साहित्य में जरूरत से अधिक समय दे रहे हैं, यह अच्छा लक्षण नहीं है।

जून में नेहरू तीन हफ्ते के लिए रूस-यात्रा पर गये। वहाँ उनका हर जगह भारी स्वागत हुआ, जिसकी खबरें हमारे पत्रों और मास्को रेडियो से मालूम हो रही थीं। इस यात्रा से हमारे दोनों देश एक-दूसरे के बहुत नजदीक आयेंगे, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

२८ जून के आनेवालों में आजमगढ़ के वकील श्री पद्मनाभ सिंह एम० एल० ए० भी थे। कनैला उनके निर्वाचन क्षेत्र में पड़ता है, अर्थात् उनके वोटरों में हमारे घरवाले भी शामिल हैं। वह भी चन्दर की बात का समर्थन कर रहे थे और कह रहे थे कि हमारे जिले में बड़ी छोटी जातियों का संघर्ष बहुत उग्र है।

१ जुलाई को श्री मुकुन्दलालजी आए। हर सीजन में उनके दर्शन की उत्कण्ठा रहती है। मैंने पेशावर काण्ड के वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी लिखने का निश्चय किया था। मुकुन्दलालजी ने उस मुकदमे में गढ़वालीजी की पैरवी की थी। मैंने उनके पास लिखा था। वे मुकदमे की फाइल मुझे दे गये, जिससे मुझे काफी सहायता मिली।

गर्मी पहले तो मद्धिम मालूम हुई। एकाएक नेपाल की जाड़

हिन्दी माध्यम लेकर परीक्षा दी थी और सो भी निजी तौर से पढ़ कर। २ जुलाई को पास होनेवाले छात्रों की जो सूची मिली उससे मालूम हुआ कि पास हो गई। घर भर को बड़ा प्रसन्नता हुई। उसकी मसूरी यात्रा सफल रही। उसके लिए हम दोनों चाहते थे कि दिल्ली में नर्सिंग कालेज में दाखिल हो जाए। दाखिले का समय बीत गया था लेकिन बीच में कोई लड़की चली गई थी और मित्रों के प्रभाव के कारण वह स्थान मिल गया था। पर, गगा को नर्स नहीं अध्यापिका बनना पसन्द था इसलिए हमने वह ख्याल छोड़ दिया और अन्त में वह टेनिंग पाने के लिए कलिम्पोंग चली गई।

सीजन में ठाकुरानी गुलाबकुमारी "आर्टेन" में आकर रहने लगी थी। उनकी नौकरानी लड़की कान्ति अक्सर जया को अपने साथ खेलने के लिए ले जाया करती थी। बच्चों को खेलना पसन्द है और वह उनके लिए लाभदायक भी है। हमारे यहाँ उसको उतना सुविधा नहीं थी। बेचारी जब खेलना चाहती है तो खिड़की खोनी पड़ती है और कभी कभी अम्मा हल्का सा हाथ भी लगा देती जिससे वह कान्ति के साथ जाने के लिए तैयार रहती। एक वर्ष दस महीने की भी अभी नहीं हुई थी। एक दिन आते वक्त उसने कान्ति से कहा—"कल आना"। अब वह कल का अर्थ भी समझने लग गई थी और असली मनसा तो यह थी ही कि हम आकर तुम्हारे साथ खेलेंगे।

अब के साल जुलाई के पहले हफ्ते में एक बार वर्षा हुई फिर रुक गई। लोगों के मन में तरह-तरह की आशंका होने लगी। इस वर्षा से चारों ओर हरियाली दिखाई पड़ती थी।

डा० बद्रीनाथप्रसाद के पुत्र श्री प्रकाशचन्द्र के ब्याह का निमन्त्रण आया। लखनऊ में ब्याह होने जा रहा था। कन्या पंजाबी और उसमें भी सिक्ख थी। तरुण पुरानी मेड़ों को तोड़ेंगे जिसकी देश को बड़ी आवश्यकता है। डा० प्रसाद की बड़ी लड़की का ही ब्याह अपनी जातियों में हुआ। लड़के ने पंजाबी लड़की से ब्याह किया तो उसकी छोटी बहिन ने पंजाबी लड़के से ब्याह कर के कर्ज चुका दिया।

कनैला बहुत पिछड़ा हुआ शहर तथा रेल्वे से बहुत दूर बसा गाँव था।

लेकिन आज ऐसा देखा जाता भूमि हमेशा ऐसी रही हो, यह बात नहीं। हमारे काशी कौशल जनपद में मनुष्य का इतिहास बहुत पुराना है। मैंने सुन रखा था हमारे गाँव की बडी पोखरी में बडी-बडी ईटें निकलती हैं। उस दिन चन्दर ने बतलाया, आज की जमीन से कुछ हाथ नीचे दूर तक ईंटें जाया करते थे। श्यामलाल को लिखने पर तो उन्होंने बतलाया कि ईटो की लम्बाई ११ ८ इंच, चौडाई ८ २ इच, मोटाई २ ७ इच है। यह मौर्य शुंग-काल की ईटें हैं इसमें सन्देह नहीं। श्री पद्मनारायणजी ने भी अपनी ओर के गावो में पुरानी जगहों का पता बताया था। बडी पोखरी की इन बडी ईटो ने दिमाग में खलबली मचाई और मैंने मौर्य काल के सामन्त की 'बडी रानी' के नाम से एक कहानी लिख डाली। यह भी प्रकट किया कि पुराने समय में मँगई नदी व्यापार मार्ग का काम देती थी। उसके किनारे मीलो तक फैला सिसवा का ध्वंसावशेष एक सामन्त की राजधानी थी। मगई के दोनो तरफ राजधानी और उसके उपनगर फैले हुए थे। कनैला उन्हीं के भीतर था। और "नायक" उसका कनहट उपनाम पुराना है। श्यामनारायणजी ने सिसवा से चार मास पूर्व मगई के किनारे अवस्थित ध्वंसाव शेषो से पचीसो पचमार्क सिक्को की छाप भेजे, जिसने सिद्ध कर दिया कि मगई-उपत्यका मौर्य-काल में एक समृद्ध उपत्यका थी।

१५ अगस्त को पार्तुगालियों के दामनों में पडे गोआ के मुक्ति आन्दोलन ने सत्याग्रह का रूप लिया। फरिस्त पोर्तुगाल से और आशा क्या की जा सकती थी? ३१ सत्याग्रहियों को पोर्तुगालियो ने भून दिया, और कितने ही घायल किये। सत्याग्रह का असर उस पर पड सकता है जहा कुछ शिष्टता, संस्कृत और जनमत का आदर हो। पोर्तुगाल में सालाजार की निरकुशता बीसियो वर्ष से चल रही है जिसने अपने ही आदमियों के खून से हाथ रँगने में आनाकानी नहीं की वह भारतीयो को कैसे क्षमा कर सकता था? फिर उनकी पीठ पर अमरिका और इग्लैंड के तानाशाह हैं। यद्यपि अमरिकन थैलीशाहो ने खुलकर बहुत पीछे कहा गोआ पोर्तगाल का प्रदेश है पर उस वक्त भी यह बात किसी से छिपी नहीं थी कि अमरिका का क्या रुख है। पोर्तुगाल और स्पेन की तानाशाही से अमरिका को क्या इतना

प्रेम है ? यह आकस्मिक बात नहीं है। अमेरिका में खुद जबर्दस्त थैलीशाही की तानाशाही है। इसलिए उसे कम्युनिज्म से भय लगता है और दुनिया-भर में दूसरों को भी डराता फिरता है— कम्युनिज्म से होशियार रहो'। लेकिन उसे इस पर पूरा विश्वास नहीं है कि गाढ़े में लोग उसके काम आयेंगे। यह कोरिया में देखा गया, वियतनाम में देखा गया। जहाँ की जनता को फ़्रांको और सालाजार जैसे तानाशाहों ने कुचल दिया है, उस देश को अमेरिका अपना गाढ़ा मित्र मानता है। भारत के थैलीशाह तो अमेरिका की जय मनाने ही रहते हैं, यहां के प्रभुओं में भी एक प्रभावशाली दल है जो अमेरिका के हाथ में देश को बचने के लिए तैयार है। उनका सबसे बड़ा स्तम्भ उठ गया और नेहरू उनके साथ नहीं, इसलिए हमारे थैलीशाह दिल मसोसकर रह जाते हैं। आज यदि गोआ परतन्त्र है, तो पोर्तुगाल के कारण नहीं बल्कि अमेरिका के कारण। इसमें कोई सन्देह नहीं। आज पाकिस्तानी हर साल पचासों जगह हमारी सीमाओं के भीतर घुसकर गोलियाँ चलाते हैं उसका कारण भी अमेरिका है। अमेरिका कम्युनिज्म के खिलाफ पाकिस्तान को हथियारबन्द करने की बात कहता है। आज का कम्युनिज्म १८ वर्ष पहले का कम्युनिज्म नहीं है कि निबल की जोरू सारे गाँव की भाभी हो। यदि कम्युनिज्म ने हमला किया, तो पाकिस्तान के तीसमार खाँ एक फूंक में उड़ जाएंगे। पाकिस्तान को अमेरिका जो नये नये हथियार दे रहा है वह हमारे खिलाफ अभी भी इस्तेमाल हो रहे हैं और आगे भी होंगे, यह किसी से छिपी बात नहीं है। डलेस या आइजनहावर छिपकर शिकार नहीं कर सकते। भारत जानता है, मुंह में राम बगल में छुरी रख कर कोई भगत नहीं बन सकता।

हमारे पड़ोसी जान लेडली ने डेरी खोलकर उसे जमा लिया है। सीजन के वक्त सारी मसूरी में उनका दूध जाता था। अपनी भी दस बारह गायें और दो-तीन भैंसें हैं लेकिन इतने दूध से क्या बनता ? गांववालों से जाँच-कर दूध लेते उसे काठियों में भजते हैं। जाड़ों में कोई काम नहीं रहता इसलिए बाहर के दूध को लेकर मशीन से क्रीम बनाते, क्रीम ताल कर ही दाम देते हैं। इसमें पानी डालने से कोई फायदा नहीं होता। क्रीम से बनाया घी शुद्ध होता है, लोग उसे चाव से लेते। पिछले जाड़ों में उन्होंने ४० ५०

टिन घी बना डाला। अबकी सीजन में उसकी बिक्री बहुत कम हुई, इसलिए कई टिन बच रहे। दिखान पर बनिया ने कहा—' इसका तो स्वाद बिगड़ गया है।" मैंने तो स्वाद बिगड़ा नहीं देखा। अब वह सेर पीछे चार आना आठ आना घाटा सहकर बेच रहे थे, चाहते थे कि किसी तरह जल्दी निकल जाए। इधर जब लोगों ने देखा कि "हन लाज" डेरी जम गई है, तो प्रतियोगिता करने वाले भी खड़े हो गये। क्रीम बनानेवाली मशीन खरीद कर एक दो ने गाँवों में जाकर दूध लेना शुरू किया। किन्हीं ने साजन के वक्त डेरी खोली, लेकिन उससे स्टलों का ज्यादा नुकसान नहीं हो सकता था, क्योंकि ' हन लाज ' के शुद्ध दूध की धाक जम चुकी थी।

शिमला यात्रा से कवाड़िया से एक पुरानी पुस्तक लाए थे, जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य के बीरों की जीवनियाँ आँकड़ों के साथ बड़े दिलचस्प ढंग से दी गई थीं। इसमें १७५७ से १८५७ ई० तक अंग्रेजों ने किस तरह अपने प्रभुत्व का विस्तार किया, और हमारी कमजोरियों से लाभ उठाया, इसका वर्णन था। मैंने २२ अगस्त से उसका अनुवाद करना शुरू करके कुछ दिनों बाद खतम कर दिया।

भैया और भाभीजी अबकी बहुत पीछे अगस्त में आए। आशा थी डेढ़-दो महीना तो जरूर रहेंगे, लेकिन तार आया, अमृतसर के मकान की छत गिर गई, इसलिए वह २३ अगस्त को यहाँ से चल दिए। कुछ ही दिन में भाभीजी भी चली गई। छत की कड़ियाँ चीड़ की थीं। बीस पचीस वर्ष हो गए थे, चीड़ की इससे अधिक क्या आयु हो सकती थी? ऊपरी बैठक के कमरे की छत गिरी और नीचे की छत को भी लिए लिए नीचे चली गई, फर्नीचर, शीशे, तस्वीरें जो कुछ भी कमरे में थे सब चूर चूर हो गए।

हमारा पितृग्राम कनैला अपने गर्भ में मौर्य गुप्तकालीन अवशेषों को ही छिपाये हुए नहीं है, बल्कि आदिम मुस्लिम काल के भी चिह्न वहाँ मौजूद हैं। सैयद बाबा की कोट और उसके अत्याचारों की कितनी ही कथायें मैंने भी वृद्धों के मुँह से सुनी थीं। हमारे गाँव के सारे चुड़िहारे और दर्जी मुसलमान शायद उसी समय के परिचायक हैं। ४ सितम्बर को मैंने 'सैयद बाबा' कहानी लिख डाली। ऐसा दिखाई पड़ने लगा, कनैला पर और ऐतिहासिक

कहानियाँ लिखी जा सकती हैं। 'कनला की कथा' का बीज मन में पड़ गया।

'वोल्गा से गंगा' का बँगला अनुवाद हाल में प्रकाशित हुआ था। आज भारत की सभी भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद है, लेकिन जैसा कला आवरण पृष्ठ बँगला का है वैसा किसी का नहीं। एक पत्रिका 'होमशिखा' में किसी ने उसकी आलोचना करते गुण दोष तो दिखाया ही, लेकिन साथ ही यह भी कह डाला कि यह भारतीय संस्कृति पर जबर्दस्त प्रहार है, इसलिए सरकार को चाहिए कि इसका प्रचार बन्द कर दे। हिन्दी में जब पहले पहल पुस्तक निकली थी, तो बहुतों ने वावेला मचाया था, लेकिन शायद किसी ने इतनी दूर तक जाने की जरूरत नहीं समझी थी जितना कि यह बँगला के समालोचक। भिन्न भिन्न काल में हमारे खान पान, वेष भूषा और रीति रवाज में जबर्दस्त परिवर्तन हुए, जिनकी गवाही हमारी पुरानी पुस्तकें और पुरातात्विक सामग्री देती हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति किसी से कम मेरे हृदय में प्रेम नहीं है। सच पूछिए तो औरों का प्रेम दिखाव का है। उनके लिए ईश्वर, धर्म, वेदान्त, योग, टोटके टोने आदि अनेक आदर सम्मान की चीजें हैं जिनके सामने भारतीय संस्कृति गौण पड़ जाती है। मेरे लिए तो वही सब कुछ है। उसका बदलता रहना दोष नहीं गुण है। वह अब भी बदल रही है और आगे भी उसके रास्ते को कोई रोक नहीं सकता। उस लेखक को पढ़कर मैंने सोचा कि 'सप्तसिन्धु' उपन्यास लिखने से पहले उसकी मूल सामग्री के आधार पर लेख लिखने का निश्चय ठीक है। समालोचक पहले उस पर आक्षेप करें, तब उन्हें उपन्यास पर कलम दौड़ाने का हक होगा।

इस काल के कामों में बड़े भाई चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी लिखना भी शामिल था। मैंने ■ सितम्बर में उसमें हाथ लगा दिया। बड़े भाई ने अपनी जीवनी पहले स्वयं लिखी थी जिसे सुधार कर किसी ने १९३५ तक पहुँचाया था। मैंने बड़े भाई को लिख दिया था कि इसके लिए आपको यहाँ आना पड़ेगा।

दिल्ली—विदेशी भाषा स्कूल में तिब्बती की परीक्षा लेने के लिए बुलाया था। और भी कामों को देखकर मैंने जाना स्वीकार कर लिया,

और २४ सितम्बर को दोपहर को देहरादून पहुँच गया। प्रा० रूपनारायण मिश्र के पैर में भारी चोट आ गई थी। पिता की तरह इन्हें भी शिकार का शौक था। दर्जना बड़े-बड़े बाघ खुद मारे और उनसे भी अधिक उन राजा साहब से मरवाये, जिनके सक्रेटरी थे। यह अच्छा ही किया कि जमींदारी उठने से पहले नौकरी छोड़कर अध्यापन शुरू कर दिया। शिकार का शौक था, जब भी छुट्टी मिलती सिवालिक के जंगलों में जाने। और छुट्टियों में तो दूर दूर की दौड़ मारते। पिछले साल की गर्मियों में वह महाराज के कुँवर के साथ कुल्लू में लाल भालू के शिकार के लिए गये थे। इस साल गंगोत्री की तरफ जाने की इच्छा थी। दुराराह पहाड़ियों में नहीं धोखा हुआ, और यहाँ देहरादून शहर में जीप से जाते वक्त एक मोड़ पर लुढ़क गए पैर टूट गया। कितने ही हफ्ता तक प्लास्टर बँधे चारपाई पर लेटे रहे। अब वह चल सकते थे लेकिन अभी पूरे इत्मीनान के साथ पैर के प्रयोग में डर थी।

साथी महमूद जफर यहीं थे। उनसे मिलने गए। उन पर हृदयरोग का जबर्दस्त प्रहार उसी समय हुआ जब मैं भारत सावियत मैत्री संघ के सम्मेलन में गया था। वह संघ के सक्रेटरी थे। इस वक्त अच्छे थे लेकिन हृदय के रोग में अच्छे बुरे का कोई निश्चय नहीं है। महमूद कलम के धनी हैं, लेकिन शैशव से ही अंग्रेजी में पले, इसलिए उसी पर अधिकार रखते हैं। मैंने कहा—'अब इधर उधर घूमने का ख्याल छोड़ दें, और लिखना शुरू करें। अंग्रेजी में लिखें हिन्दी अनुवाद का सुन लें।' जिसे हीरा आदमी कहते हैं वैसे ही हैं यह महमूद। इन्होंने कभी धन-सम्पत्ति की जिन्दगी का स्वाद नहीं देखा, साम्प्रदायिक संकीर्णता उनके पास छू तक न गई। अपनी प्रिय पत्नी रशीदा को गँवाने का प्रभाव उनके दिल पर बहुत बुरा पड़ा इसमें सन्देह नहीं। यद्यपि उनकी सहज मुस्कराहट को देखकर उसके बारे में कोई ख्याल भी नहीं कर सकता।

शुक्लजी का हाल ही में नतिनी हुई थी। पैदा होते वक्त चार पौंड की थी, अर्थात् जया और जेता की वजन से आधे से भी कम। बहुत दुबली-पतली थी लेकिन उसकी कसर घने बालों-वाली ने निकाल दी थी। चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं थी। हमारे आज के समाज में चाहे

लड़कियों का मूल्य कम हो और उनकी बहुत उपेक्षा की जाती हो, लेकिन प्रकृति उन्हें बहुत मजबूत कलेवर देती है जिससे वह सभी आपदा को झेल कर आगे बढ़ जाती हैं।

रात की दिल्ली जाने वाली गाड़ी पकड़ी पहले से रिजर्व न करने पर भी फर्स्ट क्लास के अच्छे कम्पार्टमेन्ट में नीचे की सीट मिली थी। दूसरी सीट पर एक और सज्जन थे और नीचे ही तीसरी सीट खाली थी। श्रीमती बरकतुल्ला किसी दूसरे कम्पार्टमेन्ट में अकेली थीं। आजकल रेलों में खून होने की खबर छपती रहती थी, इसलिए वह भी इसी में चली आई। वह ईसाई महिला थी। उनके पति बरकतुल्ला पंजाब के अपने सम्प्रदाय के सबसे बड़े पादरी थे। वह भी धर्म प्रचार का बड़ा धुन रखती थी। मैं श्रोता था ही उन्होंने कुछ लेक्चर दिया इसके बाद ईसा के पहाड़ी उपदेश की एक पुस्तिका देकर पूछा, तो मैंने कहा सोलियों वर्ष पहले इसे पढ़ा था। अच्छा फिर पढ़ लूंगा। उस वक्त कोई काम था नहीं सोचा बुढ़िया का लेक्चर सुनने से अच्छा है इस पुस्तिका ही को खतम कर कर दें। खतम करने के बाद फिर लेक्चर शुरू होने देख मैंने कहा—मुझे ईसा के भक्तों और भगवान् के भक्तों के साथ सहानुभूति है लेकिन मैं पूरी तौर से समझता हूँ कि दुनिया में भगवान् नाम की कोई चीज नहीं है। मैंने कुछ नरमी से और घुमा फिराकर कहा था जिससे कि बुढ़िया के दिल को काफी धक्का न लगे।

१५ सितम्बर को ६ बजे से कुछ पहले अमृतसर स्टेशन ही दिल्ली पहुँच गया। रिक्शा लेकर चला, तो साथी फारूकी मेरे लिए स्टेशन जाते रास्ते में मिले। पहले साथी यज्ञदत्त और सरलाजी के निवासस्थान पर गया। ठहरना तो हमें भाभीजी के यहाँ ही था लेकिन बहुत से काम थे, सोचा यहाँ मिलते ही जाएँ। चाय पी। सरलाजी दिल्ली नगरपालिका की सदस्या हैं। उनसे गंगा के नर्सिंग स्कूल में भरती करने की बात कही थी। उन्होंने प्रिंसिपल से बातचीत करके ठीक भी कर लिया लेकिन जैसा कि मैंने पहले लिखा, गंगा ने उसे पसन्द नहीं किया। भाभीजी ने चाय नाश्ता कराया। वहाँ से पार्टी आफिस गया। अब "हन क्लिफ" को बेचना निश्चय हो गया। पता लगा था साथी डांगे ट्रेड यूनियन के लिए मसूरी में कोई मकान

लेना चाहते हैं। मैंने सोचा यदि घाट पर बचना ही है तो ट्रेड यूनियन को ही क्या न दे दिया जाए? साथी डाँग ने दाम पूछा। मैंने कहा दस हजार। उन्होंने कहा एवमस्तु। अक्तूबर में आकर लिखा पढ़ी करने की बात भी तय हो गई। मुझे बहुत संताप हुआ। चलो एक बड़ी चिन्ता दूर हुई लेकिन अभी ख्याल और आठ में काफी दूरी थी।

आज का मध्याह्न भोजन साथी फारुकी और उनकी पत्नी विमलाजी के यहाँ हुआ। फारुकी के पूर्वज मुगल बादशाहों के गुरु होते थे। सन् ५७ के गदर में जब घेला पर आफत आई तो गुरु कैसे बचते? इसलिए वह भागकर मुजफ्फरनगर जिले के किसी गाँव में चले गए। उसी गुरु घराने में डूबा वंश कबीर का उपजे पूत कमाल" के अनुसार कम्युनिस्ट फारुकी पैदा हुए, और ब्याह किया एक काफिर कम्युनिस्ट लड़की से। कुछ व्यंजन दिल्ली के भी थे। सरलाजी कई पीढ़ियों की निरामिषाहारिणी थीं लेकिन वही बात उनके पति यमदत्त शर्मा की भी थी। सरलाजी गुप्ता से शर्मा हो दो सीढ़ी ऊपर ही गई। लेकिन आजकल तो सब धान बाईस पसेरी है। शाकाहार का रोब तो दोनों के दिल से उठ चुका है, पर सरला बेचारी डाक्टरों के परामर्श के कारण मांस नहीं खाती।

सितम्बर का मध्य था। गर्मी के मारे तबीयत परेशान थी तो भी दिल्ली ए करके इधर उधर जाना पड़ा। १६ सितम्बर को मित्रों से मिलने निकला। पहले माचवेजी के यहाँ गया। वहीं मराठी के महान नाटककार मामा वरेरकर से मुलाकात हो गई। मध्याह्न भोजन यहीं करना था। साहित्य अकादमी के सेक्रेटरी कृपलानीजी से भी मिला। सभी माचवे दम्पती के यहाँ मध्याह्न भोजन के लिए निमन्त्रित थे। कमला की फरमाइश थी खादी की एक रंगीन साड़ी लाने की। सुना कनाट प्लेस में एक बहुत बड़ी खादी की दुकान खुली है जिसमें हाथ की बहुत सी चीजें बिकती हैं। मैं वहाँ गया। सचमुच ही वह दुकान दिल्ली के देवताओं और देवियों के अनुरूप था। आधुनिक ढंग से पर कलापूर्ण और सुरुचि के साथ सभी वस्तुएँ सजाई गई थीं। बेचने वाली कितनी ही लड़कियाँ थीं जो फर फर अंग्रेजी बोल रही थीं। मुझे आशा नहीं थी यहाँ भी मेरा कोई परिचित मिल जायगा। नैनीताल के श्री बाँकेलाल कौसल के छोटे भाई यहीं काम करते

थे। एक और बिहारी मित्र मिल गए। दूकान का काम शुरू करने में कुछ देर थी। कौमल्जी ने कहा जरा हमारे मनेजर से मिल लें। मनेजर का आफिस ऊपर का आवरक में था। बड़ा स्वागत किया। लेकिन मैं ऐसे मौके पर पहुँचा था जबकि साढ़े १० बजे दूकान खुलने से पहले भगवान् की प्राथना जरूरी थी। मनेजर साहब ने सहज भाव से कहा— 'आप भी चलें' मैंने भी सहज भाव ही से जवाब दिया—मेरा भगवान् पर विश्वास नहीं है।' कर्मचारियों के रखने समय भगवान् पर विश्वास होना जरूरी नो नहीं समझा जाता? लाठी के हाथ से भगवान् कब तक लोगों के दिलों पर शासन करेंगे। मैं वहीं बैठा रहा। दूकान खुली एक साड़ी ली। ११ बजे मुझे परीक्षा लेने के लिए प्रतिरक्षा विभाग के विदेशी भाषा स्कूल में जाना था। अब उसमें कम ही पन्द्रह मिनट रह गए थे। जगह देखी हुई नहीं थी। टैक्सी ली, घूम घुमौवे रास्ते से उसने वहाँ पहुँचा दिया। सचालक साहब ने बतलाया आपकी स्वीकृति की सूचना नहीं मिली पर मैं तो जवाबी तार दे चुका था। यदि सरकारी तारों के साथ ऐसी उपेक्षा हो सकती है तो साधारण लोगों की बात क्या? खैर जिन तीन विद्यार्थियों की परीक्षा लेनी थी वह सब यहीं के सैनिक अफसर थे। आध घंटा पौन घंटा देर हुई। टेलीफोन करके सबको बुला लिया गया। मैंने उनकी परीक्षा ले ली। उनके अध्यापक सिक्किम के मेरे पुराने परिचित निकले। बहुत आग्रह किया कि आएँ तो हमारे यहाँ ठहरें।

यहाँ से छुट्टी लेकर माचवेजी के यहाँ भोजन पर गए। वरेरकरजी साहित्यकार थे। कृपलानीजी तो विश्व भारती में सालों रहे वहाँ के वातावरण से प्रभावित थे। चाय पीने के लिए यहीं नई दिल्ली में चन्द्रगुप्त जी के यहाँ जाना था इसलिए और महमानों के विदा हो जाने पर भी मैं वहीं आराम करता रहा। असग अब अचिगा नहीं था और उनकी बहिन दूना भी खूब बोल रही थी। उन्हीं से मनबहलाव होता रहा। संस्कृत पाठशाला तैयार हो गई थी, और 'संस्कृत काव्यधारा' के भी कुछ अंश तैयार कर लिए थे। श्री चन्द्रगुप्तजी के यहाँ चाय पी। उन्होंने अपने एक प्रकाशक मित्र के बारे में लिखा था कि वह उन पुस्तकों को छाप देंगे। इसलिए उनको उन्हीं के पास रख दिया। श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टंडन आजकल यहीं थे। चन्द्रगुप्तजी

के साथ वहाँ चले। रास्ते में डा० सत्यनारायण मिल गये। मिलते ही बोले —'बाबा मैं रूस जा रहा हूँ। सोवियत दूतावास ने सारा प्रबन्ध कर दिया है।" मैंने मुबारकबादी दी। टण्डनजी से थोड़ी देर बात हुई। अँधेरा होने पर फिर बाजार लौटा। सोचा मोतीमहल का मुर्गमुसल्लम अकेले खाना ऋषियों के वचन के विरुद्ध है—'केवलाघो भवति केवलादी' (अकेले खानेवाला केवल पाप खाता है)। यह विश्वास था कि गर्मी होने पर भी तन्दूर का भुना मुर्गमुसल्लम मसूरी तक सही सलामत पहुँच जाएगा। और वह सही सलामत पहुँचा। अकस्मात् यही होने लगा कि दो क्यों नहीं लाए। रात को देहरादून की गाड़ी पकड़ी।

अगले दिन ७ बजकर ५० मिनट पर देहरादून पहुँचा। ढाई रुपये में तुरत टैक्सी मिली। नौ बजे क्रॉसिंग पर रुकना पड़ा। आध घंटे बाद जब फाटक खुला तो लाइब्रेरी पहुँचे। वहाँ से रिक्शा से १० बजे के करीब घर पहुँच गए।

आजकल आबकारी अफसरों की यहीं पर कान्फ्रेंस हो रही थी। श्री जमुनाप्रसाद वैष्णव अशोक भी उसमें आए हुए थे। मिलने आये। अशोकजी ने हिन्दी कथाकारों में सम्मानित स्थान प्राप्त कर लिया है। हिमालय ने कई ऊँचे दर्जे के साहित्यकार पैदा किये लेकिन उनमें बहुत कम ही ऐसे हैं, जो अपनी कृतियों में अपनी जन्मभूमि की छाप आने देते हों। अशोकजी अपनी कथाओं में गढ़वाल को नहीं भूलते यह उनकी विशेषता है।

अब मसूरी का दूसरा सीजन था इसलिए कितने ही परिचितों के मिलने की सम्भावना थी। अगले दिन रविवार को श्री मोहिनीजी जोशीजी के साथ आईं। इस साल वह यहीं या अल्मोड़ा चली गई थीं। गूंगे बहरे स्कूल के अध्यापकों का सम्मेलन हो रहा था, पटना से श्री पारसनाथ पाठक अपनी पत्नी के साथ आये। आजमगढ़ की बात बतला रहे थे, लेकिन अब मेरी तरह ही उनका भी सम्बन्ध आजमगढ़ से टूट-सा चुका है।

२० सितम्बर को जया का जन्मदिन था। आज वह दो साल की हो गई थी। शब्द ही नहीं वाक्य भी बोलने लगी थी। एक दिन गिना तो उसके शब्दकोश में करीब सौ शब्द मालूम हुए। चायपार्टी में उपाध्याया डा० सत्यकेतु शास्त्रीजी ठकुरानी गुलाबकुमारी श्री मुकुन्दीलाल, बम्बा-

कार नौटियाल और दूसरे मित्र आए। क्या अभी अपने जन्मदिन को क्या समझती? हाँ, यह देख रही थी कि कितने ही परिचित और अपरिचित चेहरे साथ बैठ कर खा रहे थे।

२४ सितम्बर तक पास की सामग्री के आधार पर बड़े भाई की जीवनी लिख डाली थी। उनके आने की प्रतीक्षा थी, और वह २६ सितम्बर का आ भी गए। बुढ़ापे का पूरा असर था यद्यपि उत्साह अब भी उनमें तरुणों जैसा था। अब अपराह्न में उनसे पूछ कर नोट करने और अगले दिन पूर्वाह्न में जीवनी टाइप पर डिक्टेट करने का काम शुरू हुआ। बड़े भाई के स्वभाव से कमला भी बहुत खुश थी। निर्भीकता और निर्लोभता की वह साक्षात् मूर्ति हैं। अपने विचारों पर इतने दृढ़ कि सारे आर्थिक कष्टों की पर्वाह नहीं करते।

२७ सितम्बर को जुत्शीजी और उनके कनिष्ठ पुत्र योगीनाथ भी आए। योगीजी अल्मोड़ा में इंजीनियर थे। अभी ३० के भी नहीं हुए कि पत्नी मर गई। दो जुड़वाँ लड़कियों के अतिरिक्त एक लड़का और एक लड़की—चार बच्चे हैं। उनको सम्भालने में दादी बहुत हाथ बटा रही थी। उसी तरद्दुद के कारण वह अबके साल पहले सीजन में यहाँ नहीं आई थी। योगीजी ने लड़के-लड़की को नैनीताल के कान्वेंट में रख दिया था। उनका विचार ठीक था। वह कह रहे थे, बच्चों को सँभालना अम्मा के लिए तरद्दुद का काम होगा। सबसे छोटा बच्चा भी जरा दाखिल करने लायक हो तो इसे भी वहीं दाखिल कर दूँगा। माहिलीजी का कहना था— वहाँ खर्च भी बहुत पड़ेगा और साथ ही पारिवारिक स्नेह नहीं मिलेगा। तो भी पुत्र की राय के वजन को स्वीकार करती थी। माता पिता अपने तरुण पुत्र को पत्नीविहीन नहीं देखना चाहते थे—माहिलीजी विशेषकर? हमारे यहाँ के कश्मीरी ब्राह्मणों के कुछ ही हजार परिवार हैं जो एक दूसरे से सुपरिचित हैं। लड़कियों के ब्याहने की उनके यहाँ भी समस्या उठ खड़ी हुई है। किसी लड़की वाले ने माता पिता पर जोर दिया होगा इसलिए वह भी अपने पुत्र पर जोर दे रही थी। पुत्र कह रहा था— अभी मैं ब्याह करने की स्थिति में नहीं हूँ। बच्चों पर बहुत खर्च करना पड़ता है। परिवार के लिए पैसे कहाँ से आएँगे? माता यह विश्वास तो नहीं कर सकती थी कि सौतेली माँ आकर बच्चों को सँभाल लेगी।

भया २ अक्तूबर को अमृतसर से आ गए। अभी भी छत बनाने का काम पूरा नहीं हुआ। उन्होंने गल्ती की जो दूसरी कमजोर छतों को भी उजाड़ डाला। सोचा एक ही साथ लोहा-सीमेन्ट लगा कर पक्की छत बनवा दें। पर इसी साल पंजाब में जबर्दस्त बाढ़ आई हजारों घर बरबाद हो गए। सीमेंट मिलना मुश्किल हो गया। भाभीजी पहले ही चली गई थीं भैया का काम नहीं रह गया था इसलिए सोचा दो चार दिन के लिए मसूरी हो आएं। मकान बेच देने के पक्ष में वह पहले ही से थे। वह रहते थे कुल्हड़ी या लाइब्रेरी के आसपास कोई बँगला ले लें हम भी वहीं आकर रह लिया करेंगे। कमला बाजार के उतना नजदीक नहीं रहना चाहती थी मैं भी इससे सहमत था। अगर किराये के बंगले में जाना पड़े तो थोड़ा हटकर ही रहना चाहिए। अगले दिन भैया ने प्रायः सारा दिन यहीं बिताया। बड़े भाई से भी उनका परिचय हुआ। पेशावर-काण्ड के वीर गढ़वालियों का नाम किसने नहीं सुना? भैया कह रहे थे— अब जिन्दगी भर हाय हाय पर दूट करना अच्छा नहीं है। जानकी को दिल्ली में बैठा दिया। उनके लिए मकान के किराये से पाँच छः सौ रुपये आ जाएंगे। फार्मेसी से पाँच छः सौ रुपये मासिक हमें मिल जाया करेंगे। और क्या करना है? चार मास मसूरी और चार चार मास इधर उधर बिता देंगे। वह मुझसे दो-तीन वर्ष बड़े थे बाल बिल्कुल सफेद लेकिन अब भी उनके शरीर में निर्बलता नहीं थी। चलने में हवा से बातें करते थे।

अब की छोटे सीजन का उद्घाटन मुख्यमंत्री श्री सम्पूर्णानन्दजी ने किया।

६ अक्तूबर की चिट्ठियों में अहरौरा (मिर्जापुर) के पुराने मित्र श्री रामखेलावनजी प्रहरी वृद्ध कवि की भी थी। बुढ़ापे में अपने साथी समाजी बहुत कम रह जाते हैं। उस वक्त पुराने मित्रों से साक्षात् या पत्र द्वारा मिलने में बड़ा आनन्द आता है। श्री रामखेलावनजी ने १९२७ में ही कांग्रेस के आन्दोलन में भाग लिया था। लड़का मैट्रिक फेल हो गया है। घर की आर्थिक स्थिति तो ४० वर्ष पहले भी अच्छी नहीं थी। चाहते थे, लड़के को कहीं नौकरी मिल जाए, लेकिन आजकल नौकरी मिलना आसान नहीं। चार शब्दों द्वारा सान्त्वना देने के सिवा और मैं क्या कर सकता था।

७ अक्तूबर को बड़े भाई गये। बड़े जीवटवाले पुरुष हैं कमठ और स्वच्छ हृदय भी। ज्ञानसचय म बहुत उत्साह नही रहा नही तो और भी सीख सकते थे, लेकिन तब भी उन्होंने काफी सीखा है। विवाह ने भी बाधा पहुँचाई। आर्थिक कठिनाइयों से लोहा लेना पड रहा है। उन्ह अपनी नही लेकिन अपने बच्चो की चिन्ता बहुत रहती है— मेरे बाद उनकी कौन देखभाल करेगा यही सोचते रहते हैं। बीवी ने बहुत कष्ट सहा। आर्थिक सघर्ष म पड़ने से मिजाज चिड़चिड़ा हो जाए तो आश्चय क्या ?

८ अक्तूबर को राजा महेन्द्रप्रताप आए। स्वतत्रता सघर्ष के जीवित शहीदो की वह ज्वलन्त मूर्ति है। मैं समझता था ७० से ऊपर के होंगे, लेकिन अभी उम्र ६८ की ही थी। स्वास्थ्य इस अवस्था म जैसा होना है, उसे देखते बुरा नही था। ससार सघ की धुन उन्ह बहुत वर्षों पहले ही से हैं। जानते हैं बात सुननेवाले भले ही मिले लेकिन माननेवाले नही मिलते। तो भी उर्दू, हिन्दी अग्रेजी तीनो म अपने "ससार सघ" को निकालते ही जा रहे हैं। मैंने अपने मकान के बेचने का विज्ञापन दिया था। उसके ही लिए म बातचीत करने आये थे। लेकिन उनके जैसे स्वास्थ्यवाले आदमी का इतनी दूर मकान लेना कैसे ठीक हो सकता था ? मकान की बातचीत बीच म ही पडी रह गई और दूसरी बातें चल पडी। वह प्रथम श्रेणी के घुमक्कड हैं। राज रियासत छोड़कर बेसरो सामानी से देश से निकल गये। अग्रेजो के कुत्ते उनके पीछे पड़े रहते। सगे सम्बन्धी उनकी गन्ध से भी डरते। पर, आजीवन वह अपने विचारो पर डटे रहे। अग्रेजो के प्रति उनकी अपार घृणा कभी नही घटी। कई बार उन्होने पृथ्वी परिक्रमा की। सिर्फ होटलों रेलों और जहाजो वाले रास्तो पर ही नही गये बल्कि तिब्बत के दुरारोह पर्वतो को भी पार किया। ऐसे पुरुष की जीवनी कितनी रोचक और प्रेरणा दायक होगी यह सोचकर मेरा मन होता, उसे लिख डालूँ। उन्होने अपनी छपी अग्रेजी जीवनी भेजी जो मेरे लिए पर्याप्त नही हो सकती थी। एक तो वह सारे जीवन की नही थी, और दूसरे वह नोट के रूप मे थी। ठीक जीवनी तभी लिखी जा सकती थी जब मैं उनके पास बैठकर पूछ पूछकर नोट कर लूँ। मैंने पीछे लिखा पर वह लगातार दो चार हफ्ते दे नही सकते थे। उनके पैरों मे अब भी चक्का बँधा हुआ है, इसलिए राजपुर म दो चार

स्थिर रहने के बाद फिर वह किसी तरफ चल पड़ते हैं जीवनी लिखने का सकल्प मन का मन ही म रह जाना मालूम होता है।

१२ अक्तूबर को जेता को बुखार आया। उसने दूध नहीं पिया। उधर दस्त भी बन्द हो गया। चौथे दिन रेंडी का तेल देकर जुलाब कराया। बेचारा सुस्त हो गया। बुखार धीरे धीरे हटा। हमने समझा, यों ही मामूली बुखार आ गया है। कई दिनो बाद पता लगा कि उसका दाहिना हाथ उठ नहीं रहा है। 'पालिया' का नाम सुनकर दिल डर गया। कल्याणसिंह की लड़की के दोनो पैरो और दोनो हाथो पर पालियो हुआ था। डाक्टरों ने निराश कर दिया था लेकिन भैया ने कहा— मालिश करो। धीरे धीरे ठीक हो जाएगा। जेता के बारे म लिखने पर उन्होंने एक दवाई भेजी और कहा—"डरने की जरूरत नहीं। देर लगेगी, हाथ अच्छा हो जायगा।" कई महीना तक हम बहुत चिन्ता रही। फिर थोड़ा थोड़ा हाथ उठने लगा। आज ५ महीने बाद हाथ पर तो उसका पूरा काबू है और मुट्ठी बाधने म तो कभी भी उसको दिक्कत नहीं हुई। लेकिन अभी भी बाएँ हाथ के बराबर दाहिने हाथ म बल नहीं है।

सरकारी दफ्तरो स जब सम्पर्क करना पड़ता है तो हमारे जैसा को भी असहुस लगने लगता है दूसरा की तो और भी बुरी गत होती होगी। हर साल इन्कम टैक्स के लिए दफ्तर की कदमबोसी करनी पड़ती है जिसका कोई महीना निश्चित नहीं है। कभी मई-जून म, कभी उसके बाद और अब के तो अक्तूबर की १६ तारीख, सो भी देहरादून म बुलाया गया। तो भी एक छोड़कर जितने भी अफसर मुझे मिले, सभी सज्जन थे। अब के साल आमदनी ६७०० थी। इसम कुछ अग्रिम थ, और कुछ सरकारी सफर खर्च आदि के भी। पर, उनका अलग करके बहस करने की जगह मैं यही बेहतर समझता हूँ कि उस पर भी कुछ टैक्स लग जाये। देहरादून गया। काम होने म कुछ ही मिनट लगे। चाय शुक्लजी के यहाँ पी, और स्टेशन से टैक्सी लेकर उसी शाम मसूरी लौट आया।

२२ अक्तूबर को डा० जयनारायणगिरि अपनी पत्नी गुंजन के साथ आए। हमारे घर म मुझे छोड़कर सभी नेपाली और अर्ध-नेपाली हैं, इसलिए नेपाली मेहमान से प्रसन्नता होनी ही चाहिए और गिरिजी तथा उनकी

पत्नी का स्वभाव कुछ इतना मधुर था कि वह आते ही घर जैसे मालूम होने लगा। डाक्टरी पास करके आजकल वह लखनऊ में विशेष शिक्षा ले रहे थे। पत्नी को इसी शर्त पर ब्याहा था कि वह पढ़ेगी। बाप ने बिल्कुल अनपढ़ लड़की के लिए और रास्ता नहीं देखा, और मास्टर रखकर पढ़ाया। गुंजन मैट्रिक पास किया अब पटना में एफ० ए० में पढ़ रही थी। मैंने कहा—इन्हें जीव विज्ञान में एम०एस-सी० करके डाक्टरी में डाल दीजिए। पति पत्नी दोनों डाक्टर रहेंगे बहुत अच्छा रहेगा। पर, गिरि परिवार धनाढ्य है। अभी भी उनके दिमाग में पुराने विचार चक्कर काटते हैं— हमारे पास खाने पीने के लिए बहुतेरा है तरद्दुद करने की क्या जरूरत? एक बड़ा भाई डाक्टर होकर अधिक शिक्षा के लिए विलायत जाने वाला था। पैसे लेकर आया, फिर विलायत कौन जाय? पटना में होटल खोल कर बैठ गया। सबसे बड़ा भाई नेपाल के स्वतंत्रता आन्दोलन में एक नेता थे। कोइराला मन्त्रिमंडल के समय मोरंग का राज्यपाल बना और कोइराला के बहनोई बनने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। जात पाँत भारत में ही नहीं टूट रही है, नेपाल पर भी इसका छींटा पड़ रहा है। पुराने आचार विचार के ठेकेदार स्वयं माहिला गुरु के छोटे साहबजादे ने एक राणाकुमारी से ब्याह किया। गिरि ने ब्राह्मण कुमारी से ब्याह किया। नेपाल के गिरि पुरी का समाज में वही स्थान है जो हमारे यहाँ के गृहस्थ गिरि लोगों का। यह निश्चय है कलियुग सिर्फ भारत में ही आकर नहीं रह जायेगा।

२७ अक्तूबर को श्री मुकुन्दीलालजी आये। इस साल का उनका यह *अन्तिम फेरा था। परिवार को नीचे ले जाने के लिए आए थे।* गढ़वाल में रूपकुण्ड की हिमानी में सैकड़ों लाशें मिली थीं, जिनके बारे में तरह-तरह की कल्पनाएं हो रही थीं। मुकुन्दीलालजी का कहना था— जम्मू के जेनरल जोरावरसिंह के साथियों की ये लाशें नहीं हो सकतीं। हमारे यहाँ पहाड़ में बीच-बीच में नन्दादेवी का कुम्भ लगता है जिसमें हजारों नर नारी दर्शन करने के लिए जाते हैं। वहाँ बर्फ के तूफान में किसी समय दब कर मर गये।' यह भी बतलाया कि वहाँ गणेश की मूर्ति पर 'यशोवर उत्कीर्ण मिला है। जब चर्म मांस सहित आदमियों की बहुत अनेक लाशें

हैं उनके परों के चप्पल और दूसरे सामान भी हैं, तो पता लगाने में क्या मुश्किल हो सकती है? लेकिन १५ १६ हजार फुट के ऊपर विशेषज्ञों का जाना भी तो मुश्किल है। जोरावरसिंह के आदमियों के होने में एक बड़ी आपत्ति यह है कि वहाँ स्त्रियों की भी लाशें मिली हैं। आज से सौ वर्ष पहले, कश्मीर के हाथ में आने से भी पहले जम्मू के जेनरल जोरावरसिंह ने लद्दाख पर हाथ साफ करके पश्चिमी तिब्बत को लेना चाहा। जाड़ों में वह सदलबल मारे गये। उनके कुछ आदमी भागकर अल्मोड़ा होते लौटे थे। १६ १७ हजार फुट के ऊपर की हिमालय की भूमियों में और भी कितने ही रहस्य निकल सकते हैं। क्योंकि सदा हिमिन भूमि पुरानी चीजों को अपने भीतर शताब्दियों तक सुरक्षित रख सकती है। स्थानशान और साइबेरिया में हजारों वर्ष पुराने मनुष्यों और जन्तुओं की लाशें मिली हैं। अभी हमारे यहाँ लोग यती या नरवानर को ही ढूँढ निकालने के लिए परेशान हैं। लेकिन, जो महत्वपूर्ण अवशेष वहाँ मिलेगा, वह ऊपर चलता फिरता नहीं, बल्कि नीचे दबा मिलेगा।

१५

जाड़े की यात्रा

जाड़ा आ रहा था। पिछले साल तापमान के ४० डिग्री के नीचे पहुँचने पर कलेजे में तकलीफ हो गई थी इसलिए इस साल भी आशंका थी। निश्चय कर लिया कि सर्दी बढ़ने पर नीचे चले चलेंगे। जेता का दाहिना हाथ हथेली से पहुँचे तक ठीक से काम कर रहा था किन्तु कन्धे के पास अभी कसर थी। उसकी मालिश हो रही थी।

सरह के दोहाकोश के आठ फार्मों के प्रूफ मैंने डा० शहीदुल्ला के पास ढाका भेजे थे। उन्हें वह राजशाही में मिले। ढाका युनिवर्सिटी से अवसर प्राप्त कर अब वह राजशाही में अध्यापन कर रहे थे। डा० शहीदुल्ला संस्कृत और अपभ्रंश के पण्डित हैं। सरहपा और कण्हपा के अपभ्रंश दोहों पर उन्होंने अपने डाक्टरेट की थिसिस लिखी थी। मैंने चाहा था फर्मों के पास प्रूफ के रूप में कोश को भेज दूँ ताकि उनके सुझाव प्राप्त हो सकें। डा० शहीदुल्ला का उत्तर शुद्ध हिन्दी में आया था। बंगला भाषियों के लिए शुद्ध हिन्दी उर्दू से आसान है। बल्कि यह कहना चाहिए कि यदि वह उर्दू के शब्द और क्रिया रूपों को जानते हैं तो जहाँ उर्दू के लिए हजारों फारसी अरबी के शब्दों को ढूँढ़ना पड़ता वहाँ अपने बंगला शब्दों का इस्तेमाल करके वह उच्च श्रेणी की हिन्दी में लिख सकते हैं। बंगाल के मुसलमानों ने अपनी मातृभाषा के लिए प्राणों तक को दिया और अन्त में पाकिस्तान संविधान सभा को बिना चूँ चिरा के उर्दू के साथ साथ बंगला को भी राज्य भाषा स्वीकार करना पड़ा। डा० शहीदुल्ला अपनी बंगला के जब

दस्त प्रेमी और सेवक हैं। यद्यपि संविधान ने बंगला को मंजूर कर लिया है, लेकिन २३ मार्च १९५६ के गणराज्य के उद्घाटन के समय जो भाषण कराची में हुए, उनसे मालूम होता था कि पाकिस्तान के धनी धोरियों ने पंचों का न्याय सिर माथे पर, लेकिन पनाला वहीं रहेगा' वाली कहावत को स्वीकार किया है। रेडियो पर नेताओं के सारे भाषण कुछ अंग्रेजी छोड़ कर उर्दू में हुए बंगला के राष्ट्रभाषा होने का वहां कहीं पता नहीं था। निश्चय ही धींगा मुश्ती बहुत दिनों तक नहीं चलेगा। लेकिन पश्चिमी पाकिस्तान वाले एक और तरह से पाकिस्तानी बंगालियों का जड़ खोदने के लिए तैयार हैं। पाकिस्तानी बंगाली धौंस दिखलाते थे कि हमारी संख्या पाकिस्तान में सबसे अधिक है। उनके समर्थक मुल्ला पूर्वी बंगाल में ऐसा आतंक फैला रहे हैं कि वहां के हिन्दू भागकर भारत चले आएं और इस प्रकार पाकिस्तान में बंगालियों का बहुमत खतम हो जाए।

आदमी अकेले रहने वक्त विशेषकर घुमक्कड़, आर्थिक चिन्ताओं में नहीं पड़ सकता। कम से कम मेरा तजर्बा यही था। लेकिन, घरबार, बाल बच्चे होने पर वैसी बेपर्वाही नहीं रह सकती। उस कल की चिन्ता होती है, और उस वक्त को और जबकि यह नहीं रहेगा। मेरे दिमाग में यही विचार चक्कर काट रहे थे। यद्यपि किताब महल वालों ने रायल्टी को २० सैकड़ा से १५ सैकड़ा कर लेने पर ४०० रुपया मासिक नियमित रूप से देने के लिए वचन दे दिया था। चीन या चकोस्लोवाकिया में चलने की बात कहने पर कमला टस से मस नहीं होती और कहतीं— "औरों के भी तो बच्चे हैं?" हां, ठीक है औरों के भी बच्चे हैं, लेकिन उनमें से बेचारे मददगारों की हालत कैसी होती है यह भी हम देखते हैं। कम से कम दो-तीन वर्ष के लिए चलो'। पर उन्हें तो 'हमें हैं प्यारी हमारी गलियां' याद आता है। यह समझती हैं कि एम० ए० करने में एक ही साल है। कलिम्पोंग में पढ़ाने का काम पकड़ लूंगी। पर पढ़ाई में सौ डेढ़ सौ रुपए मासिक से अधिक नहीं मिलेगा, जिससे आधा तो मकान के किराए में ही चला जाएगा।

नवम्बर के चौथे सप्ताह में मेरी दिनचर्या थी ७ बजे सवेरे उठना, साढ़े सात बजे चाय-नाश्ता करना, फिर बैठकर टाइप राइटर पर साढ़े ११-१२ बजे तक पुस्तक लिखवाना। साढ़े १२ बजे भोजन, समाचारपत्र डाक

पढना। सम्पादन करते ३ साढ़े ३ बज जाता। कभी एकाध घंटे के लिए सो जाना या चाय पीना। फिर लिखाए हुए कागजों या प्रूफों को रात के सवा ८ बजे तक देखना आध घंटा रेडियो पर खबर सुनना फिर काम करते साढ़े १० बजे के करीब सो जाना। इसी बीच में जया और जेता के साथ खेलना भी शामिल था। जया अब बहुत बातें करने लगी थी।

२४ नवम्बर को रीवा जिले के तरुण घुमक्कड़ शम्भूदयाल त्रिपाठी आए। २० वर्ष की उमर होगी। बड़ी मुश्किल से मैट्रिक प्रथम श्रेणी में पास हुए। साइंस पढ़ने की उत्कट इच्छा थी पर आगे बढ़ने का कोई रास्ता नहीं। कुछ साल तक स्कूल में मास्टरी की। ६० ७० रुपये मिल जाते थे। आगे की पढ़ने और घुमक्कड़ी की आकांक्षा ने चैन से रहने नहीं दिया। मेरी कुछ पुस्तकें पढ़ चुके थे। सोचा पश्चिम में भारत की सीमा पार करते ही पाकिस्तान आ जाएगा जिससे लगा ही अफगानिस्तान है फिर तो दो कदम पर सोवियत रूस है। यदि वहाँ चले चलें तो साइंस के पढ़ने का रास्ता खुल जाएगा। किसी तरह सीमा पार करके पाकिस्तानी पंजाब में पहुँचे। पकड़ लिए गए। 'क्यों आए?' —पूछने पर कुत्ते बिल्ली की कहानियाँ कहने लगे "पाकिस्तान में नौजवानों के पढ़ने का बहुत अच्छा प्रबंध है यही सोचकर मैं चला आया।' जवाब मिला— आए तो भला किया कानून तोड़ा, इसलिए एक मास गोलघर में चलो।" सजा काट लेने पर फिर सीमा के पास लाकर कहा गया—' अब यहाँ से तुम चले जाओ। बेचारे अमृतसर आए। पास में पैसा कौड़ी नहीं लेकिन घुमक्कड़ को ईमानदारी के साथ किसी भी काम करने से आनाकानी नहीं करनी चाहिए यह शिक्षा उन्हें मालूम थी। होटल में जाकर कुछ हफ्ता तक बरतन धोते रहे, फिर वहाँ से चलकर चण्डीगढ़ आए। कहीं पढ़ने का रास्ता नहीं मिला। अन्त में घूमते घामते मसूरी में पहुँचे। मैं क्या सहायता कर सकता था? तरुण को देखकर बहुत तरस आता था। भिखमंगे की मैली और फटी पोशाक थी। पैर नंगा ओढ़ने के लिए टाट ले रखा था। न जाने कितना भूखा था? भोजन कराया कई परिचय पत्र दिए। एकाध जगहों का नाम बतलाया, जहाँ टेक्नीकल शिक्षा मिल सकती है। यह भी कहा कि यदि तुम साइंस छोड़कर संस्कृत पढ़ना चाहते हो, तो साधु बनकर यह काम आसानी

से कर सकते हो। पर, न वह साधु बनने के लिए तैयार थे, न संस्कृत पढ़ने की इच्छा रखने थे। 'शिवास्ते सन्तु पन्थान' (तुम्हारा कल्याण हो) यही कामना हम कर सकते थे।

अब के जोधपुर की ठाकुरानी गुलाबकुमारी २८ नवम्बर को मसूरी से गईं। यह केवल उन्हीं की बात नहीं थी पुराने राजाओं, जागीरदारों और जमीन्दारों के सभी की यही हालत है। वह अपनी राजधानियों में नहीं रहना चाहते। जहां पर पीढ़ियों से उनका निरंकुश शासन था, वहां वह जनसाधारण की तरह कैसे रहें? रहने पर भी चापलूस, लग्गू भग्गू मुसाहिब आ घेरते। किसी के घर ब्याह है, किसी के लड़के की पढ़ाई नहीं चल रही किसी के घर में खर्चा नहीं आदि आदि सच्ची झूठी बातें कहकर वह कुछ पाने की आशा रखते। न देने पर उनके कोप और निन्दा का भाजन होना पड़ता। सकोच करते करते भी कुछ देना ही पड़ता। आमदनी थोड़ी और नपी तुली। इन सबसे बचने के लिए जिनका मसूरी जैसी किसी पहाड़ी जगह में रहने का इंतिजाम है वह यहीं सबसे पहले आते और जाड़ों में ही लौटते। तालुकेदारों ने अपने महल जैसे मकानों को अच्छे किराए पर सरकारी दफ्तरों के लिए दे दिया। किराए पर छोटी मोटी बंगलिया ले रक्खी हैं जिनमें मन मारकर वह जाड़ो के दो चार महीने गुजार देते हैं। सबसे ऊंचे वर्ग की आज यह स्थिति है। उनको अपने पैरों पर खड़े होने के लिए पैसे यदि मिले भी तो उसका ठीक से इस्तेमाल करना उन्होंने कभी सीखा ही नहीं। कुछ तो दिवंगत महाराणा उदयपुर की तरह समझते हैं—अपनी जिन्दगी भर पुराना ही तरह रह लो, आगे की बात आगे वाले देखेंगे।

दिसम्बर के पहले सप्ताह तक संस्कृत काव्यधारा (५० कवियों का काव्य संग्रह) समाप्त हो गई। मैंने हरेक कवि का इतना उदाहरण देना चाहा कि जिससे कवि की विशेषता पाठक समझ सकें। पुस्तक में बाईं ओर मूल संस्कृत और दाहिनी ओर प्रतिपत्ति हिन्दी अनुवाद रखा है। कवियों को उनके कालक्रम से रखकर परिच्छेदों को तत्कालीन बोलचाल की भाषा के अनुरूप काल विभाजन द्वारा उपस्थित किया है। छन्दस या संस्कृत काल के लिए ऋग्वेद के कितने ही कवि (ऋषि) दिए पालि काल के लिए महाभारत और रामायण से उद्धरण लिए। प्राकृत काल में अश्व-

घोष से कालिदास—शूद्रक तक की कविताएं दीं। अपभ्रंश-काल में दण्डी से हीर-पुत्र श्रीहर्ष के नमूने दिए। तीन कवि और कवयित्रियाँ मुगलकाल की भी आ गई। कालक्रम से इन कविताओं को पढ़ने से संस्कृत काव्य साहित्य की भाषा और भावों के विकास का अच्छी तरह पता लगता है। सारी पुस्तक पर एक विस्तृत भूमिका अभी लिखनी है। हरेक काल के लिए एक छोटी भूमिका और हरेक कवि का दस पाँच पंक्तियों में परिचय दे दिया है। संक्षेप करने का ख्याल रखते हुए भी ५० फार्म का ग्रन्थ हो गया।

७ दिसम्बर को 'मध्य एसिया का इतिहास (१)' की कुछ गेलियों का पहला प्रूफ आया। दूसरा खंड लखनऊ के नेशनल हेरल्ड प्रेस में सेट रहा है। पहला भाग सम्मेलन मुद्रणालय में छप रहा था। देखें वहाँ कम तजर्बा होता है? प्रेसों का तजर्बा बहुत बुरा रहा। ८ दिसम्बर को राष्ट्रपति का पत्र आया, जिसमें उन्होंने लिखा था कि चीन के पासपोर्ट के लिए मैंने पन्तजी को लिख दिया है और मिलने पर भी उनसे कह दूंगा। आखिर पासपोर्ट जिसके नाम से मिलने वाला है यदि वही तैयार हो तो पासपोर्ट मिलने में क्या दिक्कत हो सकती है? लेकिन, जब तक वह हाथ में न आ जाए तब तक इत्मीनान नहीं किया जा सकता।

११ दिसम्बर को २२ वर्ष बाद लाहुल के ठाकुर पृथ्वीचन्द अपनी पत्नी के साथ मिलने आए। १९३३ में लदाख से लौटते लाहुल में वह मिले थे और कई दिनों तक भिन्न भिन्न जगहों को देखते वक्त मेरे साथ रहे। मातृभाषा तिब्बती होने के कारण कालेज की पढ़ाई में उन्हें दिक्कत होने लगी इसलिए उस वक्त उसे छोड़कर घर पर बैठे हुए थे। पीछे टेरिटोरियल फौज में भरती हो गए। लड़ाई के दिनों में उन्हें और उनके चचेरे भाई (ठाकुर मंगलचन्द के पुत्र) खुशहालचन्द को कमीशन मिल गया। अब दोनों भारतीय सेना के लेफ्टनेंट कर्नल थे। उस समय का कहाँ वह नवतरुण शरीर और कहाँ अब ४५ वर्ष के प्रौढ़? पत्नी धर्मशाला की नेपालिन हैं जिनसे १५ साल पहले उन्होंने ब्याह किया था। संतान कोई नहीं, लेकिन भाई और पत्नी के परिवार के बच्चों को पालने में संतुष्ट हैं। देहरादून में एक साल से अधिक उन्हें रहते हो गया था और अकस्मात् किसी ने मेरा मसूरी का पता दिया। इधर दो चीन में जो भारतीय सैनिक अफसर गए थे

उनमें ठाकुर पृथ्वीचन्द भी थे, और बतनाय वाले कमीशन के वहां अध्यक्ष थे। मैं लद्दाख के बारे में उनसे विशेष सुनना चाहता था। मैंने सुन लिया था वह लद्दाख की प्रतिरक्षा के लिए गए थे।

बतला रहे थे—जब पाकिस्तानियों ने लद्दाख और स्कर्दू पर हमला किया था तो हमारा दिल घबरा उठा। आखिर हमारे लाहूल की सीमा उससे लगती थी। हम दोनों ने सरकार को अपनी सेवाएँ अर्पित करते हुए कहा—'हम लद्दाख में जाना चाहते हैं।' सरकार का सारा ध्यान कश्मीर उपत्यका के ऊपर था। वह लद्दाख के महत्व को नहीं समझती थी। हम २४ सैनिक दो सौ के करीब बन्दूकें तथा गोलियाँ मिलीं। उन्हें लेकर हम लद्दाख पहुँचे। पाकिस्तानी लेह के पास पहुंच गये थे। लद्दाखी अपना बोरिया बँधना बाँधकर निकल भागने के लिए तैयार थे। हमारा तिब्बती भाषा और बौद्ध होना उस समय बड़े काम आया। हम उन्हें राजने में समर्थ हुए। कुछ जवानों को तुरन्त गोली चलाना सिखाया। दो चार दिन भी तो सिखाने के लिए नहीं थे इसलिए कारतूस भरना और घोड़ा दबाना भर सिखलाकर अपने एक-दो साथ सिपाहियों के साथ उन्हें ले पाकिस्तानियों के पीछे पड़े। जब एक दो मील हम उन्हें भगाने में सफल हुए तो लद्दाखियों की हिम्मत बंधी। वह खुशी से स्वयंसेवक बनने लगे। लेकिन हमारे पास उतने हथियार नहीं थे। तीन महीने के करीब तब भी हम पाकिस्तानियों का पीछा करते गए। कुमक पहुँचा और उधर जोजीला में हमारे टैंक भी करगिल की ओर आये। पाकिस्तानी भाग खड़े हुए। हम सिन्धु उपत्यका से उन्हें भगा सकते थे लेकिन उसी समय अस्थायी संधि हो गई और हम रुक जाना पड़ा। पृथ्वीचन्द और कर्नल खुशहालचन्द दोनों को इस वीरता के उपलक्ष में 'महावीर चक्र' मिला। मित्रों का यह काम मेरे लिए भी अभिमान की बात थी।

ठाकुर पृथ्वीचन्द उत्तरी वियतनाम की स्थिति देखकर बड़े प्रभावित हुए। कह रहे थे, चींटियों की तरह वहाँ का हरेक आदमी काम में लगा हुआ है। युद्ध के कारण देश का सत्यानाश हुआ, जितना ही चीनों का वहां भारी अभाव है तो भी सभी लोग खुशी-खुशी अपने देश के नव निर्माण में लगे हुए हैं। अपने यहां विशेषकर सैनिक अफसरों की स्थिति से सन्तुष्ट

नहीं थे। वह रह थे यहाँ पर तरक्की होने म तिकडम और मौका मिलने पर घूस रिश्वत बहुत चलती है। जिसके कारण ईमानदार सनिक अफसर विरक्त हो गये हैं। कहते हैं— हम अपने लडको को अब सेना म नहा भेजेंगे। मैंने पूछा—"और यदि देश पर सकट आ जाए तो ?" ठाकुर साहब न कहा— तब तो हम अपने सवस्व की बाजी लगानी होगी। हम अपनी स्वतन्त्रता दूसरी बार खोने के लिए तैयार नहीं हैं।'

कमला ने अपनी गुरुआनी कलिम्पोग के हाईस्कूल की प्रिंसिपल को लिखते समय आशा प्रकट की थी कि एम० ए० करके मैं शायद कलिम्पोग चली आऊगी। उन्होंने बहुत खुशी प्रकट करते हुए लिखा— 'तुम्हें अपने स्कूल म आकर पढाना चाहिए। एक सूटा और गड गया। अब वह कलिम्पोग का ही स्वप्न देखने लगी।

देहरादून—पिछले साल १८ दिसम्बर को कलेजे म दद हुआ था। इसलिए १४ दिसम्बर को यहाँ से चल पडा। आराम म बादल थे मसूरी मे सर्दी काफी थी। डेढ बजे घर से निकला। जरा रात लगी। गोपालू सामान लिए पीछे रह गये इसलिए बस नहीं मिल सकी। टक्सी पकड कर शाम श्री गयाप्रसाद शुक्लजी के घर पर पहुँचे जब कि अधेरा होने लगा था।

सोवियत नेता क्रुश्चेव और बुलगानिन तीन हफ्ते के दौरे पर भारत आए थे उनका आशातीत स्वागत हुआ। भारत के अधिकाश लोग गरीब या अनिश्चित जीवन वाले हैं। वह पिछली डेढ पीढ़ियों से रूस के निश्चित जीवन के बारे म सुनते आये थे और सभी कामना करते थे कि हमारा देश भी कब उस तरह का होगा। देशी और विदेशी थैलीशाहो ने सारे समय हजारो झूठी झूठी बातें कहकर सोवियत के खिलाफ धुँआधार प्रचार किया पर उसका हमारे जनसाधारण पर कोई असर नहीं पडा। आज अपने हृदय के भावों को प्रकट करने का अवसर मिला था फिर वह क्या न हर जगह के प्रदशनो और सभाओं म पुराने रिकार्डो को तोडते ? आज ही रूसी नेता दिल्ली से काबुल गये। मुयस लोग पूछते रहे थे— इसका क्या असर होगा ?" मैंने कहा— थैली शाह और उनके हाथ म बिको के ऊपर कोई असर नहीं होगा, उनकी छाती पर साँप लोटेगा। जो पहले से ही सोवियत

क हितैषी थ, उनका उत्साह दूना होगा। बीच के हिल्मिल्यकोना म स बहुता को सच्ची बात का पता लगेगा और वह अमरिकन प्रापगंडा क जाल से बाहर आएँगे।' यद्यपि हिमालय की दो पुस्तका को छोड सभी खण्ड म थी, लकिन मुझे अपना काम पूरा करना था। हिमाचल प्रदेश और 'जौनसार देहरादून' को भी मैंने लिख लिया था। देहरादून जिले क बारे म कुछ और बातें भी जानना चाहता था। देहरादून जिले क जा खुदाई हुई थी, उसक स्थान को देख लेना चाहता था। हाल म देहरादून म घटा क लिए एक मोटर मिली और उस पर शुक्लजी और महताजी क साथ मैं चला। चूहड़पुर बाजार होन जमुना पुल पार करन स पहले ही दाहिनी ओर कुछ दूर जाकर, पक्की सड़क स प्राय डेढ मील पर उस जगह पहुँचे जहा खुदाई म ईसवी दूसरी शताब्दी के राजा शीलवर्मा न यज्ञ किया था। सहारनपुर क लाला जगतप्रसाद न जगलात स कई सौ एकड जमीन लेकर यहा अपना फार्म बनाया था। बुलडोजर जगल साफ करन म लगे तो उनके फाल म कुछ इटें फँस गई। खोदने पर कई इटो को देखकर लालाजी ने भारतीय पुरातत्व विभाग को सूचना दी। पिछले दो सालो म उसन खुदाई की। मालूम हुआ शीलवर्मा न यहीं कम-से-कम चार अश्वमेध यज्ञ किए। कई खडित इटो पर कुषाण ब्राह्मणी अक्षरो म लेख था। पूर्ण लेख दिल्ली ले गए थे जो था

नृपतर्वार्षगण्यस्य पौणषष्ठस्य धीमत
चतुर्थस्याश्वमेधस्य चित्याय शीलवमण ।
सिद्ध । ओ युगेश्वरस्याश्वमेधे युगशैलमहीपत ।
इष्टका वार्षगण्यस्य नृपते शीलवमण ।

शीलवर्मा क चौथे अश्वमेध की यह चिति (वेदी) थी। खोदने पर पास म ही दो और चितियाँ मिलीं, लेकिन चौथी का पता नहीं। अश्वमेध चुप नहीं किया जा सकता। उसम घोडा छोडकर पड़ोसी राजाओ को युद्ध क लिए चैलेंज दिया जाता जिसम कितने ही राजा मिलकर मुकाबिला कर सकते थ। इसलिए शीलवर्मा शक्तिशाली राजा हुआ होगा इसम सन्देह नहीं। उस समय पास क पहाडो का नाम युगशैल था जिसका वह महीपति था। ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी को उत्तरी भारत का

काराच्छन्न है। इतना ही मालूम है कि कुषाण प्रभुता अब छिन्न भिन्न हो रही थी और प्रतापी गुप्तो के आने मे शताब्दी नही तो कई दशाब्दियो की देर थी। इसी समय कुरु और उत्तर पचाल को लेने सारे पहाड पर शीलवर्मा का शासन रहा होगा। उससे चार-पाँच सौ वर्ष पहले यहाँ से जमुना पार थोडी दूर आगे आधुनिक काल की एक प्रसिद्ध नगरी थी जिसके महत्व को जानकर अशोक ने शिला पर अपने धर्मलेख खुदवाए। हम अश्वमेध यज्ञ की बाज (श्येन) के आकार की चिता को देख रहे थे। उसी समय लालाजी के कान्दिदे आ गये। चौकीदार बतला रहा था—इसमे घोडे की हड्डियाँ भी मिली थीं। कारपर्दाज साहब आर्यसमाजी थे वह भला कैसे मानते कि पुराने धर्मयुग मे जबकि वेद भगवान की तूती चारो तरफ बोल रही थी कोई घोडा मार कर यज्ञ कर सकता था। घोडा मारते ही नही बल्कि यज्ञ शेष के रूप उसके प्रसाद को भी पुरोहित और यजमान गले के नीचे उतारते थे इसे वे भला कैसे मानते? उन्होने कहा कुछ विद्वानो ने हड्डी को घोडे की बतलाया है लेकिन इसमे सन्देह है। सन्देह की बात वह अपने जैसा की ओर से कह रहे थे। मैंने कहा— सन्देह है? वह बडे जानवर की हड्डियाँ घोडे की नही तो ऐसे की होगी जिसका मानना आपके ख्याल से और बुरा होगा। लेकिन यह गोमेध नही था, क्योकि शीलवर्मा ने स्वय इसे अश्वमेध लिखा है। वस्तुत ऐसे लोगो से साथ माथा पच्ची करना ही बुरा है।

वहाँ से फाम बहुत बडा है। पूँजीवाले आदमी फार्मों से पैसा कमाना चाहते हैं और उसे ऐसी जगह लगाना चाहते हैं जहाँ कम से कम खतरा हो। पहले जमीदारी इसके लिए उपयुक्त समझी जाती थी अब उसकी भी जड खुद गई। खेत भी एक मात्रा मे ही रख सकते हैं लेकिन आधुनिक ढग के फलो या दूसरी चीजो को फार्मों मे एकत्र को सीमा नही है यह जानकर अब वह इस तरह के फार्मों मे पैसा लगाने लगे हैं। वहाँ बुलडोजर और ट्रैक्टर थे बाकायदा आफिस था। खेत अभी अभी बोये गये थे। जहाँ हजारो वर्षों तक जगल के वृक्षो की पत्तियाँ सडती रही हैं और जमीन मटियाली है वहाँ फसल खूब होगी ही। हम लौटकर दाई सडक पर आए। बाई और सामने की ओर एक वैसी ही सडक अशोक आश्रम की तरफ जाती दीख पडी। श्री धर्मदेव शास्त्रीजी से आने के लिए कई बार कह चुका था यह

अच्छा मौका था। कुछ सेना में फिर जंगल से होकर आधा मील जाना पड़ा। शास्त्रीजी आश्रम में ही थे। पिछली मर्तबा जब १९४३ में कालसी आया था, तो वह जेल में थे, और एक टूटे फूटे मकान में अशोक आश्रम था। उस और वनों के लिए इस जंगल में लाया गया। आश्रम में काफी जगह है, जिसमें खेती और साग-सब्जी भी होती है। आश्रम का काम काफी बढ़ गया है। वह हिमालय की हरिजन और पिछड़ी जातियों में सेवा का काम कर रहा है। जौनसार के सबसे पिछड़े हुए इलाके चकराता में पांगी और एक दो दूर दूर की जगहों पर उसने पाठशालाएँ हस्तशिल्प और चिकित्सा स्थान स्थापित किए हैं। इस वक्त कितने ही कार्यकर्ता शिक्षण-शिविर के लिए आए हुए थे। अगले ही दिन पिछड़ी जातियों के बड़े अफसर आने वाले थे। हम गाड़ी को साढ़े चार बजे ही मालिक को लौटा देना था इसलिए एक एक मिनट को फूंक फूंककर खर्च करना पड़ रहा था। पर, शास्त्रीजी के विद्यार्थियों के सामने थोड़ा बोलना और कुछ जलपान करना अनिवार्य था। शुक्लाइनजी बेचारी सिवाय कुम्भ और अर्धकुम्भ के मुश्किल ही से कहीं देहरादून से बाहर जाती थीं। इस वक्त उन्हें भी ले आये थे, साथ में उनकी दोनों नातिनियां मधु और सुधा भी थीं। अशोक आश्रम के काम से हमारी पूरी सहानुभूति थी यद्यपि उसका यह अर्थ नहीं कि वह मेज की अचूक दवा है।

मन्दिर से लौटकर फिर पक्की सड़क पर आ जमुना का पुल पार किया। कालसी जाने की निचली सड़क छोड़कर ऊपर चले गये, लेकिन उधर से भी एक सड़क बाजार को जा रही थी। बाजार में पहुँचे। यद्यपि अब भी कालसी बारह वर्ष पहले की तरह ही सिसक रही थी लेकिन अब की चार छ दुकानें दखीं। जाड़ों में चकराता तहसील यहीं उठ आती है शायद उसका कारण हो। खाने में देर हो रही थी और सुधा मधु भूखी थीं। बाजार में एक मन्दिर के आगे पक्का चबूतरा मिला। वहीं खाने का डौल लगाने लगे। पास के दुकान वाले बड़े सज्जन निकले। लाकर दरी बिछा दी, लोटा और बालटी दे दी। पास ही निर्मल जल की नहर बह रही थी जो शायद अशोक के समय भी इसी तरह चलती होगी। वहीं बैठकर भोजन किया। शुक्लाइनजी तरह तरह के पकवान बनाकर लाई थीं।

या जमा दही भी लाना चाहती थी, लेकिन हमने कहा—दचके म सारा दही गिर जाएगा। घर पूडी भी थी मीठी चीजें भी थी, नमकीन भी और इतनी अधिक कि ड्राइवर सहित हम लाग खाकर खतम नही कर सकते थे। कपिलजी अब चकरौता तहसील से पेन्शन प्राप्त कर ग्राम सुधार के काम म अपना समय दे रहे थे, वह यही पर थे। वह हमारा प्रतीक्षा निचली सडक पर कर रहे थे और हम दूसरी सडक स चले आए। लौटते वक्त उनसे मिले। खाना पीना कर चुके थे और उधर समय की भी कताही थी इसलिए कुछ बातचीत हुई। उनसे मालूम हुआ यहाँ कालसी के खेतो मे भी कही-कही पुरानी बस्ती क अवशेष मिलते हैं।

लौटते समय सरकारी डेरी का भी देखना चाहते थे, लेकिन समय नहा रह गया पर अशोक क अभिलेख को देखना ता जरूरी था। पक्की सडक पर मोटर छोड हम जमुना क किनारे उस शिला क पास गए जिस पर अशोक क अभिलेख हैं, और जिसकी रक्षा के लिए मकान बनाकर ढाक दिया गया है। दरवाजे म ताला लगा था, चौकीदार नही था इसलिए हमने बाहर ही से देखकर सताप किया। लौटते वक्त दस कदम पर एक मकान और एक गोरे चिट्टे प्रौढ आदमी को देखा। उन्होने बतलाया मैं कश्मीर का दरद हूँ यही कारबार के सिलसिले म आया और घर बना इन खेतो को आबाद किए हूँ। हम साढे ४ बजे देहरा पहुँच कार को लौटा देने म सफल हुए।

१६ दिसम्बर का यहा के एक होनहार तरुण वकील अपनी पत्नी के साथ आए। वह एम० ए०, एल एल० बी० हैं और फारसी की उच्च शिक्षा भी प्राप्त की है पत्नी एम० ए० हैं। चाहते थ पत्नी क पी एच० डी० का मैं निर्देशक बनू। घर म जिन स्त्रियो को बहुत काम नही रहता वह यदि अपने समय का उपयोग कुछ और पढ़ने म किया करें तो अच्छा ही है। पर हमारे यहा की अधिकाश स्त्रियो के तो युनिवर्सिटी की डिग्रिया अब जेवर का काम करती है। जसे उनके शरीर पर कुछ हजार के सुनहले और जडाऊ आभूषण चाहिए वैसे हा एम० ए० पी एच० डी० भी शोभा की चीज है। मैंने उन्हे कहा कि रहीम क ऊपर आप अनुसधान करें। रहीम सम्बन्धी कितनी ही सामग्री फारसी म मिलती है जिसम आपके पति सहायता दे सकेंगे।

दिल्ली—उसी दिन शाम को गाड़ी पकड़ी और १७ को साढ़े ५ बजे दिल्ली पहुँच गया। रिक्शा ले भैया के घर पर गया। वहाँ ताला बन्द था। तब तक बैठा इन्तजार करना पड़ा, जब तक कि अँधेरा दूर नहीं हो गया। दिल्ली आना प्रान्तिक साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के लिए हुआ जो आज ही शुरू हुआ था। पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने उद्घाटन भाषण किया। फिर सभापति श्री अनन्तशयनम् अय्यंगर ने अपना अध्यक्षीय भाषण दिया। दिल्ली के देवताओं में से दो ने हिन्दी के पक्ष का समर्थन किया लेकिन जब तक ढेरी पर साँप बैठा है तब तक हिन्दी का रास्ता कैसे साफ हो सकता था? प्रधान मंत्री जबानी जमा खर्च कभी कभी दे दिया करते हैं सो भी एक ओर से हिन्दी को यदि कुछ समर्थन करते हैं, तो दूसरी ओर उसके विरोध के लिए दूना मसाला दे देते हैं। शिक्षा मंत्रालय तो इसीलिए बना है कि हिन्दी के रास्ते में पग पग पर रोड़ा अटकाए। मैंने इन बातों को अपने अगले दिन के भाषण में कहा। वहाँ आचार्य चतुरसेन शास्त्री से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह हमारी पीढ़ी के हैं और मेरी ही तरह से संस्कृत से हिन्दी के कथासाहित्य क्षेत्र में उतरे। १८ दिसम्बर को साथी अजय से मिलने गया। यह तो मैंने सुना था कि उनकी पत्नी डा० गोपीचन्द भार्गव की बेटी हैं परन्तु मैं यह नहीं समझता था कि वह मेरी पूर्वपरिचिता भी हैं। फिर चन्द्रगुप्तजी के यहाँ गया। दिल्ली क्या हमारे सभी जगहों के नौकरशाह जनता के प्राण धन की कोई पर्वाह नहीं करते। बरसात में बाढ़ आई मोरियों का पानी पीने के पानी से मिल गया। स्वास्थ्य विभाग ने पर्वाह नहीं की, और अब लोगों को उसी के कारण खतरनाक पीलिया रोग हो रहा था। चन्द्रगुप्तजी भी पीलिया में पड़े हुए थे। बुखार भीषण हो उठा था। उन्होंने समझा अनाड़ी डाक्टर ने अनुचित इंजेक्शन देकर पीलिया पैदा किया। पर अब तो मालूम ही है कि पीलिया का कारण इंजेक्शन नहीं था।

ढाई बजे सम्मेलन की साहित्य परिषद् का अधिवेशन शुरू हुआ। सभापति पद का भाषण मैंने दिया, और दिल्ली के देवताओं की बेशर्मी पर खूब कड़वी मीठी कही। यह बातें देवताओं के कानों तक पहुँच नहीं सकतीं, उनके लिए तो अंग्रेजी में कहा जाना चाहिए। लेकिन, मैं देवताओं पर विश्वास नहीं रखता, मेरे लिए जनता सब कुछ है। हिन्दी को यदि संविधान में संघ

की भाषा स्वीकार किया गया, तो देवताओ के कारण नही, बल्कि जनता के कारण। देवता जानते थे, कि वोट मांगने के लिए हम लोगो के पास ही जाना पड़ेगा हिन्दी का विरोध करके हम बहुत सा वोट खो देंगे, इसीलिए देवा महादेवा सबको हिन्दी के लिए हाथ उठाना पड़ा। और भी कितने ही हिन्दी साहित्यिको ने भाषण दिये। प० बनारसीदास चतुर्वेदी का भाषण बहुत अच्छा और विनोदपूर्ण था। जैनेन्द्रजी न दर्शन बघारा। नरेन्द्र शर्मा भी अच्छा बोले। सभा समाप्त होने से पहले ही निकले कि लाल किले में श्रीमती सुनयाल सेन के स्वागत मे शामिल हो। साथी फारूकी ने आध घटा प्रतीक्षा भी की लेकिन देर से आया समय पर सवारी नही मिल सकी और जा नहा सका। दिल्ली में रहते छापने के लिए पड़ी आधे दजन से अधिक पुस्तकों के लिए प्रकाशक ठीक करना था। लेकिन, एक ही पुस्तक 'शादी (उपन्यास) दे सका जो भी लौट आई। सबसे ज्यादा उत्सुक था 'हिमाचल प्रदेश' और 'संस्कृत काव्यधारा' के लिए। संस्कृत काव्यधारा' के लिए माधवजी ने लाड साहब से मिलने के लिए आग्रह किया। उनके यहाँ ७ बजे के करीब पहुँचा। घटे भर प्रतीक्षा करने पर वह आफिस से आए। पुस्तक को दिखलाया। लेकिन, इस तरह के संस्कृत काव्य-संग्रह का अकादमी दूसरे विद्वानो से तैयार करा रही थीं इसलिए वह इसे लेने में असमर्थ थी। कितनी ही देर तक बातें होती रही। फिर वहाँ से निकले। उनका बगला औरंगजेब रोड पर बस स्टेंड से बहुत दूर था। उस रात को कोई सवारी नही मिल रही थी बड़ी परेशानी हुई। पछता रहा था क्या इस रात को आना स्वीकार किया ? खैर, मेरे साथ शिव शर्मा भी थे इस लिए हम लोगो ने जाकर बस पकड़ी, और रात को १० बजे के करीब घर लौटे।

२० दिसम्बर को सबेरे निकला। यद्यपि हम अब्दुर्रहीम खानखाना की समाधि देखनी थी, लेकिन पास ही मे निजामुद्दीन की दरगाह भी है, जिसके भीतर अमीर खुसरो भी सो रहे हैं। आशा थी, शायद वहा खुसरो की कोई कुछ किताबें मिल जाएँ। किताब नही मिली। पता लगा पास ही में गालिब का मकबरा है। वहाँ गए। कब्रस्तान में बाकी कब्रो की तरह गालिब की कब्र भी रही होगी, लेकिन अब उसके ऊपर संगमरमर की मढी बना दी गई

है। हमारे एक महाकवि का यह सम्मान हुआ यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ से निकले। मथुरावाली सड़क पर आए। कुछ दूर जाने पर रहीम का विशाल मकबरा मिला। आकार वैसा ही है जैसा हुमायूँ के मकबरे का। बीच में कई मंजिला गुम्बद और चारों तरफ के चौकोर चबूतरा के नीचे सकड़ों कोठरियाँ हैं। मकबरे के चारों ओर नौ-दस एकड़ खाली जमीन है। एक-दो साल से हिन्दी वालों ने रहीम की ओर ध्यान दिया है। अब थमन से ही सही, शिक्षा मंत्रालय का भी ध्यान इधर कुछ आकृष्ट हुआ है। थमन से इसलिए कहता हूँ कि टूटते गुम्बद की मरम्मत का काम जिस तरह से शुरू हुआ है, उससे इस शताब्दी के अन्त तक भी मरम्मत नहीं हो सकेगी। खैर भूमि के चारों ओर तार लगाने का इन्तिजाम हो रहा है। शिक्षा मंत्रालय भली प्रकार समझता है कि इससे हिन्दी का पक्ष मजबूत होगा। हिन्दी वाले रहीम के मकबरे को लेकर यहाँ अपना काबा खड़ा करेंगे। लेकिन काबा हिन्दी वालों ने नहीं खड़ा किया वह तो पहले ही से यहाँ मौजूद है। रहीम दिल्ली में मरे वहीं दफनाए गए यह हिन्दी वालों का काम नहीं है। रहीम का जन्म लाहौर में १७ दिसम्बर १५५६ ई० में और मृत्यु जनवरी या फरवरी १६२७ ई० में हुई।

रहीम ने अच्छे दिन भी देखे और बुरे दिन भी। अकबर ने उन्हें जहाँगीर का अतालीक (गुरु) बनाया था। उसी जहाँगीर ने उनके लड़के का सिर काटकर खरबूजे की सौगात के रूप में थाल में रखकर उनके पास भेजा था। रहीम की उपेक्षा अब नहीं हो सकती यह निश्चय है। मकबरे में जड़े संगमरमर के बहुत से भाग को अपने नाम से बनी इमारत के लिए १८वीं शताब्दी के मध्य में सफदरजंग उखड़वा ले गया। अब भी कुछ संगमरमर की पट्टियाँ मौजूद हैं। इमारत को देखने लायक बनाने के लिए कई लाख रुपया की आवश्यकता होगी। संगमरमर की पट्टियाँ फिर सभी जगह लगा उन पर रहीम के अनमोल दोहे लिखे जाने चाहिए। यहाँ पुस्तकालय, रंगमंच बने। इसी रौजे में रहीम की मूर्ति स्थापित हो। आस-पास की जमीन में फूलों का बगीचा लगाया जाए। लोग यहाँ आकर साहित्यिक गोष्ठियाँ और समारोह करें। आज से सौ साल बाद दिल्ली रहीम के ऊपर फूली नहीं समायगी।

इरादा हुआ जामिया मिल्लिया भी चले चलें। शिव शर्मा और मैंने एक

बस पकडी। भलेमानुस ड्राइवर जामिया के पास तक छोड़ आया। हम ठीक समय पर नहीं आए थे। जामिया की छुट्टी हो रही थी। हमारे परिचित अध्यापक डा० सलामतुल्ला और दूसरे छुट्टियाँ मनाने बाहर चले गए थे। स्कूल को देखा। फिर ट्रेनिंग कालेज की तरफ गए। मकतबा के सचालक श्री हामिद अली खाँ मिले। उन्होंने अपने कामों को दिखलाया। यहाँ से अभी अभी वयस्कों के लिए हिन्दी में निकले विश्वकोश "ज्ञानसरोवर" की दस जिल्दों में से पहली जिल्द निकली थी। पुस्तक बडी उपयोगी थी, कोई हिन्दी का पक्षपाती उसमें कोई दोष नहीं निकाल सकता। हामिद अली साहब कह रहे थे—हमने आगे इसको निकालना बन्द कर दिया, क्योंकि सम्प्रदायवादी हिन्दू सरकार के जामिया मिल्लिया को रुपया देकर इस काम के करने की बुरी तरह से नुक्ताचीनी करते हैं। मैंने जोर देकर कहा—कम-से कम इसकी बाकी नौ जिल्दों को निकालने तक तो अपने हाथ को पीछे न हटाइये। हिन्दी हिन्दुओं की बपौती नहीं है। कुतबन मझन जायसी रहीम ऐसे दावे को झूठ साबित करते हैं। बीच की शताब्दियों में मुसलमान उदासीन रहे लेकिन वह समय बहुत जल्दी आ रहा है जब मुसलमान हिन्दी के अच्छे-अच्छे कहानीकार निबन्धकार और कवि होंगे। सारे हिन्दी क्षेत्र में मुसलमान तरुण-तरुणियाँ हिन्दी पढ रहे हैं। उन्हें अपना उचित स्थान पाने से कौन वंचित कर सकता है? क्या मुसलमान होने से हिन्दी साहित्यकार भेदभाव बरतेंगे? यदि कुछ संकीर्ण हृदय ऐसा करना भी चाहें, तो वैसा करने में वे सफल नहीं होंगे, यह मुझे पूरा विश्वास है।

यह ठीक है कि जामिया मिल्लिया में अब भी हिन्दी की उपेक्षा है और उर्दू को सर्वेसर्वा रखा जा रहा है। यहाँ के विद्यार्थियों में ऐसे भाव पैदा किए जाते हैं जिसके कारण यहाँ से निकले तरुण तरुणियाँ अपने को विशाल भारतीय जाति का अभिन्न अंग न मान पुराने पृथक्त्व को कायम रखें। एक नौजवान इतिहास के प्रोफेसर ने मेरी उर्दू "वोल्गा से गंगा" की भेंट की हुई कापी को इसलिए फाडकर फेंक दिया कि उसमें अकबर के एक मुसल्मान अमीर की लडकी का ब्याह हिन्दू अमीर के लडके से कराया गया था। इससे सन्देह और बढ जाता है। लेकिन समय इन प्रतिगामी लोगों का सहायक नहीं हो सकता। हिन्दी जाति एक हो के रहेगी, धर्म चाहे जो मान

या न पाते। मैं समझता हूँ, जामिया के सभी लोग ऐसे अदूरदर्शी नहीं हैं। मुझे इस्लाम सम्बन्धी पुस्तकों के बारे में कुछ जानना था। हामीद अली साहब ने पुस्तकाध्यक्ष नबी साहब और वायस चान्सलर मुजीब साहब से मिलने के लिए कहा। नबी साहब ने कुछ पुस्तकों का नाम बतलाया। मुजीब साहब बड़े प्रेम से मिले। उन्होंने दो-तीन पुस्तकों का नाम बतलाया, और साथ ही मेरा पता लिख लिया। पीछे उन्होंने कई पुस्तकों के नाम लिख भेजे।

शाम को राष्ट्रपति भवन में म्यूजियम को देखने गए। पता लगा, कालसी की खुदाई की ईंटें यहीं पर रखी हैं। यहीं श्री वृन्दावन बनर्जी से भेंट हो गई। यह तो मालूम हुआ सारनाथ से उनकी बदली हो गई है, पर यह नहीं जानता था कि वह यहाँ चले आए हैं। आज से २७ वर्ष पहले उनके पिता राखाल बाबू को मैंने जिस उमर में हिन्दू युनिवर्सिटी में देखा था, उससे भी इनकी उमर अधिक मालूम होती थी। उस समय काम के बारे में कहने पर राखाल बाबू ने कहा था—'अब तुम लोगों का काम करना है। हम तो बूढ़े हो गए हैं।' राखाल बाबू हमारे देश के प्रथम श्रेणी के इतिहासकार और पुरातत्त्वज्ञ थे। उनकी दूसरी पीढ़ी भी उसी मार्ग पर आरूढ़ है। वृन्दावन बाबू ने कितनी ही बातें बतलाईं।

उस दिन मेरे सभापति के भाषण में जोधपुर के एक तरुण से मुलाकात हुई। वह हिन्दी की गद्यकाव्य की लेखिका श्रीमती दिनेशनन्दिनी चोरड़िया के यहाँ ठहरे हुए थे। दिनेशनन्दिनी अब चोरड़िया नहीं डालमिया हैं। अब भी साहित्य के साथ स्नेह रखती हैं, और लिखती भी हैं। तरुण ने जब आकर कहा कि वह आप से बातचीत करना चाहती हैं तो मैंने स्वीकार कर लिया। और २० दिसम्बर को शाम को डालमिया भवन गया। दिनेशनन्दिनीजी से साहित्य पर बात होती होती राजनीति पर चली गई। मैं उसके लिए उतावला नहीं था। इसी बीच में श्री रामकृष्ण डालमिया भी आ गए। मुझे कैसे भूल सकते थे? एक मनचले डालमियानगर में रूस पर बोलने का उन्होंने विरोध किया था, लेकिन साथ ही दूसरी बातों को सुनने के लिए वह आखिर तक सभा में बैठे रहे। श्रीमतीजी कह रही थीं—धनी लोग सुख में डूबे रहते हैं यह धारणा गलत है। मैंने कहा—'पैसे का मूल्य धनी लोग उतना नहीं समझ सकते, जितना कि दो-दो दिन पर आधा पेट खाना

पाने वाला गरीब। श्मशान वैराग्य तो सभी को आ जाया करता है, लेकिन वह दो मिनट का होता है। धनी भी जब विपरीत परिस्थिति मे पडते हैं, तो उनको ऐसा वैराग्य हो जाता है। हाल मे ही डालमियाजी पर जो सकट आया था उसके कारण उनके परिवार मे इस तरह का श्मशान वैराग्य आना जरूरी था। अपने पुत्र का चक्रवर्ती और अपने को अगले जन्म मे कही का राजा होने की भविष्यवाणी ज्योतिषियो ने की थी। डालमियाजी उसी धुन मे चले जा रहे थे। अन्त मे जबकि उनकी पत्नियो और सन्तानो की सख्या एक दर्जन के करीब पहुँच गई तो पासा उल्टा पड गया। सट्टेबाजी से उन्होंने करोडो कमाया, और उसी सट्टेबाजी ने आज ऐसी हालत कर दी कि उनका सब-कुछ दामाद के हाथ मे चला गया। फिर परिवार क्या न चिन्तित होता? आज की सामाजिक व्यवस्था कितनी निष्ठुर है।

२१ को फुटपाथ पर जा रहे थे। किसी ने केला खाकर छिलका फेंक दिया था। देखा नही पैर पडा और फिसलकर गिर गए। बाँया घुटना छिल गया, खून नही निकला पर लाल हो गया। डायबेटीज वाले को तो इसी से बहुत बचना होता है लेकिन चौबीस घटे और तीसियो दिन कितना बचे, कभी आदमी चूक ही जाता है। तुरन्त पेनिसिलिन का मल्हम लगाया। अगले दिन कानपुर पहुँचना था।

कानपुर—पिछली रात को ही रेल पर बठे, २२ को ७ बजे स्टेशन पहुँचा। सेकेंड क्लास मे जगह मिल गई। सब के पास अधिक से अधिक सामान था, जिससे रास्ता रुक गया था। गाजियाबाद मे श्रीमती कमला चौधरी आइ। डब्बे मे अगर एक आदमी परिचित निकल आए, तो जगह मिल ही जाती है। उनके साथ छोटी लडकी भी थी, जिसे मैंने डेढ़-दो वर्ष का देखा था। अब वह कान्वेंट मे पढ रही थी। पिता मर गए थे, उसी सिलसिले मे कमलाजी मिर्जापुर जा रही थी। अब आयु का प्रभाव पडने लगा था। इधर उन्हें भी डायबेटीज की शिकायत है। रास्ते भर साहित्य और राजनीति की चर्चा रही। साढे ८ बजे गाडी कानपुर पहुँची। स्वागत के लिए मित्र किसी दूसरी ही तरफ ढूढ रहे थे। डब्बे मे से बाहर निकलने मे काफी मुश्किल पडी। समझा, समय बहुत बीत गया है इसी कारण कोई मित्र यहाँ नही पहुच सका। प्रतीक्षा किए बिना ही कुली से सामान

उठवा कर पुल पार ताँगे पर बैठ सीधे मनीराम की बगिया में श्री पुरुषोत्तम कपूर के घर पर पहुँचा। मालूम हुआ, लोग फूलमाला लिए प्लेटफार्म देख रहे हैं।

कानपुर में जब जब आया हूँ तब-तब प्रोग्रामों की बड़ी भीड़ रहती है। चाहे उसके कारण थोड़ा-सा तरद्दुद हो, पर इतने मित्रों से मिलकर मुझे प्रसन्नता हो रही। कानपुर की कई साहित्यिक संस्थाओं की ओर से शाम का स्वागत हुआ। प्रिंसिपल सद्गुरुशरण अवस्थी सभापति थे। मैंने भी स्वागत का उत्तर दिया। लौटकर आने पर घर पर ही प्रगतिशील तरुण लेखकों की गोष्ठी थी, जिसमें एक-दो घंटे बीते।

२३ दिसम्बर को जुहारीदेवी और म्युनिसिपल कन्या इंटर कालेजों में भाषण देना पड़ा। इनमें से जुहारी देवी में श्री पुरुषोत्तमजी की पत्नी श्री विमला कपूर पढ़ाती हैं। डबल एम० ए० करने का कुछ उपयोग होना करना चाहिए, यह सोच कर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। पर पुरुषोत्तमजी इधर बुरी तौर से फँस गए थे। साझे में लोगों का कारबार था। एक साझीदार के ऊपर इतना छोड़ दिया कि कई वर्षों तक लेखा-जोखा नहीं किया। फिर मालूम हुआ कि उन्होंने कई लाख के गुलछर्रे उड़ाये। एकाएक पहाड़ सिर पर पड़ा। बहुत-सी जायदाद बेचकर देने का भुगतान किया। अब भी बतला रहे थे ५० हजार रुपया बाकी है। रहने का घर भी रेहन है। जितना बक्त भार उतारने के लिए तरद्दुद कर रहे थे, यदि उतना पहले किया होता, तो यह दिन देखना ही क्या होता? पर हमारा संयुक्त-परिवार-योजना के लिए अभी ऐसे कड़े नियम नहीं बने हैं कि उसकी नैया को मँझधार में जाने से पहले ही खतरे का पता लग जाए। पुरुषोत्तमजी बहुत सहृदय और उदार पुरुष हैं। उनकी इस अवस्था को देखकर हमें भी दुःख हुआ। उनके घर में साथी संतापी जैसा कम्युनिस्ट पैदा हो गया है, जिसके कारण घर के स्त्री पुरुष भी कम्युनिज्म से भड़कते नहीं। पुरुषोत्तमजी और उनकी पत्नी रूस को अपनी आँखों देख आए हैं। वह जानते हैं कि वहाँ का जीवन सबके लिए कितना निश्चिन्त और सुख का है। हमारे प्रोग्रामों को पालन करने में पुरुषोत्तमजी हमेशा अपनी कार लिए साथ-साथ रहे।

शाम को ६ बजे श्रीचन्द्र कौशल के यहाँ भोजन का निमन्त्रण था।

सालों से मैंने रात के भोजन को छोड़ दिया है। इधर डाक्टरों के कहने पर कि एक ही समय पेटको पूरा भरना ठीक नहीं है उस रात पर भी बाँटना चाहा, लेकिन अभी अनुकूल नहीं साबित हुआ। फिर रात के वक्त सौ पचास किलोरी के भीतर रहते साग सब्जी खाना स्वीकार किया। अच्छा भी था, क्योंकि इसके द्वारा किसी मित्र को निराश करने से बच जाता था। कौशल जी के यहाँ साग-सब्जी तयार थी। पिछली एक यात्रा में कमला के साथ हम उनके घर पर ठहरे थे। उस वक्त दोनों भाइयों और देवरानी जेठानी ने बड़ा स्वागत सत्कार किया था। कौशलजी की बीवी बार बार पूछती थी—"कमलाजी को क्यों नहीं लाये?" मैंने कहा—एम० ए० का अन्तिम वर्ष है पढ़ाई में विघ्न होता इसलिए नहीं लाया। कौशलजी ने टंडनलालजी से बी० एस सी० किया था। हमारे परिभाषा के काम में उन्होंने बड़ी सहायता की थी। लेकिन टंडनलालजी की जगह वह टाले मुहल्लेवालों को इन्कम टैक्स के मामलों में परामर्श देने लगे। धीरे धीरे इसी ने व्यवसाय का रूप लिया और अब तो वह एल० एल० बी० होकर पूरे वकील बन अपने व्यवसाय में काफी ख्याति रखते थे।

उसी दिन शाम को बंगाली भद्रजनों की मिलनी में हिन्दी भाषा और राष्ट्रभाषा की समस्या पर मैंने भाषण दिया। छोटी सी सभा थी लेकिन सभी सुशिक्षित और सुसंस्कृत थे। उसी रात एक और साहित्य गोष्ठी में जाना पड़ा, जहाँ कानपुर के साहित्य राजनीति पितामह श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा और कुछ कानपुर के करोड़पति भी मौजूद थे। देर तक साहित्य चर्चा रही।

२४ दिसम्बर को सबेरे ६ बजे से रात के १० बजे तक पाँच जगह व्याख्यान देने जाना था, जिनमें एक डी० ए० वी० कालेज के पोस्ट ग्रेजुएट छात्रों के सामने था। एक स्तरवाले श्रोताओं के सामने बोलने में मुझे बहुत सुभीता होता है और अनेक स्तरवालों के सामने दिक्कत। इसका कारण यही है, कि मैं श्रोताओं को देखकर बोलता हूँ। व्याख्यान को जैसे तैसे श्रोताओं के सामने फेंकना नहीं चाहता। उस दिन दोपहर का भोजन श्री खेतानजी के यहाँ हुआ। खेतानजी मारवाड़ी हैं। उन्होंने प्रगतिशील साहित्य के प्रचार और प्रकाशन का काम अपने कररेंट बुक डिपो द्वारा किया है।

पुस्तक विक्रय और प्रकाशन के व्यवसाय को मारवाडी व्यवसायी पसन्द नहीं करते। इसमें सिमट कर बूंद जमा होती हैं और उन्हें चाहिए तुरन्त बने बने नफे, जिसम दो चार वर्ष म दो-चार करोड बनाय जा सकें। उनके सामने ऐसे उदाहरण भी काफी हैं। फिर सेतानजी तो साधारण प्रकाशक नहीं, बल्कि प्रगतिशील साहित्य के प्रकाशक हैं जिसम और भी कम लाभ होने की गुजाइश है। अपनी प्रगतिशीलता को उन्होंने व्यवसाय के तौर पर ही नहीं दिखलाया बल्कि अपनी जाति को भी चलेन्ज दिया। उनकी पत्नी मुस्लिम माता और हिन्दू पिता की सन्तान हैं। मारवाडियो के लिए यह कितना कडवा घूट है। तरुण की हिम्मत कितनी प्रशसनीय है इस कहने की आवश्यकता नहीं। उस दिन रात का साग भोजन था ललितकुमार अवस्थी के यहाँ हुआ। पहले ललितजी सम्पादक थे। वह अनिश्चित काम था, इसलिए अब वह कालज म प्रोफसर हैं। वह काय साहित्य साधना म सहायक है। उनकी वृद्धा माता अब भी जीवित है। उन्होंने दीवार पर टापा बना रक्खा था। पूछने पर मालूम हुआ कनौजिया म भी अहाई की पूजा होती है। भोजपुरिया म न देखकर मैंने समझ लिया था कि यह सिर्फ पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान की चीज है।

२५ दिसम्बर के बडे दिन को भी सवेरे ६ बजे से रात तक सभाओ का ताता रहा। एक जगह राष्ट्रीय सेवा सघ के कांग्रेसी तरुणो के सामने ससार उत्पत्ति पर और अन्तिम गोष्ठी म तिब्बत की खोजो पर बोला। यहाँ सयोग से श्री देवी प्रसाद शुक्ल (प्रयाग विश्वविद्यालय) भी मिले। ८० वर्ष के करीब पहुँच कर भी अभी वह काफी तन्दुरुस्त हैं।

उस दिन दोपहर का भोजन श्री जगदम्बाप्रसाद हितैषी के यहा हुआ। कान्यकुब्ज ब्राह्मणो का भोजन था, जिसम मास की प्रधानता थी। शाम को श्री कल्याण कपूर के यहाँ साग भोजन हुआ। पिछली बार कल्याणजी अर-विन्द के अनन्य भक्त मालूम हुए थे पर अब रमण महर्षि के थे। दोनों ही महापुरुष अब ससार छोड गये हैं। "भारत म ब्रिटिश राज्य के सस्थापक" पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए श्री सेतानजी ले गये। एक भार तो कम हुआ। उसके कुछ भागो को दोहरा कर यहीं दे दिया।

प्रयाग—२६ दिसम्बर को पौने ५ बजे सवेरे ही पुरुषोत्तमजी हमे

स्टेशन ले गये। सवा ५ बजे ट्रेन आई। पहले दर्जे का एक छोटा-सा कम्पार्टमेंट मिला। अंधेरे-अंधेरे ट्रेन रवाना हो गई। इलाहाबाद जिले में घुस गए थे, जब कि मनौरी के पास कहीं पर मिट्टी की छतों का स्थान खपड़ैलों ने लिया। मेरे लिए यह भेद काफी महत्व रखता है, क्योंकि मिट्टी की छतों का आरम्भ रूस में उराल पर्वतमाला से शुरू होते मैंने देखा था।

स्टेशन पर श्रीनिवासजी डा० उदयनारायण तिवारी श्री वाचस्पति पाठक, श्री जयगोपाल मिश्र और दूसरे मित्र मिले। वहां से हम श्रीनिवास जी के घर पर पहुंचे। भोजनोपरान्त पहले सम्मेलन मुद्रणालय में छपाई की गतिविधि देखने गए। आजकल प्रेस सम्मेलन परीक्षा-सम्बन्धी कागज छापने में अस्त व्यस्त था। जो मेली प्रूफ हमने देखकर लौटाया था उसका संशोधन भी नहीं हो सका था। यह जानकर संतोष हुआ कि पुस्तक आगे पढ़ी जा रही है। श्रीनिवासजी के यहाँ देखा, कि 'काल मार्क्स' के १८ फार्म छप चुके हैं। 'संस्कृत काव्यधारा' के छापने में वह हिचकिचा रहे थे लेकिन पीछे स्वीकार कर उन्होंने सम्मेलन मुद्रणालय में छपाना मंजूर किया।

कमला की चिट्ठी पाकर चिन्ता हुई। हेपी वेली में रतिलाला के यहाँ चोरी हो गई और चोर बराबर आ रहे हैं। मंगल परीक्षा देने देहरादून चले आए थे। उस वक्त भरोसा केवल भूत का था। कमला रिवाल्वर को हाथ नहीं लगाना चाहती थी। अब लिखा था— मुझे उसका अफसोस हो रहा है। बन्दूक और रिवाल्वर दोनों को अलमारी से निकाल कर चारपाई के पास टाँग रखा है।' मैंने लिख दिया— 'कल्याणसिंह के जिम्मे बंगले को लगाकर तुम देहरादून या अमृतसर चली जाओ।

अगले दिन सम्मेलन मुद्रणालय में गुठेजी से मुलाकात हुई। उन्होंने 'मध्य एसिया का इतिहास' को जनवरी तक निकाल देने के लिए कहा। मुझे संतोष क्या होने लगा जब कि मैं जानता था, कि प्रेसवाले, जितना ही जल्दी निकालने के लिए कहेंगे, वह उतना ही देर करेंगे। उसी दिन निरालाजी से मिले। स्वास्थ्य बुरा नहीं मालूम हुआ बस आयु का प्रभाव तो था ही। आजकल वह सिर्फ अंग्रेजी में बात करते थे। कुछ देर बात करके मैं वहां से उठा तो वह भी बाहर निकल आए। फोटो लिए और नमस्कार

करके विदा हुआ। भोजन डा० तिवारी के यहाँ था। पुराने जमाने की कुटिया को कुछ हजार लगा कर उन्होंने नया रूप दे दिया है। अब वह प्रोफेसर के रहने लायक है। पीछे थोडी सी साग-सब्जी की जगह भी निकाल ली। लेकिन, यह जानकर चिन्ता हुई, कि मालिकोंस कोई कागज-पत्र उन्होंने नही लिखवाया।

२८को सवेरे म्युनिसिपल म्यूजियम देखने गया। श्री सतीशचन्द्र काला ने सभी चीजें दिखलाइ। म्यूजियम का अब अपना भव्य मकान बन गया है। मैं पहली बार आया था। अभी स्थान अपर्याप्त है, और पास म कुछ और इमारतें बन भी रही हैं। पुराने खडित कलापूर्ण देवता जुट जाने चाहिए वह अपना मकान अपने बनवा लेते हैं—इस बात की यथार्थता मैंने यहा देखी। यह सुनकर अफसोस हुआ कि इसी जिले म अवस्थित कौशाम्बी की सामग्री यहा नही जमा की जा रही है। उसम से कुछ लखनऊ भी जाय इसम हरज नही, लेकिन, उस सामग्री का देखे बिना जो लोग कौशाम्बी देखेंगे, उनको घाटा होगा।

उसी दिन फतेहपुर जिले के एकडला के श्री ओमप्रकाश राउतजी ने अपने पूर्वजो के सगृहीत चित्रो को दिखाया। इनम से कुछ चित्र बहुत ही सुन्दर हैं। राजा मानसिंह कछवाहा का चित्र उनम से एक है। राग-रागनियो के दो सेट हैं जिनम से एक बहुत ही सुन्दर है। एकडला जसे और भी गुमनाम स्थान हमारे देश म और घर हो सकते हैं जहाँ पुरानी बहुमूल्य सामग्री सुरक्षित है। कुतबन की मृगावती ' और मंझनकी मधु मालती ' भी इनके संग्रह म मिली हैं। वहा कितनी ही संस्कृत की हस्त-लिखित पुस्तकें भी हैं। मैंने सलाह दी कि इन चित्रो को दिल्ली के राष्ट्रीय चित्रालय म भेजना चाहिए तभी ये सुरक्षित रह सकते हैं। ये राउत लोग एक विशेष जाति के हैं। इनके रीति रवाज राजपूतो की तरह हैं लेकिन उनके साथ ब्याह शादी नही होती। सबके गोत्र काश्यप हैं। एक गोत्र ही म ब्याह करना पडता है सिर्फ एक मूलस्थान का परहेज करते हैं।

कुछ देर के लिए श्री श्रीकृष्णदासजी के घर पर गये। उनकी बीवी ने मैट्रिक पास कर लिया है और एफ० ए० में बैठ रही हैं। मैं इसका श्रेय श्रीकृष्णजी को देना चाहता था, लेकिन मालूम हुआ, कि पति से पढने म

कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। सचमुच ही पत्नी ने हिम्मत का काम किया था। मध्याह्न भोजन के लिए श्रीगणेश पाण्डे के यहाँ आए। मांस और मछली दोनों बलियाटिक ढंग से बने थे। फिर वहीं के राधारमण कालेज फिर अग्रवाल इन्टर कालेज में व्याख्यान दिये। लौटते वक्त डा० बद्रीनाथ प्रसाद के यहाँ गये। बड़ी लड़की और लड़के का ब्याह हो चुका था छोटी लड़की अरुणा का ब्याह २३ जनवरी को होने जा रहा था। डाक्टर साहब का आग्रह था और मैं भी बहुत चाहता था लेकिन आगे के प्रोग्रामों के कारण फिर लौटकर आने में असमर्थ रहा। यह ब्याह और डा० बद्रीनाथ प्रसाद का परिवार नये भारत के निर्माण का महत्त्वपूर्ण काम कर रहा था। सिर्फ बड़ी लड़की का ब्याह अपनी जात में हुआ था पुत्र और छोटी पुत्री ने जात पात और प्रान्त प्रश्न की सीमाएं तोड़ डाली।

उस दिन शाम को पार्टी आफिस में गोष्ठी हुई। नागार्जुन ने अपनी कविता सुनाई। तरुण पण्डा ने बुन्देली के बहुत सुन्दर गीत गाये।

२९ दिसम्बर को सवेरे पहले डा० भगवतशरण उपाध्याय के पास गया। उनके पिता का शरीर सूख गया है पेट में कैन्सर है। चल फिर रहे हैं और परिवार की गाड़ी खींचे जा रहे हैं। भगवतशरणजी यही कुछ काम कर रहे हैं। यदि हिन्दी विश्वकोश का प्रधान सम्पादक मुझे बनना पड़ा, तो उनकी जरूरत मैं सबसे अधिक समझता। लेकिन, अभी तो वह केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के कारण खटाई में पड़ा हुआ था। उस दिन मध्याह्न भोजन डा० बद्रीनाथ प्रसाद के यहां हुआ। भोजन करते वक्त बार-बार लक्ष्मीजी याद आती थीं। इस घर में महीनों नहीं तो हफ्तों और न जाने कितनी बार मैं घर की तरह रहता, लक्ष्मीजी भोजन कराया करतीं। अब सदा के लिए वह इस सूना करके चली गयीं।

शाम को निराला परिषद की ओर से गोष्ठी हुई। पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, गिरीशजी और दूसरे मित्रों के साथ संयोग से श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी भी पहुँच गये थे। मिश्रजी ने अपने गाँव के प्राचीन अवशेषों के बारे में बतलाया जिससे मालूम हुआ कि आजमगढ़ में न जाने कितने महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक स्थान अनुसन्धानकर्त्ताओं की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सम्मेलन में झगड़े के कारण गतिविरोध हो गया था। इससे हिन्दीभाषी

क्षेत्र के साहित्यकारों का सम्मेलन के अवसर पर मिलकर विचार करना रुक गया था। अब की उसी तरह का एक सम्मेलन वर्धा में होने जा रहा था। वहाँ पर बहुत-से मित्रों से भेंट होगी यह ख्याल कर मैंने भी चलना स्वीकार कर लिया।

वर्धा—उस दिन साढ़े ७ बजे रात को काशी एक्सप्रेस पकड़ा। यद्यपि भीड़ थी पर ऊपर बिस्तरा बिछ गया था इसलिए सोने का आराम था। इसी ट्रेन से प्रयाग से कुछ और मित्र भी जा रहे थे लेकिन उस वक्त पता नहीं लगा। ३० दिसम्बर को ७ बजे सवेरे हमारी ट्रेन इटारसी पहुँची। यहाँ से ग्रांड ट्रंक पकड़नी थी। श्री ओमप्रकाश (राजकमल) श्री ज्योतिप्रसाद निर्मल और तीन चार और साथी वर्धा के लिए मिल गये। गाड़ी में बड़ी मुश्किल से जगह मिली। मैं और ओमप्रकाशजी अपने सामान को सैनिकों से भरे एक कम्पार्टमेंट में रखकर दूसरे डब्बे में चले गये। डाइनिंग कार में मध्याह्न भोजन करते कुछ समय बिताया। सामिष भोजन सवा रुपये में बुरा नहीं था। अब अपने सामानवाले डब्बे में आये। सैनिक सभी शिक्षित और मद्रासी थे। कश्मीर से छुट्टी पर जा रहे थे। सभी अंग्रेजी जानते थे, और उत्तर में रहने से हिन्दी भी बोलते थे। सैनिकों में अवश्य भारी अन्तर आ गया था। उनमें बहुत भद्रता देखने में आई। मुमकिन है शिक्षित होने के कारण हो।

आमला के पास टोकरियों में भर कर नारंगियाँ बिक रही थीं। दो रुपये में ८५ का टोकरा हमने भी खरीद लिया। आध घंटा लेट रहकर ट्रेन वर्धा पहुँची। स्वयंसेवक वहाँ तैयार मिले। पहले तो डर लग रहा था इस भीड़ में सामान कैसे निकालेंगे, दरवाजा खुलने का रास्ता ही नहीं था। लेकिन निकलना तो जरूर था, किसी तरह बाहर निकले।

हिन्दीनगर पहुँचे। डा० उदयनारायण तिवारी, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा, डा० नगेन्द्र, डा० दशरथ ओझा, श्री बलदेव नारायण मिश्र आदि बहुत से साहित्यकार आये हुए थे। मेरठ से प्रेमजी भी अपनी पत्नी के साथ पहुँचे। हम एक ही कमरे में ठहरे। अब की भी समिति के मकानों में वृद्धि हुई थी। खासकर वे कमरे नये थे, जिनमें प्रतिनिधि ठहराये गये थे। तम्बू भी पड़े थे। वहीं बंगले के पास उमरपुर के तिवारीजी

चाडूक के एक वृद्ध सेठजी के पास आये। दोनों साहित्य से अनुराग रखते हैं। सेठजी आर्यसमाज के भक्त हैं। उसके लिए वहाँ काफी खर्च करके संस्था कायम की है। तिवारीजी अपने गाँव की बातें बतलाते हुए बोले—अब तो जीविका का साधन यही हो गया है, इसलिए कभी दो चार साल में घर चला जाता हूँ।

३१ दिसम्बर को सम्मेलन की विषय निर्धारिणी की बैठक हुई। एक प्रस्ताव इस विषय का भी स्वीकार किया गया कि सम्मेलन के सम्बन्ध में सरकार एक विशेष कानून बनाये। वहीं बम्बई प्रवासी श्री माधवाचार्य से मुलाकात हो गई। मुझे क्या किसी भी आदमी की बात सुनने से शुरू शुरू में यही मालूम होगा, कि यह आदमी बहुत हल्का है। इस बात की आदत्का माधवाचार्य अपने ही बहुत सो मीठी सच्ची बातें करके बढ़ा देते हैं। लेकिन कुछ समय की बातचीत से मुझे मालूम हो गया कि इस पुरुष ने संस्कृत के दर्शन का गम्भीर अध्ययन किया है। ऐसे पण्डितों में से हैं, जिनकी संख्या दिन पर दिन कम होती जा रही है। व्रज में जन्मे थे, फिर काँची के प्रतिवादी भयंकर गुरु के पण्डितों में रहे। अगले दिन फिर मैंने दिल खोलकर बात करने का निश्चय किया था, पर मालूम हुआ वह सवेरे ही चले गये थे। मुझे बहुत अफसोस हुआ। उनकी विद्या का जैसा उपयोग चाहिए वैसा नहीं हो रहा था। बम्बई के किसी कालेज में संस्कृत पढ़ा रहे थे।

अपराह्न अधिवेशन में प्रस्ताव पास हुए। यह आशा रखी गई थी कि प्रयाग सम्मेलन के विरोधी दल के लोग यहाँ आएँगे और उनसे मिलकर कोई रास्ता निकाला जायेगा, लेकिन उनमें से कोई नहीं आया। सभापति श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र थे। अधिवेशन बहुत सफल रहा। उसके अन्त के साथ यह सन् भी खतम हो रहा था।

इस साल मेरे कार्यों में 'लेनिन', बचपन की स्मृतियाँ" और 'सरदार पृथ्वीसिंह (द्वितीय संस्करण) प्रकाशित हुए। विस्मृत यात्री और 'मार्क्स" करीब करीब छप चुके हैं। "संस्कृत पाठशाला और "संस्कृत काव्यधारा" लिखकर तैयार है। 'खादी" और 'भारत में अंग्रेजी राज्य के संस्थापक' प्रेस में है। समय का उपयोग किया यह जानकर संतोष हुआ।

१६

छोटी सी यात्रा

१ और २ जनवरी को वर्धा ही मे रहना पडा। वर्धा म आकर सेवाग्राम की यात्रा करनी आवश्यक हो जाती है। १ तारीख को सवेरे ७ बजे श्री हरिहर शर्मा (मद्रास) के साथ मोटर से ९ बजे हम सेवाग्राम पहुँचे। बापू की कुटिया सूनी थी पर वहा जहा-तहा साइनबोर्ड लगा दिय गए थे।

साढ़े ■ बजे महिला आश्रम की छात्राओं में बोलना पड़ा। पिछली यात्रा में छात्राओं की संख्या कम थी, लेकिन अब ५० ट्रेनिंग पानेवाली तरुणियों के भी हो जाने से उनकी संख्या ११२ हो गई थी। ट्रेनिंग पाने वालों को २५ रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिलती है। गांधीजी की प्रेरणा से भारतीय सांस्कृतिक वातावरण में लड़कियों को शिक्षा देने के लिए यह संस्था कायम हुई थी। बजाजजी और उनके परिवार का इसकी स्थापना और सहायता में बड़ा हाथ रहा। मैंने भारतीय संस्कृति पर ही बोलना आवश्यक समझा और बतलाया—हमारी संस्कृति कभी एकांगी, आस्तिक नहीं रही। यदि उसमें परमभक्त पैदा होते रहे, तो परमनास्तिक भी होते आए हैं। संस्कृति कोई पत्थर की लकीर नहीं है, बल्कि नदी का प्रवाह है, जो सदा प्रतिक्षण बदलता रहता है।

चलते समय एक सीढ़ी बाकी थी का ख्याल नहीं किया और अंगूठे में चोट लगवाकर खून निकलवा लिया। डायबेटीज में यह बुरा है और बुरी चीज सबसे पहले आ उपस्थित होती है।

कमला का ध्यान कलिम्पोंग जाकर रहने का ही रहा था। उनको हो लम्बे काल को पार करना है, इसलिए रहने के बारे में उनकी राय का ख्याल करना सबसे जरूरी है। आनन्दजी अब अधिकांश कलिम्पोंग में ही रहते हैं। वे बतला रहे थे, यहां साग-सब्जी दार्जिलिंग से भी ज्यादा महँगी मिलती हैं। लोगों में भारी बेकारी है, सम्पत्ति का मूल्य गिर गया है। सम्पत्ति का मूल्य तो और भी गिरेगा, बेकारी और भी बढ़ेगी, क्योंकि ल्हासा और तिब्बत के व्यापार ने कलिम्पोंग को बसाया था। अब ल्हासा से जो मोटर-सड़क टोमो (चुम्बी) उपत्यका के छोर तक बनकर आई है, वहां गंगतोक से करीब पड़ता है। अभी भी दोनों तरफ की सड़कों के छोरों के बीच में दो ही तीन दिन पैदल का रास्ता है, जिसे और कम किया जा सकता है। माल के लिए डांडे पर रोपवे लगा दी जाए, तो कोई अचरज नहीं। न भी लगे, तब भी अब आयात निर्यात का द्वार कलिम्पोंग नहीं, बल्कि गंगतोक होगा। पीछे मणिहर्षजी से मालूम हुआ कि अभी ही भारी किन्तु अपेक्षाकृत कम दाम वाले माल को गंगतोक से ल्हासा भेजा जा रहा है। कीमती माल के आयात निर्यात करने वालों को अपने कलिम्पोंग के घरों को भी

देखना है, और आगे पर जाने पर दाम में एक-दो पैसे का अन्तर पड़ता है जिसकी वे परवाह नहीं करते। तो भी आधुनिक यातायात का जितना सुभीता गन्तोक को प्राप्त है, उसके कारण खरीदने-बेचने वाले भी दोनों तरफ से बहुत ज्यादा पहुँचेंगे। यह सुनकर आश्चर्य नहीं होगा कि कुछ ही सालों बाद कलिम्पोंग की भाग्यलक्ष्मी भागकर गन्तोक चली गई।

उसी दिन ३ बजे मेरी अध्यक्षता में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की बैठक हुई। वस्तुतः इसी के लिए मैं एक दिन ठहर गया था, नहीं तो कल ही और मित्रों के साथ चला गया होता। श्री मोहनलाल भट्ट दुबारा मन्त्री चुने गए। बजट छोड़ दूसरे सब निश्चय कर लिये गए।

मऊ छावनी (मालवा) के श्री वैजनाथजी वहाँ के योगिराज मन्दिर की हकीकत बतला रहे थे। पहले योगिराज के पास आसमान से छप्पर फाड़कर सम्पत्ति आती थी। वह कई सालों से लाखों का मन्दिर बनवा रहे थे जिसमें इटालियन संगमरमर लगता था। हरेक बात तो रहस्यमय रखी जाती थी। पर बहुत दिनों तक रहस्यमयता रखना मुश्किल है, और योगिराज अरविन्द या रमण महर्षि की तरह साधन और साधक सम्पन्न भी उतने नहीं, इसलिए थोक दुकान से काम न होते देख उन्होंने खुदरा सौदे का भी काम शुरू कर दिया है। धर्मों ने हर देश की संस्कृति की बड़ी सेवा की, लेकिन सबसे बड़ा पाप उसका यही दुकानें और इनके सेठ हैं जो आँखों में धूल झोंककर दुनिया को भेड़ बनाना चाहते हैं।

प्रयाग—३ जनवरी को साढ़े ७ बजे सबेरे ही हम स्टेशन पहुँच गए। गाड़ी लेट थी। दिन भर चलने में कोई दिक्कत नहीं थी, पर इटारसी में प्रयाग रात को चलना था। पिछली बार जिस मुसीबत का सामना करना पड़ा था, उसके कारण यही समझा कि टिकट प्रथम श्रेणी का ले लिया जाए। ग्राण्ड ट्रंक दूर से आने वाली ट्रेन थी, जो यहाँ से सीधे इटारसी ले जाता। जगह अच्छी थी। नागपुर के कितने ही हरिजन कार्यकर्ता यही आशा रखते थे कि मैं वहाँ एक दिन के लिए उतर जाऊँगा। पर समय की कमी थी। ट्रेन में डा० अम्बेडकर के अनुयायी अनेक तरुण आए, जो अगली वैशाख पूर्णिमा के समय अपने नेता के साथ लाखों की संख्या में बौद्ध बनने वाले थे। उनके आग्रह को ठुकराना बड़ा मुश्किल था, लेकिन मजबूरी

थी। उन्होंने एक टोकरा नागपुर का सन्तरा लाकर रख दिया। इस वक्त सन्तरा का मौसम था।

शाम को ६ बजे इटारसी पहुँचा। यहाँ से काशी एक्सप्रेस पकड़ना था, और तीन घंटे प्रतीक्षा करनी थी। ट्रेन के क्लर्क ने बतलाया प्रथम श्रेणी में भी जगह मुश्किल से ही मिलेगी। गुनाह बेलज्जत तो नहीं होगा। पर अब तो पहले दर्जे का टिकट ले चुका था। प्रतीक्षालय में लोग भरे हुए थे। एक जेन्टलमैन और उनकी लेडी अपने बक्से के पास की कुर्सी पर बैठे थे जिनकी लड़की जया की उमर की ही थी। उसकी तोतली हिन्दी बिल्कुल वैसे ही निकल रही थी। वह बराबर जया को याद दिला रही थी। अपरिचित व्यक्ति से लजाना बच्चों का स्वभाव है। जान पड़ता है बच्चे एक ही तरह से सीढ़ियों का प्यार करते हैं यदि उनकी आनुवंशिक मानस सम्पत्ति एक जैसी हो।

८ बजे काशी एक्सप्रेस आया। चार सीट का एक कम्पार्टमेंट खाली था और चढ़ने वाले तीन ही थे। एक सीट आगे भरी। मानिकपुर पहुँचते पहुँचते ६ बजे सवेरा हो गया। रात को सोने का काम खतम हो गया था इसलिए यदि डब्बे में सोने की गुंजाइश न हो तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था। साढ़े सात बजे गाड़ी स्टेशन पर पहुँची और रिक्शा से मैं श्रीनिवासजी के मकान में पहुँच गया। कमला की तीन चिट्ठियाँ मिलीं। यह शिकायत स्वाभाविक ही थी कि उनके पास लिखी गई मेरी चिट्ठियाँ बड़ी होनी चाहिएँ उनमें ज्यादा बात रहनी चाहिएँ। यह कठिन भी नहीं था, क्योंकि अपनी यात्रा में से ही कितनी ही चीजें मैं लिख सकता था लेकिन हर वक्त तो सभाओं, गोष्ठियों और मित्रों का ताँता रहता था। कार्ड नापसन्द होने से मैंने छः पैसे का पत्र लिखना शुरू किया था लेकिन उसमें भी रुचि की बातें अधिक नहीं लिख सकता था।

श्रीनिवासजी से तै हुआ था कि मैं रायल्टी २० सैकड़ा से कम करके १५ सैकड़ा लूँगा और वह ५०० रुपया मासिक रायल्टी में से अग्रिम देते रहेंगे। जब तक रायल्टी छः हजार सालाना नहीं हो जाती तब तक उन्हें अवश्य अधिक देना पड़ेगा, जिसे वह आगे काट लेंगे। उन्हें आशा थी, दो एक वर्ष में रायल्टी उतनी मिलने लगेगी। मसूरी में पाँच सौ रुपये मासिक

औसतन सच जरूर आ जाता है। एक यह भी कारण था जिससे कमला का कलिम्पांग जाना मुझे पसन्द था। वहां शायद तीन सौ रुपये में काम चल जाता। दुनिया की आज की व्यवस्था विशेषकर साम्यवादी देशों के बाहर, ऐसी है जिसमें निश्चित जीवन बिताना मुश्किल है। आर्थिक चिन्ता स्वाभिमानी और अनेक मित्रों वाले आदमी के लिए सबसे मुश्किल है।

उस दिन रात को श्री अशोक (जमुनाप्रसाद वैष्णव) के यहां शाम को भोजन के लिए गया। भोजन तो स्टार्च रहित साग पात ही थोड़ा सा मैं शाम को करता हूं लेकिन वहां अनेक पर्वतीय साहित्यिक मित्रों से मुलाकात हुई।

९ जनवरी को नागार्जुनजी आए। वह एक उपन्यास के लिखने में लगे थे। प्रकाशक ने पिंजरे में बन्द कर रखा था ताकि समय पर वह पुस्तक को समाप्त कर सकें। मैंने सोचा था "संस्कृत काव्यधारा" वही लिखेंगे। कई सालों की प्रतीक्षा के बाद जब उसे नहीं होता देखा तो स्वयं ही हाथ लगाना पड़ा। "पालि काव्यधारा" के बारे में भी किसी दाता को ढूंढ रहा हूं देखूं वह मिलता है या उसे भी अपने ही करना पड़ेगा।

उस दिन सवेरे श्री रामनाथ त्रिवेदी आए। पंचायती चुनाव हुआ था जिसकी बातें बतला रहे थे। कह रहे थे—बड़ी जात वालों ने बड़े छल बल से अपने प्रभुत्व को कायम रखना चाहा। लेकिन, बार बार बहुजन को धोखा कैसे दिया जा सकता है? उसी दिन महादेवीजी के महिला विद्यालय में भी गये। डेढ़ घंटे तक वही साहित्य और राजनीति पर बातें होती रहीं। अपनी परेशानियां वह बतला रही थीं। प० सुन्दरदास की तरह महादेवी-जी भी काजी जी दुबले शहर के अंदेशे के फेर में पड़कर साहित्यकारों को सहायता पहुँचाना चाहती हैं। सभी अपनी अपनी इच्छाओं को लेकर आते हैं। महादेवीजी के पास अक्षय भण्डार तो नहीं है। यदि किसी की इच्छा पूर्ण नहीं होती तो वह विरोधी बन बैठता है। ऐसे भी हैं जो उनको ढाल बनाकर अपना काम सिद्ध करना चाहते हैं, जिसकी बदनामी भी उनके ऊपर पहुँचती है। लेकिन वह अपनी आदत से मजबूर हैं। अब उमर भी ऐसी आ गई है जबकि ठोकर खाकर सीखना मुश्किल है। आदमी कछुआ तो नहीं है जिस वक्त चाहे सिर हाथ बाहर फैला दे और जिस वक्त

चाहे भीतर खींच ले। बढ़ा हुआ व्यक्तित्व अनेक खूटियों में बँध जाता है जो आदमी के मान से बाहर की होती हैं। उस दिन शाम को ६ बजे श्री पतिरायजी के घर पर चाय और गोष्ठी हुई। श्रीपतिराय बड़े व्यावहारिक हैं, हां बुरे अर्थों में नहीं। इसकी पहचान तो उनकी सवारी ही बतला रही थी। उन्होंने एक ऐसी छोटी टक ले रखी थी, जिसमें ड्राइवर की सीट पर दो आदमियों को और बैठा सकते थे और पीछे सात आठ मन सामान आसानी से रख सकते थे। बतला रहे थे मैं परिवार को लेकर पहाड़ पर भी इससे हो आया हूँ। हाँ, व्यवसायी को ऐसी ही सवारी चाहिए। वह दो मोटरों का काम एक से ले रहे थे। गोष्ठी में कवि श्री सी० वी० राव, डा० भगवतशरण उपाध्याय और दूसरे कितने ही नवयुवक साहित्यकार आये थे। साहित्य पर ही हमारी बातचीत होती रही।

बनारस—बनारस प्रयाग से छोटी बड़ी दोनों लाइन जाती हैं पर मैं बराबर ही छोटी लाइन से आया-जाया करता हूँ। शायद इसका कारण ट्रेनों के समय की अनुकूलता हो। लेकिन आजकल तो अनुकूल नहीं थी। ट्रेन ५ बजे अंधेरा रहते रवाना होने वाली थी इसलिए साढ़े ४ बजे ही स्टेशन (रामबाग) जाना जरूरी था। जब ५ बजने में आधा घंटा रह गया तो श्रीनिवासजी के ड्राइवर की आज्ञा छाननी पड़ी। उसकी जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि मेरी शंका निर्मूल साबित हुई और आनन्द भवन के सामने कई रिक्शे उस समय भी खड़े थे। स्टेशन पर पहुँचा। ८ बजकर १० मिनट पर गाड़ी रवाना हुई। 'संस्कृत काव्यधारा' के प्रकाशित करने की मुझे सबसे ज्यादा चिन्ता थी। श्रीनिवासजी ने उसे ले लिया और गुण्टेजी ने सम्मेलन मुद्रणालय में छापना भी स्वीकार कर लिया था लेकिन छपाई के मोल भाव के ठीक होने में काफी समय लगा। तो भी मैं उसके सौ पृष्ठ देख चला था। ट्रेन के बाहर देख रहा था—सरसों मटर फली हुई है आलू की फसल भी तैयार होने लगी है। देहात में भी बिजली के खम्भे खड़े देखकर आश्चर्य करने की जरूरत नहीं थी। हमारे उत्तर प्रदेश और बिहार के बहुत भाग की समस्या सिंचाई है। जब तक जमीन के नीचे बहती गंगा को ऊपर नहीं लाया जाता, तब तक हर दूसरे तीसरे साल फसल की भारी क्षति को रोका नहीं जा सकता। ट्यूबवेल जारी करने के लिए बिजली की

की जरूरत है। यह बिजली सिर्फ उन्हीं में खर्च होगी क्योंकि जैसी गरीबी हमारे गाँवों में है, उसके कारण गाँवों में शायद इक्के-दुक्के घर ही बिजली लगाना पसन्द करें।

स्टेशन पर श्री सत्येन्द्रजी के पिता और पं० देवनारायण द्विवेदी मौजूद थे। सत्येन्द्रजी के पिता की फ्रेंच कट दाढ़ी बतला रही थी, वह प्राचीन-पंथी नहीं हैं। और पीछे तो उनके साहित्यिक विचार भी बहुत उदार मालूम हुए। सीधे सेवा उपवन पहुँचे। सत्येन्द्रजी को अपने प्रेस के काम के लिए उसी दिन कलकत्ता जाना था, लेकिन उनके अनुज और घर की शिक्षित महिलाएँ मौजूद थीं। जाकर पहले स्नान भोजन किया। सत्येन्द्रजी के दोनों बहनोई सैनिक अफसर हैं, एक लेफ्टिनेन्ट कर्नल और दूसरे कप्तान। कप्तान साहब अपनी पत्नी के साथ इस वक्त ससुराल में आये थे। बनिए फौजी अफसर हों, यह आश्चर्य की बात होगी। पर भारत को ऐसे अलग-अलग रहने वाले न बनियों की आवश्यकता है, न क्षत्रियों की, न और किसी की। वह पुराना कटघरा पहले भी कायम नहीं रह सका और अब तो ताले से लेकर वह बच ही नहीं सकता। आखिर अग्रवाल तो आज से डेढ़ ही हजार वर्ष पहले दुर्धर्ष जयमन्त्रशाली यौधेय क्षत्रिय थे। उनके गण राज्य का नाश हुआ। उसके पुनरुज्जीवित करने की कोई सम्भावना नहीं रह गई, फिर आग्रेयों और उनके दूसरे बन्धुओं ने तलवार की जगह तराजू पकड़ लिया। अब यदि वह तराजू को फिर तलवार से बदलें, तो इसमें कहने की क्या बात है? कोई भी पेशा किसी की बपौती नहीं है। जिसकी भी उसके विषय में रुचि और क्षमता हो, उसे करना चाहिए।

बनारस में सत्येन्द्रजी के आतिथ्य में कुछ सुभीता भी है। घर में आत्मीयता मालूम होती है। यद्यपि सत्येन्द्रजी की पत्नी और उनकी देवरानी सुसंस्कृत सुशिक्षित महिला होने से कुछ सुनना चाहती हैं, और यह मेरे लिए उनके आतिथ्य से उऋण होने का भी अच्छा अवसर है, लेकिन बराबर कोई न कोई मित्र आये रहते हैं, या मुझे ही दर्शन करने के लिए उनके स्थानों में जाना पड़ता। इसलिए मैं अपने ऋण को अदा नहीं कर पाता। उस दिन ३ बजे मोटर से निकला, तो पहले अस्सीघाट पर जगन्नाथ मन्दिर में गया। बचपन की एक उड़ान के दो-तीन दिन के साथी पुजारी दशरथजी मिले।

उनके सारे बाल सफेद और बुढ़ापे की पूरी पकड़ में आ गए थे। उनके बड़े भाई अब इस दुनिया में नहीं थे। थोड़ी देर उनसे दुख सुख की बातें चलती रहीं। फिर मोतीराम के बगीचे में गया। मोतीराम का बगीचा अब नहीं कहना चाहिए, यह आयर्वेद पाठशाला है। पर मोतीराम के बगीचे का नाम मेरे लिए जितना प्रिय है, उतना यह नाम नहीं। विशेषकर जब कि मैं देखता हूँ कि अपने समय के निष्कपट भक्त महाविद्वान वास्तविक सन्त मौनी ब्रह्मचारी का नाम मिटाकर यह विद्यालय खोला गया। मुझे काल से यही विश्वास है कि दूसरे के नाम को मिटाकर बनी इस संस्था का भी नाम मिट जाएगा। सेठों ने कोई धर्मपूर्वक धन नहीं कमाया है कि उन्हें मनमानी करने के लिए छोड़ दिया जाए।

फिर हिन्दू यूनिवर्सिटी के संग्रहालय (म्यूजियम) गए। दस लाख की इमारत बन रही है। अभी उसके नीचे के ही कुछ कमरे तयार हो पाए हैं। सामग्री यहाँ आ गई है। राय कृष्णदासजी ने इस संस्था की नींव डालते चित्र, मूर्तियाँ और दूसरी चीजें बड़ी लगन से नागरी प्रचारिणी सभा में एकत्रित करनी शुरू की थी। अब वह एक बड़े संग्रहालय की बुनियाद बनने जा रही हैं। यहाँ के चित्रों के संग्रह में कवि रहीम की तस्वीर भी है। वहीं कूटस्थ अचल विद्वान जिज्ञासुजी भी मिल गये। मारकण्डेय की तरह उनके ऊपर काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कह रहे थे—आप ऋग्वेद के इतिहास के सम्बन्ध में लिख रहे हैं तो पुस्तक निकल जाने दीजिए, हम उसके जवाब में साबित करेंगे कि ऋग्वेद दो अरब वर्ष पहले सृष्टि के आदि में भगवान् का दिया हुआ ज्ञान है। विचारों में भेद रहते हुए भी जिज्ञासुजी की लगन और स्वाध्याय की मैं सदा कदर करता रहा हूँ। आखिर आर्य समाज से मैंने भी कुछ बातें सीखी जिस उपकार को मैं भुलाना नहीं चाहता। यहीं डा० राजबली पाण्डे भी मिल गये। वहाँ से डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के यहाँ थोड़ी देर बैठे। निवास पर आने पर आचार्य जगन्नाथ उपाध्याय तथा कितने ही दूसरे तरुण मिले।

पत्रों में आने की खबर छप चुकी थी। पत्र आधुनिक दुनिया की महान् देन हैं। और अखबार से यह भी सुभीता है कि बनारस में मुझे अपने मित्रों को आने की सूचना देने के लिए अलग अलग पत्रों के लिखने की जरूरत

नहीं पड़ती। ▪ जनवरी को सवेरे साढ़े ७ बजे ही से मिलने जुलने वाले आने लगे तो १२ बजे तक उसका ताँता बराबर जारी रहा। भोजनोपरान्त श्री अत्रिदव विद्यालंकार के यहाँ गया। गुरुकुल के स्नातक प्राचीन साहित्य और विद्याओं के बारे में इतने साधन सम्पन्न होते हैं कि यदि वह चाहें तो बहुत काम कर सकते हैं। अत्रिदेवजी ने आयुर्वेद को अपना विषय बनाया और उस पर उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। उनके पास ही अंग्रेजी के अध्यापक डा० आत्मा मिल गये। मैं सोच रहा था यह चेहरा कहीं देखा हुआ है पर याद नहीं आ रहा था कि १६४८ में प्रयाग में कितनी ही बार हम दोनों घंटों टहला करते थे। इस बीच में वह कई साल अमेरिका रहकर आये थे और वहाँ की प्रगति से बड़े प्रभावित थे। सोचते थे भारत भी उसी रास्ते प्रगति कर सकता है।

वहाँ से भारतीय महाविद्यालय (कालेज आफ इण्डोलोजी) में डा० राजबली पाण्डे प्रिंसिपल की अध्यक्षता में तिब्बत के बारे में भाषण दिया। हिन्दू युनिवर्सिटी में मैंने तो समझा था यही एक भाषण होगा और शायद विद्यार्थियों ने भी ऐसा ही समझा था। इसलिए वह बड़े लेक्चर हाल में भी कैसे समा सकते थे? उसके लिए तो हाल की जरूरत थी। वहाँ से साहित्यकारों की गोष्ठी में गया। वहीं शान्तिप्रिय द्विवेदी मिल गए। गोष्ठी के बाद हम साथ ही रिक्शे पर चले। शान्तिप्रिय द्विवेदी का व्यक्तित्व बड़ा सीधा सादा करुण है और साथ ही मोहक भी है। उनको देखकर मुनी अष्टावक्र की आकृति सामने आ जाती है। वह बिल्कुल स्वनिर्मित पुरुष और भाषा के तो महान् शिल्पकार हैं। एक एक शब्द को तोल कर और सँवार कर लिखते हैं। भाल मारे भी कितने? पर उसका अर्थ यह नहीं कि प्रतिभा में कमी है। वस्तुतः आदमी बुद्धि में भी ऊपर होती है। शान्तिप्रियजी को सबसे ज्यादा रोटियों की मालूम होती है। उस मास भर शरीर के लिए रोटियाँ चाहिए ही कितनी? पर ठिकाने से या उनकी रुचि के अनुसार उसका प्रबन्ध नहीं हो पाया। आजकल वह किसी वृद्धा के यहाँ रोटी खा रहे थे। शान्तिप्रियजी को ४ बजे शाम या १२ बजे रात को रोटी चाहिए वह इतनी देर कैसे मिल सकती थी? मैंने कहा— "ब्याह क्यों नहीं कर लेते?" ब्याह की बात पूछने मुझे वाचस्पति पाठक की बात याद आ रही थी। दोनों

ही एक ही शहर के रहने वाले ठहरे, इसलिए बहुत पहले से एक-दूसरे से परिचित थे। तुलसीदास ने सच ही कहा है "तुलसी वहा न जाइय जहा जनम का ठाँव। भावभक्ति का भरम न जाने घर पाछिलो नाव।" शान्तिप्रियजी का लड़कपन म मुच्छन नाम पड़ गया था। उनके कभी भी बड़ी बड़ी मूँछें रही हो यह सम्भव नहीं मालूम होता इसलिए यह नाम बिलकुल अयुक्त था। पर पुराने यार लोग अब भी मुच्छन कहकर पुकारने के लिए तैयार हैं। बड़ी कमाई करके इतना सुन्दर शान्तिप्रिय नाम मिला था अब वह फिर लौटकर पुन मूष' कसे बन सकते थे? अपने पुराने मित्रो पर विश्वास करना आदमी का स्वभाव है। पाठकजी पर भी उन्होने विश्वास किया जब उन्होने कहा कि मैंने तुम्हारे लिए एक बहू ढूढी है। बहू भी उन्होने पचास वष की ठीक कर ली थी—ठीक क्या कर ली थी उसको अभिनय करने के लिए तैयार कर लिया था। शान्तिप्रियजी का भोजन वही निश्चित किया गया। भावी पत्नी महान् साहित्यकार के चरणो म पलका के पावडे बिछाने के लिए थी। महिला किसी स्कूल मे अध्यापिका थी बहुत सुसस्कृत और शिक्षित थी, इसलिए उनके एक एक शब्द यदि मधु से पाबे हो, तो आश्चय क्या? पाठकजी ने सकेत करने की कोशिश की यही आपकी भावी पत्नी है पर शान्तिजी का मन नही मान रहा था। आखिर वह कसे विश्वास कर लेते कि उनका बालमित्र उनके साथ मजाक कर रहा है। मजाक नही धोखा हो यह समझ सकते थे। वह बूढी रमणी को देखकर यह विश्वास कसे कर लेते कि इन्ही के साथ मुझे अपना सारा जीवन खेना है। लेकिन, नाटक तो एसा ही किया गया था। शान्तिजी को यह मालूम हुआ या नही कि ब्याह की बात मजाक की नही थी। एसा न होने पर भी वह बुढिया से ब्याह करने के लिए कसे तैयार होते? आखिर उन्होने कविहृदय पाया था उन्हे अपने शरीर और चेहरे के अनुरूप नही बल्कि कला और विद्या के अनुरूप पत्नी मिलनी चाहिए। सचमुच हो इस बड़े अफसोस की बात माननी पड़ेगी कि इतने सुन्दर साहित्यकार की गुणग्राहिका एक भी तरुणी सारे जम्बूद्वीप मे न मिले। मैंने भी पाठकजी की घटना से अनभिज्ञता प्रकट करते हुए यही सलाह दी कि कम अपनी उमर की अथवा चालीस वष से ऊपर की महिला से ब्याह कर लो रोटी का दुःख तुम्हारा हमेशा के

लिए दूर हो जायगा। लेकिन उनके दिमाग में यह बात समाने वाली नहीं है। शान्तिप्रियजी के प्रति जैसा मेरा स्वाभाविक स्नेह है, वैसा बहुत कम ही के बारे में मैं कह सकता हूँ। मैं स्वप्न में भी इसका खयाल नहीं कर सकता कि उनको अपनी किसी हरकत से दुख दूँ।

शाम को साढ़े ६ बजे कार से गोदौलिया के चौरस्ते के पास बनारस लाज में पत्रकारों के सामने भाषण देना था। बनारस की सड़कें आजकल के जमाने के लिए नहीं बनाई गई थीं, खासकर चौक में विश्वविद्यालय और चौक से स्टेशनों को जाने वाली सड़कें। इतनी भीड़ होती है कि वहाँ रास्ता पाना मुश्किल हो जाता है। हर समय डर लगता है कि कोई दुर्घटना न हो जाए। चौक तो पहले ही जमा हुआ था, अब गोदौलिया से दशाश्वमेध तक की भी सड़क बड़ी-बड़ी दूकानों से भर गई है। इसी पर बनारस लाज का यह भव्य होटल था, जो अभी पूरा तौर से बनकर तैयार नहीं हुआ था। पत्रकार पितामह श्री लक्ष्मीनारायण गर्दे अध्यक्ष थे। पत्रकारों की काफी संख्या वहाँ जमा हुई, जिसे जब मैं अपने विद्यार्थी जीवन के बनारस से मुकाबिला करता, तो मालूम होता, काशी भी काल के प्रवाह में बहने से नहीं बच पाई। ये पत्रकारों की जमात और यह भव्य होटल इसके साक्षी थे।

सारनाथ—८ जनवरी को सारनाथ का प्रोग्राम था। पं० देवनारायण-जी साथ में थे। मोटर से सारनाथ इस रास्ते शायद अब अंतिम बार जाना हो रहा था, क्योंकि चौक से सीधे सारनाथ जाने वाली सड़क के लिए वरुणा में पुल बन रहा था, जो कि अब की ही मई में बुद्ध की २५वीं शताब्दी के महोत्सव के समय तैयार हो जाने वाला था। हम ९ बजे सारनाथ पहुँचे। पिछले साल से वैसे भी कुछ परिवर्तन होता, लेकिन २५वीं शताब्दी के कारण तो यहाँ निर्माण में बड़ी तत्परता देखी जा रही थी। पचीसों लाख रुपये हमारी सरकार खर्च कर रही थी। स्टेशन पुरानी जगह से खिसककर अब मूलगंध कुटी विहार के पास वाले नरोखर पोखरे के पूर्वी भीटे पर जाने वाला था, और नरोखर के बीच से सड़क बनकर सीधे विहार में लाई जा रही थी। पुराने स्टेशन से आने वाली सड़क से निकलकर जो कच्ची सड़क विहार की ओर जा रही थी, वह भी पक्की बनाई जा रही थी। महाबोधि

इटर कालेज के पीछे की ओर इट की कई पक्की इमारतें मेहमानो के लिए तैयार की जा रही थी। हजारो आदमी चीटी की तरह नव निर्माण म लगे हुए थे। चीना मन्दिर ने अपन आस पास की बहुत सी जमीन खरीद ली है लेकिन उसके अल्पशिक्षित भिक्षु सरकार स कोई सहायता लेन क लिए तैयार नही। डरते हैं, सरकार का अधिकार हो जायेगा। वह अपने हाथ पैरो पर ज्यादा विश्वास रखत हैं। दो या तीन हैं, पर अपनी जमीन को आबाद करक वह खाने पीने म स्वावलम्बी बने हुए हैं। कुछ पस कलकत्ता के चीनी बौद्ध भक्त दे दिया करते है। नवीन चीन यदि कोई अपना बौद्ध विहार या दूसरी सस्था कायम करना चाहेगा ता उसके लिए सबस उपयुक्त यही भूमि है। महाबोधि चिकित्सालय के पास तीन बीघा जमीन लेकर एक तिब्बती लामा न भी अपना मन्दिर खडा करना शुरू किया है। दो कमरे बन चुके हैं। अब अधिकाश तिब्बती यात्री वही ठहरते है। देशानुसार धार्मिक सस्थाओ के बनाने का यह शाप है। फिर सभी देशो के लोग ऐसे स्थानो म एक परिवार की तरह कसे रह सकेगे? यह ता मालूम हो रहा है कि विहार के आस पास के बहुत स उपजाऊ खेत अन्न खेती के लिए नही रह जाएग। वैसे भी घर पीछे इतना खेत लोगो क पास नही रह गया था कि एक व्यक्ति भी साल भर उसकी उपज स जीविका चला सके। विहार ध्वसावशेषो चीनी मन्दिर और तिब्बती लामा से भेंट मुलाकात करत बर्मी धर्मशाला म गए। किन्तिमा बाबा आजकल बर्मा गय हुए थे। मरे भतीजे उदयनारायण पाण्डे और उनका परिवार मिला। अभी ही वह शरीर से अधिक भारी और थुलथुले हो गए थे। इतनी जल्दी वयविकार हा जाता है। पर वस्तुत इसम विकार कारण नही बल्कि काल की गति को न परखना कारण हाता है। अपने लिए बीते हुए बीस साल कल जसे मालूम होते है, लेकिन वह इतन छोटे ता नही होते। उनके छोटे भाई रामविलास भी यही ठहरे थ। टी० बी० का सन्देह है। घर के दो और भाई मट्रिक पास कर घर म ही खेती म लगे हुए हैं, पर उनके पिता का खयाल है कि वह भी किसी नौकरी मे लग जाएँ। मेट्रिक पास को ५० रुपये महीन मिलेंगे, और मसूरी म खा पीकर ३० रुपय महीना मामूली रसोइये को देना पडता है। बुद्धिजीवी से शरीरजीवी का मूल्य ही महँगा है। उनके घर मे ३० ४० एकड बहुत अच्छी

उपजाऊ जमीन है। यदि खेती करें, तो वहीं अच्छी तरह से रह सकते हैं। पर, पुरानी खोपड़ी कुछ सोच नहीं सकती। वह बीते युग की चतुराई से पार होना चाहती है, जो इस समय के लिए कोई काम नहीं देती। उदयनारायण ने बतलाया—पास के गाँव में हमारी बहुत अच्छी जमीन थी, जिसका तीन हजार आसानी से मिल जाता था। हमने कहा बेच दें, क्योंकि हम उसे आबाद नहीं कर सकते। पिताजी को पसन्द नहीं आया। वह पुराने जमाने की बात सोच रहे थे। समझ रहे थे—जब हमारे नाम जमीन है, तो उसको कौन ले सकता है? लेकिन आजकल के जमाने में जमीन को वही अपने हाथ में रख सकता है, जो उसकी सेवा पूजा कर सकता है, उसको जोत सकता है। किसी ने दावा कर दिया, पटवारी को सौ पचास रुपये दिए, और उसने कागज पर उसका नाम लिख दिया तो वह जमीन हाथ से चली गई।

श्यामलाल भाग्य को और दुनिया को दोष दे सकते हैं। शायद यह समझकर सन्तोष कर सकते हैं कि इस लोक में नहीं तो परलोक में न्याय जरूर होगा। पर, न्याय का रास्ता बड़ा गहन है। क्या उनके पूर्वजों ने न्याय करके बनला गाँव की सारी भूमि को अपने हाथ में लिया था? आखिर वहाँ के वही जातवालों के भाग जाने पर जो लोग अब भी चिराग जलाते चले आये थे, वे वहीं पर रहते थे, और अपनी संख्या और सामर्थ्य के अनुसार कुछ खेतों को आबाद भी किये हुए थे। पर राज्य हिन्दू का हो, या मुसलमान या अंग्रेज का, सभी चाहते हैं, भूमि की लगान नियमपूर्वक मिला करे, ऐसे मोटे आसामी को पकड़ें, जो किस्त-बकिस्त रुपया अदा करे। छोटी जात वालों पर विश्वास नहीं कर सकते थे, इसलिए जब १८वीं सदी के शुरू में यहीं जात वाले इच्छा पाण्डे अपने चक्रपानपुर गाँव से बनला आने के लिए तैयार हुए, तो पुराने निवासियों का कोई भी ख्याल न करके गाँव उनके नाम लिख दिया गया। यह क्या कोई न्याय था? और यदि वह न्याय था, तो आज का न्याय है—जो जोते, उसकी भूमि।

लौटते समय गरुभाग में रामानन्द विद्यालय का आग्रह भी मानना पड़ा। इस विद्यालय को मेरे मित्र स्वामी भागवताचार्य ने स्थापित किया था। संस्था एक बार स्थापित हो जाय, और अगर उसकी आवश्यकता है,

ता कितनी कठिनाइयो म पडने पर भी वह मरती नही। इसका उदाहरण यह विद्यालय था। यहाँ कई विषया की आचाय तक की पढाई हाती है। विद्यार्थियो म रामानन्दी (वैरागी) वष्णव ही अधिक हैं। हमारे समय म बडी मुश्किल से एक दो आचाय वैरागी मिलते थे। अब विद्या म अधिक प्रगति हुई है। विद्या और काल ने मिलकर लागो का अधिक उदार भी बना दिया है। मैं किसी समय वैरागी था, आयसमाजी हुआ बौद्ध भिक्षु बना, और फिर बुद्ध के प्रति अपार श्रद्धा रखते हुए मावस का शिष्य बन गया। यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात थी कि जिन घाटो से मैं गुजरा वे सभी मेरे प्रति आत्मीयता रखते हैं। यहा वसी ही आत्मीयता देखी। बोलने के लिए कहने पर कहा— 'घुमक्कडी और संस्कृत तथा सास्कृतिक निधियो की रक्षा का दायित्व जब तक वैरागी अपने पास रखेंगे, तब तक उनका कोई बाल भी बाका नही कर सकता। गङ्गधारा से लगा ही हुआ खुजवा मुहल्ला है। आज से तीस ही वष पहले यह शहर का मुहल्ला नही, बल्कि गाँव सा मालूम हाता था। लेकिन, अब आबादी बढ गई है दूकानें भी बहुत हैं। कुछ नौजवानो ने तीस वष पहले खिलवाड के तौर पर एक पुस्तकालय खाल दिया। उन्होने कुछ जमीन भी ले ली। धीरे धीरे दुमजिला घर बन गया। अब वह एक अच्छे पुस्तकालय का रूप ले चुका है। उनके बडे बूढा म अब भी कुछ मौजूद है, जो लडको के इस खेल का उपहास करते थे। पर आज वह देख रहे हैं कि नई पीढी इस पुस्तकालय से बहुत लाभ उठा रही है। वहाँ से विद्यापीठ म आये। फिर गवनमेट संस्कृत कालेज के हाल म। अँधेरा हाने पर लौटे। यहा पर भी लोग आते रहे। सवेरे से आधी रात तक व्यस्त रहना मैं बुरा नही मानता। एकान्त रहने के लिए तो आखिर मसूरी है ही। यहा तो मित्रो और परिचितो से दिल खोलकर मिल लिया जाय।

९ जनवरी को १२ बजे तक घर पर ही गोष्ठी चलती रही। भोजनोपरान्त शहर गये। श्रीमती शिवरानीदेवी प्रेमचन्द से मिले। अब बहुत दुबली हो गई हैं हड्डी और चमडा भर रह गया है। बेटे दोनो प्रयाग पकड चुके हैं क्योकि पुस्तक व्यवसाय के लिए वह प्रयाग उस स्थान से अधिक उपयुक्त साबित हुआ। श्रीपति तो अपना अच्छा बगला बनवा चुके है और अमृत कम्युनिज्म के पीछे फकीर बने हुए हैं। शिवरानीदेवी की लडकी इस

समय नहीं थी। बुढ़ापे में किसी को साथ रहना चाहिए। अब भी वह कभी कभी लमही में प्रेमचन्द की बाल्य स्मृतियों को देख आती हैं। यह आम है। पुरानी पीढ़ी को नई के लिए स्थान छोड़ना ही पड़ता है लेकिन समवयस्कों को इसके लिए जरूर अफसोस होता है।

लौटकर भोजन किया।

हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों ने भाषण करने के लिए निमंत्रण दिया था। मैंने समझा वह विद्यार्थियों की एक साधारण सभा होगी, पर वहां जाने पर मालूम हुआ कि विश्वविद्यालय छात्र-संघ का वार्षिक उद्‌घाटन मुझे करना है। बाहर शामियाना लगा हुआ था। भारी संख्या में छात्र छात्राएँ मौजूद थीं। विश्वविद्यालय के कुलपति सभी जगह बड़े होते हैं, जो अपनी पुरानी कमाई पर जीते हैं और समय की नहीं पहचान सकते। वह एक तरफ तो ढिंढोरा पीटना चाहते हैं कि छात्रों को हम स्वतन्त्रतापूर्वक अपने संगठन और विचार प्रकट करने का अवसर देते हैं, और दूसरी तरफ चाहते हैं कि वह हमारी मुट्ठी में रहें। उद्‌घाटन करने के लिए जिसे वह पसन्द करते उसे नया संघ पसन्द नहीं करता। इसी कारण से किससे उद्‌घाटन कराया जाय, इसे निश्चय नहीं किया जा सका था। मेरे आने पर छात्र एक ओर से सहमत हो गये कि मैं ही उद्‌घाटन करूँ। मुझे इस अवसर पर कहने के लिए कई बातें थीं लेकिन उद्‌घाटन का पता तो तब लगा, जब शामियाने में पहुँचा। कुलपति इससे सहमत नहीं हुए और उन्होंने अपना रोष प्रकट करते हुए एक पत्र लिखा था। संघ के मन्त्री ने उस दिन पढ़ते हुए कहा—देखिये इसमें लिखा है कि उनके इस निरोधात्मक पत्र को छात्रों के सामने पढ़ दिया जाय। सचमुच ही उसके पढ़ने का महत्त्व आग में घी डालना होता, विद्यार्थी भड़क उठते, और वह कहते शोर किल्‍किलियाँ साइन लगाते तो उन्हें अनुशासनहीन और उच्छृंखल बतलाकर बदनाम किया जाता। मन्त्री और अध्यक्ष ने उस पत्र को नहीं पढ़ा। पुरानी पीढ़ी अधिक विचारशील है या नई पीढ़ी, इस बात पर तर्क हो सकता है। बूढ़ा दिमाग ज्यादा सुरापानी है चाहे वह भ्रमता में डूबा हो। वह कुछ दे नहीं सकता और बिगाड़ बहुत सकता है। मेरा बस चले तो कहूँ कि ५० वर्ष की ऊपर की आयु का कोई व्यक्ति ऐसे जवाबदेही के पदों पर नियुक्त न होने

पाय। मैंने सक्षिप्त सा भाषण किया। चाय पार्टी में शामिल हुआ। बाबू राधारमण की मोटर आई हुई थी इसलिए उस पर मडुआडीह में उनकी कोठी पर पहुंचा।

राजा मोतीचन्द के अजमतगढ प्रासाद को मैं उसी समय देख चुका था, जब अभी-अभी वह बना था। वह बनारस की नये ढंग की स्पृहणीय इमारत था। उसी के पास एक दूसरा भी प्रासाद तयार हो गया है, यह मुझे मालूम नहीं था। श्री राधारमण बनारस के बडे रईसों में हैं। नाबालिग रहते समय *इनके अभिभावक राजा मोतीचन्द रहे जिनके उत्तराधिकारी और भतीजे* श्री चन्द्रभूषणजी और भी पांच सात गण्यमान्य पुरुष वहां मौजूद थे। श्री किशोरीरमणजी भक्त वैष्णव हैं। मैं केवल मान्यता रखनेवाला नास्तिक नहीं था बल्कि अपनी जबान से भक्तों के भगवान पर जबदस्त चोट पच्चीस वर्ष से करता आ रहा हूं। भक्त शिरोमणि ब्रह्मचारी प्रभुदत्त की चले तो गरम सडासी से ऐसी जीभ मुह से निकाल लें। पर आज के भगत भी मालूम देता है कलियुगी बन गये हैं। वह भगवान और शैतान दोनों को सन्तुष्ट रखना चाहते हैं। डेढ घन्टे तक वहां गोष्ठी रहा। बहुत नफीस चाय के साथ पकवान भी था। पर पकवान अब मैं खा नहीं सकता था। बनारस का पान सारे ब्रह्माण्ड में मशहूर है, और वहां के सबसे उत्तम बीडा को बडे नफीस ढंग से पेश किया गया था। मन अफसोस कर रहा था इसके खिलाफ अजन्ता में प्रतिज्ञा क्या कर डाली? लेकिन, जब एक मतबे प्रतिज्ञा कर ली तो उसे तोडने का साहस नहीं कर सकता। अधिकतर हमारी बात सास्कृतिक और साहित्यिक विषयों पर रही।

५ बजे नागरी प्रचारिणी सभा में पहुँचा। साल में एक बार बनारस आना होता है और साहित्यिक मित्र उस समय स्वागत करना आवश्यक समझते हैं। मुझे उस बहाने बहुत से मित्रों से इकट्ठा मिलने का मौका मिल जाता है। सभा में पौन घन्टे वाला विशेषकर पण्डितराज जगन्नाथ के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की। पण्डितराज अपने समय से सैकडो वर्ष पहले पैदा हुए थे, जिस तरह कि अकबर। सस्कृत के अपने काल के छोडने के बाद सरस कविता के पाने का अवसर हमें पण्डितराज की कविता में ही मिलता है। अभी अभी अपनी "सस्कृत काव्यधारा" के लिए कविताओं के

छाटते वक्त मुझे उनकी कृतियों म म गुजरना पड़ा था। साहित्य ही नहीं दान म भी यह अद्वितीय विद्वान काशी म पदा होकर कितना उदार था, जो कि मुसलमान तरुणी को खुल्लमखुल्ला अपनी धमपत्नी बना विपत्तियां क हजार प्रयत्न करन पर भी अपने धम और संस्कृति पर अटल रहा। तानसेन अकबर क समय म भी ऐसा हिम्मत नहीं कर सके। सभा स निम्न्त हो थी सत्यप्रजी की पत्नी अपनी कार लिये मौजूद थी। उनसे रास्त म बात करने का मौका मिला। उनका मैं अतिथि था, पर समय कहा कि बात करने का मौका निकाल सकता। वह दिल्लीवाली है। यह जानकर आश्चर्ययुक्त हर्ष हुआ कि उन्ह अपनी लोकगीतों क साथ बहुत प्रेम है और जो याद है उन्ह गा भी सकती हैं। हम लोग किताब स पढ़कर हिन्दी सीखत है, और उनकी हिन्दी मातृभाषा थी। दिल्ली के पुराने हिन्दू परिवारों की भाषा करीब करीब पूरी तौर से साहित्यिक हिन्दी हो गई है, लेकिन उस पर कौरवी का प्रभाव खत्म नहीं हुआ है। यह दुर्भाग्य की बात है कि इस प्रभाव का गुण न समझकर दोष समझा जाता है, और उन्ह शुद्ध करन की कोशिश की जाती है। उर्दूवालों की मतरूक (त्याज्य) की परम्परा को हिन्दी ने भी मान लिया। आजकल वह अचार और मुरब्बे की नई विधियां के सीखने म लगी हुई थी। लखनऊ से कोई सिरायतवाली महिला भेजी गई थी। दो दर्जन से अधिक ब्लनाए उनम अचार और मुरब्बे बनाना सीख रही थी। निवास स्थान पर आकर फिर १० बजे रात तक मित्रों के साथ गोष्ठी चलती रही।

१० जनवरी को कहा बाहर नहीं गया, और १२ बजे तक यहीं गोष्ठी होती रही। चलने स थोड़ ही पहले चौखम्बा संस्कृत सिरीज क स्वामी श्री जयकृष्णदासजी आ गए। उन्होंने कुछ पुस्तकें छापने क लिए मांगी। मैंने 'संस्कृत पाठमाला" हो दी और वह सहर्ष उसे ले गये। वह "संस्कृत काव्यधारा' को भी चाहते थे पर उसे तो प्रयाग म दे आया था।

१२ बजे चला। चौक से द्विवदीजी भी साथ हो लिए। श्री श्याम-नारायण पाण्डे बनारस म करीब-करीब बराबर रहे। वह मुरकुंडा के उच्चतर महामाध्यमिक विद्यालय म अध्यापकी करते अपने और आदर्शों को भी प्रचार करना चाहते हैं, विशेषकर संस्या की गन्दगी को, र

के लिए बहुत तत्पर दिखाई देते थे। ऐसा काम शुरू करनेवाले का विरोध का भी बहुत सामना करना पड़ता है, जो उनके सामने भी आया। लेकिन उनका संकल्प था—"न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः (न्याय के पथ से धीर एक पग भी विचलित नहीं होते)। उनका स्वास्थ्य बहुत ही खराब था, शरीर में चमड़ा और हड्डी ही दिखाई पड़ती थी। जमानिया तक वह इसी ट्रेन से गए। हमारे कम्पार्टमेंट में कोई दूसरा आदमी नहीं था। द्विवेदी जी ने अपना उपन्यास 'कर्तव्याघात' दे दिया था। उसे पढ़ते रहे। पिछली पीढ़ी के हाथ का लिखा हुआ यह उपन्यास है। सरल भी है और रोचक भी। अब भी उसको लोग पसन्द करते हैं इसका प्रमाण यह नया संस्करण था। आरा में पहुँचते पहुँचते अँधेरा हो गया। बिहटा में और अँधेरा हुआ गाड़ी में चिराग जल गया था। साढ़े ६ बजे पटना जंक्शन पहुँचे। डा० बद्रीनारायण स्टेशन पर मौजूद थे। उनकी कार पर चढ़कर उनके घर में पहुंच गए।

पटना—इधर दो तीन दिन से दाँत में दर्द होने लगा था, और मैं पटना मेडिकल कालेज के भूतपूर्व प्रिंसिपल का अतिथि था। उनके लड़के भी डाक्टर थे लेकिन दोनों ही दाँत के विशेषज्ञ नहीं थे। डा० देवेन्द्र एक मित्र दन्त डाक्टर के पास ले गए। उन्होंने दाँत को जला दिया। इससे यह फायदा तो हुआ कि पानी पीने में पहले जो दर्द होता था, वह खतम हो गया। लेकिन अभी उसमें छेद था, जिसे भरने की भी जरूरत थी। आज दाँत का एक्सरे भी करवा लिया। कमला की चिट्ठी मिली। लिखा था— जया बार बार पापा के बारे में पूछती है। वह बड़ी उत्कंठा से इन्तजार करती है। बच्चे कितने सरल होते हैं। प्रिय वियोग का दुख उनको भी होता ही है। उस दिन (११ जनवरी को) मित्रों से मिलने गया। वीरेन्द्र घर गये हुए थे। देवेन्द्र कालेज में थे। कुसुम मिली। चार महीने का एक और पुत्र भी गोद में है। दीपक और दीप्ति कानवेंट में पढ़ रहे हैं इसलिए लन्दन में रह कर सीखी इंगलिश भूल नहीं सकते। सम्मेलन भवन में शिव पूजन बाबू मिले। डायबेटीज को भगाने के लिए जौ की रोटी खाते हैं और इन्सुलिन पर भी भक्ति रखते हैं। मैंने कहा— खैर आपके लिए तो यह बुरा नहीं है, क्योंकि रसगुल्ले और दूसरी मिष्ठान्नों से इस लोक में वंचित

रह कर आप परलोक म पा सकते हैं। पर यदि जरा भी मन्द हो तो जौ
की रोटी की तपस्या नहीं करनी चाहिए। जौ की रानी म चीनी बनानेवाले
तत्व मौजूद हैं जिनका भी पचाने का काम इन्सुलिन ही का करना पड़ेगा।
मेरी राय मानिये और रोज इन्सुलिन लीजिए और मिठाइ आदि जिस
चीज का खाने की इच्छा हो उसे खाइए। शाम का भोजन छोड़ रखें तो
अच्छी बात जिसमे पेट हल्का रहे। म्यूज़ियम गया गेर साहब मिले।
अल्टेर साहब रोज नहीं आते।

आजमगढ़ से श्री मुन्नरामसिंह की चिट्ठी आई। मैंने वहाँ वालो के
आग्रह के बारे में लिखा था— "मैं पांच छ दिन के लिए वहां आ सकता
हूँ। पुरातात्विक स्थानो के देखने के लिए सारा प्रबन्ध हो जाना चाहिए।"
आजमगढ़ के नए गजेटियर की समिति म मेरा भी नाम था। मैं चाहता था
उसके लिए कुछ नई सामग्री जमा करके दूं। मुन्नराम बाबू ने लिखा—यात्रा
का सारा प्रबन्ध हमने कर लिया है। पटना म दस दिन मैंने इसीलिए दिए
थे कि यहाँ रहकर सरह के दोहाकोश को देखकर प्रिंट आर्डर दूं। लेकिन
प्रेसवाले देवनाओं म भुगतना था। लेखक उनसे बच नहीं सकता था, लेकिन
कामना कर सकता है, कि खुदा इनसे बचावे। दस दिन पटना म रहना
बेकार था इसलिए सोचा कि बीच म तीन दिन के लिए छपरा चला जाऊं।
पता मे निकल चुका था इसलिए यहां पर भी मित्रो और बन्धुओं का
आना-जाना शुरू हुआ। पटना कालेज और बी० ए० कालेज म भाषण देना
स्वीकार किया। यदि पहले से पता लगा होता तो छपरा म सूचना दे दी
होती और समय का पूरा इस्तेमाल हो सकता। १२ तारीख को म्यूज़ियम
म जाकर क्यूरेटर गेर साहब से मिला। दो-तीन पत्थर की मूर्तियां ले
आकर हमने डा० बद्रीनाथ प्रसाद के यहां प्रयाग म रख दी थी। वह अबकी
मिली। वहां म्यूजियम को देना चाहा पर नहीं दे सके इसलिए उन्हें पटना
म्यूज़ियम को दे दिया। इन मूर्तियो म एक प्रेमचन्द्र की जन्मभूमि लमही म
मिली थी जो १२वीं शताब्दी की मालूम होती थी। तिब्बत से लाए ताल
पत्रो का उपयोग हमने दोहा कोश म कर लिया था इसलिए उन्हें अब
सुरक्षित रखना था और म्यूज़ियम को ही दे दिया।

१३ जनवरी को बीच बीच म समय निकाल कर "भारत म

राज्य व सस्थापक' तथा 'सस्कृत पाठमाला' की दो पोथियों की कापी ठीक करके प्रकाशक के पास भेज दी। श्री वैदेहीशरणजी का नाम बहुत साला से सुन रहा था। उनके नाती-नातिनियों से मसूरी में भेंट हुआ करती थी। वह अपने पुस्तक भण्डार में ले गये। वैदेहीशरणजी सन्त प्रकृति के पुरुष हैं, तो भी व्यवहार-बुद्धि इतनी कि उन्होंने पुस्तक भंडार जैसी विशाल प्रकाशन-संस्था खड़ी कर दी। अपने भक्तिभाव में रहने लगे, काम नौकर चाकरों पर छोड़ दिया, जिसके कारण वह डूबने लगा। लेकिन अगली पीढ़ी उस गलती को दूर करने के लिए तैयार हो गई है। पहले भंडार लहेरिया सराय (दरभंगा) में स्थापित हुआ था लेकिन उनके लिए पटना अधिक अनुकूल स्थान है, इसलिए अब वहीं कारबार हो रहा था। भंडार की बहुत-सी पुस्तकें भेंट की। बिहारीजी (वैदेहीशरण) से पता लगा कि हेमचन्द्र—जिन्हें मुसल्मान लेखक घृणा प्रकट करते हुए हेमू बक्काल कहते हैं—वस्तुतः सहसराम के रौनियार बनिया थे। इतिहासकार उन्हें दूसर बनिया कह कर पश्चिम का बतलाते हैं। दूसर बनिया अब भार्गव ब्राह्मण बन गए हैं, यह ईर्ष्या की बात नहीं है। ब्राह्मणों को अपनी संख्या बढ़ने का अधिक अभिमान होना चाहिए। पर, हेमचन्द्र दूसर नहीं रौनियार थे। शेरशाह अपने को सहसराम का समझते थे। दिल्ली के बादशाह हो करके भी उन्होंने कालिंजर में बारूद में झुलसे शरीर को सहसराम में ही दफनाना पसन्द किया। शेरशाह पठान थे। पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में फैले भोजपुरी भी हिन्दू पठान ही हैं, इसलिए शेरशाह का भोजपुरिया पर बहुत अधिक विश्वास था। हेमचन्द्र यदि शेरशाह के बहुत विश्वासपात्र हो गये, और अपनी योग्यता से कोश मन्त्री ही नहीं, बल्कि बड़े सेनापति बन गये हों, तो अचरज नहीं। बिहारीजी ने बतलाया कि हमारी महिलाएं विशेष समय पर हेमू और उनके पिता के गीत गाती हैं।

मोहन प्रेस "सरहके दोहाकोश' छाप रहा था और वहीं 'नेपाल' का भी उधार बना रहा था। तीन वर्ष से 'नेपाल' मोहन प्रेस में पड़ा हुआ है। चार सौ पृष्ठ के करीब छपे हैं। मैंने कहा—दो सौ और छाप कर इसका पहला भाग निकाल दो, तो तुम्हारा रुपया भी लौटने लगेगा। कहा —'हाँ, हाँ।" विलंब्या दण्डवत करने में मोहन प्रेस के मोहन बाबू बड़े

सिद्धहस्त हैं। मुझे विश्वास नहीं, "नेपाल" दलदल से कभी निकल कर बाहर होगा।

शाम को चाय देवेन्द्र बाबू के यहाँ पीकर पटना कालेज के साहित्यकार परिषद् के विद्यार्थियों के सामने राष्ट्रभाषा की समस्या पर भाषण दिया।

लौट कर आए तो प्रो० काश्यप मौजूद मिले। यह भोजपुरी के बड़े ही सिद्धहस्त नाटककार हैं। विद्यार्थी अवस्था में ही बाबू लोहासिंह के नाम से बड़े ही चुभते भोजपुरी एकांकी रेडियो के लिए लिखने लगे। नाटक में वह स्वयं लोहासिंह बनकर बोलते हैं। रेडियो पर अनेक बार मैं उसको आनन्द से सुन चुका था। पहले मिलने पर मैंने स्वयं लोहासिंह के मुँह से कुछ सुनने की इच्छा प्रकट की। वस उनके कई नाटकों का संग्रह मैं हाल ही में पढ़ चुका था। साहित्य की भाषा बनने से वंचित हमारी भाषाएँ कितनी गुणवती हैं, इसे शिक्षित लोग मानने से इन्कार करते हैं। पर, लोहासिंह या जगडू (हरियानी) जैसी कृति जब सामने आ जाती है, तो उनका लोहा मानना पड़ता है। हमारी अलिखित भाषाएँ मुहावरों और चुटकुलों में बहुत धनी हैं उनके सामने साहित्यिक हिन्दी अत्यन्त दरिद्र है। इसीलिए साहित्यिक हिन्दी का, उसकी अपनी कौरवी बोली से पुनः घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होना आवश्यक है। प्रो० काश्यप ने अपने नाटक के कुछ अंश सुनाए। वहाँ और भी श्रोता जमा हो गये थे।

श्री देवकुमारजी अपने पुत्र की समस्या बतला रहे थे। उसे देहरादून के एक विशेष स्कूल में इस ख्याल से भर्ती किया था, कि वह मिलिटरी में जाएगा। पर अब उसकी सम्भावना नहीं समझ रहे थे। फेल हो जाता था, और शरीर का स्वास्थ्य भी भोजपुरी के अनुरूप नहीं था। मैंने उनसे नाटककार पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र के लड़के के बारे में बतलाया। देवकुमारजी अपने लड़के पर दो चार सौ रुपया महीना आसानी से खर्च कर सकते थे, लेकिन पं० लक्ष्मीनारायण ऐसी स्थिति में नहीं थे। उनका लड़का और बातों में बहुत तेज, शरीर भी भोजपुरियों के अनुरूप, पर पढ़ना वही विषय चाहता है जिसमें उसकी रुचि हो। हमारी पाठ्य व्यवस्था में ऐसे लड़कों के लिए कोई स्थान नहीं है। जेनरल नालेज (साधारणज्ञान) में जो क्लास में सबको परास्त करता हो, वह भी तब तक आगे नहीं बढ़ सकता,

जब तक वो सभी पाठय विषयों म पयाप्त नम्बर न पाए। प० लक्ष्मीनारायणजी कह रहे थे— 'अब क्या करें? यह पास होकर अफसर तो नही बन सकता, और हमने अभी तक इसके बारे म सारा ख्याल सनिक अफसर बनने क तौर पर ही किया था। साधारण युनिवर्सिटी ग्रेजुएट हो जाता, तो कोई दूसरी नौकरी भी मिल जाती लेकिन उस भी फिर स शुरु करना होगा। वह जिद करता है, म जाऊँगा सेना म ही। मिश्रजी यह भी कह रहे थे— 'वह तो सिपाहियो म भर्ती होन के लिए तैयार है। मैंने कहा — 'मिश्र महाराज वह बिल्कुल ठीक कह रहा है। आप जरा भी रुकावट न डालें। वह होनहार लडका है। अग्र हमारे यहा अधेरगर्दी है और सेना म भी तरक्की उसी योग्यता को देखकर की जाती है जिस तरह दूसरी सरकारी नौकरियो म। पर आपको ख्याल रखना चाहिए कि २०वी सदी का ही एक प्रसिद्ध जेनरल लाड राबट सिपाही होकर भर्ती हुआ था। आपका पुत्र सनिक ज्ञान म पीछे नही है न और योग्यता म। वह जल्दी आगे बढ जाएगा।'

लखो की इतनी मागें आती है जिन्ह मैं सारा समय देकर भी पूरा नही कर सकता। यात्रा म मिलने वाले सम्पादक मित्रो को तो यह कहकर छुट्टी ले ली थी कि वही आऊगा और लिखवा दूगा। इसी के अनुसार १४ जनवरी को एक लख श्री शिवचन्द्रजी 'दष्टिकोण' क लिए लिख ले गए और दूसरा "किशोर" के सम्पादक।

जब पत्रो द्वारा छपरा म भी मेरे आने का पता लग गया था। नयागाव हाई स्कूल के हैड मास्टर श्री शत्रुघ्न तिवारी का फोन अपने यहाँ आने क लिए आया। मैं तो वहाँ जा ही रहा था। उनके द्वारा सोनपुर भी खबर पहुँचान का अच्छा मौका मिल गया और फोन स ही प्रोग्राम का निश्चय हो गया कि १६ तारीख को सोनपुर नयागाँव और छपरा तीनो स्थानो म पहुँचूगा। उसी रात वीरन्द्रजी भी आ गए। उन्होंने अगले ही दिन छपरा एकमा और अनरसन आदमी दौडाए। उस दिन साढे ५ बजे शाम को पटना कालेज की राजनीति परिषद् म तिब्बत और भारत क सम्बन्ध पर व्याख्यान देना पडा। सभापति श्री विश्वनाथप्रसाद वर्मा थे—हिंदी सस्कृत वाले नही बल्कि इतिहास और राजनीति वाले। उनका भाषण

आदि से अन्त तक अंग्रेजों में हुआ इसमें शक नहीं कि अंग्रेजी अच्छी थी, पर हिन्दीभाषा विद्यार्थियों के सामने वह अस्वाभाविक-सी मालूम होती थी इसमें सन्देह नहीं।

नालन्दा—१५ जनवरी को साढ़े ५ बजे तड़के ही ध्रुवकुमारजी की मोटर आ गई। हम उससे नालन्दा के लिए रवाना हो गए। ८ बजे नालन्दा में थे। अब भी राजगृह छोड़ना नहीं चाहते थे इसलिए काश्यपजी को खबर देकर आगे चले जाना चाहते थे। काश्यपजी रास्ते ही में टहलते मिल गए और उनसे कहकर हम गिलाव हो राजगृह पहुँचे। सीधे गिरि मेखला के भीतर अवस्थित पुराने राजगृह के ध्वंसावशेष पर पहुँचे। इधर जंगलों में और भी कुछ जगह खुदाइयाँ हुई हैं। चहारदीवारी से घिरा एक स्थान उघाड़ा किया गया है जिसे बिम्बिसार का कारागृह बतलाया जाता है। अब मोटर-सड़क पहाड़ के आर पार होकर गया तक चली जाती है। गृध्रकूट को रास्ता भी कुछ बेहतर बना दिया गया है लेकिन वहाँ तक जाने के लिए हम समय नहीं दे सकते थे। सोनभण्डार के पास तक मोटर जाने में कोई दिक्कत नहीं हुई। उसके पास की जमीन को वन विभाग ने ले लिया है। वहाँ उसका बगीचा है और प्रसार के लिए पौधें भी लगी हुई हैं। राजगृह के जंगलों की रक्षा होगी यह अन्दाज लग रहा था। सोनभंडार की बगल में एक और भी चट्टान काटकर बनी हुई गुफा निकल आई है। राजगृह के आसपास बहुत से पुरातात्विक स्थान हैं। पर पुरातत्त्व विभाग उतना साधन-सम्पन्न नहीं है। वर्मी धर्मशाला में १४ वर्ष से वहाँ के स्थानिक भिक्षु रह रहे हैं पर हमने एक दूसरे को देखा नहीं था। जब पन्द्रह पन्द्रह वर्ष बाद करते लगे, तो परिवर्तन अधिक मालूम ही होगा पर राजगृह को इतिहास नहीं एक से अधिक तप्त कुण्ड इस बात की माँग कर रहे हैं, कि स्वास्थ्य के लिए उनका अधिक उपयोग किया जाए। इसी तरह पुराने राजगृह के बाहर में कई मीलों के घेरे में किसी समय मगध का गौरव 'सुमागधा' पुष्करिणी थी जो इस पावन भूमि के सौन्दर्य की वृद्धि तथा जल की समस्या को ही हल नहीं करती थी बल्कि आज भी उसके अस्तित्व में आने पर हजारों एकड़ जमीन सींची जा सकती है, पर अभी उसकी ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया है। आज मकर संक्रान्ति का मेला

लिए सुनसान राजगृह का एक भाग सहसा नर नारियों से मनसायन हो रहा था।

लौटकर मिजाव से चिउरा और खाजा ले हम १० बजे नालन्दा पहुंचे। छोटा पूची के पुत्र अब शुड्डी हो गए हैं। पत्नी और पुत्र उस तिब्बती विहार में मौजूद थे। छोटा पूची इस समय वहां नहीं थे। नालन्दा पालि इन्स्टीट्यूट का नाम बदलकर नव नालन्दा विहार 'रख दिया गया है जो अधिक उपयुक्त है। अध्यापकों के चार पांच बंगले बन चुके हैं और भी बनते जा रहे हैं। नई बनी इमारत में अब लोग रहने लगे हैं। विद्यार्थियों में एसिया के सभी बौद्ध देशों के भिक्षु या विद्यार्थी मौजूद थे। पुस्तकालय के लिए तीन लाख रुपए की अलग इमारत बनने जा रही थी। भारत सरकार की आर्थिक सहायता से नागरी अक्षरों में पालि त्रिपिटक सम्पादित होकर छपने लगा है लेकिन ऐसी गति से छप रहा है कि शायद बीसवीं शताब्दी के अंत में भी वह पूरा न हो सके। आजकल के जमाने में मोनोटाइप से अच्छी छपाई करने वाले बहुत से प्रेस हैं लेकिन यह काम बम्बई के एक पुराने प्रेस को दे दिया गया है, जो चींटी की चाल चलने के लिए बहुत मशहूर है। महायान बौद्ध धर्म के ग्रंथों के सम्पादन का काम दरभंगा के मिथिला इन्स्टीट्यूट को दिया गया है। न जाने इसमें क्या बुद्धिमानी समझी गई। चाहिए तो यह था कि बौद्ध ग्रंथों के लिए—चाहे वह किसी भाषा में हों —नालन्दा में प्रबन्ध किया जाता। ब्राह्मण ग्रंथों का मिथिला इन्स्टीट्यूट में और जैन ग्रंथों का वैशाली इन्स्टीट्यूट में। लेकिन उन्हें भाषानुसार बांटा गया अर्थात् तीनों प्रतिष्ठान क्रमशः पालि, संस्कृत और प्राकृत के लिए रखे गए हैं जो बिल्कुल अयुक्त हैं। तिब्बती और चीनी ग्रंथों के अनुवाद या सम्पादन के लिए किस को पसन्द किया जाएगा? नालन्दा को ही न?

एक और भी असन्तोषकर बात देखने में आई। सिंहल, बर्मा, थाईभूमि, कम्बोज आदि के छात्र भारत में आकर संस्कृत पालि के अतिरिक्त हिन्दी का भी अध्ययन करना चाहते हैं क्योंकि भारत की संघराष्ट्र भाषा होने से उनके देश में उसका महत्व है। अल्प समय में मुफ्त पढ़ाने के लिए अध्यापक भी तैयार हैं, लेकिन नए सचालक यहां हिन्दी का पढ़ना बेकार समझते हैं। अभी हमारे कितने ही अहिन्दी विद्वानों के दिमाग में हिन्दी का महत्व

घुस नहीं रहा है। वह अंग्रेजी को प्रथम स्थान देने के लिए तैयार हैं चाहे कम्बोज चीन आदि देशों में उसका महत्व न हो, और वह चाहते हैं, कि भारत की प्राचीन और आधुनिक सर्वत्र प्रचलित भाषाओं का अध्ययन करें। मैंने अवैतनिक संचालक काश्यपजी से कहा पालि त्रिपिटक की कम से कम सौ या पचास प्रतियाँ हाथ के कागज पर जरूर छपवाएँ। एसियाटिक सोसाइटी बंगाल और कितनी ही दूसरी जगहों से पचासों प्रकाशित पुस्तकों के पन्ने आज ही इतने जीर्ण शीर्ण हो गए हैं, कि वह जिल्द से बाहर निकल आते हैं और जरा भी असावधानी होने पर टूट जाते हैं। कम से कम सौ कापियाँ तो दो चार सौ साल रहने लायक छपें।

वहाँ से हम बड़गाँव में गए। मुख्य गाँव इसी नाम से मशहूर है। उसे सूर्य मंदिर के कारण सूर्य तीर्थ बना पंडे स्वतः नियुक्त हो गए हैं। मंदिर ने मूर्तियों के संग्रहालय का रूप ले लिया है। भीतर और बाहर चार से अधिक बूटधारी सूर्य की मूर्तियाँ हैं। पाल काल की भी कितनी ही मूर्तियाँ हैं। गाँव में पंचायत है थोड़ी सड़क भी दुरुस्त की गई है पर गाँवों का समृद्ध जीवन अभी बहुत दूर की बात है।

पटना लौटते समय बिहार शरीफ की बड़ी दरगाह देखने गए। यह मुस्लिम शासन के आरम्भिक काल में आए एक फकीर की दरगाह है। बिहार शरीफ आरम्भिक मुस्लिम शासकों का शासन केन्द्र रहा। उन्हें मूर्तियों को तोड़ने, मंदिरों में आग लगाने में बड़े पुण्य की आशा थी, इसलिए उन्होंने नालन्दा के अद्भुत पुस्तकालय को भस्मात् करने में जरा भी आनाकानी नहीं की। बिहार और आसपास में लोग आतंक के मारे मुसलमान हो गए। बिहार शरीफ में ऊँचे वर्ग के मुसलमानों की काफी संख्या थी, जो अपने को हिंदी संस्कृति से अछूता रखने के लिए सब तरह की कोशिश करते थे। आज यद्यपि हमारी सरकार इस बात का प्रयत्न करती है, कि भारत के सभी नागरिकों को समान अधिकार हो, पर समाज से जिन लोगों ने अपने को अलग थलग रखने की पूरी कोशिश की वह अब एकांत क्यों न अनुभव करें। हमें दरगाह दिखाने के लिए एक सम्भ्रांत पथ प्रदर्शक मिल गए। बात बात में उनकी निराशा टपक रही थी। दूसरी तरफ मैं अपने साथ गए ड्राइवर महदी मियाँ को देख रहा था। वह उच्च वर्ग के

मुसलमान नहीं थे। साधारण जुलाहा या किसी जाति के थे जो हिन्दुओं से मुसलमान होकर भी भाषा वेष भूषा में हिन्दुओं से भिन्नता नहीं रखते थे। महदी मियाँ धोती कुर्ता पहन थे। होटलवाला ब्राह्मण भी उन्हें थाली में भोजन देने के लिए तयार था। जब तक उनका नाम न पूछे तब तक कोई यह नहीं सकता था, कि वह मुसलमान है। वस्तुतः भारत के लिए ऐसे ही हिन्दू मुसलमानों की जरूरत है। महदी फौज में नौकर थे। जब देश का बँटवारा होने लगा, तब ना ना करने पर भी उनका नाम पाकिस्तान में लिख दिया गया। मजबूरन कई महीनों तक लाहौर में रहे। वहा बराबर अपने चम्पारन को याद करके रोते थे। बहुत जोर लगाया अन्त में अपने देश लौट आए। महदी मिया का मैं देखता था और उधर दरगाह के पथ प्रदर्शक था। महदी मियां को निराशा छू नहीं गई थी। वह अपनों में थे। किसी समय हिन्दू उनके हाथ का रोटी पानी नहीं ग्रहण करते थे लेकिन अब हिन्दुओं में शिक्षित और सम्भ्रान्त इस छूआछूत को कोसों छोड़ चुके हैं।

४ बजे तक हम लोग पटना लौट आए। प० गोरखनाथ त्रिवेदी और श्री धूपनापजी आ गए थे। त्रिवेदीजी उसी रात को लौट गए। अगले दिन हम भी छपरा जाना था।

१७

छपरा

सोनपुर—४ बजे अँधेरा रहते ही पसेन्जर सवारी पकडना बडी कबाहत की बात है। इसी समय हम महेन्द्रू घाट में गंगा पार हो जाने वाले स्टीमर को पकडना था। वीरेन्द्रजी अपने साथ रिक्शा लेते आये थे, नहीं तो वह भी समस्या थी। घाट पर प्रायः एक घंटा इंतिजार करने पर जहाज आया। बडी भीड थी। ६ बजे के बाद हम पहलेजा घाट पहुँचे। सोनपुर में खबर मिल चुकी है, यह रवीन्द्र विश्वकर्मा के स्वागत से मालूम हुआ। रवीन्द्र तीसरी पीढी में हैं। उनके दादा बडे अच्छे मिस्त्री और सोनपुर स्वराज्य आश्रम के पडोसी थे। आश्रम में रहने वाले अदलते बदलते रहते थे, पर मिस्त्री अचल थे। वह आश्रम की देखभाल ही नहीं करते, बल्कि समय समय पर आये गये का आतिथ्य भी करते थे। न जाने कितनी बार रवीन्द्र के दादा के यहाँ मैंने भोजन किया होगा। दादा अब नहीं रहे पिता भी बूढे हो चुके और पोता जवान था। दादा निरक्षर से थे। पिता ने कुछ पढा था और लडका अब शिक्षित और सस्कृत रूप में हमारे सामने था। पीढियों में कितना परिवर्तन होता है। ट्रेन पर बैठ कर सोनपुर स्टेशन पहुँचे। सोनपुर कभी मेरे लिए घर द्वार था। महीनों नहीं तो दिनों यहाँ रहना, आसपास के गावों में घूमना मेरे लिए असाधारण बात नहीं थी, पर अब मैं कुछ घंटे ही दे सकता था। सोनपुर गाँव में जाने का समय नहीं निकाल सकता था। स्टेशन पर पुराने सहकर्मी नेताजी बाबू जमुनासिंह और मास्टर भागवत सिंह के अतिरिक्त साथी शिवबचनसिंह और दूसरे

पुरुप स्वागत करने के लिए आए। बाबू जमुनासिंह को उस साल पहले लोगो ने नेताजी कहना शुरू किया था, जबकि का अभी यह नाम नही मिला था। वह और मास्टर भा बूढे हो गए थे। स्टेशन ही पर चाय पिलाई गई फिर वहाँ लय म थोडी देर बठना पडा। यहाँ के शिक्षित, विशेषक अध्यापको न इस पत्रिका को वर्षों से निकालना शुरू किया लिखित हाती थी जब उसके कुछ अक छपे भी हैं। फिर स गए। १९२१ से मैं इस स्थान से परिचित हूँ। लेकिन भू और बाता म परिवतन हुआ है। ओसारे के साथ कुछ का काफी बडा चबूतरा है, जिसम डेढ सौ आदमी बठ सकते हैं १९४२ के शहीदो का स्मारक है। सभा म तीन सौ के करी पुरान परिचितो और नइ पीढी ने अपने पुराने सुराजी क रूप से स्वागत किया। मैंने भी अपने का धय ध य माना। कराया। यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई, कि वह और मास्ट अब बुढापे स निश्चिन्त है। यही पर नयागाव हाई स्कूल प शत्रुघ्ननाथ तिवारी भी मिल गए। तिवारी का वह चेहरा ः जबकि वह १६ १८ वप के जवान थे। मटिक पास किया की इच्छा थी और साथ ही देश क लिए काम करने की। छपरा म और अयत्र भी मिलते थे। मैं उ ह हमेशा प्रोत्सा कि वह अपने सामने बडा लक्ष्य रखें। लेकिन सभी बडा लक्ष सकते। जब उस दिन फान पर तिवारी से बातचीत हुइ और हुआ, कि वही तरुण अब एक हाइ स्कूल का बहुत योग्य हड मुझे बडी प्रसन्नता हुइ। भोजनापरान्त नयागाव का प्रोग्राम थ

नयागाव—जहा सडक हो, वहा मोटर बस न चलती हो नही। यदि रेल का सुभीता हो, तब भी मोटर क लिए गुजा जाती, यह भी बात नही। रेल्वे अधिकारियो की रिपोट से है, कि भारत की जनता का एक प्रतिशत रेलो पर जरूर चलता ज्ञात हुँ इस एक प्रतिशत म वे मुसाफिर नही शामिल है, जा पर चलते है। जहा सरकारी रोडवेज की बसें चलती हैं, वहाँ

नहीं चलता। सोनपुर से छपरा रेल जाती है पर प्राइवेट बस भी यहाँ से बराबर जाती रहती है। आजमगढ़ के बारे में तो सुनने में आया कि जहाँ रोडवेज ने सड़क को ले लिया है वहाँ पर प्राइवेट मोटर वाले माल ढोने की लारियाँ चलाने लगे हैं। बैलगाड़ी किराया करने की जगह लोगों को लारी किराया करने में सस्तापन मालूम होता है। लारी में तिवारीजी और शीरे द्रजो के साथ हम चले। नयागाँव के ही प्राइमरी स्कूल में भिखारी अध्यापक हैं। भिखारी शापित जाति के हैं मुश्किल से मैट्रिक पास किया। कालेज पढ़ने की बड़ी इच्छा थी। एक तरफ आर्थिक कठिनाई और दूसरी तरफ दम्भ से शापण दूर करने की उमंग, दोनों के कारण उनकी पढ़ाई आगे नहीं बढ़ सकी। अब यहाँ एक प्राइमरी स्कूल में पढ़ाते अपने विचारों को फैलाने में भी लगे रहते हैं। मैं तो इनके जैसे लोगों को असली तपस्वी मानता हूँ।

हाइ स्कूल के कितने ही कमरे बन चुके हैं। लड़कों की संख्या बढ़ रही है उसी के अनुसार मकान भी नये बढ़ते चले जा रहे हैं। नयागाँव ने कई शिक्षित और प्रसिद्ध पुरुष पैदा किये हैं। बरोहिया के बाबू रघुवंश नारायण यहीं के थे। पटना विश्वविद्यालय के कुलपति वासुदेव नारायण यहीं के हैं। छपरा में मिडिल तक की हिन्दी शिक्षा को निःशुल्क करके चलाने का तजर्बा जिस जिला स्कूल निरीक्षक के तत्वावधान में हुआ था वह यहाँ के थे। आसपास की टूटी फूटी मूर्तियों और ध्वंसावशेषों से यह भी मालूम होता है कि इस भूमि में कितनी ही ऐतिहासिक निधियाँ छिपी हुई हैं। विद्यार्थियों और अध्यापकों ने स्वागत किया और मैंने भाषण दिया।

यहाँ से साढ़े ७ बजे जनता ट्रेन पकड़नी थी, जिसके लिए स्टेशन पर चले गये। लड़कों की काफी संख्या स्टेशन पहुँची। उनमें से कुछ रेल पर जाने वाले थे और कुछ आज के बकना का तमाशा देखना चाहते थे। १५-१६ वर्ष से नीचे वाले लड़के भला मेरे बारे में क्या जानते होंगे? दादा होते तो कुछ बातें बतलाते पर अब संसार में नहीं रहे। मुराजी वर्मा के तौर पर मुझे जानने वालों की संख्या अब छपरा में बहुत कम रह गई थी। हाँ, इन लिखने का शौक रखने वाले लेखक के तौर पर राहुलजी का नाम ज़रूर जानते हैं। ये लड़के जो कितनी ही देर तक खड़े बड़े स्टेशन पर मेरी

और दस रहे थे, वे यदि सुन भी रहे होंगे तो उसे बड़ी दूर की किसी आवाज की तरह। हाई स्कूल के विद्यार्थी थे। लेकिन सौ में से दस के पैरों में भी जूता नहीं था। कपड़े यदि फटे नहीं थे तो मैले जरूर थे। दोनों का कारण गरीबी है। हमारे नेता गरीबी का मुंह काला करने की लम्बी-लम्बी बातें करते हैं। लेकिन उनके प्रयत्न से लक्ष्मी गरीबों के घर में नहीं बल्कि सेठों के घर में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। वे अपने जीवन तक तो कभी गाँवों से दरिद्रता के भगाने की आशा नहीं रखते और न उसके लिए प्रयत्न करते हैं।

छपरा—हमारी ट्रेन साढ़े ५ बजे छपरा के करीब पहुंची। बहुत से पुराने मित्र और तरुण स्टेशन पर मिले। छपरा में हमेशा से पं० गोरखनाथ त्रिवेदी का घर ही मेरा घर रहता आया है, इसलिए सीधे वहां गया। उसी दिन शाम को टौन हाल में भाषण का भी प्रबन्ध किया गया था इसलिए थोड़ी देर ठहरकर वहाँ पहुँचा। टौनहाल में सभी आदमी कैसे आ सकते थे पर हाल में दर्जनों परिचित चेहरों को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। छपरा में चाहे शहर में हो या देहात में मैं बराबर भोजपुरी में ही भाषण देता रहा हूं लेकिन आज न जाने क्या वह बात टूट गई। दूसरों को हिन्दी में बोलते देख मैं भी उसी में बोल पड़ा। त्रिवेदीजी के डेरे पर आने पर और कितने ही मित्र मिलने के लिए आए। एक दिन अभी और छपरा में आकर रहना था।

परसा—कोशिश तो की गई कि मोटर बड़े तड़के ही मिल जाए और हम आज ही एकमा परसा, अतरसन और हो सके तो सिवान भी होकर रात को छपरा लौट आयें। पर, मोटरें बहुत कम लोगों के पास रह गई हैं। सरकारी अफसर और कुछ सेठ ही उसे रखने की हिम्मत कर सकते हैं। पहले हर दो चार गाँव पर कोई एक बड़ा बाबू जमींदार होता जिसके पास पहले हाथी घोड़ा, बग्घी होते। मोटरों का जमाना आया, तो उसने इन चीजों को मोटर से बदल दिया। अब जमींदारी के उठने पर वे बाबू नहीं रहे इसलिए मोटरों की सुविधा नहीं। खैर बस टैक्सी मिथित एक मोटर सवा १० बजे आई, और हम छपरा छोड़ने में सफल हुए। साथ में वीरेन्द्रकुमार और श्री रामानन्द सिंह थे। दोनों धूपनाथजी के भतीजे हैं। रामानन्द ने

बी० ए० करके अपना समय राजनीति में लगाया, कांग्रेस के नेताओं में से हैं। हमारे सामने ही तो हाथ मँमाता था, और अभी बुढ़ाप की छाप उनके चेहरे पर देख रहे थे। एक मा ४५ मिनट में पहुँचे। पचासों मुर्रा भैंसें और अच्छी जाति की गाएँ—जिनमें कुछ के साथ बछड़े भी थे—सड़क से जा रही थीं। पता लगा, कलकत्ता से आ रही हैं। दूध देने समय मालिक ने उन्हें कलकत्ता में रखा जब बिसुक गई, तो उन्हें अपने घर पर ला रहे हैं। फिर स्थान पर उन्हें पटना तक पैदल और फिर रेल पर चढ़ा कर कलकत्ता ले जाएगा। मेरा राम राम छपरा के इन गोपालकों को आशीर्वाद देने लगा। कलकत्ता में दूध के लिए भारत की श्रेष्ठ जाति की भैंसें और गाएँ आती हैं जो नित्य १५ २० सेर तक दूध देती हैं। बिसुक जाने पर उनको दो रुपया रोज कौन खिलाएगा। बहुत से तो बिसुकी गायों और भैंसों को कसाई को दे देते हैं। अधिकांश दूध देने वाले पशु और इतनी उच्च जाति के एक बियान दूध देकर मार दिए जाते हैं। कितनी भयंकर और मूर्खतापूर्ण रीति से पशुधन का संहार होता है।

जिस गोवंश और महिषवंश की रक्षा और वृद्धि करना हमारा परम कर्तव्य है उसका इस तरह ध्वंस हो रहा है। कम से कम इन गायों और भैंसों की रक्षा के लिए तो कानून जरूर बनना चाहिए। पर, उससे क्या पशु की मार की चोट कम हो जायगी? बिसुकी गायों और भैंसों को बिठाकर तीन चार रुपया रोज कौन खिलायेगा? सभी गोपालक छपरा या आसपास के बिहारी जिलों के नहीं हैं कि वह कलकत्ता से अपने माल को यहाँ ले आएँगे। इसका तो एक ही उपाय है कि कलकत्ता और इस तरह के दूसरे शहरों से सौ पचास मील पर ४०० ५०० एकड़ अच्छी चाकर भूमि सरकार सुरक्षित कर दे जहाँ बिसुके गायों भैंसों को पाव-डेढ़ रुपया प्रति पशु लेकर रख लिया जाए। मालिक बियाने पर उन्हें फिर ले जाने का हक रखे। इसमें दूसरा तरीका यह हो सकता है कि बड़े शहरों में डेरी का काम सरकार अपने हाथों में ले लेकिन इसके कारण हजारों आदमी बेकार हो जाएँगे, इसका भी ध्यान देना होगा। यही बातें सोचते मैं जा रहा था कि पास के बछड़े ने चिल्लाकर चौंका दिया। दो-तीन बछड़े एक रस्सी में बँधे चल रहे थे। मोटर उनके पास से सरसराती निकली। मेरा स्वप्न भंग हुआ, और

कलेजा कितनी देर तक काँपता रहा। एक तो इस खयाल से कि कहीं मोटर उसके पैर पर चली जाती और दूसरा यह कि इस तरह के हजारों बछड़े और उनकी मायें कलकत्ता में पैर रखने का ठौर न पा कसाइयों की छुरी के नीचे जबह हो चुकी होंगी।

एकमा में लक्ष्मी बाबू से कह दिया कि हम सीधे परसा जा रहे हैं, वहाँ से लौटकर यहाँ आएँगे। परसा अब के मैं तीस वर्ष बाद जा रहा था। १९२६ में जाने के बाद कभी इस भूमि पर पैर नहीं रखा। उस समय कांग्रेसी उम्मीदवार के खिलाफ यहाँ के बहुत जबदस्त जमीदार शिवजी जिला बोर्ड के लिए खड़े हुए थे। मैं कांग्रेस की ओर से प्रचार के लिए यहाँ आया था। जमीदार का खुश करने के लिए कुछ ऐसे लोग गाली गलौज पर उतर आए, जिनके बारे में मैं जानता था वे मेरे विरोधी नहीं हो सकते। इसी समय मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जमीन्दारी प्रथा नहीं उठेगी तब तक परसा नहीं आऊँगा। अब आने का समय हो गया था, इसलिए मैं परसावासियों से भी अधिक लालसा के साथ यहाँ आया था। पहले ही मठिया मिली। वहीं मठिया जहाँ का भावी महन्त बनाने के लिए महन्त लक्ष्मणदासजी मुझे बनारस से लाए थे। यदि मैं मठिया में टिक नहीं सका और महन्त नहीं बन सका, तो उसमें किसी और का दोष नहीं बल्कि मेरी अपनी घुमक्कड़ी और विद्या की तीव्र जिज्ञासा का था। सचमुच ही मैं उस छोटे से ताल के भीतर रहकर कैसे देश देशान्तर विचर सकता था, कैसे कण कण करके ज्ञान अर्जित कर पाता। आज मठिया का रूप बदला हुआ था। दो मन्दिर और समाधि तथा एकाध और घरों को छोड़कर सभी नये मकान थे। खपड़ैल और कच्ची दीवारों को हटाकर उनकी जगह पक्की इमारतें बन गई थीं। मेरे गुरु महन्त लक्ष्मणदास को पक्के मकानों के बनाने की सनक थी। वह आमदनी की कुछ पर्वाह नहीं करते थे, और कर्ज ले लेकर उस ईंट चूने पर लगा रहे थे। वह सारे मठ को ईंटे चूने को बनाने में मशगूल हुए। जिस वक्त मैं पंक्तियाँ को लिख रहा हूँ उस समय तीस वर्ष बाद मठ को जाकर देखे तीन ही महीने हुए हैं। पर, मेरे मानस पटल पर तीस वर्ष पहले का ही मठ अंकित है। शायद बुढ़ापे के मन पर प्रतिबिम्ब अधिक गाढ़ा नहीं होता और जल्दी मिट भी जाता है। तब ईंटें चूने का नहीं और मिट्टी और खपड़ैल

का यह मठ था उस समय सौ-सा मूर्ति साधु यहां रहा करते थे। हर जगह चहल-पहल रहती थी। मेरे रहने समय (१९१३ ई०) में भी भोजन के वक्त दो दर्जन से अधिक साधु पातों में बैठते थे। अब तो जमाना ही बदल गया।

मेरे बार बार भाग जाने पर निराश होकर महन्तजी ने अपने भतीजे श्री सत्यनारायण दास को चेला बनाकर महन्त बनाया। उनसे पहले श्री बीर राघवदास शिष्य बने थे। वर्तमानजी बहुत साधु स्वभाव हैं। वीर राघवदासजी अधिक होशियार हैं और मठ के प्रबन्ध का भार भी उन्हीं पर ज्यादा है। दोनों नौजवान थे जबकि पिछली बार मैंने मठ को देखा था। अब दोनों के बाल सफेद हैं। जमींदारी प्रथा समाप्त हुई उसका प्रभाव मठों पर उतना नहीं पड़ा है। लेकिन, लाल्बुझक्कड़ों ने मठों के अधिकारियों की नींद हराम कर दी है। जब जब मठ की सम्पत्ति पर गाज पड़ती, घुमक्कड़ी छोड़कर मैं महन्तजी के बुलाने पर परसा आता और मेरे आने से लाभ भी होता। यह बात हमारे दोनों गुरुभाई जानते थे। उन्होंने सलाह पूछी। पता लगा, किसी वकिल के अजीर्ण वाले मस्तक ने यह सिखलाया है कि हम अपने मठों की सम्पत्ति को प्राइवेट घोषित करें तो वह बच जायगी। मैंने समझाया जमींदारी प्रथा और जमींदारी के रूप में मौजूद सम्पत्ति तो कभी भी पहले की तरह नहीं रह सकती। जोतने वाले का खेत पर अधिकार होगा, इसे ब्रह्मा भी नहीं टाल सकता। मठ की सम्पत्ति को अगर सार्वजनिक धर्मोत्तर सम्पत्ति मानते हैं तो आपको विशेष रियायत मिलेगी। जमींदारी से जो वार्षिक मालगुजारी मिलती रही है, उसमें से बमुश्किल-सहमील के लिए दो चार सैकड़ा काटकर बाकी नगद रुपया मिल जायगा। यह सुभीता किसी निजी जमींदारी वाले व्यक्ति को नहीं है। इसके अतिरिक्त निजी जमींदार को कुछ बिगहे ही अपनी खेती के लिए रखने का अधिकार होगा। आपके मठों में बीसियों साधु रहते हैं, उनके हिसाब से मठों को अपनी निजी जोत की काफी जमीन रखने का अधिकार होगा और सैकड़ों बीगहे आप खेती करा सकते हैं। यह सुभीता भी नहीं रहेगा, और वही बास तास एकड़ जमीन आपके मठ को भी मिलेगा, जो कि दूसरों को। बिहार ही में नहीं, उत्तर प्रदेश में भी महन्तों में ऐसी हलचल है। कितने ही महन्त पहले ही से व्याह करके मठ की सार्वजनिक सम्पत्ति को निजी बना

चुके हैं। अभी ब्रह्मचारी मगरूदेवजी कह रहे थे कि अब तो उत्तर प्रदेश के कितने ही महन्त एक ओर से ब्याह करने की सोच रहे हैं। सार्वजनिक सम्पत्ति का इस तरह से ध्वंस और लूट खसूट होने देना किसी सरकार को शोभा नहीं देता। सरकार को उसकी रक्षा के लिए विशेष विधान बनाना चाहिए।

मठ में चारो तरफ घूमकर पोखरे के किनारे से हम पुराने मठ में गए। मूल मठ यही था जो कि गाँव से सटा हुआ है, और जिसमें गोपाल मन्दिर है। १९१३ में भी यह काफी बड़ा मठ था। उससे पहले तो यहाँ बड़ा फाटक और उसके ऊपर शहनाई या नगाड़ा बजाने वालों के बैठने का स्थान तथा सैकड़ों आदमियों के ठहरने लायक मकान थे। महन्त की गद्दी यहीं है। अब मठ को सकुचित कर दिया गया है। यहाँ के एक मन्दिर (रामजी) को उठा कर पिछले मठ में ले गये हैं तो भी स्थिति बुरी नहीं है। गाँव के बनियों में किसी की भक्ति ने जोर मारा और उसने गोपाल मन्दिर के फर्श को नकली संगमरमर का बना दिया। गाँव के भीतर से होकर हाई स्कूल में जाना था, वहाँ पर स्वागत की सभा होने वाली थी। तीस वर्ष में परसा के बहुत से पुराने आदमी चल बसे उनका स्थान लेने वाले मेरे परिचित नहीं थे। पर, रामउदार बाबा का नाम तो सभी सुन चुके थे। जब किसी पढ़े लिखे जवान ने मेरी किसी किताब की चर्चा की होगी, तो उसके गुरुजन ने कहा—'तुम क्या जानो रामउदार बाबा को। उन्हें हम पुजारीजी कहते थे। इसी परसा मठ में वह रहते थे। बड़े अच्छे थे। वह रहे होते तो यहीं मठ के महन्त होते। सुराज में काम करने लगे, फिर न जाने कहाँ चले गये।' उस भीड़ में उन सैकड़ों मुखों में मेरी आँखें परिचितों को ढूँढ रही थीं। 'बाइसवीं सदी'' में मैंने जिस पुराने अच्छे बड़े गाँव का दयनीय चित्र खींचा है वह यही परसा था, और उस दयनीय चित्र में अब भी कोई अन्तर नहीं पड़ा है। परसा बहुत पुराना ग्राम होगा। किसी समय यह एक सामन्त की राजधानी रही। परसा के बाबू वस्तुतः उसी सामन्त की सन्तानें हैं। उनका निवास स्थान अब भी गढ़ कहा जाता है और गढ़ के चारों ओर की खाईं के कुछ अंश अब भी मौजूद हैं। सामन्त की राजधानी में बाजार और शिल्प उद्योग होना ही चाहिए। परसा अपने काँसे और फूल के बर्तनों के लिए प्रसिद्ध

था। अब भी देखा स्नाट ढाले जा रहे हैं लेकिन वे भाग्य लौटाने म सफल नहा हुए।

गाँव से हात गढ पर लक्खी वाबू से मिलन गय। मरे समय म इनका और वाबू शिवजी का घर बहुत समृद्ध था। उसक बाद बच्चन वाबू थे। वाबू शिवजी क पिता बजनाथ वाबू का भी मैंन दखा था। उनक बाद बाबू शिवजी की बडी तपी। उनक पुत्र राघवजी भी अच्छी बबुआइ करक मरे। अब उनका लडका है लेकिन जमींदारी प्रथा उठन से पहल ही जमीन्दारी भीषण रूप से ऋणग्रस्त हो चुकी थी। लक्खी बाबू उन आदमियो म थ जिनका कहने हैं— न ऊधो से लेना न माधो का देना।' सरल प्रकृति क पुरुष थे। ऐसे आदमी को जमीन्दारी प्रथा उठाने वाली यथा बहुत पीडित नही कर सकता। बडी तपस्या स एक लडका हुआ था वह जवान होन लगा था कि इसी वक्त चल बसा। अब एक छोटा-सा बच्चा था। सुनत ही बच्चन बाबू भी चल आय। फिर हम उनके साथ गाँव से बाहर स्कूल म गय। इस स्कूल का स्थापित हुए पच्चीस से अधिक वष हो चुके हैं। मैं पहले पहल स्कूल म आया था। लडको और अध्यापको न स्वागत का आयोजन किया था। लागो को एक ही दिन पहल तो मेरे आन की खबर लगी थी और समय का ठिकाना नहीं था इसलिए गाव और आस पास क लोगो का मेरे चल जाने क बाद खबर मिली होगी। स्कूल सामाजिक परिवतन म काफी सहायक हात हैं। बाबू और गरीब क लडके एक साथ बैठकर पढते हैं, इसके कारण उनम भेदभाव कम होन लगते हैं। अब तो सामन्त-युग क अवशेष जमींदारी प्रथा के अन्त हो जान से यह सामाजिक विषमता और भी तेजी से कम हो रही है। बाबू लोग पहले पढने की जरूरत नहीं समझते थे। बच्चन बाबू क लडके एम० ए० होकर इसी स्कूल म अध्यापक हैं। वह विद्या क गुण को समझ सकते हैं। स्वागत और भाषण क बाद चलने की जल्दी थी क्योंकि आज ही एकमा और अतरसन म भी स्वागत-सभा होने वाली थी। स्कूल से लौटते वक्त मैं बाजार क भीतर स जाने वाली सडक हमन मोटर स नापी। बाजार क घरों म क्या परिवतन हुआ है यह देखना चाहता था। दूकानें कुछ ज्यादा बढी हैं चेहरे अधिकांश नये हैं। यही परिवतन था। सभा-स्थल पर ही एक हलवाइन बुढिया अपने गह का ... न करने क

लिए पहुँची। मैंने वैष्णव होते समय उसे मन्त्र दीक्षा दी थी। मुझसे दीक्षा लेने वाले स्त्री-पुरुषों की संख्या एक दर्जन से ज्यादा नहीं थी। जब मोटर दरवाजे पर पहुँची, तो देखा उसके ससुर जगेसर भी जिन्दा हैं। कमर टेढ़ी हो गई थी और शरीर में हाड़ माँस छोड़ और कुछ नहीं था। एक ही लड़का था। वह जवानी में जाता रहा। उसकी बहू ने अपने ससुर की सेवा में ही अपना जीवन बिता दिया। ससुर के बुढ़े देह में न जाने कहाँ से फुर्ती आ गई। मिठाई की दूकान में से जो अच्छी मिठाई थी, उसको इकट्ठा कर हमें अर्पित किया। परसा में रहते सवेरे का जलपान इन्हीं की दूकान से खरीदकर मेरे लिए आया करता था। बुढ़िया तो गद्गद हो गई थी। वह चरणामृत लिए बिना कैसे छोड़ सकती थी और मैं उससे इन्कार करके उसके हृदय को चोट कैसे पहुँचा सकता था? बड़ी सड़क पर पहुँचकर मठिया के पास मोटर को खड़ी कर हम फिर मठ में गये। वीर राघवदासजी बिना कुछ पवाये (खिलाये) नहीं छोड़ सकते थे। भात साग पूरी और हलवा खाने में वही रस आया जो कि १९१३ में आता था। सभी आत्मीय समवत थे और सभी के मन में एक तरह का भारी उत्साह था।

एकमा में पहुँचते पहुँचते १ बजे से अधिक हो गया। लक्ष्मी बाबू ने भी भोजन का प्रबन्ध कर रखा था। खैर, मात्रा तो अपने हाथ में थी, और मैंने यहाँ के लिए भी जगह छोड़ रखी थी। कांग्रेस में काम करते वक्त जिन तरुणों के साथ मेरा घनिष्ठ सम्पर्क हुआ था उनमें लक्ष्मी बाबू खास स्थान रखते हैं। एकमा हैडक्वाटर रहने और यहीं उनका घर होने से उनका घर मेरा अपना-सा था। सैकड़ों बार अचानक भी पहुँचकर मैंने उनके यहाँ भोजन किया होगा। उस समय घर के बड़े पिता और चचा थे। पिता मान बरसा राजा की तहसीलदारी करते भागलपुर जिले में रहा करते थे। लक्ष्मी बाबू डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के वायस चेयरमैन भी रह चुके थे और अब कांग्रेसी एम० एल० ए० थे। मैं कम्युनिस्ट हूँ, और वह कांग्रेसी। पर इससे क्या जरा भी वैयक्तिक सम्बन्ध में हमारा अन्तर आ सकता था? मेरे साम्यवादी विचारों को तो वह और उनके मित्र उस समय भी जानते थे जब मैं असहयोग में उनके साथ काम करता था। "बाइसवीं सदी" का ख्याल तो उस समय तक दिमाग में परिपक्व हो चुका था और १९२३ में वह कागज पर

भी उतर आया था। भोजन के बाद स्कूल में गए। छात्रों के अतिरिक्त जिन पुराने मित्रों का पता लगा, सब आए थे। रामबहादुर लाल १६ १८ वर्ष के तरुण थे जब उन्होंने स्कूल छोड़कर असहयोग में काम करना शुरू किया था। अब वह बूढ़े हो गए थे। रामउदार राय हरिहर सिंह का अब चेहरा स्मृति पटल पर ही देखा सकता था।

अतरसन—जल्दी जल्दी पड़ी थी। कम से कम दिन रहते अतरसन पहुँच जाना जरूरी था ताकि वहां एकत्रित हुए लोग निराश न हों। अतरसन धूपनाथ का गाँव है। उनके भाई देवनारायण सिंह का ख्याल आये बिना इस समय नहीं रह सकता था। लेकिन पुरानी पीढ़ियों को पकड़कर बढाया नही जा सकता। इस घर में बाबू रामनरेश सिंह असहयोग के समय से ही कांग्रेस का काम करते रहे और अब भी उसी में हैं। उस समय वह घर का काम काज देखते थे और अब हामियोपैथी के एक अच्छे डाक्टर हैं। उनके बुढ़ापे के बारे में कहने की क्या आवश्यकता, जबकि उनके भतीजे अखिलानन्द सिंह के सिर को देखने से मालूम होता था कि बाल नहीं बल्कि सफेद टोपी पहने हुए है। वीरेन्द्र अखिला आदि समवयस्क आध दर्जन से ऊपर इस घर के लड़कों को कभी मैंने बच्चे देखा था। मालूम होता है, वह दिन कल ही गुजरा है। आज घर जाने पर उसी उमर के एक दर्जन से अधिक लड़के खड़े दिखाई पड़े, यह उनकी अगली पीढ़ी है। बाबू रामनरेश सिंह और उनके घर के लोगों ही के प्रयत्न का फल स्कूल है। प्राइमरी से उसे मिडिल और फिर हाई स्कूल किया। आजकल लोगों में शिक्षा की कितनी रुचि है यह इसीसे मालूम होता कि कोस डेढ़ कोस के अन्दर यहाँ एकमा परसा, अतरसन, जलपुर बरेजा के पाँच हाई स्कूल हैं। और सभी जगह लड़कों की पूरी संख्या है सभी स्कूल स्वावलम्बी हैं। अतरसन का स्कूल गाँव से बाहर बगीचे के छोर पर है। काफी इमारत बन गई है। यहाँ भी सभा में भाषण देना था। पुराने सहकर्मियों में लक्ष्मी बाबू हमारे साथ ही थे, मधु बाबू भी और प० रामदयाल वैद्य भी आ मिले। रामदयाल जी सौभाग्यशाली हैं। इनके पिता अब भी जीवित हैं, और पुत्र के पुत्र का भी मुंह देख लिया है। सभा के बाद बाबू रामनरेश सिंह के घर पर गए। वहाँ साग का मर लिए विशेषतौर से इन्तजाम किया गया था, एक छोटी

भी चाय पार्टी हो गई। घर की महिलाओं में भी नई पीढ़ी आ गई थी, जो बाबा का दर्शन किए बिना कैसे रह सकती थी? उन्हें भी दर्शन देकर ६ बजे छपरा पहुँच गए। सिवान गए दस बारह वर्ष हो गए। वहाँ जाने की बड़ी इच्छा थी। यदि मोटर सवेरे ही आ गई होती, तो वहाँ भी हो आए होते।

१८ जनवरी को छपरा में ही रहना था। उस दिन सवेरे नौ बजे से ही प्रोग्राम शुरू हो गया। पहले अपनी पार्टी के साथियों के बीच प्रगतिशील साहित्य के सम्बन्ध में एक छोटी सी गोष्ठी हुई। यह देखकर प्रसन्नता हुई कि नई पीढ़ी पिछली पीढ़ी का स्थान लेने के लिए और भी उत्साह के साथ तैयार है। मध्याह्न भोजन नर्मदा बाबू के यहाँ हुआ। पहले यह और पं० गोरखनाथ त्रिवेदी पड़ोसी थे। नर्मदा बाबू और उनके अनुज जलेश्वर बाबू से मेरी पुरानी आत्मीयता है। दोपहर को राजेन्द्र कालेज पहुंचे। प्रिंसिपल मनोरंजन प्रसाद ने यदि परिचय में अतिशयोक्ति से काम लिया तो यह उनके अधिकार के भीतर की बात थी। 'फिरंगिया' के अमर गायक का मेरे साथ बहुत पुराना परिचय था। हिन्दू युनिवर्सिटी में जब अध्यापक थे तो उस समय वहाँ जाने पर जरूर मिलते। विश्वनाथ की नगरी छुड़ाकर छपरा लाने में मेरा ही हाथ था, इसे वह कहना नहीं भूले। मनोरंजन बाबू जनता के आदमी हैं इसलिए जनता के दुःख सुख को कभी नहीं भूल सकते।

छपरा में राजपूत स्कूल अब जगदम्ब कालेज के नाम से डिग्री कालेज बनने जा रहा था। अभी कालेज की दो कक्षाएँ खुली हैं, और उनमें पाँच सौ विद्यार्थी हो गए हैं। यह बतलाता है कि शिक्षा की बड़ी माँग है। जगदम्ब कालेज के तरुण प्रिंसिपल से बातचीत करने के बाद पुराने छपरा में राजेन्द्र पुस्तकालय देखने गए। यह तेरह वर्ष पहले एक किराए की छोटी सी कोठरी में खुला था और अब वह अपने पक्के मकान में तथा अच्छी स्थिति में है। शिक्षा और सम्पन्नता के बढ़ने पर यह और भी सेवा कर सकेगा। पुस्तकालय में दो तीन बहुमूल्यवान हस्तलिखित फारसी पुस्तकें थीं।

वहाँ से लौटकर श्रीमती विद्यावतीजी के वाणी मंदिर में गए। उनके

पति मगर्रसिंह की याद बड़ी दु ख माल्म होनी है। हिन्दू विश्वविद्यालय
स पढ़ाई छोड़कर उ होने पुस्तक का व्यवसाय शुरू किया। अच्छी तरह
जमा भी नहा पाए थे कि जवानी ही म चल बस। विद्यावतीजी गुरुकुल हर
पुरजान के सस्थापक की लड़की थी। वहीं उ ह सस्कृत पढ़ने का बहुत
अच्छा अवसर मिला। ब्याह मगलजी म हुआ। तीन छाटे छोटे बच्चा का
छोड़कर मगलजी चले गए। उनका घर पोखरपुर (परसा थाना) एक ग्राम
पीत भद्र कृषिजीवी परिवार का था। उनके चचा तीन या चार भाई एक
ही साथ रहा करते। छाटे चचा का शिक्षा का उतना अवसर तो नहीं मिला,
पर जो कुछ भी था उससे उ होने अपने ज्ञान को बनाया था। खेती म नई
बाना का अनुसरण करन के कारण उपज अच्छी होती थी। घर क सभी
लड़का को उच्च शिक्षा दी गई। लड़का का छोड़ लड़कियाँ भी उनके घर म
एम० ए० हैं। सबसे बड़ी प्रसन्नता मेरे लिए यह थी कि मगलजी म चचा
की लड़की ने अभी हाल ही म अपनी राजपूत बिरादरी को छोड़कर ब्राह्मण
लड़के से ब्याह किया। वह डबल एम० ए० हैं। चर्चा आने पर विद्यावती
जी ने कहा— अभी घर म लागा को इसकी खबर नहीं है।" इस मर्यादा
भग को शिक्षित बूढ़े भी क्या पसन्द कर सकते हैं? जिनके लड़के स इस
लड़की का ब्याह हुआ, वह स्वय विलायत हो आए, अर्थात् पुराने विचारा
क अनुसार धर्मभ्रष्ट है। इतिहास के एक माने हुए विद्वान् तथा एक कालेज
क प्रिंसिपल हैं। लेकिन जब यह पता लगा कि लड़के न राजपूत लड़की स
ब्याह कर लिया तो उनको भारी धक्का लगा। कुछ लोग तो कहते हैं
बेहोश होकर गिर पड़े। शायद सोचते थे कि कम्बख्त न थोड़ा और इत
जार किया होता ताकि मैं अपनी इकलौती लड़की का ब्याह कर देना।
पर प्रिंसिपल साहब गलत समझ रहे थे। लड़के के कारण उन्हें अपनी
जाति के ब्राह्मण दामाद के मिलने म कोई दिक्कत नहीं होती। विद्यावतीजी
न काम का खूब सभाला। अपनी दो लड़कियों का ग्रजुएट बनाकर उनका
ब्याह कर चुकी है। एक लाख रुपये का मकान बन रहा है जिसका बहुत
हिस्सा बन चुका है।

फिर शाम को व्याख्यान देने से पहले मित्रा को ढूढ़कर मिलने गया।
पाण्डे रघुनाथ बूढ़े हो गए हैं पहचानने म भी कुछ दिक्कत हुई। सोट्स प०

भी चाय पार्टी हो गई। घर की महिलाओं मे भी नई पीढी आ ग बाबा का दर्शन किए बिना कैसे रह सकती थी? उन्ह भा द ग बजे छपरा पहुँच गए। सिवान गए दस बारह वष हो गए। वह बड़ी इच्छा थी यदि मोटर सबेरे ही आ गई होती, तो वहां भी होता।

१८ जनवरी का छपरा म ही रहना था। उस दिन सवेरे नौ प्रोग्राम शुरू हो गया। पहले अपनी पार्टी के साथियों के बीच साहित्य के सम्बन्ध म एक छोटी-सी गाष्ठी हुई। यह देखकर प्र कि नई पीढी पिछली पीढी का स्थान लेने क लिए और भी उत्स तैयार है। मध्याह्न भोजन नमदा बाबू के यहां हुआ। पहले या गोरखनाथ त्रिवेदी पडोसी थ। नमदा बाबू और उनके अनुज ' बाबू स मेरी पुरानी आत्मीयता है। दोपहर का राजेन्द्र कालेज प्रिंसिपल मनोरंजन प्रसाद न यदि परिचय म अतिशयोक्ति स क तो यह उनके अधिकार के भीतर की बात थी। 'फिरंगिया' गायक का मेरे साथ बहुत पुराना परिचय था। हिन्दू युनिवर्सि अध्यापक थे, तो उस समय वहां जाने पर जरूर मिलते। वि नगरी छुडाकर छपरा स्थान म मेरा हो हाथ था, इसे वह कहना मनोरंजन बाबू जनता के आदमी हैं इसलिए जनता के दुःख सुर नहीं भूल सकते।

छपरा म राजपूत स्कूल अब जगदम्ब कालेज के नाम स ि बनने जा रहा था। अभी कालेज की दो कक्षाएँ खुली हैं, और सौ विद्यार्थी हो गए हैं यह बतलाता है कि शिक्षा की बडी मांग कालेज के तरुण प्रिंसिपल से बातचीत करने के बाद पुरा राजेन्द्र पुस्तकालय देखने गए। यह तेरह वष पहले एक किराए सी कोठरी म खुला था और अब वह अपने पक्के मकान म स्थिति म ह। शिक्षा और सम्पन्नता के बढ़न पर यह और सकेगा। पुस्तकालय म दो तीन बहुमूल्यवान हस्तलिखित पा थी।

वहां स लौटकर श्रीमती विद्यावतीजी के वाणी मन्दिर

पति मंगलसिंह की याद बड़ी दुखद मालूम होती है। हिन्दू विश्वविद्यालय से पढ़ाई छोड़कर उन्होंने पुस्तक का व्यवसाय शुरू किया। अच्छी तरह जमा भी नहीं पाए थे कि जवानी ही में चल बसे। विद्यावतीजी गुरुकुल हर पुरजान के संस्थापक की लड़की थीं। वहाँ उन्हें संस्कृत पढ़ने का बहुत अच्छा अवसर मिला। ब्याह मंगलजी से हुआ। तीन छोटे छोटे बच्चों को छोड़कर मंगलजी चले गए। उनका घर पोखरपुर (परसा थाना) एक खाते पीते मद्र कृषिजीवी परिवार का था। उनके चचा तीन या चार भाई एक ही साथ रहा करते। छोटे चचा को शिक्षा का उतना अवसर तो नहीं मिला, पर जो कुछ भी था उससे उन्होंने अपने ज्ञान को बढ़ाया था। खेती में नई बातों का अनुसरण करने के कारण उपज अच्छी होती थी। घर के सभी लड़कों को उच्च शिक्षा दी गई। लड़कों को छोड़ लड़कियाँ भी उनमें घर में एम० ए० हैं। सबसे बड़ी प्रसन्नता मेरे लिए यह थी कि मंगलजी के चचा की लड़की ने अभी हाल ही में अपनी राजपूत बिरादरी को छोड़कर ब्राह्मण लड़के से ब्याह किया। वह डबल एम० ए० हैं। चर्चा आने पर विद्यावती जी ने कहा— अभी घर में लोगों को इसकी खबर नहीं है। इस मर्यादा भंग को शिक्षित बूढ़े भी क्या पसन्द कर सकते हैं? जिनके लड़के से इस लड़की का ब्याह हुआ, वह स्वयं विलायत हो आए, अर्थात् पुराने विचारों के अनुसार धर्मभ्रष्ट हैं। इतिहास के एक माने हुए विद्वान् तथा एक कालेज के प्रिंसिपल हैं। लेकिन जब यह पता लगा कि लड़के ने राजपूत लड़की से ब्याह कर लिया तो उनको भारी धक्का लगा। कुछ लोग तो कहते हैं, बेहोश होकर गिर पड़े। शायद सोचते थे कि थोड़ा और इन्तजार किया होता ताकि मैं अपनी इकलौती लड़की का ब्याह कर देता। पर, प्रिंसिपल साहब गलत समझ रहे थे। लड़के के कारण उन्हें अपनी जाति के ब्राह्मण दामाद के मिलने में कोई दिक्कत नहीं होती। विद्यावतीजी ने काम का सूत्र संभाला। अपनी दो लड़कियों को ग्रेजुएट बनाकर उनका ब्याह कर चुकी हैं। एक लाख रुपये का मकान बन रहा है जिसका बहुत-हिस्सा बन चुका है।

फिर शाम को व्याख्यान देने से पहले मित्रों को ढूँढ़कर मिलने गया। पाण्डे रघुनाथ बूढ़े हो गए हैं पहचानने में भी कुछ दिक्कत हुई। साहब प०

भरतजी तो अपने उसी रूप में वर्षों से दिखाई पड़ते हैं। उनकी संस्कृत माध्यम वाली छोटी पाठशाला ठीक से चल रही है। संस्कृत बोलने चालने का अभ्यास हो जाता है। जो लड़के तीन चार साल यहाँ पढ़ जाते हैं, वे युनिवर्सिटी तक के लिए संस्कृत की कमाई कर लेते हैं इसलिए विद्यार्थियों के मिलने में दिक्कत नहीं है। म्युनिसिपल मैदान में भाषण देने के बाद साहित्य प्रेस में साहित्य गोष्ठी हुई, जहाँ छपरा के तरुण साहित्यकारों से मिलने का मौका मिला। ११ बजे लौटकर त्रिवेदीजी के घर पर पहुँचा। उनके पुत्र बिन्दु ने बड़े प्रेम से मछली बनाकर तैयार की। रात को गरिष्ठ भोजन करने का मेरा नियम नहीं है लेकिन प्रेम से बने हुए उस पदार्थ का छोड़ना नहीं चाहता था।

पटना—१९ तारीख का अंधेरा रहते ही स्टेशन पर पहुँचा। ट्रेन ४ बजकर ४० मिनट पर छूटी। ३५ वर्ष के मित्र पं० गोरखनाथ त्रिवेदी अभी भी शरीर से दृढ़ थे यह जानकर सन्तोष हुआ। सबसे छोटा लड़का वर्षों हुए घर छोड़कर चला गया तब से उसका पता नहीं लगा। बाकी लड़के अपने काम पर लगे हुए हैं इसलिए उन्हें घर की कोई चिन्ता नहीं। सोनपुर से गाड़ी बदल कर गंगा के किनारे पहुँचे, और जहाज से ११ बजे पटना पहुँच गये। सिवान के मास्टर साहब भी आए हुए थे। और डा० बाँके बिहारी मिश्र भी शाम को आ गए। उस दिन ४ बजे बी० एन० कालेज की राजनीतिक परिषद् में भाषण देना पड़ा। फिर साढ़े ६ बजे सम्मेलन भवन में साहित्यिक गोष्ठी हुई, जिसमें हिन्दी की स्थिति पर भाषण देते हुए मैंने कहा—'उर्दू भी हिन्दी ही है, उसे पराई भाषा नहीं समझना चाहिए। उसकी सभी बहुमूल्य कृतियों को नागरी अक्षरों में छाप देना चाहिए।'

२० जनवरी को भी पटना ही में रहना था। अब तक लोगों को प तौर से पता लग गया था इसलिए सवेरे से १० बजे रात तक गोष्ठी चलती रही। बीच में सांस्कृतिक विद्यालय में श्री महेन्द्र ‹ साथ गया। ब्रह्मचारी भगवद्देव से मुलाकात हुई। विद्यार्थियों की ‹ ४०-५० से अधिक नहीं थी। पिछली बार आने पर देखा था, ५८ विद्यार्थी संस्कृत में बातचीत करते हैं और उनके कारण संस्कृत में ‹

काफी प्रगति थी। अब वह नियम शिथिल कर लिया गया था। ऐसे संस्कृत माध्यमवाले स्कूल लाभदायक सिद्ध होंगे। मैं समझता हूँ विद्यालय ने उस नियम को न रख कर अपनी उन्नति के मार्ग में बाधा डाली है।

उसी दिन शाम को श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा आए। शर्माजी भूमिहार ब्राह्मणों में पहले आई० सी० एस० थे। बहुत तेज थे, लेकिन हमारी पुरानी संस्कृति आदमी को बिना डूबे बिना कैसे रह सकती? उनके सिर पर वेदान्त का भूत सवार हुआ और पेन्शन लेने की भी प्रतीक्षा किए बिना कलक्टरी से इस्तीफा दे दिया। कई वर्षों तक घर छोड़ स्वामी बन घूमते रहे, वेदान्त का अच्छा अध्ययन किया। अब भी अरविन्द के फेरे में हैं, और दर्शन के चक्कर से बाहर नहीं हैं। तो भी भगवा छोड़कर सफेद वस्त्र में अपने घर में रहना बतलाता है कि कुछ परिवर्तन हुआ है। बहुत पढ़ते हैं और बोलने में भी कमी नहीं करते, यद्यपि उनकी बातें सभी के समझ की होती हैं। पर, नई पीढ़ी इसे शाप मानती है। शर्माजी का एक ही पुत्र था, जो मर गया है। मुमकिन है उसका कुछ प्रभाव पड़ा हो, लेकिन, उनका भतीजा पुत्र ही समान है। जब हमारी बात चल रही थी, उसी समय डा० बद्रीनारायण प्रसाद के पुत्र डा० देवेशप्रसाद और उनकी पत्नी ने आकर शर्माजी के चरण छुए। उन्होंने प्रेम से आशीर्वाद दिया। फिर बेटी-दामाद ने दादा को चाय पान भी कराया। मुझे इसमें अत्यधिक प्रसन्नता हुई। मैंने यहाँ देखा कि नई पीढ़ी चुपचाप भीषण समस्याओं को आसानी से हल कर रही है। डा० देवेश जाति से सुनार हैं। उनके पिता बिहार के एक प्रसिद्ध डाक्टर तथा वहाँ के सबसे बड़े मेडिकल कालेज के अवसरप्राप्त प्रिंसिपल हैं। इसलिए जहाँ तक शिक्षा और संस्कृति का सम्बन्ध है, वह ऊँचे वर्ग के हैं। उनकी पत्नी आइ० सी० एस० शर्मा की पोती और जाति से भूमिहार है। बिहार में इसी का रोना तो लोग रोते हैं कि वहाँ जात-पाँत का बहुत ख्याल किया जाता है, जिसके कारण राजनीति और सामाजिक जीवन में बड़ी बुराइयाँ आ गई हैं। उसका ताड़न का साहस डा० देवेश और उनकी पत्नी ने किया। वह हिम्मतवाले तरुण हैं। लेकिन उनसे भी कम साधुवाद के पात्र श्री द्वारिकाप्रसाद शर्मा नहीं हैं, जो कि इस सम्बन्ध का इस तरह से स्वागत कर रहे हैं। श्री द्वारिका बाबू से ... का मेरा सम्बन्ध

असहयोग के जमाने मे बहुत घनिष्ठ था। एक समय कई महीने तक हम एक साथ हजारीबाग जेल मे रहे। वहीं से मैं छूट कर चला आया था लेकिन लाल बाबू जीवित नहीं निकल सके। अपने हाथ से परोस कर खिलानेवाली बहू के मुह से जब मैंने सुना कि वह लाल बाबू के भतीजे की लड़की है तो मुझे भी उनके इस साहस का कुछ अभिमान हुआ।

ये बातें अभी छिट फुट देखी जा रही हैं पर असहयोग के जमाने में एक थाली में खाना भी छिट फुट ही शुरू हुआ था और हिंदू भोजनालय भी उसी समय पहले पहल जहाँ-तहाँ खडे होने लगे। आज उन्ही का प्रताप है कि खाने में अब कोई परहेज नहीं है। इसी तरह यह जात पाँत का तोड़ना भी जो २०वी शताब्दी के उत्तरार्ध के आरम्भ होने के साथ हुआ है, वह अगले २५ ई० वर्षों में ही इतना बढ जाएगा कि हजारों वर्षों की वज्र सी मजबूत समझी जाने वाली दीवारें ढह के रहेंगी। बूढे नौजवानों के रास्ते में रोडा न अटका व्यर्थ का अपयश सिर पर न उठायें। मेरे एक दूसरे दोस्त ने इस विषय में कुछ कायरता दिखलाई। वह स्वयं गुरुकुल में पढे आर्य समाज के प्लेटफार्म से न जाने कितनी मर्तबे जात पाँत के खिलाफ बोले होंगे। असहयोग और कांग्रेस में बराबर काम किया। अपनी लड़की को पढाकर एम० ए० और वकील बनाया। वह वकालत करने लगी। नाबालिग नही थी। अपने भले बुरे को समझनेवाली थी। ब्राह्मणी की लड़की होते हुए उसने एक भूमिहार प्रोफेसर से हाल ही मे ब्याह किया। पिता का सारा सुधारवाद रफू चक्कर हो गया। सुना है उनको इसका इतना धक्का लगा कि बाल बढ़ाकर घर से निकल गये। समझा, लड़की ने नाक कटा दी। आखिर लड़की ने जिस तरुण को अपना साथी चुना, वह भी तो एक ब्राह्मण ही है। उनको देखते हुए द्वारिका बाबू का व्यवहार कितना प्रिय था? डा० देवेन्द्र की बीवी के साथ उनके सास ससुर विशेष आत्मीयता दिखलाते। वैसा होना भी चाहिए। तरुणी को उसकी जातवाली महिलाएँ कभी कभी अपने व्यवहार से प्रकट कर देती ही होंगी—तुमने जाति से बाहर ब्याह कर अच्छा नहीं किया।

आज शाम का भोजन देवेन्द्र और कुसुम के घर पर हुआ। डाक्टर ने दाँतों को भर दिया। चलो एक बला से तो छुट्टी मिली। उस दिन

चन्द्रमा भाई भी मिले। होश सँभालते ही उन्होंने देश के लिए सर्वोत्सर्ग किया। यदि देशद्रोही को तलवार के घाट उतार कर फाँसी पर नहीं चढा पाये तो इसे संयोग कहना चाहिए। कम्युनिस्ट हैं, इसलिए आज के शासन से कोई अवलम्ब नहीं। यह जानकर दुःख हुआ कि उनका परिवार आर्थिक कठिनाइयों में है।

१८

कलकत्ता

कलकत्तावाली ट्रेन बड़े कुसमय की थी। दो घंटे लेट रही, नहीं तो उसे साढ़े ८ बजे सवेरे आना चाहिए था। धूपनाथजी भी मिलने ही के लिए यहाँ आए थे, और अब क्यूल तक साथ चले। क्यूल में ट्रेन दो घंटा रुकी रही। मालूम हुआ भाषावार प्रान्त की माँग के सम्बन्ध में जो निश्चय भारत सरकार ने किया है, उसके विरोध में कलकत्ता में आज पूरी हड़ताल है। इसका पता तो हमें भी मालूम था, लेकिन विश्वास था हड़ताल शाम तक जरूर खतम हो जाएगी। ट्रेन भी शाम करके ही कलकत्ता पहुँचना चाहती थी। अंग्रेजों ने जितने ही बंगभाषी इलाके बिहार के भीतर और जितने ही हिन्दीभाषी इलाके बंगाल के भीतर रख दिये थे। प्रदेशों के निर्माण में नेहरू की सरकार अंग्रेजों के पदचिह्न पर ही चलना चाहती है। नेहरू बार-बार कहते हैं—"इस तुच्छ चीज के लिए इतना आग्रह क्यों? भाषावाद नीच मनोवृत्ति का द्योतक है।" उनकी चली होती तो भाषावार प्रान्त के वाद को सात पाताल नीचे दबा दिये होते। लेकिन "लोग मनुष्य स्वपथ सगारचरन्ति" नहीं है। अपनी भाषा के साथ जिस व्यक्ति का प्रेम नहीं, वह संस्कृतिविहीन है। भाषा केवल शौक की चीज नहीं, वह एक बड़ी शक्ति है। यदि जनता के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करना है, यदि जनता को शासन में शामिल करना है, तो उसकी भाषा लिए बिना एक कदम भी आगे नहीं चला जा सकता। पर इस इंडोआंग्लियन साहबों के लिए क्या कहा जाये? अपने तो उनका किसी जनभाषा से स्नेह और सम्पर्क नहीं, और

जिनका उनके द्वारा धरती से सम्पर्क है उस हीनवृत्ति का बतलाते हैं। जबानी जमा खर्च के लिए नेहरू भले ही कभी हिन्दी के प्रति आदर दिखाएँ और अंग्रेजी की शान में कुछ कह भी दें, लेकिन वह मन में समझते हैं कि अंग्रेजी हमारे शासन की भाषा रहती तो कितना अच्छा होता। लेकिन भाषा के दीवाने रामुलुओं के लिए क्या कहना? वह अपनी कुर्बानी से करोड़ों को उत्तेजित कर देते हैं और जनता पागल होकर करोड़ों की जान-सम्पत्ति को नष्ट कर देती है। वह भाषा के लिए अहिंसक सरकार की गोलियों को छाती पर लेने के लिए तैयार हैं। यह बहुत बड़ा सिर दर्द है। अभी महाराष्ट्र के कांग्रेसी नेता ने कहा—यदि बम्बई को उसके नायक प्रदेश महाराष्ट्र में नहीं मिलाया गया तो कांग्रेस के टिकट पर महाराष्ट्र में किसी को खड़ा नहीं किया जा सकता, और खड़ा किये जाने पर वह जीत नहीं सकता। नेहरू और उनके अनुचरों की नींद हराम हो गई है।

लेकिन भाषानुसार प्रदेश बनाने में इतनी आनाकानी क्या? गांधीजी ने जिन बड़े बड़े लक्ष्यों की घोषणा की थी, उसमें एक भाषानुसार प्रान्त निर्माण भी था। अब उससे मुँह फेरने की जरूरत क्या? और इसमें दिक्कत क्या है? कांग्रेसी नेताशाही हरेक चीज को ऊपर से क्यों लादना चाहती है और ऐसी जगह पर, जहाँ पर कि उसकी अकल गुम हो गई है। लोगों के बहुमत के अनुसार विवादग्रस्त इलाकों के बारे में क्यों नहीं निर्णय किया जाता? क्या बम्बई के लोगों के वोट पर भाग्य का निर्णय करना अच्छा है या पुलिस की गोलियों से सत्तर-सत्तर आदमियों को भून देना? फिर यह संख्या सत्तर ही थोड़े ही रहेगी। मतदान में खर्च और प्रबन्ध की दिक्कत का बहाना भी बेकार है। अगर खर्च तो और प्रबन्ध करना भी पड़े तो जनता के खून से हाथ रँगने से वह अच्छा है। जो नेहरूशाही अपने दूतावासों पर खर्च करने में मुगल बादशाहों से भी अधिक उदारता दिखलाती है, वह खर्च का बहाना कैसे कर सकती है। फिर खर्च की भी कोई बात नहीं, क्योंकि विवादग्रस्त इलाकों को विचाराधीन रखकर उनका अन्तिम निर्णय अगले सार्वजनिक चुनाव के साथ वोट लेकर किया जा सकता है।

धूपनाथजी क्यूल से घर गये। हमारी ट्रेन साढ़े ९ बजे रात को हवड़ा स्टेशन पर पहुँची। श्री मणिहर्षज्योति जी स्टेशन पर आये थे। उन्होंने अपना

आफिस दूसरी जगह पर बदला था इसलिए हमने समझा, निवासस्थान भी बदल गया होगा पर वह रहते अब भी थे ४, रामजीदास जेटिया लेन में। मसूरी जैसी सर्दी नीचे उतरने पर नहीं रही पर तब भी पटना तक वह खतम नहीं हुई थी। यह असली जाड़े का मौसम था लेकिन कलकत्ता में वह नाममात्र रह गई थी।

२२ जनवरी को रविवार था। लेकिन मुझे छुट्टी नहीं मनानी थी। जिन मित्रों से मिलना जरूरी था वहाँ हो आना चाहता था। १० बजे महादेव भाई भी आ गए और फिर सेंगरजी भी। १२ बजे भोजन करने के बाद महादेव भाई के साथ मोटर से चले। मणिरूपजी को अपने काम के लिए कार की जरूरत पड़ती पर उन्होंने उसे मेरे जिम्मे कर दिया था। इससे कलकत्ता शहर में दस पाँच मील दूर जाकर मित्रों से मिलने में बहुत सुभीता था। ट्राम या बस दिमागी अड़चन की ही सवारी नहीं है बल्कि मुग्न तो नोट फॉट से बहुत सवक्कर रहने की जरूरत पड़ती है, इसलिए भी उनका लेना पसन्द नहीं करता। पहले डा० भूपेन्द्रदत्त के पास गये। अब ७० से ऊपर के हो गये हैं। वर्षों से डायबेटीज के मरीज हैं, इसलिए स्वास्थ्य के अच्छा देखने की आशा क्या हो सकती थी? पर दिमाग उनका अब भी सचेष्ट है। उनके बड़े भाई श्री महेन्द्रदत्त ८० से ऊपर हो गये हैं। अब अधिकतर लेटे रहते हैं स्मृति बहुत कमजोर हो गई है। स्वामी विवेकानन्द के अनुज होने के कारण महेन्द्र बाबू को भक्त लोग अपनी श्रद्धा अर्पित करना जरूरी समझते हैं। भूपेन दा अनीश्वरवादी मार्क्सिस्ट हैं लेकिन महेन्द्र दा अपने बड़े भाई जगत् प्रसिद्ध संन्यासी के वेदान्त से नाता नहीं तोड़ इसलिए जब नवविवाहित वर वधू आशीर्वाद लेने आते हैं तो उन्हें आशीर्वाद भी देते हैं। हम भी मीठी चीजें प्रसाद के रूप में मिली। बहुत मुश्किल से आधा ही खा सके। कुछ ही महीनों में उनका देहान्त हो गया।

श्री गोपाल हालदार घर पर नहीं मिले। हम महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य के दर्शन के लिए गये। पिछली बार ही वार्धक्य उन पर हावी हो गया था। अब की बार तो वह और भी लटक गये थे। शरीर में हाड़-मास रह गया था हाथ भी हिलता था श्रवणशक्ति भी निर्बल हो गई थी, पर बिना चश्मे के किताब पढ़ लेते थे। उनकी वही पुरानी स्नेहपूर्ण

मुस्कान अब भी अपरिवर्तित रूप में मौजूद था। स्मृति क्षीण होने पर भी अभी कार्यकारी थी। पुस्तकों को सामने रखे उस वक्त देख रहे थे। आग्रह करने पर ही उठ खड़े हुए। बीस वर्ष हुए असंग के महान् ग्रन्थ 'योगचर्या-भूमि' को तिब्बत से लाये। महामहोपाध्याय एक दर्जन साल से उसके सम्पादन में लगे थे। यदि प्रेस का सहयोग मिला होता तो वह अब तक प्रकाशित हो गई होती, लेकिन वह चींटी की चाल से काम कर रहा था। महामहोपाध्याय पिछली बार भी निराशा प्रकट कर रहे थे और अब तो कह रहे थे—'जल्दी ही इसे मैं आपके पास भेज दूँगा, आप ही इसकी नैया पार करेंगे।' उनके शरीर और स्वास्थ्य की स्थिति देखकर बड़ी चिन्ता हो रही थी। यद्यपि अपने दीर्घ जीवन के एक एक दिन का उन्होंने मूल्य चुका लिया था, पर ऐसे ऋषि को अपने बीच से जाने का खयाल भी कौन कर सकता है? दो घंटा तक वहाँ बैठे बात करते दोनों को तृप्ति नहीं हो रही थी।

फिर सुनीति बाबू के निवास पर ढाई घंटा भिन्न भिन्न विषयों पर बातचीत करते रहे। आयु इनकी भी काफी है, लेकिन शरीर अभी बिल्कुल स्वस्थ है, और मस्तिष्क पहले ही की तरह काम करता है। मेरे लिए यह समझना भी मुश्किल है, एक प्रखर बुद्धि रखने वाला व्यक्ति कैसे अंग्रेजी को अपने देश के शासन और अध्ययन के कार्य के लिए अनिवार्य समझता है। वस्तुतः बचपन से ही अंग्रेजों और अंग्रेजी के घनिष्ठ प्रभाव में आने का ही यह परिणाम है। अंग्रेजी बिना शिक्षा का स्तर गिर जायगा। पर अंग्रेजी का स्तर स्वयं बड़ी तेजी से गिर रहा है। उसको ऊँचा उठाने के लिए एक ही रास्ता है कि परीक्षा में बैठने वाले विद्यार्थियों में १० सैकड़ा से अधिक को पास न किया जाए। लेकिन, फिर यह भी देखना होगा कि ९० सैकड़ा फेल हुए लड़के चुपचाप इस कसाईपन को बर्दाश्त करने के लिए तैयार होंगे? यदि यह शक्ति नहीं है तो अंग्रेजी के स्तर को ऊँचे करने की बात बकवास भर है। अंग्रेजी के नाम पर कुछ परिवारों के लड़कों की उच्च नौकरियों में इजारेदारी रखने के सिवा और कुछ नहीं किया जा सकता। अंग्रेजी के स्तर ऊँचा करने की आवश्यकता क्या है? हमारी भाषाओं में ज्ञान विज्ञान की सारी शिक्षा दी जा सकती है। पाठ्य-पुस्तकों की कमी का बहाना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। पाठ्य-पुस्तकों के लिखने और छापने वाले देश में सक्ष

मौजूद हैं और अब भी बी० ए० बी० एस-सी० तक की प्राय सभी विषयों पर पुस्तक हिन्दी म लिखी जा चुकी हैं। यदि उनकी अनिवार्यता हो तो सभी तरह की पाठ्य पुस्तकों के तैयार होने मे देर नहीं लगेगी। सरकार को उसम करोड़ो रुपये खर्च करने की भी आवश्यकता नहीं। यदि यह कहा जाए कि हिन्दी बगला आदि हमारी भाषाएँ अभी साइस और शिक्षा म आवश्यक साहित्य क लिए अपूर्ण हैं तो दुनिया की आज की कौनसी भाषा है जो उसक लिए अपने को पूर्ण समझती है। रूसी भाषा वाले उच्च अनुसन्धान और तत्सम्बन्धी साहित्य के लिए अपनी भाषा को अपूर्ण समझते हैं। इसीलिए वहाँ हरेक अनुसन्धानकर्ता के लिए जर्मन फ्रेंच और इंग्लिश का अपने विषय के समझने भर का ज्ञान आवश्यक समझा जाता है। यही बात फ्रेंच इंग्लिश और जर्मन भाषा वाले भी मानते हैं। यदि उनके अपने प्रथम श्रेणी के साइसवेत्ता दूसरी भाषाओं की अनुसन्धान पत्रिकाओं को स्वय नहीं पढ सकते तो उनके अनुवाद उनके सामने उपस्थित किये जाते हैं। हमारी भाषाएं भी यह कर सकती है। जब सुनीति बाबू जैसे व्यक्ति भी अंग्रेजी की अनिवार्यता की बात कहते हैं तो मुझे तो सन्देह होने लगता है कि कुएँ म ही भाँग पड़ी है। अंग्रेजी ही क्यों रूसी, जर्मन, फ्रेंच का भी कामचलाऊ ज्ञान हमारे अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए आवश्यक है। हमारे कूटनीतिज्ञों क लिए दूसरी भाषाओं क जानने की भी आवश्यकता है। रूस चीन जापान आदि देशों म अंग्रेजी क भरोसे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश हम नहीं करनी चाहिए। अंग्रेजी पर पूरी कमाण्ड रखने वाले राजदूतों की पक्ति या मास्को म क्या आवश्यकता है?

सुनीति बाबू चीन स बहुत प्रभावित हैं। एक चीनी पुस्तक को दिखला कर बतला रहे थे कि देखिये डा० रघुवीर ने इस अपना मौलिक काम कह कर छपवाया है। यह तो सीधी ठगी है। डा० रघुवीर को ही क्यों दोष दिया जाए। कितने ही लोग ऐसे व्यापार म कुशल हैं। आज के महाप्रभु गम्भीरता को थोड़े ही देखते हैं वह तो खुद डींग मारते हैं और दूसरा क डींग क प्रभाव म आ जाते हैं। "स्वाधीनता" कार्यालय म थोड़ी देर बात चीत कर रात को हम घर लौटे।

आज मोटर बिगड़ गई थी, इसलिए कहीं दूर नहीं जा सके। यहाँ

क्नाकार स्ट्रीट और अफीम चौरस्ते तक घूम आए। अफीम चौरस्ते का १६०७ और १६०६ वाला रूप अब नहीं है, और न नुक्कड़ पर की अधिकतर खुली एकमंजिला हलवाई की दूकान ही है। चाहे जितनी बार नये रूप को देखें, पर पुराना नक्शा ही दिमाग पर अंकित रहना चाहता है। हमने अभी और भी जगहों में जाने का प्रोग्राम रखा था, और २० या २१ फरवरी तक मसूरी लौटने की आशा थी। आजमगढ़ वालों का विशेष आग्रह था। उन्होंने सब तयारी कर ली थी। पर कमला को इस साल एम० ए० फाइनल की परीक्षा देनी थी। उसकी तयारी में विघ्न हो रहा था इसलिए लखनऊ छोड़कर बाकी सभी प्रोग्रामों को छोड़कर जल्दी से जल्दी मसूरी पहुँचना जरूरी था। 'बौद्ध संस्कृति' को छपकर तैयार हुए दो साल से भी ऊपर हो गए लेकिन बुरा हो टेक्स्ट-बुक के काम का। नेपाल" को उसी ने रोक रखा है और उसी के कारण बौद्ध संस्कृति दो साल से निकलने का नाम नहीं लेना। मैंने बाबू रामगोविन्दसिंह से कहा कि इस साल बुद्ध की २५वीं शताब्दी मनाई जा रही है उसमें यह पुस्तक काफी बिक जायगी इसलिए उसे निकाल दें। मैं जानता था बात का कोई प्रभाव नहीं रहेगा इसलिए कुछ को ठीक करा उन्हें छपवाकर कम से कम एक कापी अपने साथ लेने के लिए मजबूर किया। यद्यपि इन पंक्तियों के लिखने के समय (२१ अप्रैल १६५६) तक कोई कापी मेरे पास नहीं आई पर महादेव भाई की चिट्ठी से मालूम हुआ कि पुस्तक प्रकाशित हो गई और तीन सौ कापियाँ निकल भी गई। कमला की चचेरी बहिन यहाँ हो रहती है। उनके पति बंगाल के राज्यपाल के किसी दफ्तर में नौकर हैं। राज्यपाल भवन कलकत्ता के राजधानी रहते समय वायसराय भवन था इसलिए वह कितना विशाल होगा, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। दिल्ली के राजधानी होने पर वह गवर्नर (राज्यपाल) भवन बन गया। तब भी भारत के सबसे महत्वशाली प्रदेश के गवर्नर का भवन होने के कारण उस पर काफी साहखर्ची से काम लिया जाता था। लिफाफिया का सरकार लिफाफे के संबंध में एक कौड़ी भी कम करने का नाम नहीं ले सकता, उस तड़क भड़क को और बड़े रूप में रखना चाहती है। इसका नमूना यह राज्यपाल भवन है। पुरानी इम्पीरियल लाइब्रेरी और अब राष्ट्रीय पुस्तकालय के लिए पहले के मकान

काफी नहीं थे। उसे एक बड़ी जगह की आवश्यकता थी। लोगों ने इस राजभवन को लेने का प्रस्ताव किया। उस समय काटजू यहाँ के राज्यपाल थे। वह छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए। और अलीपुर के पुराने राजभवन में उसे ले जाने की सिफारिश करवा दी। हमारे नेता कितने स्वार्थी और अदूरदर्शी भी हैं इसका यह पक्का सबूत है। काटजू हमेशा के लिए बंगाल के राज्यपाल होकर नहीं आए थे और अलीपुर का वह मकान भी एक राज्यपाल के लिए काफी भव्य और बड़ा है। हमारा राष्ट्रीय पुस्तकालय यहाँ रहता, तो नहर के भीतर रहने से उसका अधिक उपयोग हो सकता था पर एक आदमी के कारण उसे दूर ऐसी जगह में ले जाना पड़ा जहाँ बहुत से मकानों के बनाने की आवश्यकता होगी।

अस्तु पुराना वायसराय और आजकल का राज्यपाल भवन अपने भीतर ही एक बड़ा नहर है। नौकरों की पचमंजिला बड़ी-बड़ी इमारतें हैं। कमला के बहनोई यहीं किसी दफ्तर में चपरासी हैं। ५४ रुपया मासिक वेतन और दो रुपया साइकल का एलौंस मिलता है। हाँ, कुछ हाथ की कोठरी उन्हें मुफ्त रहने के लिए मिली है। ५६ रुपये में कलकत्ता जैसे शहर में एक आदमी का खर्च चलाना मुश्किल है। फिर वह अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ चार प्राणी हैं। वह कैसे खर्च चला रहे हैं यह सोचना भी सिरदर्द का कारण हो सकता है। वह आए तो हम भी उनके घर पर चले गये। देखा उस घर को और पास में ही और भी उसी तरह की पाँच पाँच छ [redacted] हाथ लम्बी चौड़ी कोठरियों को भी देखा जिनमें उनके जैसे और दूसरे चपरासी रह रहे थे। यदि इन कोठरियों की सभी स्त्रियाँ जवानी में बूढ़ी हो जाएँ, लड़कों के हाड़ हाड़ दिखाई पड़ें तो आश्चर्य क्या। उधर राज्यपाल की दावतों में लाखों का वारा-न्यारा होता है और इधर ये बच्चे अपने बचपन को इस भीषण दरिद्रता और अभाव में बिता रहे हैं। पर, आज इसके बारे में सोचने की भी किसको फुर्सत है—'बड़े बड़े काम हैं। इन छोटी बातों को क्या सामने लाते हो?'

२८ जनवरी को राज्यपाल भवन के चपरासियों का दस्तर भाजन किया और फिर बाहर निकले। एसियाटिक सोसायटी में कुछ पुस्तकें देख लीं। खासकर कवि रहीम सम्बन्धी पुस्तकें, जिसमें 'माआसर रहीमी'

की छपी हुई बडी पोथी देखने को मिली। इसमे रहीम की नहीं बल्कि उनके आश्रित सैकडो फारसी कवियो की कविताएँ संग्रहीत हैं। वहा से अलीपुर मे राष्ट्रीय पुस्तकालय मे गये। इस भवन को तत्काल के लिए ही पर्याप्त कहा जा सकता है। अभी पूरी तौर से हरेक विभाग की पुस्तकें व्यवस्थित रूप से रखी नहीं गई है। हिन्दी विभाग मे भी कुछ योग्य पुरुष आ गए हैं। पुस्तकालय के पास ही अलीपुर का चिडियाखाना है। थोडी देर उसमे भी चले गए। सोचा था चिम्पाजी या गोरिल्ला वहा होगे लेकिन वह मर चुके हैं और उनकी जगह नये आए भी हैं। मसूरी के हमारे पडोसी पुनाग महोदय यही अलीपुर आकर रह रहा थी। ढूढते ढूढते उनके परिचित एक आदमी ने बतलाया कि वह यहा से बगलोर चली गई। महाबोधि सभा मे श्री देवप्रिय वलिसिंह से मिले। उन्होने २६ जनवरी को भाषण देने के लिए कहा मैंने स्वीकार कर लिया।

अबकी कलकत्ता मे व्याख्यान देने की ज्यादा जरूरत नहीं पडी, यह बुरा नहीं था। इसका कारण पत्रो मे सूचना का प्रकाशित न होना था। कलकत्ता के हिन्दी पत्र ब्रह्मा की भी पर्वाह नहीं करते। उनके लिए टका सब कुछ है। हिन्दी पत्रो का स्तर जितना नीचा यहाँ गिरा है उतना शायद ही और कही।

२५ की शाम को शहर के एक कोने पर एक सास्कृतिक और साहित्यिक गोष्ठी हुई, जिसमे गिने चुने दो दजन साहित्यकार और साहित्यप्रेमी आए। संस्कृति पर मुझे बोलना और प्रश्नोत्तर देना था। रात को अलीपुर की तरफ से होते किले के मैदान मे मोटर चली, तो चारो ओर महानगरी दीपमालिका मनाती मालूम हो रही थी। १९०७ का ही सन् था, जबकि इसी मैदान मे पहली बार मोटर पर चढने का मौका मिला था। लेकिन उस समय बिजली नहीं गैस बत्तिया जला करती थी। यहाँ दिन मे गर्मी मालूम होती पखा चलाना पडता था।

चीन मे प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी की पत्रो तथा पत्रिकाओ तथा भारतीय पत्रो मे तिब्बत के बारे मे इधर जो बातें पढ रहे थे, उनसे यह जिज्ञासा बढ गई थी, और चाहता था कि तिब्बत से आए किसी आदमी से विशेष बातें मालूम करूँ। श्री मणिहर्षजी के अपने आदमी ल्हासा मे रहते

है पर इधर कोई नया आदमी वहाँ से आया नहीं था। जाड़ा में तिब्बती व्यापारी कलकत्ता पहुँचा करते हैं। मालूम हुआ, १५ नम्बर लोअर चितपुर रोड में आकर वह ठहरते हैं। हम वहाँ चले। साथ में तीन चार और भी तरुण थे। जब सारी पलटन उधर चलने लगी तभी मुझे सन्देह हुआ कि वह लोग भड़क जाएंगे और वैसा ही हुआ भी। पाँच आदमियों को उन्होंने देखा, तो मेरी तिब्बती भाषा की भी पर्वाह न करके उन्होंने कुछ भी बतलाने से इन्कार कर दिया। मणि बाबू ने टेलीफोन से विशेष तौर से बात की तो अगले दिन एक तरुण घर पर आया। वह उस दिन भी गली में मिला था। सम्भव है वह साथ रहता तो निराश न होना पड़ता। अब उसने सारी बातें बतलाईं। वह मेरे नाम से अच्छी तरह परिचित था। मेरे पड़ोसी और मित्र कादिर भाई की लड़की जमीला उसकी पत्नी थी। जमीला मेरी पहली तिब्बत यात्रा के समय ल्हासा में हर वक्त सहायता करने के लिए तैयार रहती थी। उस समय उसकी उमर दस ग्यारह साल की होगी। यह समाचार मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता का था। तरुण ने बतलाया कि ल्हासा से फरी तक अब मोटर बस आती है। शिगची के पास ब्रह्मपुत्र पर पुल है। मोटर की सड़क जल्दी ही टोमा (चुम्बी वैली) तक खुल जायगी। व्यापार के बारे में कोई दिक्कत नहीं। हम वहाँ से पैसा को लादकर लाने की जरूरत नहीं पड़ती। ल्हासा से चेक लाने पर यहाँ चीनी बैंक से रुपया मिल जाता है। सड़कों और पुलों के बनाने में आश्चर्यजनक फुर्ती से काम लिया जा रहा है। बतला रहा था, ल्हासा वाली नदी पर पुल बनने लगा था। हम समझते थे उसके तैयार होने में दो तीन महीने तो जरूर लगेंगे, लेकिन हमारे अचरज का ठिकाना नहीं रहा, जब देखा कि दो-तीन हफ्ते में ही उसे बनाकर खोल दिया गया।

२६ जनवरी को ही शाम को महाबोधि हाल में पं० अयोध्याप्रसाद के सभापतित्व में बुद्ध दर्शन पर भाषण दिया। पं० अयोध्याप्रसाद को अब की बहुत सालों बाद देखा। अब भी उनका स्वास्थ्य अच्छा था, यद्यपि आयु मुझसे उनकी कम नहीं है।

२७ को फिर डा० भूपेन्द्रदत्त और उनके बड़े भाई ८७ साल के श्री महेन्द्रदत्त से मिलने गए। आज ही कलकत्ता छोड़ना था इसलिए 'बौद्ध

संस्कृति" के टाइपों को छपवाकर एक कापी लेना जरूरी था। इस तरह से आज का सारा समय और चिन्ता उसी पर रही, तभी रात जाकर एक कापी मिल सकी। मेरी तीन चार पुस्तकें बंगला में अनुवादित होकर छपी हैं जिसमें 'वोल्गा से गंगा' भी है। यह भारत की सभी भाषाओं में अनुवादित हो चुकी है, पर बंगला के कवर में जिस रुचि का परिचय दिया गया है, वह बतलाता है कि बंगला भाषी इस बात में हमारे सारे देश में आगे हैं। प्रकाशक को यह विश्वास नहीं था कि एक साल के भीतर ही पहला संस्करण समाप्त हो जायेगा। उन्होंने दूसरे संस्करण की कुछ प्रतियां दीं।

लखनऊ—२७ जनवरी के लिए सीट पहले ही से रिज़र्व कर ली थी। स्टेशन पर मणि बाबू, महादेव भाई और बॅनरजी आए। हमारे कम्पार्टमेंट की १२ सीटों में ८ रिज़र्व थीं। एक बंगाली पाकिस्तानी तरुण भी चल रहे थे जो इस समय लाहौर में अफसर थे। उन्होंने वहां की बातें बतलाईं। बंगाली मुसलमान ऐसे ही पंजाबी पाकिस्तानियों से असंतुष्ट रहते हैं। वह वामपक्षी विचारों के थे, इसलिए आशा प्रकट कर रहे थे कि कभी हम फिर एक हो जाएंगे। पास में शरणार्थी पंजाबी हिन्दू तरुण बैठा था। वह दूसरे के भावों का बिल्कुल ख्याल किये बिना मुसलमानों की क्रूरता को बड़े जोश के साथ प्रकट करने लगा। मानो उस समय हिन्दुओं और सिक्खों ने क्रूरता दिखलाने में कुछ कसर रखी थी। सेकण्ड क्लास में सीट रिज़र्व कराने का मतलब बैठने भर के लिए रिज़र्व कराना था, इसलिए बैठे बैठे ही सोना पड़ा।

भिनसार को देखा वर्षा हो रही है। बनारस में ६ बजे के करीब गाड़ी पहुँची। श्री जयकृष्णदास को लिख दिया था कि किसी आदमी को स्टेशन पर भेज दें, वह संस्कृत पाठमाला के प्रूफ को दे जाएगा और बाकी तीसरी चौथी पांचवीं पुस्तकें भी लेता जाएगा। जो सज्जन प्रूफ लेकर आए, उन्हें मैं पहचानता नहीं था और शायद वह भी मुझे बहुत कम ही जानते थे। सौभाग्य ही समझिये जो मिल गए। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि अब पाठमाला छपने लगी है। मैं देख रहा था, मिट्टी की छतें किन गांवों में शुरू होती थीं। जायस में वह शुरू होती दीख पड़ीं। फिर जायस के नाम पढ़ते ही जायसी याद आने लगे।

लखनऊ में साथी रमेश, साथी शिव वर्मा और दूसरे मित्र आये हुए थे। विप्लव प्रेस में आकर ठहरा। यशपालजी घर पर ही थे। श्रीमती प्रकाशवती को डाक्टरों ने टी० बी० की बात बतला दी है, इसीलिए वह पूरा विश्राम ले रही थीं। लेकिन शरीर का विश्राम लेने के लिए दिमाग का भी विश्राम देना जरूरी है और वह बूते से बाहर की बात है। फिर साथी प्रेस तो प्रकाशवतीजी के बल पर चल रहा था। यशपालजी का उससे इतना ही नाता था कि उनके उपन्यास और कहानियाँ उसमें छप जाती थीं। प्रेस रहा या प्रकाशवतीजी अब भी खाट पर लेटे-लेटे प्रूफ देखने में लगी हुई हैं।

बस लखनऊ में उतरते पर 'मध्य एसिया का इतिहास (२)" ४०० पृष्ठ तक छपकर अब खटाई में पड़ा हुआ है। प्रेसवाले न छापते हैं और न छापने से इन्कार करते हैं। इसके बारे में जल्दी कुछ करना जरूरी था। यहाँ का दूसरा प्रेस अवशिष्ट अंश को छापने के लिए तैयार था। मैं विशेष तौर से उसी के लिए आया था। सोमवार को उन्होंने बतलाया कि हम अवशिष्ट भाग को एक मास में ढाल देंगे। पंच तो सारी पुस्तक हो गई थी। एक मास २ मार्च को पड़ता। पर १९५७ के १० मार्च का उसका भी कोई पता नहीं।

२९ जनवरी को रिसालदार बाग बौद्ध विहार में गए। श्री प्रज्ञानन्दजी ने अपने गुरु की कीर्ति को बहुत तत्परता से कायम रखा है। वहाँ से रिक्शा ले हम साथी सज्जाद जहीर से मिलने गए। पाकिस्तान बनने पर वह पश्चिमी पाकिस्तान में चले गए थे और वर्षों वहाँ के जेलों में रहे। षड्यन्त्र का मुकद्दमा चल रहा था और जमानत पर छूटकर आए थे, लेकिन अब मुकद्दमा खतम हो गया था और वह भारत ही में रहना चाहते थे। इसकी सबसे अधिक प्रसन्नता उनकी बीवी रजिया बेगम को होनी चाहिए, जो बच्चों को लिए अपने घर मड़ी लखनऊ में वर्षों से बाट जोह रही थी। तीनों लड़कियों में बड़ी मैट्रिक में पढ़ती है, उसे उर्दू में लिखने में दिक्कत नहीं है। मझली हिन्दी में ही लिखती है, उर्दू उसे कबाहत की चीज मालूम होती है। वस्तुतः उर्दू की अपेक्षा हिन्दी लिपि बहुत सुगम है। जिसने उर्दू पर वर्षों नहीं लगाये, उसके लिए तो वह और भी मुश्किल हो जाती है। रजियाजी

पहले मुझे उर्दू खिराजी समझकर बहुत नुक्ताचीनी करती थी लेकिन अब उनकी कहानी हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में निकलने लगी हैं, काफी पसंद की जाती हैं, इसलिए हिन्दी पर भी उनका अपनत्व हो गया है। कल (सज्जाद जहीर) से साहित्य के सम्बन्ध में बातचीत होती रही। अभी वह राजनीति से अलग हैं। पाकिस्तान लौटकर नहीं जाना चाहते, किंतु उनकी भारतीय नागरिकता खतम हो चुकी है, जिसे फिर से लेना है। पाकिस्तान बनते वक्त सोचा था— मैं वहाँ रहकर साहित्य और दूसरे कामों द्वारा प्रगतिशील विचारों का प्रचार कर सकूँगा। लेकिन, अमेरिका के चंगुल में पूरी तौर से फँसा पाकिस्तान और उसके तानाशाह भला इसे बर्दाश्त कर सकते हैं? बचने के लिए दो ही रास्ता था। या तो पाकिस्तान में रहकर वहाँ की जेलों में सड़ें और साथ ही अपने बीबी-बच्चों को भारत में अलग रहने दें, नहीं तो यहीं चले आएँ और अपनी शक्तिशाली लेखनी तथा व्यापक ज्ञान से अपने वतन को फायदा पहुँचायें। उन्होंने दूसरा ही रास्ता पसन्द किया है।

उस दिन शाम को ६ बजे से साहित्य गोष्ठी होनेवाली थी, लेकिन मित्र लोग पहले ही से आने लगे। श्री भगवतीचरण वर्मा सबसे पहले आए। भाषा की समस्या पर बातचीत के बाद फिर गोष्ठी शुरू हो गई। भाषावार प्रदेश आजकल का भारी प्रश्न था। देश में जगह-जगह लाठियाँ और गोलियाँ चल रही थीं। उर्दू और हिंदी का भी सवाल आया। श्री हयातुल्ला अन्सारी साहब ने उसके बारे में कई प्रश्न पूछे।

३० जनवरी को कलाकार श्री जे० एन० सिंह के साथ उनके स्टुडियो में गया। स्वनिर्मित कलाकार हैं। मूर्तिकला की ओर उनका विशेष ध्यान है। पिकासो की प्रवृत्ति ने इनको भी आकृष्ट किया है। मैं किसी भी बड़े नाम के कारण प्राकृतिक जगत से दूर के विरूप चित्रों और मूर्तियों की प्रशंसा नहीं कर सकता। यदि सामने खड़े सिपाही के हण्टर के टूटने का डर न हो, तो सभ्य भाषा में अपने विचारों को खुलकर कह सकता हूँ। सचमुच यह प्रतिभा और श्रम का अपव्यय है। चित्रकला, मूर्तिकला, काव्य सभी को इन विरूप प्रतीकवादों ने नाश किया, कम हो जब उस्तादों की गल्पबाजी ने हमारे मगज को।

आज नेशनल हेरल्ड प्रेस में जाने पर कांग्रेसी पत्र "कौमी आवाज" के

सम्पान्द थी हयातुल्ला अन्सारी मिले। वह उर्दूवालों के भावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस वक्त राष्ट्रीय भावना रखना मुसल्मान के लिए जातिद्रोह समझा जाता था उस समय अन्सारी साहब काग्रेसी रहे। वह और उनकी पत्नी मरठ की रहनेवाला हैं। उर्दू के बारे में वह जो भी विचार प्रकट करें उन्हें बड़े ध्यान से सुनना होगा। वह अपने साथ अपने घर पर ले गये। चायपान और साथ ही इत्मीनान के साथ बात होती रही। मैं हिन्दी उर्दू को दो भाषा नहीं मानता और साथ ही चाहता हूँ कि यह ख्याल जवानी जमाखर्च तक न रह जाए बल्कि उर्दू को भी लोग पढ़ें। उसके व्यापक प्रचार के लिए यह आवश्यक मानता हूँ कि उर्दू की पुस्तकें नागरी अक्षरों में भी छपें। इधर श्री गोयलीयजी और फिराक साहब के प्रयत्न से जितने ही उर्दू कवियों की कृतियाँ नागरी अक्षरों में छपी हैं जिनका बहुत अच्छा स्वागत और प्रचार हुआ। उर्दू की पुरानी पीढ़ीवाले इस खतरे की बात समझते हैं। पर मुश्किल तो लिपि बदलने से भाषा के खतरे की बात समझ में नहीं आती। तुर्की भाषा ने अरबी की जगह रोमन लिपि क्यों से स्वीकार कर ली है। उसमें उसकी क्षति नहीं पहुँची। सोवियत मध्य एसिया की भाषाओं—ताजिकी (फारसी) उज्बकी आदि—ने अरबी लिपि की जगह रूसी को अपना लिया है उसके कारण उन भाषाओं को कोई हानि नहीं पहुँची। यदि उर्दू नागरी अक्षरों में लिखी जाय तो उर्दू को क्या क्षति पहुँचेगी? हाँ यह डर ही सकता है कि लिपि के कारण ही तो इस भाषा का नाम उर्दू पड़ा है। यदि लिपि हटी तो गालिब को भी लोग हिन्दी का कवि कहने लगेंगे। यदि ऐसा हो तो क्या बुरा है? गालिब और अकबर यदि डेढ़ दो करोड़ आदमियों के न होकर १५ १६ करोड़ के हो जाए तो क्या बुरा? पर मैं यह भी नहीं कहता कि उर्दू के लिए उर्दू लिपि का बायकाट किया जाए। दोनों लिपियों में पुस्तकें प्रकाशित हों। फिर उर्दूवाले नफा उठाएंगे लोग अधिक हिन्दी लिपिवाली पुस्तकों को ही लेने लगेंगे और उर्दू लिपि में छपी पुस्तकें बिक नहीं पायेंगी। उनका यह सन्देह बिलकुल ठीक है। दोनों लिपियों में छूट देने से उर्दू लिपि में छपी पुस्तकें पुरानी पीढ़ी को ही सन्तोष देने की कोशिश करेंगी। नई पीढ़ी जो उर्दू से भी अच्छा नागरी लिपि को पढ़ती लिखती है वह बड़े भाई की मखली

शाहजादी की तरह उर्दू से नाता काटने लगेगी। संस्कृत के बारे में हम जानते ही हैं, इस शताब्दी के आरम्भ में संस्कृत पुस्तकें केवल नागरी में ही नहीं छपती थीं, बल्कि बंगला, उड़िया, तेलुगु, ग्रंथाक्षर तमिल, मलयालम और कन्नड़ लिपियों में भी छपती थीं। तेलुगु लिपि में तो बहुत काफी छपता थी, और उनको तमिलनाडवाले विद्वान् भी पसन्द थे। पर नागरी के सामने सबको भाग जाना पड़ा। एक तो नागरी लिपि में छपी पुस्तकों का सारे भारत में ही नहीं, भारत से बाहर सिंहल, बर्मा और श्याम भूमि में भी प्रचार था। हिन्दी क्षेत्र से बाहर नागरी को संस्कृत की अपनी लिपि सा माना जाने लगा था। इतना बड़ा क्षेत्र होने के कारण नागरी में छपी संस्कृत पुस्तकें थोड़े समय में काफी संख्या में बिक जाती थीं, जबकि दूसरी लिपियों में छपी पुस्तकें वर्षों तक निकल नहीं पाती थीं। इस सुभीते के कारण निर्णयसागर और वेंकटेश्वर जैसे प्रेस अच्छे कागज पर सुन्दर अक्षरों में बड़ी संख्या में पुस्तकें छापते थे। बाजार में भला ऐसी पुस्तकों का दूसरे कैसे मुकाबिला कर सकते थे? आज संस्कृत साहित्य पर नागरी लिपि का अखण्ड राज्य है। कुछ इसी तरह की बात दो-तीन पीढ़ियों में उर्दू के बारे में भी घट सकती है। पर उर्दू भाषा को नागरी अक्षरों के अपनाने में कोई क्षति नहीं होगी, उल्टा उसका प्रचार बहुत बढ़ जाएगा।

अन्सारी साहब से और उनकी विदुषी पत्नी से बातचीत करते यह बातें सामने आईं। लेकिन उनके एक सवाल का मेरे पास जवाब नहीं था। वह कहते रहे, जब उर्दू हिन्दी ही है तो हिन्दी के साहित्य इतिहास या कविता संग्रह में उर्दू को भी क्यों नहीं साथ-साथ स्थान दिया जाता। इस प्रश्न की आवश्यकता न होती, यदि १९५४ में बनाई मेरी योजना कार्यरूप में परिणत हो गई होती। मैंने अपभ्रंश काल की कविता को लेकर हिन्दी काव्यधारा तैयार कर प्रकाशित करवाई। दूसरे मित्रों को अगले भाग सम्पादित करने के लिए दिये थे। जो वह नहीं कर पाए। मैंने यही ख्याल रखा था कि कविताओं को काल क्रम से संगृहीत किया जाए और हिन्दी उर्दू कवियों को एक ही सूची में बीच-बीच में काल क्रम के अनुसार रखा जाए। यही करना भी होगा। हिन्दी के हरेक साहित्यिक इतिहास में जब मैथिली, अवधी, ब्रज, डिंगल को काल के अनुसार स्थान दिया जाता है तो

उर्दू के साथ यह भेदभाव क्या? यदि उर्दू के कितने ही शब्द सामान्य पाठक की समझ में नहीं आएँगे, तो मैथिली और डिंगल के भी बहुत से शब्द उन्हें समझ में नहीं आएँगे। इस आधार पर हिन्दी उर्दू के कवियों को मिलाकर कविता संग्रह की बड़ी आवश्यकता है। यह उर्दूवालों को खुश करने के लिए नहीं बल्कि अपनी एक महत्वपूर्ण धारा से अपरिचित न रहने के लिए भी आवश्यक है। उर्दू भी राजभाषा हो इसका भी अन्सारी साहब का आग्रह था, जिसके बारे में मैंने स्पष्ट अपना मतभेद प्रकट किया। मैंने कहा—राजभाषा प्रदेश के अनुसार होना चाहिए। कुछ छिटपुट व्यक्तियों के अनुसार नहीं। उत्तर प्रदेश का ही ले लें तो जिन भाषाओं को राजकाज के लिए आगे आने की जरूरत है वे हैं जनभाषाएँ—भोजपुरी अवधी ब्रज मध्यदेशी या कौरवी और पहाड़ी जिनकी लिपि नागरी होगी। यदि नागरी लिपि में उर्दू लिखी जाए तो भाषा का सवाल बहुत कुछ खतम हो जाता है। अन्सारी साहब इसको तो समझ रहे थे कि मैं उर्दू का अनिष्ट नहीं चाहता और उन्हीं की तरह उसकी साहित्य निधियों का प्रचार और संरक्षण चाहता हूँ। इसलिए कहा, अच्छा यही सही।

उस दिन शाम को युनिवर्सिटी छात्र संघ में भाषण दिया। फिर रात को समन्वय (वर्ग?) गोष्ठी में भाषानुसार प्रदेश पर। रिसालदार बाग बुद्ध विहार में भी भाषण देकर रात को घर लौटा।

२१ जनवरी को भी दिन भर पूरा व्यस्त रहा। दोपहर तक निवास स्थान ही पर मित्र लोग आते रहे। नवलकिशोर प्रेस उर्दू फारसी पुस्तकों के प्रकाशन का सबसे पुराना और सबसे बड़ा प्रेस है। अफसोस है, अब उस तरह की पुस्तकें यहाँ से प्रकाशित नहीं होती। पहले की प्रकाशित पुस्तकें भी गोदाम के जंगल में पड़ी हुई हैं। चिट्ठी लिखने पर जल्दी मिल नहीं पाती इसलिए सोचा स्वयं चला चलूँ। मेरे काम की वहाँ दो चार ही पुस्तकें मिलीं। हाल में ही कुल्लियात नजीर (नजीर काव्य संग्रह) प्रकाशित हुआ है जिसकी एक प्रति ली। नजीर अपनी भाषा की दरिद्रता के कारण सरल भाषा में कविता नहीं करते थे। वह फारसी के भी कवि थे। उनकी फारसी कविताएँ इस संग्रह में मौजूद हैं।

मध्याह्न भोजन डा० विश्वनाथ मिश्र के यहाँ किया। उनकी पत्नी

महिला कालेज म गणित का अध्यापिका हैं। वहाँ भी भाषण देने के लिए जाना पड़ा। हिन्दी की उपन्यासकार श्रीमती कांचनलता सब्बरवाल कालेज की प्रिंसिपल है। विद्यालय म तीन हजार लडकियां पढ़ती है बारह सौ तो कवल कालेज विभाग म हैं। यह बतला रहा था कि स्त्रियों मे शिक्षा का प्रसार और रुचि खूब बढ रही है। लखनऊ युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार श्री तिवारीजी कह रहे थे कि मालूम होता है कुछ दिनों मे युनिवर्सिटी लड़कियों की हो जाएगी। मैंने कहा १९४५ ४६ म मैंने लेनिनग्राद युनिवर्सिटी म भी ऐसा ही देखा था मुश्किल से सौ म दस लड़के रह होगे। महिला कालेज स हजरतगंज के एक बड़े रेस्तोरां म नेपाली छात्रो की चाय पार्टी म जाना पडा। चालीस क करीब छात्र और दो ने छात्राएँ नेपाली थी। श्री भगवती प्रसाद वर्मा, श्री यशपाल और बधडक बनारसीजी भी मौजूद थे। सबने थोड़ा थोडा भाषण दिया। छात्रों म अधिकांश नेपाल उपत्यका क थे। उनके बाद पूर्वी नेपाल क। पश्चिमी नेपाल के दो ही तीन विद्यार्थी थे जो बतला रहे थे कि नेपाल का यह भाग शिक्षा म बहुत पिछड़ा हुआ है।

कलकत्ता से दूसरे दर्जे म रात को सफर करके देख लिया था नहीं चाहता था आज भी रात बठे बैठे गुजारनी पड़े, इसलिए पहले दर्जे की सीट रिजव करा ली। हमारे कम्पार्टमेंट म एक सरकारी अफसर और मैं था। थोड़ी देर म अफसर मेरे नाम स परिचित मालूम हुए, और उनस बातें होने लगी।

मसूरी वापस—जितना पश्चिम आए उतनी सर्दी बढती हो थी। कलकत्ता म जहा गर्मी मालूम हो रही थी वहाँ अब खूब कपड़ा ओढ़ना पड़ा था। हरद्वार मे पौ फटने लगा थी, लेकिन देहरादून हमारी ट्रेन ९ बजे पहुँची। श्री मेहताजी स्टेशन पर मिले। गुरुजी और दूसरे मित्रो को लिख चुका था कि देहरादून म एक दिन ठहर कर मसूरी जाऊँगा पर अब तो कितने ही प्रोग्राम तोड़ कर आ रहा था इसलिए उस ख्याल को भी छोड़ना पड़ा। स्टेशन स बाहर ४ रुपए टक्सी का देकर चल पड़ा। १ घट म (११ बजे) मसूरी लाइब्रेरी पहुँचा। दूसरे समय म जहा कुली सामान उठाने क लिए मार करते, वहाँ इस समय वह दुर्लभ थे। किसी तरह दो कुली जुटा कर साढ़े १२ बजे घरपर पहुँचा। कमला को विश्वास था मैं ३ तारीख को

थाऊंगा। डेढ़ महीने बाद देखने पर जया जरा-सा हिचकिचाई लेकिन जल्दी ही पहचान गई। इतने दिनों में जेता बड़ा मालूम देने लगा था। उसके दाहिने हाथ पर पोलियो का जो हलका सा प्रभाव था वह बहुत कुछ दूर हो गया था। हाथ जिस तरफ चाहे उधर हिला डुला सकता, किन्तु बायें हाथ के बराबर उसमें अभी ताकत नहीं थी। उसे दिखलाने के लिए दिल्ली जाना जरूरी था। गंगा कलिम्पोंग चली गई थी और उसकी मझली बहिन माहिली आ गई थी, जिसने बच्चों को सँभाल कर कमला को पढ़ने का समय देने में सहायता की थी। डेढ़ महीने की चिट्ठियों और डाक पड़ी हुई थी जिन्हें भुगताना जरूरी था। सम्मेलन मुद्रणालय से 'मध्य एसिया (१) का बहुत सा प्रूफ भी आया था। घर में आकर एक विचित्र तरह की आत्म तुष्टि मालूम होने लगी। जया जेता बराबर याद आते रहे। बच्चे कितना माता पिता को आनन्द प्रदान करते हैं?

१९

६३वें वर्ष की समाप्ति

मसूरी म अबके बफ नही पडी। अखबारो म शिमला की बफ से मैंने सोचा था, मसूरी म भी पडी होगी। पर, जहा तक सर्दी का सवाल था वह खूब थी। वस्तुत सर्दी क्या करे जब देव बूद ही न बरसाए ? बूदो के बरसने पर ही तो सर्दी उन्ह बफ बनाती है। जब हवा चलती तो सर्दी अपने ही बढ जाती। फरवरी के आरम्भ म ही वसन्त की कामना करना बेकार था।

आइ हुई चिटिठयो म एक राष्ट्रपति के डिप्टी सेक्रेटरी की भी थी। मैंने राष्ट्रपति को पासपोट के बारे मे लिखा था उसी के जवाब म यह चिटठी और उसके साथ पासपोट के फाम थे जिन्ह फिर से उन्ही कार वाइयो को दोहराते जिला मजिस्ट्रेट के पास भेजना था। मजिस्ट्रेट को लिखा पुराने कागजो को दिल्ली भेज दें। उनका जवाब आया—अब वह बेकार हैं। अर्थात् दस रुपये के स्टाम्प पर अब फिर आर्थिक गारटी और दूसरी कारवाइया करनी पडेंगी। फिर मजिस्ट्रेट कागज पत्र को पुलिस के पास जांच करने के लिए भेजेंगे। पूरा नौ मन तेल हो जाएगा तब राधा नाचेगा।

मैंने अबकी यात्रा म सब जगह कह दिया था कि हम मसूरी छोडने वाले हैं लेकिन यहां देखा कमला का मन बदल गया है। खर अभी तो परीक्षा और उसके परिणाम को देखने म जून बीत जाएगा तब तक इसके बारे म सोचने के लिए बहुत समय मिलेगा। मैं कलिम्पाग के प्रोग्राम को

बुरा नहीं कह रहा था। सोचता था तिब्बती भाषा और बौद्ध साहित्य के सम्बन्ध में वहाँ रह कर काम करने में सुभीता रहेगा, क्योंकि अच्छे तिब्बती पण्डित भी वहाँ मिल जाएँगे। तिब्बत के वर्षों से छोड़े हुए काम को फिर से हाथ में लेकर यदि ल्हासा में समय देने की आवश्यकता हो, तो वह कलिम्पोंग से बहुत नजदीक है। अभी भी केवल दो दिन घोड़े की सवारी की जरूरत है, नहीं तो दोनों तरफ मोटरें चली गई हैं। बागडोगरा से ल्हासा विमान उड़ने पर यात्रा बिल्कुल खेल सी हो जाएगी। मन के लड्डू अच्छे लगते हैं। पर यह भी समझता था, कलिम्पोंग में मेरे अनुकूल समाज नहीं है।

जया अब खूब बोलने लगी थी। ढाई वर्ष में ही उसकी भाषा जितनी शुद्ध थी, उतनी आठ वर्ष पढ़ने के बाद भी उसने पिता की नहीं थी। भाषा भी मुहावरेदार थी। जेता अभी गूँगा ही बन रहे थे। जेता नाम सुनने पर एक महिला ने जेतराम कहा तो मेरा माथा ठनका। सोचने लगा, जेता का जीतराम आसानी से बन सकता है।

संस्कृत काव्यधारा के लिए अपेक्षित कुछ पुस्तकें नहीं आई थीं और अभी कुछ लिखना बाकी था। उसे समाप्त कर आवृत्ति करके काफी प्रेस कापी को भी प्रेस में भेजना था। इधर २५वीं बुद्ध शताब्दी के लिए पत्र पत्रिकाओं से लेखों की माँग आ रही थी, इसलिए कितने ही लेख उन्हें भी लिखने थे। फिर वही नियमपूर्वक जीवन शुरू हुआ। सवेरे ७ बजे के आस-पास चाय पीकर चार घंटे के लिए उठकर बोलना, और मंगलजी का टाइप खटपटाना। फिर अगले दिन के काम की तैयारी तथा चिट्ठियों और पत्रिकाओं का पढ़ना। अबके यह भी निश्चय कर लिया था कि मेरी जीवन यात्रा के तीसरे भाग को अपने ६३वें साल के अंत तक लिख डालना है। काम की कमी नहीं थी। ६ फरवरी से जीवन यात्रा आरम्भ हुई और १२ १३ पृष्ठ (फुल स्केप साइज) रोज के हिसाब से टाइप होने लगा। काम से विश्राम किसी ही किसी दिन लेना पड़ता।

भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) की ३ फरवरी को चिट्ठी मिली। वह समझते हैं आर्थिक कठिनाइयों के कारण मैं चीन जाने का इरादा रखता हूँ। अनेक कारणों में वह भी एक हो सकता है पर वही कारण नहीं। मैं

वहाँ जाकर साहित्यिक और सांस्कृतिक कामों को करना चाहता था विशेष कर तिब्बत में अब जो पुराने पुस्तकालयों और उनकी निधियों के दरवाजे खुले हैं, उनसे लाभ उठाना चाहता था।

फरवरी में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। कांग्रेस कहाँ से कहाँ चली गई? पहले जहाँ एक अस्थायी नगर और विराट मेला लगता, वहाँ अब उसके प्रति लोगों में उदासीनता। कांग्रेस और उसके मंत्रियों से जिन्हें काम बनाना था वही वहाँ आए थे। कई साल तो नेहरू छोड़कर दूसरा कोई सभापति बनने लायक आदमी नहीं मिलता था। अब नेहरू ने अपनी टोपी श्री उच्छंगराय ढेबर के सिर पर रख दी है। दूसरी बार वह उसके अध्यक्ष बने। ढेबर बावन गण्डे दूसरे कांग्रेसी नेताओं से कोई भेद नहीं रखते। फिर न जाने क्या नेहरू उन पर ढर गये हैं? क्या यह यही नहीं बतलाता कि नेताओं के सम्बन्ध में कांग्रेस दिवालिया बन गई है। सभी जगह प्रथम श्रेणी की प्रतिभावाले तरुणों का कांग्रेस में अभाव देखा जाता है। जो हैं भी वह बूढ़ों की नजर पर नहीं चढ़ते, और ढूँढ ढूँढ कर बूढ़ों की ही तुम्बा फेरी की जाती है। कांग्रेस के अध्यक्ष ने नेहरू की भाषा की तरह भाषानुसार प्रान्तों के निर्माण का विरोध किया द्विभाषी प्रान्तों का समर्थन किया। काल से लोहा लेने के लिए तैयार होना इसी को कहते हैं। द्विभाषिक प्रान्तों के निर्माण का मतलब है आकाशी योजना जो बहुत दिनों तक लादी नहीं जा सकती। बिहार और बंगाल को एक कर देने के लिए बड़े जोर शोर से घोषणा हुई। बंगाल में हाल की म्युनिसिपैलिटियों के चुनाव ने बतला दिया है कि अगले चुनाव में कांग्रेसियों को विजय के लिए केवल धोखा घड़ी पर ही भरोसा करना पड़ेगा। वह बहुत खतरे की बात है इसलिए उसकी नींद हराम हो रही है। उधर बिहार में अभी भी लोगों की आँखों में धूल झोंकने में कांग्रेसी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। तानाशाह है इसलिए विलयन के दिनों में ही उन्हें भले दिनों की आशा दिखलाई देने लगी। कांग्रेसी महादेव क्या न राय—सिंह के सुझाव पर उछल पड़ते? लेकिन यह काम उतना आसान नहीं था जितना दिल्ली के महादेव समझते हैं। यह सुझाव रखा जा रहा है कि दोनों प्रदेश अपनी-अपनी विधान सभाओं राजधानियों हाईकोर्टों मंत्रिमंडलों को अलग अलग रखने

एक राज्यपाल के अधीन रहे। इस तरह यदि राज्यपालों की संख्या कम करना हो—जो बुरी बात नहीं है—तब तो शायद कोई दिक्कत नहीं हो। शायद सोचते होंगे संयुक्त प्रान्तों की जो मन्त्रिमण्डल होंगे उनमें एक मे भाषाभाषियों का बहुमत होने पर दूसरे मे दबाया जा सकता है।

अमृतसर कांग्रेस के अध्यक्ष ने भूदान का माहात्म भी खूब बखाना महात्मा भावे पर गान्धीजी का आवेश होता है उनकी आत्मा भावे के मुँह से बोल रही है। वह गांधीजी के अपूर्ण काम को पूर्ण कर रहे हैं। उनके भूदान-आन्दोलन द्वारा एक जबर्दस्त क्रांति होने जा रही है। उसके द्वारा शान्तिमय तरीके से रामराज्य कायम हो जाएगा शोषण खतम हो जाएगा वर्गभेद मिट जाएगा देश में गरीबी का नाम नहीं रहेगा। ऐसी बातें यदि ढोंगी कांग्रेसी नेता कहें तो कोई अचरज नहीं। उन्हें हर दूसरे चौथे वर्ष एक नया नारा मिलना चाहिए जिसके द्वारा जनता के हृदय से पुराने असफल प्रयत्नों की स्मृति भुलाई जाए। नई आशा पैदा की जा सके। यह तो उनके लिए बड़े काम की चीज है। इसीलिए सभी कांग्रेसी एक ओर से भावे की जय जय बोल रहे हैं। प्रधानमंत्री भी उनसे भेंट करने के लिए समय निकाल लेते हैं।

पर अक्कल रखनेवाला आदमी कैसे इसे मान सकता है? भूदान से कैसे रामराज्य आयगा? जमीन तो पहले भी हस्तान्तरित होती रही है। दान से हो या बेची से। इससे उसके रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। फिर इस हस्तांतरण से क्या भूमि या उसकी उपज कई गुना बढ़ जाएगी? फिर इस दान की हुई भूमि में सबसे अधिकता ऐसी है जिसे 'उल्टा सत्त पितरन को' कहा जा सकता है अर्थात् किसान उसे बड़े जमींदारों से छीन रहे थे उसे इस प्रकार दान देकर छुट्टी ली गई। काफी जमीन ऐसी है जो लाखों एकड़ कहे जाने पर भी न कभी आबाद हुई न आबाद हो सकती है। भूदान के बेकारपन को कितने ही कांग्रेसी भी समझते हैं पर महताब की तरह खुलकर उसके खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत नहीं रखते।

अमृतसर ने फिर समाजवाद का नाम दोहराया। आजकल के जमाने में समाजवाद के नाम से ही समाजवाद को आने से रोका जा सकता है, यह

काग्रेसी नेता भली प्रकार जानत है। इसीलिए यह ढाग रचा गया है काग्रेसी समाजवाद की व्याख्या है—जिसम गरीब अधिकाधिक गरीब हो जाएँ, और थैलीशाह अधिकाधिक धनी।

१६ फरवरी का कई महीना बाद शीलाजी और डा० सत्यकेतु मिले डा० सत्यकेतु एक बडी मनोरजक पर साथ ही हृदयवधक बात सुना र थे। पडोसी जिले क एक सेठ को जब मालूम हुआ कि सरकार न उनक जिले क बाढ पीडितो के लिए चार लाख रुपया देना स्वीकार किया है त उनके पेट म पानी पचना मुश्किल हो गया। वे जानते थ कि चार लाख बाढ पीडितो के पास नही बल्कि दूसरो की जेब म जाएँगे। सोचा—इस लूट स लाभ न उठाना भारी बेवकूफी है। उन्होने अपन साहबजादे का फटकारा— तू कसा मूख है, बहती गगा म हाथ धोना नही जानता। जा बाढ पीडिता म अपना नाम भी दज करा।' लेकिन बाढवाले इलाक म उनकी एक अगुल भी जमीन नही थी और न कोई घर था। पर, इसको देखने कौन आ रहा है ? कागज तैयार हो उस पर पाँच प्रतिष्ठित आद मियो क हस्ताक्षर हो फिर सेठ साहब और उनके साहबजादे के बाढ-पीडित होने स कौन इन्कार कर सकता है ? घर म अपनी कार थी। साहबजादे उस पर निकले। जिले के काग्रेसी नेता स मिले। उनसे हस्ताक्षर करवाया। काग्रेसी नेता का सेठ से बराबर वास्ता पडता था। बेटा बेटी का ब्याह हो या दूसरा काम प्रयोजन सेठजी हमेशा उनकी थैलिया लेने के लिए तयार थे। वह जानन पर भी हस्ताक्षर करने से कसे इन्कार कर सकते थे ? काग्रेसी एम० एल० ए० और दूसरे नेताओ के चार छ हस्ताक्षर हो गए। जिला मजिस्ट्रेट उसे मानन स कसे इन्कार कर सकता ? आखिर सेठ क घर में १६ हजार रुपये आ गए। सेठो का दिमाग विश्राम लेना थोडे ही जानता है ? सेठ के मकान किराये पर लग हुए हैं जिससे उन्ह तीन हजार मासिक की आमदनी है। सरकार मकानो की कमी देखकर नय मकानो का बनवाने क लिए करोडो रुपय दे रही है। इसका भी सदुपयोग कुछ होना चाहिए। सेठ साहब न एक सहयोग समिति बनाई। समिति सरकार स रुपये लेकर नये मकान बनवाएगी। डाक्टर साहब स भी उन्होने समिति का मेम्बर बन जान क लिए कहा। डाक्टर साहब ने कहा—मैं तो इस शहर म रहता ही नही।

—अरे उसमें क्या होना है? मकान किराये पर उठ जायगा।

—लेकिन, उसमें कुछ रुपया लगाना भी तो पड़ता है।

—उसकी पर्वाह न कीजिए। बल्कि हजार पाँच सौ ले भी लीजिए।

इसका अर्थ है सेठ साहब नकली सहयोग-समिति में नकली मेम्बरों को भर्ती कर मकान बनवा उसे भी अपने हाथ में करना चाहते थे।

आज के भारत में जो भयंकर भ्रष्टाचार चल रहा है क्या उसकी कथा एक सेठ के दो चार कामों में समाप्त हो सकती है? एक नगरपालिका की बात डाक्टर साहब बता रहे थे, जिसके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष ने लाखों पर हाथ साफ किया है, और काफी ईमानदारी नहीं तो सफाई के साथ। नगरपालिका के जितने ठेके दिए जाते हैं उनमें दस प्रतिशत पर 'हक' फकीरों का है। १६ लाख का वहाँ हर साल सामान मँगवाया जाता है जिसमें १ लाख ६० हजार तो जायज हक ठहरा। यह ठीक है कि यह सारा धन अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के ही पाकेट में नहीं गया पर काफी गया, इसमें कोई सन्देह नहीं। दस लाख सड़क पर लगनेवाला है तो उसमें से भी एक लाख धरा हुआ है। दोनों अध्यक्ष उपाध्यक्ष मालामाल हो गए हैं। जायदाद अपने नाम से नहीं ली जा सकती तो सगे सम्बन्धियों के नाम में लेने को कौन देखता है? अपने शहर में वह नहीं ली जा सकती तो दूसरे शहर में ली जा सकती है। कौन मन्त्री दूध के धुले हुए हैं जो इनके काम पर अंगुली उठाएँ? और फिर उनकी भी पूजा करने के लिए भी तो ये तैयार हैं। रामराज्य की ओर ले जाने के लिए सारे देश में यही रास्ता बनाया जा रहा है। देखें यह पत्थर की नाव कितने दिनों तक तरती है?

हमारे पड़ोसी चौधरी हैपी वैली के मजबूत किसान हैं। इस मोहल्ले में दो ही बड़े बड़े समतल भूमि के टुकड़े हैं। दोनों के बोने-जोतने वाले चौधरी हैं। मालिकों ने पहले या ही दे दिया, और अब चौधरी का उन पर कानूनन हक है। पास-पड़ोस में कुछ जमीन और भी आबाद होने लायक है तो चौधरी उसे बेकार रहने नहीं देते। 'सिल्डेर' के फाटक के पास एक ऐसा ही टुकड़ा बेकार पड़ा हुआ था। उन्होंने आदमी लगाकर एक ओर दीवार खड़ी की और फिर पत्थरों को हटवाया। अहीर के बच्चे हैं, खेती की विद्या खून में है। उस दिन बतला रहे थे—मेरे बाप बैंक में दरबान हुए, यह बात

आज से पचास साल से पहले की है। उन्हें पहले दो रुपया और भोजन मिलता था। फिर भोजन के साथ चार रुपया, और अंत में भोजन सहित दस रुपया। बुढ़ापे तक वह नौकरी करते रहे। चौधरी भी उसी समय बाप के पास आए लेकिन उन्होंने दरबान या चपरासीगिरी नहीं पसन्द की। कुछ इधर-उधर का काम करते, सब्जी बेचते फिर खेती में लग पड़े। उनके पास काफी जमीन है। लड़का बाराबंकी में अपने गाँव में रहता है। वहाँ भी जमीन है। लड़के का भी कोई पुत्र नहीं। लड़की के बेटे लक्ष्मीनारायण को यहाँ लाए थे। वह लँगोटी बाँधकर देहरादून में साधु बन गया। चौधरी को बड़ी मुश्किल से उसका पता लगा। लौटा लाये पर तब तक चैन नहीं आया, जब तक कि उसे उसके माँ-बाप के पास पहुँचा नहीं दिया। मैंने पूछा—इस अर्जित खेती को किसके लिए छोड़ना चाहते हैं? बोलने लगे—'यही तो सोचता हूँ। बूढ़ा हो गया। लड़का घर की खेती छोड़ नहीं सकता। चौधरी से भी ज्यादा बूढ़ी चौधरानी हैं। हड्डी हड्डी भर शरीर में है, लेकिन जान पड़ता है, वे हड्डियाँ लोहे की हैं। हर वक्त काम में लगी रहती हैं। मसूरी के जाड़े का वे अपनी एक सूती साड़ी में बिता देती हैं, जिसे देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। वैसे सीधे होकर चल सकती हैं लेकिन जब घर के दरवाजे की ओर जाना होता है तो २५ गज पहले से ही कमर को दोहरी कर लेती हैं। कितनी ही हिम्मत हो, लेकिन बुढ़िया कितने समय तक सँभालेगी। मैंने कहा— 'लक्ष्मीनारायण को ही फिर लाओ।'

— 'लाता तो, लेकिन यदि कहीं फिर भाग गया?"

—"अब उसे थोड़ी अक्ल आ गई होगी। एकाध साल बाद उसी को लाएँ। शायद वह सम्पत्ति का मूल्य समझे।"

बुढ़ापे का ख्याल चौधरी को भी आता है, पर गाँव में जाकर रहने की सोच भी नहीं सकते। कह रहे थे— 'पोती के ब्याह में गया था। जान पड़ता था, अब बच कर नहीं लौट सकूँगा। आखिर मैं भी उसी भूमि में पैदा हुआ, लू में तपते मीठे मीठे आमों को खाता रहा। पर, अब लू के नाम से भी प्राण निकलने लगते हैं।'

'संस्कृत पाठमाला' की प्रथम पुस्तक ३ मार्च को छप गई, इससे बहुत सन्तोष हुआ। दूसरी पुस्तक के भी दस पाठों के प्रूफ उसी दिन आए।

संस्कृत का यधारा अभी अधर म ल्टक रहा थी। जिस समय मैंने उसके सौ पृष्ठों का श्रीनिवासजी का दिया था, और सम्मेलन मुद्रणालय स बात तय कर ली थी ता समझन लगा था अब नया पार हो जाएगा। लेकिन, मुद्रक और प्रकाशक म कितने ही दिनो तक मोल भाव चलता रहा। यद्यपि उसक १३ पृष्ठों क प्रूफ आ चुके हैं लेकिन जब तक कुछ छपे हुए प्रूफ न आएँ तब तक सन्देह की गुजाइश है।

१० मार्च का कमला अपना परीक्षा क लिए देहरादून गई। यद्यपि आरम्भ होने म चार पाँच दिन की देर थी लेकिन उन्ह पहले जाना जरूरी था। मेरी चलती होती तो एक महीना पहले भेज देता। वहाँ शुक्लाजी स पढने में सहायता मिलती। पर बच्चो को छोडकर वह जाने के लिए तयार नही थी।

११ तारीख को श्री कालिदास, हरिश्चन्द्र और केशवलाल के भतीजे आए। मुहल्ले के तीन-चार विद्यार्थी तरुणो के उपद्रव की शिकायत कर रहे थे। तरुण लडकियो को स्कूल जाते समय छेडते और टोकने पर मार पीट के लिए तयार हो जाते। जो अपनी इज्जत अपने हाथो नहीं बचा सकता उसकी रक्षा कानून कैसे कर सकता? यह भी उन्होंने बतलाया कि मुहल्ल क एक लाला गरकानूनी शराब और जुआ खेलाने का रोजगार करते है। आजकल मसूरी के भाग्य बिगडने के कारण बनियो का भी भाग्य बिगड गया है। ऐसी अवस्था म वह आमदनी क इस नय रास्त को स्वीकार करें, तो आश्चर्य क्या? पुलिस चौकी मौजूद है, लेकिन जब ५० रुपय मासिक का बधा न हो तो वह क्यो रुकावट डालेगी। अभी हाल मे ही पुलिस के एक सिपाही ने कई जगह चोरियाँ की। अण्डा फूटने पर भाग गया, लेकिन जहाँ तक लोगो की जान माल की सुरक्षा की बात है उससे कोई लाभ नहीं हुआ। पुलिस का काम अब काग्रेस के राजनीतिक विरोधियो क सिर पर डण्डा बरसाना या महाप्रभुओ क स्वागत म हाथ बाँधकर खडा रहना है। कालिदास लडकी क पिता पर जोर दे रहे थे कि तुम लडकी का स्कूल भेजना बन्द मत करो पर लाला की हिम्मत नही थी।

इस महीने आगरा युनिवर्सिटी की दो डाक्टरेट थेसिसो को देखने का मौका मिला। बस तो जिस तरह टक सार डाक्टर बनाये जा रहे हैं उसके

कारण धर्मिम का स्तर बहुत गिर गया है। पर, ये दोनों धर्मिमें उस तरह की नहीं थीं। श्री भरतसिंह उपाध्याय ने बहुत परिश्रम के साथ पालि त्रिपिटिक और उसकी अट्टकथाओं की भौगोलिक सामग्री का विश्लेषण किया था। अम्बालाल सुमन ने अलीगढ़ की जनभाषा और उसमें आई सामग्री का सुन्दर विवेचन हजार पृष्ठ से ऊपर में किया था। ऐसे निबन्ध यदि लिखे जाएँ तो उनसे डिग्री के साथ-साथ नई ज्ञातव्य बातें भी सामने आ जाएँगी।

मार्च के तीसरे हफ्ते में पत्रों में स्तालिन की कड़ी आलोचना होने की खबर आने लगी। मेरे कुछ साथी इससे तिलमिला गए। सरदार पृथिवीसिंह ने बहुत उत्तेजना और निराशापूर्ण शब्दों में इसके बारे में लिखा। लेकिन, मैं इससे बहुत प्रसन्न हुआ। इसी दिन की मैं आशा रखता था, हाँ इतनी जल्दी नहीं। मार्क्स ने साम्यवाद के वैज्ञानिक रूप को हमारे सामने रखा, और उसकी तरफ जाने के लिए दुनिया की सर्वहारा जनता को और मानवता के भक्तों को प्रेरणा दी। वह महान् थे, इसमें किसको सन्देह हो सकता है? लेनिन ने साम्यवाद को पृथिवी पर उतारा। धनीशाहों की संगीनें उसे असम्भव कर रही थीं। आखिर संगीनों के बल पर मुट्ठी भर लोग दुनिया के सर्वस्व के स्वामी बन गए थे। उनका शोषण और उत्पीड़न अक्षुण्ण चल रहा था। ऐसी परिस्थिति में जिसने साम्यवादी शासन पृथ्वी पर कायम किया, वह लेनिन महान् थे, यह भी निस्सन्देह है। लेनिन साम्यवादी शासन को पूरी तौर से मजबूत नहीं कर पाए थे। उसके आर्थिक निर्माण के लिए बहुत बड़ा कदम नहीं उठाया जा सका था कि वह हमें छोड़कर चले गए। ऐसे समय इस बड़े भार को स्तालिन ने सँभाला। पुनर्निर्माण के बाद पंचवार्षिक योजना का सूत्रपात किया। इसके कारण सोवियत भूमि आर्थिक तौर से इतनी सुदृढ़ हो गई कि अब वह दुश्मनों के लिए लोहे का चना बन गई। यह तीसरा पुरुष भी महान् था। लेकिन वृद्धापा समझिये या आत्मश्लाघा की मात्रा अधिक होना, स्तालिन अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्षों में कई बुराइयों के लाने के कारण हुए। बाहरी देशों के वर षड्यन्त्र के कारण सोवियत भूमि के भीतर सुरक्षा की ओर ज्यादा ध्यान देना पड़ता। लेकिन युद्ध की स्थिति के लिए बनाये जाने वाले नियमों को

बराबर जारी रखना खतरनाक था। यह नियम बिना कारण भी सन्देह पैदा करते फिर सन्देह का कठोर दण्ड कितने ही निरपराध व्यक्तियों को भोगना पड़ता। इतनी बड़ी शक्ति को ठीक तौर से इस्तेमाल करना बहुत कम ही आदमियों के बस की बात है। स्तालिन ने दूसरों के लिए कहा था—"सफलता के कारण चकाचौंध में आना" पर वह खुद इसके शिकार हुए। वह अपने को सबल समर्थन लगे। सबका के हाथ जोड़कर स्तुति करने वाले खुशामदियों की कमी नहीं रहती। जो खुशामद नहीं कर सका वह उनके क्रोध का भाजन हुआ। इस स्थिति में उनके चारों ओर खुशामदियों का गिरोह जमा हो गया। उनमें जो सबसे अधिक निष्ठुर हो सकता था, वह उनका कृपापात्र बन सकता था। बेरिया ऐसा ही था जिसे स्तालिन ने जार्जिया से बुलाकर गृह मन्त्रालय का काम सौंपा। गृह मन्त्रालय का काम था भीतरी शत्रुओं को सिर न उठाने देना। बेरिया ऐसी शक्ति को हाथ में लेने के लिए बिलकुल अयोग्य था। उसने जब दो चार अत्याचार किये तो उसके लिए जरूरी हो गया कि अपने चारों ओर किलाबन्दी करे फिर अपनी ही तरह के आदमियों को उसने अपने चारों ओर जमा कर लिया। इन पंक्तियों के लेखक ने भी बेरिया की पुलिस के कारनामे कुछ देखे, और अधिक सुने। लोग सांस लेने में डरते थे। इस स्थिति को लाने में स्तालिन का बहुत हाथ था। चाहे वह हरेक मामले को न जानते हों, पर जो व्यक्ति पूजा उन्होंने अपने लिए चलाई, उसका यह अनिवार्य परिणाम था। इस स्थिति को दूर करना सोवियत भूमि के लिए सबसे बड़ा काम हो गया। बाहर के कम्युनिस्ट या साम्यवाद के हितैषी स्तालिन की कड़ी आलोचना को चाहे नापसन्द करें चाहे इसके कारण बाहरी दुनिया में साम्यवाद के दुश्मनों को थोड़ा दर तक प्रोपेगेण्डा करने का अच्छा मौका मिले, पर जहाँ तक रूस का सम्बन्ध था उसके लिए स्तालिन की व्यक्ति पूजा का एक क्षण भी बर्दाश्त करना हानिकारक था। जो शासन बहुजनहिताय हो उसमें इतनी पार्टीबंदी की आवश्यकता क्या? सोवियत के नेताओं ने उस बड़ी बाधा को हटाया जिसे इतनी जल्दी समाप्त होने वाली नहीं समझता था। इस नीति से सारी सोवियत भूमि में एक अद्भुत स्फूर्ति आई है और

कितने ही योग्य व्यक्ति जो उस युग की क्रूरता के शिकार थे फिर कार्य क्षेत्र में आए।

प्रो० तुबियान्स्की और प्रो० वासिल्कोफ संस्कृत के अद्भुत विद्वान् थे। डा० श्चेर्बात्स्की उन्हें अपना पुत्र मानकर अपुत्र होने के शोक से विरत थे। उन्हें इन दोनों के ऊपर बड़ा अभिमान था। लेकिन १९३६ में तुखाचेव्स्की षड्यन्त्रों में से जो हजारों जो घुन के साथ पिस गए उनमें ये दोनों विद्वान् भी धर लिए गये। ये वस्तुतः पण्डित थे। उनका अपनी विद्या में मतलब था जिसमें वह दुनिया में लासानी थे। दोनों को पकड़कर जेल में डाल दिया गया। मालूम नहीं, वह मुक्त होने के लिए आज भी बचे हैं या नहीं। पर इससे तो उस युग की क्रूरता को ढाका नहीं जा सकता। मैं समझता हूं, स्तालिन पूजा का विनाश सोवियत भूमि में बहुत बड़ा काम हुआ है। दो साल मित्रों ने मुझे विकल होकर इसके बारे में पूछा और मैंने संक्षेप में यही बातें बतलाईं।

२५ मार्च को कमला परीक्षा देकर आई। भाषातत्व वाला प्रश्नपत्र उनका कमजोर रहा। "घर का जोगी जोगड़ा, आन गांव का सिद्ध" ठीक है। मैं बराबर कहता रहता कि इसे पढ़ लो। रात को कथा के तौर पर भी उसे सुनने के लिए तैयार नहीं थी। अब पछतावा था। फेल होगी तो "भाषातत्व" के ही कारण।

गर्मी के डर से दिल्ली जाने में झिझक हो रही थी, पर वहां जाना जरूरी था। जेता का हाथ बहुत कुछ ठीक हो गया था, और सिर्फ ताकत आने की कुछ कमी थी। पर जब दिल्ली में पोलियो की चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध है तो उसे वहीं दिखाना आवश्यक था। देहरादून से कमला को लेकर जा सकते थे, पर होली यहीं कर लेनी थी, इसलिए ३० मार्च को यहीं से जाने का निश्चय किया।

देहरादून—३० मार्च को साढ़े ७ बजे सवेरे जया, जेता और कमला के साथ घर से निकले। पहाड़ में मोटर पर चलना कमला के लिए जान पर खेलना है इसलिए वह बिना चाय पिये रवाना हुई। ९ बजे किंक्रेग में कार मिली और सवा १० बजे हम गुरुजी के घर पर पहुँच गये। पासपोर्ट के लिए मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर कराने थे। आज छुट्टी थी, लेकिन गुरुजी ने

मजिस्ट्रेट को तैयार कर रखा था। मसूरी के सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट को ही इस्तगासा करने का अधिकार था। वह भले आदमी निकले, और पासपोर्ट के फार्म पर दस्तखत का काम खतम हो गया। वह उस दिन स्टेनो से मुकद्दमों का फैसला लिखवा रहे थे। धाराप्रवाह अंग्रेजी का व्यवहार हो रहा था। पन्त से लेकर सम्पूर्णानन्द तक सभी मुख्यमन्त्री और मन्त्री हिन्दी के पक्ष में धुआंधार भाषण देते हैं, लेकिन उसका फल हमारे सामने था। जिनके मुकद्दमों का फैसला हो रहा था, शायद ही उनमें से कोई इसे समझ सके। इसको कहते हैं पर दूसरे को धोखा देना। यदि वस्तुतः हिन्दी को व्यवहार में लाना है, तो अंग्रेजी के स्टेनो और शार्टहैंड को हटा कर उसकी जगह हिन्दी वाले देने चाहिए, और अपने अफसरों को सख्त ताकीद करनी चाहिए कि वह हिन्दी में ही अपना फैसला दें। ऐच्छिक होने पर अफसरों की वर्तमान पीढ़ी तो हिन्दी के लिए झुकने को तैयार नहीं हो सकती। वह समझती है, मन्त्री लोग सिर्फ ऊपर ऊपर से हिन्दी की बातें करते हैं, उसके लिए साधन जुटाने को तैयार नहीं। अभी मार्च का अन्त ही था, लेकिन यहां ४ बजे तक असह्य गर्मी थी। जब असली गर्मी शुरू होगी, तब न जाने क्या हालत होगी?

३१ मार्च को भी हम देहरादून में ही रहना था। बनिया का भोजन शुक्लजी के यहां और ब्रह्मभोज पं० हरनारायण मिश्र के यहां होता रहा। लेकिन शुक्लाइनजी के हाथ का बना बनियों का भोजन भी बहुत स्वादिष्ट होता है, इसलिए हम बराबर ब्रह्मभोज के लिए तैयार नहीं थे। आज गुरु रामराय के दरबार का झण्डा मेला था। संयोग ही समझिये जो ऐसे समय हम पहुँच गए। उससे फायदा न उठाना उचित नहीं समझा जा सकता था। गद्दी से वंचित गुरु रामराय सिक्खों के सप्तम गुरु के ज्येष्ठ पुत्र थे। वंचित करने का परिणाम पंथ में झगड़ा होना जरूरी था। उनके भतीजे गुरु तेग बहादुर को औरंगजेब ने मरवाया। अन्तिम गुरु गोविन्दसिंह को सुमिरनी की जगह खड्ग उठाना पड़ा। जब एक पक्ष औरंगजेब के कोप का भाजन था, तो दूसरा [illegible] का भाजन होगा ही। इसीलिए गुरु रामराय के लिए सिफारिश करके औरंगजेब ने गढ़वाल के राजा के पास भेज दिया। उस समय दून अनादिकाल से गढ़वाल का चला आया था। गुरु ने जंगल और

जंगली जानवरों से भरी दून की भूमि के एक छोटे से गामड़े में अपना डेरा डाला, जिसके लिए ही इस स्थान को डेरा या देरा कहा जाने लगा। स्थानीय लोग देहरादून को अब भी देरा कहा करते हैं। गुरु रामराय और उनके उत्तराधिकारियों ने यहाँ के मठ को बहुत बढ़ाया। किसी गुरु ने झण्डे को गाड़ने का रवाज जारी किया। ११० फुट का लट्ठा झण्डे के दण्ड का काम देता है। एक बार का खड़ा हुआ लट्ठा तीन साल तक रहता है, तीसरे साल पुराने की जगह नया खड़ा किया जाता है। इसके देखने के लिए लोगों की भीड़ लग जाती है। १ बजे झण्डे के मेले के लिए जाना प्रिय बात नहीं हो सकती, किन्तु लिखने के लोभ ने खींच ही लिया। शुक्लजी ने बतलाया, जरा पहले चलना चाहिए, नहीं तो भीड़ में से पार होना मुश्किल होगा। हमने समझा था, दो ढाई बजे तक काम खतम हो जाएगा।

जल्दी करते करते १ बजे हम घर से निकले। दूर ही तांगा छोड़ देना पड़ा। फिर भीड़ में से धक्कमपेल करते आगे बढ़े। लौड स्पीकर कान के पर्दे फाड़ रहे थे। सब दूकानदारों ने उन्हें ऊँचे स्वर में बजाने की होड़ लगा रखी थी। सक्सवाल अलग चिल्ला रहे थे। हर तरह की दूकानें थीं। कपड़ा, मिठाई, खिलौने से लेकर मिट्टी की सुराहियों तक जो चाहे सो ले लें। शुक्लजी ने विशेष निमन्त्रण के तीन पास प्राप्त कर लिए थे। हम दोनों के अतिरिक्त एक आगरा के प्रोफेसर भी साथ थे। विशेष मेहमानों के लिए एक काफी लम्बी छत पर कुर्सियों का इंतिजाम था। सीढ़ी पर पास देखा गया। हम ऊपर चले गए। अभी जगह पूरी भरी नहीं थी। शुक्लजी के कुछ और परिचित प्रबंधक मिले, इसलिए हम सबसे अगली पंक्ति में बैठाया गया। अंग्रेजों के राज्य में दर्शना साहब और मेम इन कुर्सियों को अलंकृत करते थे। अब काले आदमी और स्त्रियाँ वहाँ पर बैठी हुई थीं, जिनमें सभी भक्तिभाव शून्य नहीं थे। एक बुढ़िया अपनी बहू को लेकर हमारे पास आई। पहले जगह नहीं थी, लेकिन हमने जगह बना दी। झण्डा उठते वक्त उन्होंने हाथ जोड़कर उसी तरह रुपया उसकी तरफ फेंका, जैसे गंगा और जमुना के पुलों को पार करते यात्री पैसे फेंकते हैं, जिनमें से अधिकांश पुल के लोहे के खम्भों में यत्न से करके गंगा तक पहुँचे बिना ही रह जाते हैं। झण्डे का

स्थान हमारे बैठने की जगह से काफी दूर था, इसलिए रुपया वहाँ कैसे पहुँच सकता था ?

२ बजे तक अंगुल अंगुल भर जमीन और छतें लोगों से भर गई। मालूम हुआ कुछ लोग मकानों की छतों पर सवेरे ही से आकर तपस्या कर रहे हैं। इस धूप में स्त्री पुरुषों का यह धैर्य आश्चर्यकर था। इसमें केवल भक्ति ही नहीं बल्कि तमाशा देखने की प्रवृत्ति भी काम कर रही थी। जब घड़ी ढाई बजाने लगी, तब हममें से कुछ में उत्सुकता बढ़ने लगी। सिर के ऊपर कपड़े का चंदवा था लेकिन एक जगह फाँक पाकर धूप सीधे खोपड़ी पर पड़ रही थी। आध घंटे में वह हटी। ३ बजे भी अभी महंतजी का कोई पता नहीं था। महन्तजी इलाहाबाद युनिवर्सिटी के संस्कृत के एम० ए० हैं। शिक्षित श्रद्धाहीन होते हैं इसे झूठा करने के लिए वह शायद अपने गुरु महंत लक्ष्मणदासजी से भी अधिक समय तक पूजा करते हैं। साढ़े ३ बजे तक भी उनका पता नहीं लगा। खोपड़ी धूप से पिघल नहीं रही थी तो भी चिन्ता बढ़ने लगी। लोग कहने लगे दो-ढाई बजे तक हमेशा झण्डा खड़ा हो जाता रहा है। झण्डे का लट्ठा पहले ही गिरा दिया गया था। उसके ऊपर चने पिछले साल के खोल निकालकर प्रसाद के लिए रखे गए थे। खोल के दो अंगुल के चौकड़े से भी आदमी का भाग्य बन सकता है, उसका दुर्भाग्य हट सकता है, मनोकामना पूरी हो सकती है। अपनी कार्यसिद्धि के लिए स्त्री पुरुष पहले ही से मानता मानते हैं— हमारा यह काम हो गया पुत्र प्राप्ति हो गई, तो हम झण्डा साहब पर एक थान चढ़ाएंगे।" काई-कोई तो कामदार मखमल की खोल चढ़ाने की मानता मानते हैं। और ऐसों की संख्या इतनी अधिक होती है कि दस साल के पहले शायद ही किसी की बारी आती है। उसके लिए हजार या अधिक रुपये दाता देते हैं। ११० फुट के लट्ठे के दोनों तरफ आदमी खड़े थे। सब एक साथ झण्डे को हाथ से उठाते और उस पर कपड़ा मढ़ा जाता। पहले पीले सूती थान और दूसरे कपड़े मढ़े गए। अन्त में सारे झण्डे के नाप का लाल मखमल का खोल सिर के ऊपर से डाला गया। फिर सैकड़ों रेशमी रूमालें चण्डियों की तरह जहाँ तहाँ बाँधी गई और सिर पर एक कलश-सा चण्डा लगा दिया गया। यह काम पूरा हो जाने पर आशा बँधने लगी कि अब झण्डा खड़ा होगा

लेकिन, महंतजी अपने अनुचरों के साथ साढ़े ४ बजे झण्डे के पास पहुँचे। सिरहाने से जल छिड़कते, पूजा करते वह उसकी जड़ तक पहुँचे। आज वह विशेष पोशाक में थे। जरी का चोगा शरीर पर और जरी की नोकदार टोपी उनके सिर पर थी। यह पोशाक उनसे पहले के अनेक महंतों के शरीर को शोभित कर चुकी थी। वह झंडे के पक्के चबूतरे पर पहुँचे। फिर हाथ का इशारा करते वे उन अधिकारी लोगों को झंडा उठाने के लिए कहने लगे। ११० फुट के मोटे लट्ठे का उठाना इतना आसान नहीं। एक तरफ चोटियाँ जैसे लट्ठ से हाथ लगाए लाग थे और दूसरी तरफ लट्ठे में बँधे रस्से को सैकड़ों आदमी खींच रहे थे। हाथ एक पोरसाही तक पहुंच सकते थे इसलिए लकड़ी की छोटी बड़ी कैंचियाँ लगाई जा रही थी। झंडा कुछ ऊपर उठता और फिर नीचे आ जाता। डर लगता था जरा भी गलती हुई, तो उसके नीचे खड़े सैकड़ों आदमी हताहत हुए बिना नहीं रहते। लेकिन, झंडा साहब कोई निर्जीव लट्ठा नहीं है, वह दिव्य पुरुष है। झंडा उत्सव में कभी ऐसी दुर्घटना की बात नहीं सुनी गई।

आज झंडा साहब क्या थोड़ा ऊपर चढ़कर बार बार नीचे चले आते हैं। पहले खड़े होने में दस मिनट भी नहीं लगते थे लेकिन आज आध घंटे लोग बेकार कोशिश करते रहे। कितने ही निराश होने लगे। खैर पौन घंटे बाद झंडा साहब खड़े हुए। यातायात पर नियन्त्रण करनेवाला लौडस्पीकर बीच बीच में अपने काम को छोड़ 'गुरु रामराय की जय' 'झंडा साहब की जय' बोल रहा था। महंतजी और उनके मैनेजर हाथ हिला करके आदमियों को उत्साह देते परेशान हो गए थे। महंतजी ने पूजा करने के कारण इतनी देर की थी और वे डेढ़ दो बजे की जगह पर साढ़े ४ बजे झंडा साहब के पास पहुँचे थे। झंडा महाराज क्या नहीं उठ रहे थे, इसका पता लौटते वक्त हमारे तांगे वाले ने बतलाया। वह रहा था— 'पहले के महंत महाराजों में तेज था। उनके तेज और तपस्या के बल से झंडा साहब तुरंत खड़े हो जाते थे।' वर्तमान महंत श्री इन्द्रेशचरणदास के गुरु महंत लक्ष्मणदास झंडा उठाने के वक्त हाथ जोड़कर एक पैर से खड़े होते थे। मैंने देखा तरुण महंतजी एक पैर से नहीं खड़े हैं और न कोई ऐसा भाव दिखा रहे थे, जिससे मालूम हो कि वह इस दिव्य वस्तु को सूखा काठ नहीं समझ रहे हैं।

वह तो बस ही लोगों को उत्साहित कर रहे थे, जैसे किसी बड़ी शहतीर के उठाने वाले लोगों को किया जाता है। कसर थी तो 'हेइ या, हेइ या' की। फिर यह दिव्य स्तम्भ क्यों आसानी से उठने लगा? तो भी बाबा यह भी कह रहा था कि शुक्ला साहब अन्त में उठे भी तो पहले के गुरुओं के पुण्य प्रताप से ही। हाँ महाराज, दफ्तर में बैठकर कागज पर कलम चलाने से थोड़े ही वह तेज आ सकता है जो पहले महन्त महाराजों में था। महन्त इन्द्रेशचरणदास की यह बड़ी कड़ी आलोचना थी। उस दिन हजारों के मुँह से यही बात निकली होगी। फिर महन्तजी का घंटों पूजा करना व्यर्थ ही ठहरा। यदि वह एक ही बजे आ गए होते और दस मिनट में झंडे को खड़ा करवा दिए होते तो उनके तेज का लोग लोहा मानते। मैंने शुक्ल जी से कहा 'आप इस बात की ओर महन्तजी का ध्यान जरूर आकृष्ट करें क्योंकि लोगों की आवाज भगवान् की आवाज है। झंडा खड़ा कराने ही महन्तजी अपने सम्माननीय मेहमानों की अभ्यर्थना के लिए आए। पर उस समय तक बहुत से बाहर चले गए थे। मुझसे मिलने पर देर के लिए क्षमा प्रार्थना की। उनके तेज पर टिप्पणी मैंने पीछे सुनी थी नहीं तो जल्दी जल्दी में भी दो शब्द कानों में डाल देता।

टेढ़े मेढ़े घूमते घुमाते ऐसे रास्ते हम तांगे की जगह पर आए जिसमें कम भीड़ थी। तांगेवाले ने बैठाया और कम भीड़वाली सड़क से निकला। बेचारा आशा किए था कि ढाई-तीन बजे तक सवारियाँ मिल जाएँगी। इसी आशा पर वह आकर यहाँ खड़ा था। हर मिनट लोगों के आने की आशा थी इसलिए बीच में वहाँ से अनुपस्थित क्यों होता? दो तीन घंटे उसे भी प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। उस वक्त उसके दिमाग ने अपना जौहर दिखलाया, और झंडे के देर होने का कारण उसे मालूम हुआ, जिसके बारे में हम पहले बतला चुके हैं। महन्तजी देहरादून नगरपालिका के अध्यक्ष हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उत्तर प्रदेश या बाहर भी इतने ईमानदार अध्यक्ष शायद ही किसी नगरपालिका को मिले हों। जहाँ हर ठेके और हर बड़े बड़े खर्च पर दलाल अध्यक्षों उपाध्यक्षों और उनके सहायकों का धरा हुआ है, वहाँ ईमानदारी सुलभ नहीं हो सकती। पर महन्तजी को उसकी कोई आवश्यकता नहीं उनके पास मठ की संपत्ति काफी

है और खच करने म अपने अर्धशिक्षित गुरु से भी अधिक सयम रखते हैं। यदि जनता के काम के लिए वह दफ्तर म बैठकर दस्तखत करते हैं, या हड़ताल की आशंका के नगर का बेहतर बनाने के लिए घूमते फिरते हैं, तो उनका यह काम पूजा पाठ से कम महत्व का नहीं है। उनकी लेखनी भी शक्तिशाली है। माशल रामेल की जीवनी हिन्दी म उन्होंने लिखी है, वह बतलाती है कि वह भाषा पर अधिकार रखते हैं सैनिक विज्ञान के भी गम्भीर विद्यार्थी हैं। उनका सकल्प था इस तरह के कितने ही ऐतिहासिक सेनानायकों की जीवनी लिखने के बहाने युद्ध के दाव-पेच, हथियारों और दूसरी चीजों का हिन्दी म वणन लिख देना बहुत बडा काम होता, पर नगर पालिका उनका बहुत-सा समय ले जाती है, जो बचता है उसम भी काफी पूजा पाठ ले बठता है—अफसोस, यह सब करने पर भी उनके हज का लाभ मानने के लिए तयार नहीं। लोगों ने जब रामके घर म आग लगा दी और सीता को दुबारा बनवास के लिए ढकेल दिया, तो महन्तजी की क्या बात? मैं तो महन्तजी को कहूँगा वह सवेरे ही स बड़ा साहब की सेवा म लग जाएँ, पूजा-पाठ कम कर दें क्योंकि मठ की कोठरी म होनी पूजा को बाहर इन्तजार करती हुई हमारी जनता नहीं देखना। ठीक ११ बजे बडा साहब के पास आएँ और १२ बजे तक वह खटा होकर पहरा रखें। तब लोग मानेंगे कि महन्त इष्टदेवचरण दास अपने कुएँ म भी अधिक तेज रखते हैं।

दिल्ली—१ अप्रल मूर्खों का दिन है लेकिन किसी प्राचीन या अर्वाचीन शास्त्र ने इस यात्रा के लिए वर्जित नहीं किया। न यहाँ लोगों की धारणा है कि १ अप्रल के दिन यात्रा करनेवाला भी मूर्ख माना जाएगा। होली के दिन इसलिए यात्रा करना लोग पसन्द नहीं करते कि उस दिन हमारे यहाँ हुड़दंग मच जाता है। शिक्षा और सस्कृति के बढ़ने से हमारे लोगों के स्वभाव म कुछ गम्भीरता कुछ सयम आना चाहिए था लेकिन बात उलटी देखी जाती है, जिसका यही अथ है कि हमारी सारी शिक्षा हम सस्कृत बनाने म समय नहीं है। पहले जमाने म सिफ होली को दोपहर तक लोग मिट्टी कीचड एक दूसरे के ऊपर फेंकते या गहरा म अबीर घोलकर पिचकारी से डालते। अब तो एक हफ्ता पहले ही स लौंडे सारे इस काम म जुट जाते हैं। फिर रग ऐसा इस्तेमाल नहीं करते, जो जल्दी धुल जाए। ऐसा

रंग ढूँढ कर लाते हैं, जो कपड़े को हमेशा के लिए खराब कर दे। होली के दोपहर तक ही उसको सीमित भी नहीं रखते बल्कि शाम तक यह तूफान बदतमीजी जारी रहता है। मुझे अपने विद्यार्थी जीवन का बनारस याद है। हमारे गाँवों में पानी में अबीर घोल कर शाम तक डाली जाती थी लेकिन बनारस में दोपहर के बाद सूखी अबीर को मुँह पर मलने का रवाज था। ऐसा ही हमने सहरों में भी देखा था। उस वक्त के लोग ज्यादा सभ्य थे या आज के? आज तो उस दिन मोटर, बस या रेल में यात्रा करने की कोई हिम्मत नहीं कर सकता था। लोगों के लिए छूट है। कीचड़, गोबर जो चीज पकड़ते रहें। रेल के डब्बों पर महीनों दाग नहीं छूटता। किसी ने खिड़की खुली रखी तो कम्पार्टमेंट के भीतर की कोई चीज गन्दा होने से बच नहीं सकती। देश के स्वतन्त्र होने से पहले थोड़ा-सा सकोच भी रहता था—मुसल्मान या ईसाई विरोध करेंगे, हिन्दू मुस्लिम दंगा हो जायगा। अब उसकी भी कोई पर्वाह नहीं करता। मुसल्मान चुपचाप घर में रहकर उस दिन को बिता देते हैं। हाँ, उनमें से कुछ इसके महत्व को समझने लगे हैं। सोचते हैं कि जनगंगा का प्रवाह जिधर बहता हो, उसमें तुम भी शामिल हो जाओ। आज से सवा सौ साल पहले कवि नजीर अकबराबादी होली में दूसरों के साथ मिल कर खूब आनन्द लेते थे, उस पर कविता करते थे। लोग नजीर को हाथोंहाथ उठाने के लिए तैयार थे। आज भी जहाँ कोई ऐसा मुसल्मान दिखाई पड़ता है, उसकी आवभगत का क्या कहना। स्वतन्त्रता के बाद होली का क्षेत्र और बढ़ा है। पहले यह हिन्दीभाषी भूभाग का ही त्योहार था। बंगाल, पहाड़, पंजाब और महाराष्ट्र में देखा-देखी नकल कभी कभी देखी जाती थी। दक्षिण के सारे प्रदेश तो जानते भी नहीं थे कि होली किस चिड़िया का नाम है। पर अब जान पड़ता है कि होलिका माई सारे भारत को एक करने के लिए कमर बाँध चुकी है। दिल्ली में भारत के सभी भागों के लोग संसद् के सदस्य हैं। वहाँ होली जवाहरलाल से ही शुरू होती है। उस दिन उनका सारा शरीर और मुँह अबीर से भरा रहता है। सभी सदस्य भी गुलाल मलने में एक दूसरे से होड़ लगाते हैं। फिर दिल्ली के अधीन सारे भूभाग में होलिका अपना राज्य क्यों न कायम करना चाहे। हैदराबाद तेलुगु भाषाभाषी प्रदेश है। वहाँ के एम० एल०

ए० राणा ने होली की बहार लेनी शुरू की, तो उसका अर्थ है दक्षिण के चारा अभेद्य प्रदेशों में भी छेद हो गया। वस्तुतः होली के डर के मारे ही हमने यात्रा पहले नहीं की।

दिल्ली—अब की दिन के समय में दिल्ली की यात्रा करने का हमने निश्चय किया था। पड़े-पड़े सोते यात्रा करने की जगह आसपास की भूमि को देखते चलना अच्छा है। कमला इससे पहले दिन में दिल्ली की यात्रा नहीं कर सकी थी और न जया जेता हो। जया पहले की रेलयात्रा को भूल चुकी थी लेकिन अब वह उस समय सकती थी। जेता का कौतूहल मात्र होने वाला था। दूसरों की देखादेखी गाई कहने की कोशिश करता। भोजन करके १० बजे स्टेशन पहुँचे। कुछ पहले पहुँचने से जगह मिलने में आसानी थी। आखिर आजकल का दूसरा दर्जा पहले का ड्योढ़ा दर्जा ही है, इसलिए काफी भीड़ होने की सम्भावना रहती है। ११ बजकर ३८ मिनट पर बम्बई एक्सप्रेस चली। आजकल हरद्वार की अर्धकुम्भी की धूमधाम थी, यद्यपि उसका सबसे महत्त्वपूर्ण स्नान १३ अप्रैल को होनेवाला है, पर लोग पहले ही से पहुँच जाना चाहते थे। हरद्वार का कुम्भ हो या अर्धकुम्भ अप्रैल की भयंकर गर्मी में बड़े बुरे समय में पड़ता है। यदि सफाई का ठीक इन्तजाम नहीं हुआ, तो हैजा होना अवश्यम्भावी है। शायद वह हरद्वार के इस मेले में न आया हो। सरकार बहुत सचेत है इसका पता इसी से लग रहा था कि देहरादून स्टेशन से हरद्वार के टिकट लेनेवाले हरेक आदमी को बड़ी हैजे का इंजेक्शन लगा दिया जाता। हरद्वार में चारों ओर से आनेवाले रास्तों पर इसका प्रबन्ध था। प्रयाग इसमें अधिक सौभाग्यशाली है क्योंकि उसका कुम्भ या अर्धकुम्भ सर्दी के सबसे ठण्डे महीने में पड़ता है। वहाँ भी सूई और इंजेक्शन का प्रबन्ध रहता है लेकिन इस साल तो दिल्ली और लखनऊ के महादेवों और देवों ने पहुँच कर गजब ढा दिया। सारी पुलिस को अपनी सेवा में बुला लिया, और प्रबन्ध में उनके अभाव के कारण हजारों आदमी कुचल कर मर गये। इससे देवों महादेवों को कोई शिक्षा मिला, यह कहना मुश्किल है। हरद्वार में गर्मी के कारण भी यह आने की हिम्मत नहीं कर सकते।

पहले ही से चिट्ठी मिल गई थी। प० किशोरीदास वाजपेयी हरद्वार

गाडी के पहुँचते ही आ गये और जब तक गाडी खुली नहीं तब तक बैठे बातें करते रहे। साथ में पूडी, मिठाई रायता लाये थे। पूरियाँ अब भी गरम थीं, और आजकल की दुनिया में आदमी की जितनी शक्ति है, उसके अनुसार प्रयत्न करके शुद्ध घी में बनाई गई थीं। शुद्ध घी कहना आजकल मुश्किल है। जो अपनी भैंस और गाय के मक्खन से घी बनाता है वही शुद्धता की कसम खा सकता है। यद्यपि हम भोजन करके चले थे पर गाडी चलते ही गरम गरम पूडियों ने हमें आकृष्ट किया, शाम तक भी हम चारों प्राणी पूडियों को समाप्त नहीं कर सके, लेकिन रायता को खतम करने का निश्चय कर लिया था। गाडी कुरुभूमि में चल रही थी। कुछ समय पहले यात्रा करते तो हरे भरे खेत होते, लेकिन अब वह कट चुके थे। कुरुदेश उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग है और काशी मल्ल (भोजपुरीभाषी भाग) पूर्व में। दोनों आजकल चीनी की खान बन गए हैं। यहाँ इतनी मिलें खड़ी हैं। कुछ ईख ऊँटों में भर इधर से उधर जाते दीख पड रहे थे। जगह जगह तौलने के काँटे के आसपास गन्ने से भरी सैकडों गाडियाँ लगी थीं। अब नगदनारायण की चमक है, इसलिए जहाँ मिल से निकले की जरा भी आशा रहती, वहाँ के लोग अपने खेतों में ऊख बोने के लिए तैयार हो जाते। पूर्वी उत्तर प्रदेश में गर्मी के दिनों में कुओं से चरस भर भरके पानी ऊख के खेतों में डाला जाता है। कुरुदेश सौभाग्यशाली है जो यहाँ गंगा की धाराओं का जाल बिछा हुआ है और पानी की कोई कमी नहीं है।

गर्मी ४ बजे जाके कम हुई पर पता था और गाडी चलते वक्त बाहर से भी हवा आती थी, इसलिए अधिक घबराने की जरूरत नहीं थी। शाम हो गई थी, जब गाडी मेरठ छावनी पर पहुँची। प्रा० कृष्णकान्त मिश्र अपनी पत्नी कमल, अपने भाई, बहिन और बहनोई के साथ आये और मेरठ नगर तक साथ चले। करीब आध घंटे तक सत्संग रहा। कमल की पुत्री कल्पना जब कुछ देखने की थी तो बहुत ही क्षीण और छोटी दिखाई पड़ती थी, लेकिन अब वह स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट थी। रात के ९ बजे के करीब हम दिल्ली स्टेशन पर पहुँचे। दो बच्चों और सामान को लेकर रेल से जल्दी उतरने में कुछ कठिनाई तो होनी ही है, पर श्री शिव शर्मा स्टेशन पर पहुँचे हुए थे। हम आराम से उतर कर टक्सी पर बैठे, और २२ फज-

बाजार में भैया के घर पर पहुंच गये। भैया और भाभीजी हमारे आने की प्रतीक्षा में थे।

गर्मी का तापमान सौ डिग्री से ऊपर नहीं पहुँचा था लेकिन इसको भी हम १० बजे से ४ बजे तक पंखे के नीचे ही काट सकते थे। जिस उद्देश्य से हम भटठी में जलने आये थे, पहले उसे पूरा खत्म करना था।

सफदरजंग अस्पताल—सुना था दिल्ली में पोलियो की चिकित्सा का आधुनिकतम ढंग से प्रबन्ध है। यह भी मालूम हो गया था कि यह शहर से बाहर सफदरजंग में है। भैया दोनों बच्चे और हम दोनों टैक्सी लेकर हवाई अड्डे से आगे अस्पताल की जगह पर पहुँचे। युद्ध के समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अस्थायी एकमंजिला नीची छतों की कोठरिया-वाली इमारत बनी थी जिन्हें स्थायी अस्पताल का रूप दे दिया गया था। यदि तिमंजिला चौमंजिला इमारतें होतीं तो आदमी को बहुत दूर तक दौड़ भाग करने की आवश्यकता नहीं होती। हम में से कोई यहाँ की स्थिति व्यवस्था से वाकिफ नहीं था। शिव नमाजी भी पहली बार आए थे और यही बात भैया की भी थी। पोलियो क्लिनिक कहाँ है इसी का पता लगाने में काफी चक्कर काटना पड़ा। अस्पताल में हजारों काम करनेवाले हैं सभी हजारों कमरों का हिसाब कैसे रख सकते थे। खैर, बच्चों के वार्ड का पता लगा फिर वहाँ जाकर इस क्लिनिक का भी स्थान मालूम हो गया। जाने पर मालूम हुआ पहले नम्बर लाओ। नम्बर के लिए फिर सड़क के किनारे वाले मकान में जाना पड़ा। बरांडे में भीड़ लगी थी। दूर तक क्यू था। एक से अधिक आदमियों को नम्बर देने पर लगाकर इसे कम किया जा सकता था लेकिन लोगों के कष्ट की किसको परवाह है। क्यू में यदि कहीं मरीज को भी लेकर खड़ा होना पड़ता तो बड़ी आफत होती। लेकिन इतनी अक्लमंदी की गई थी कि स्वस्थ आदमी भी मरीज के लिए नम्बर ला सकता था। शिवजी क्यू में खड़े होकर जल्दी का नम्बर ले आये। फिर क्लिनिक में भी डेढ़ घंटे के करीब अगोरना पड़ा तब बारी आई। किसी एक महिला डाक्टर ने देखकर कुछ लिख दिया। तब तीसरी जगह जाना पड़ा। तीसरी जगह गये, जहाँ पर कि बच्चों की इस तरह की बीमारियों के विशेषज्ञ थे। एक बड़े कमरे में पचासों आदमी इंतजार कर रहे

थ। पच्चीसा छाटे छाटे बच्चे थे जिनम से किसी का पैर टढा हा गया था, और किसी का हाथ। कितन ही सुदर लडक विकलाग हो गये थे। यहाँ एक नस ने पुर्जा पाकर नाम लिख लिया लकिन हम काई आदेश पत्र नही दिया। कह दिया यहाँ आप भी इन्तिजार कर। पहले लडी डाक्टर न ही कह दिया था— हाथ ठीक हा गया है। लेकिन हम जब दिल्ली तक आए थे ता विशेषज्ञ का दिखला दना चाहते थ। कुछ दर बाद डाक्टर साहब दा एक डाक्टरा के साथ आए। हरक लडक का दखकर कुछ आदेश लिख बात जात थ। जना क हाथ पर हल्क से पालिया का असर हुआ था, और कुछ ही दिना तक वह उस इच्छानुसार हिला डुला नही सकता था। पर, अब हिलान डुलान म काई शिकायत नही थी। कसर थी ता यही कि बाए हाथ की अपक्षा दाएँ हाथ म शक्ति कम थी, इसलिए डाक्टर साहब ने उस सबस पीछे के लिए छोड दिया। अत म बारी आइ। हाथ दखा और पूछा। फिर कहा— अब इसम अधिक कसर नही है। जो कुछ है वह हाथ क व्यायाम स ठीक हा जायेगा। भया पहले स ही यह बात कह रह थे। लकिन हम ता आधुनिक ढग के क्लिनिक स विशेष परामश लने के लिए आय थे। डाक्टर न किसी तरह बगार टाली। हम वहाँ स चल देना चाहिए था लकिन जिस तरुणा ने यहाँ पुर्जे को लिया था वह कह रही थी—'जरा ठहरिए विशष तौर स देखग। ठहर जाना पडा। शिवजी न पाछे बत लाया कि वह कुछ पसा पाने की आशा रख रही थी। खर फिर डाक्टर ने दखा। सलाह ता वह पहले ही दे चुक थे।

छुट्टी मिलन पर १ बज हम टक्सी लकर घर पर पहुँचे। अब गर्मी म बाहर निकलन की कौन हिम्मत करता? दिल्ली का काम हमारा हा चुका था इसलिए जल्दी छोडन की पडी थी। शाम के ६ बजे तक हम और बच्चे भी शीतलपाटी पर पखे क नीचे पडे रह। स्त्रिया बडी हिम्मतवाली हाती हैं। हाट बाजार उनक शौक की चीज है। कमला और भाभीजी जया और 'ताईजी क मुना का लकर बाजार गइ। भाभीजा के भतीजे का जया न ताईजी का मुना नाम द रखा है।

वैस ता १० १२ अप्रल तक क लिए हम तयार होकर गए थ। साचा था वहाँ बिजली का इलाज या मालिश आदि बतलाएँग, जिसक लिए कुछ

दिन ठहरना पड़ेगा। अब एक दिन और जरूर ही ठहरना था। देवताओं की कृपा समझिये उस दिन सवेरे से हलका सा मेघ का पर्दा आकाश पर छाया रहा। शाम को कुछ बूंदाबांदी भी हुई। हमें कुछ साथियों और प्रकाशकों से मिलना था। पार्टी आफिस में साथी रणदिवे, घाटे, दिल्कर, सच्चिदा और दूसरे मिले। आजकल स्तालिन की ही चर्चा सब जगह सुनाई दे रही थी। स्तालिन के पिछले जीवन के जो दोष प्रकट हुए थे और जिनकी कड़ी आलोचना सोवियत भूमि में हो रही थी, उसका प्रभाव सबके ऊपर पड़ रहा था। मैंने भी अपने विचार प्रकट किये। सभी इसे कड़वी घूंट समझते थे, लेकिन मानते थे कि यही स्वास्थ्यकर दवा है। साम्यवाद के विरोधियों को यद्यपि मौका मिला है, लेकिन वे उससे कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। निर्बलता को हटाकर विश्व साम्यवाद और भी मजबूत होगा, और भी फैलेगा। सच्चिदा ने बतलाया इस महीने हम "माओ" (जीवनी) में हाथ लगायेंगे। राजकमल के देवराजजी ने फिर अबके इसी महीने में "दादा" में हाथ लगाने का वादा किया पर वह कभी नहीं लगा।

४ अप्रैल को भी दिन भर हम दिल्ली ही में रहना पड़ा। कल तो बादल ने कुछ अवलम्ब दिया था लेकिन आज १० बजे दिन से शाम के ८ बजे तक पारा ही गरम रहा। पसीने से तो बच गए, लेकिन सिर घूम रहा था। समय से कुछ पहले ही स्टेशन पहुँचे। दूसरे दर्जे में दो सीटें रिजर्व करा ली थीं। हम यह भूल गए कि दूसरे दर्जे में रिजर्व कराने का मतलब सिर्फ बैठने की जगह सुरक्षित करना है, सोने की नहीं। यहाँ आने पर जब देखा, बैठे बैठे बच्चों को लेकर गुजारा करना पड़ेगा, तो पहले दर्जे में सीट ढूँढने के लिए दौड़े, पर वहाँ कोई जगह खाली नहीं थी। देहरादून में फौजी स्कूल और दूसरी संस्थाओं के कारण ऊँचे अफसर जाया ही करते हैं, अब वे तो अर्धकुम्भी भी लोगों को खींच रही थी। हमारे डब्बे में एक शरणार्थी डाक्टर अपने परिवार की महिलाओं के साथ जा रहे थे। दूसरे आदमियों में रेल के एक भूतपूर्व कर्मचारी अपनी वृद्धा पत्नी के साथ बैठे थे। पास के दूसरे दर्जे के डब्बे में जगह थी, शायद वहाँ अधिक स्थान मिल जाता, लेकिन जब स्थिति मालूम हुई, तो सामान लेकर दूसरे डब्बे में जाना मुश्किल था। मैंने ऊपर सामान रखने की सीट दखल की, इसलिए कमला को दो आदमियों

की जगह मिल गई। संयोग से हमारे चार आदमियों की बेंच पर एक आदमी नहीं आया। जैसे भी हो रात काटनी ही थी।

हरद्वार के ही यात्री ट्रेन में भरे हुए थे, इसलिए हरद्वार आने पर उनमें से बहुत से उतर गए। भूतपूर्व रेल्वे कर्मचारी शरणार्थी थे। देहरादून में उनके सम्बन्धी रहते थे, इसलिए पहले अपना भारी भरकम सामान लेकर वह देहरादून जाना चाहते थे, जहाँ से अर्धकुम्भी स्नान के लिए आते। उनकी वृद्धा पत्नी कुछ अधिक मोटी थी। चलना फिरना उनके लिए मुश्किल था। ऊपर से पूरी धर्मात्मा थी। हाथ धोने के लिए मिट्टी भी अपने साथ लेकर चल रही थीं। हरद्वार स्टेशन पर हाथ मुँह धोने की सूझी और मिट्टी लेकर पानीकल पर पहुँचीं। लौटते लौटते गाड़ी चल पड़ी। पतिदेव दौड़कर चढ़े, लेकिन पत्नी छूटी जा रही थी। जल्दी से गाड़ी रोकने की जंजीर खींच ली। पहले दूसरे को खींचने के लिए कहा, लेकिन उसने इन्कार कर दिया। गाड़ी खड़ी हुई। गार्ड ने आकर कहा— "तुम्हारे ऊपर मुकद्दमा चलाया जाएगा।" वह कहने लगे— "मेरी बीबी छूटी जा रही थी, इसलिए मैंने खींची।" गार्ड ने कहा— "यह सब जवाब मजिस्ट्रेट के सामने आप दीजियेगा।" सामान उतार लिया गया और उन्हें स्टेशन के कर्मचारी के सुपुर्द कर दिया गया।

८ बजे हम देहरा पहुँचे। आज यहीं रहना था। बगीचे की रक्षा के लिए टोपीवाली बन्दूक साठ पैंसठ रुपये में खरीदी थी। उसका कोई काम नहीं था, इसलिए बेच देना चाहते थे। हिमालय आर्मवाले ने उसे ६० ६५ में बेचा था, और अब ३० रुपया देने के लिए तैयार थे। उसे छोड़कर रेमिंगटन के यहाँ मरम्मत के लिए दिये हुए टाइपराइटर को ले घर लौट आए। दिल्ली और देहरा में बहुत फर्क है। गर्मी यहाँ भी थी, पर दिल्ली जैसी नहीं।

मसूरी—६ अप्रैल को ६ बजे टैक्सी ली। पौने १० बजे हम कितावघर (मसूरी) पहुँच गए और आध घंटे में ही पैदल चक्कर घर आ गए। जेता को दस्त आ रहे थे और जुकाम भी था। हमारे पड़ोसी "किलडेर" के स्वामी कर्नल चार्ल्स भी आ चुके थे, इसलिए डाक्टरी परामर्श से हम निश्चिन्त थे।

बुद्ध पर अनेक पत्र पत्रिकाओं ने लेख लिखने की माँग की थी। सोचा इसी बहाने बुद्ध पर एक छोटी सी पुस्तक तैयार हो जाएगी, इसलिए उदारतापूर्वक लिखने लग गए। दिल्ली से भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) ने अपनी जीवनी की सामग्री दी थी, उसे भी लेकर अब "घुमक्कड़ स्वामी (हरिशरणानन्द)" को दुबारा लिखना था, जिसे ८ अप्रैल से हमने शुरू किया।

९ अप्रैल के सोमवार को संवत् २०१२ चैत बदी १३ रही। ६३ साल पहले वैशाख बदी ८ रविवार को संवत् १९५० विक्रमी को पन्दाहा में मैं पैदा हुआ। यहीं आकर ६०वें जन्मदिन को कमला ने विशेष तौर से मनाया था। आज ६४वाँ जन्मदिन था। हम निश्चय कर चुके थे कि उस दिन अपने घर ही में विशेष खाना पीना कर लेंगे, पार्टी-वार्टी नहीं करेंगे। सबेरे नित्य नियम के अनुसार तीन घंटे टाइप कराया। दोपहर को और अपराह्न की चाय में कुछ विशेष भोजन रहा। इस प्रकार यह दिन समाप्त हो गया।



की जगह मिल गई। सयाग से हमारे चार आदमियो की बच पर एक आदमी नही आया। जस भी हो रात काटनी ही थी।

हरद्वार क हा यात्री ट्रेन म भर हुए थे इसलिए हरद्वार आन पर उनम स बहुत स उतर गए। भूतपूव रेल्वे कमचारी शरणार्थी थे। दहरादून म उनक सम्बधी रहते थ इसलिए पहले अपना भारी भकम सामान लकर वह देहरादून जाना चाहते थ, जहाँ से अधकुम्भी स्नान के लिए आत। उनकी वृद्धा पत्नी कुछ अधिक मोटी थी। चलना फिरना उनके लिए मुश्किल था। ऊपर स पूरी धर्मात्मा थी। हाथ धोने क लिए मिट्टी भी अपने साथ लेकर चल रही थी। हरद्वार स्टेशन पर हाथ मुह धोने की सूची और मिट्टी लकर पानीकल पर पहुँची। लौटत लौटते गाडी चल पडी। पतिदव दौडकर चढ लकिन पत्नी छूटी जा रही थी। जल्दी से गाडी रोकन की जजीर खीच ली। पहले दूसरे को खीचन के लिए कहा लेकिन उसने इकार कर दिया। गाडी खडी हुई। गाड ने आकर कहा— तुम्हारे ऊपर मुकदमा चलाया जाएगा।" वह कहन लग—' मरी बीवी छूटी जा रही थी, इस लिए मैंने खीची।' गाड ने कहा— यह सब जवाब मजिस्ट्रेट के सामने आप दीजियगा।' सामान उतार लिया गया और उन्ह स्टेशन क कमचारी क सुपुर्द कर दिया गया।

८ बजे हम दहरा पहुँचे। आज यही रहना था। बगीचे की रक्षा के लिए टोपीवाली बदूक साठ-पसठ रुपये म खरीदी थी। उसका कोई काम नही था इसलिए बच दना चाहत थ। हिमालय आमवालो ने उस ६० ६५ म बचा था, और अब ३० रुपया देने के लिए तयार थ। उस बेचकर रेमिगटन क यहाँ मरम्मत क लिए दिये हुए टाइपराइटर को ल घर लौट आए। दिल्ली और दहरा म बहुत फर्क है। गर्मी यहाँ भी थी पर दिल्ली जसी नही।

मसूरी—६ अप्रल को ९ बजे टक्सी ली। पौन १० बजे हम कितावघर (मसूरी) पहुँच गए और आध घटे म ही पदल चलकर घर आ गए। जेता का टस्ट आ रहे थ और जुकाम भी था। हमारे पडोसी ' क्लिडेर ' क स्वामी कनल चाँद भी आ चुके थ, इसलिए डाक्टरी परामर्श से हम निश्चित थ।